ाहित्य-माला

मुंशी-साहित्य

(तीसरा, चौथा और पाँचवाँ भाग)

गुजरातके नाथ

अनुवादकर्त्ता—

श्री प्रवासीलाल वर्मा, मालवीय

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

पहली बार

अगस्त, १९४२

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देस
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस
६ केळेवाडी, बम्बई नं.

पूर्व-कथा

पंचासरके राजा जयशिखरका वीर पुत्र वनराज गुजरातके मध्यकालके इतिहासका सूत्रधार है। सम्वत् ८०२ में उसने अणहिलवाड़ पाटन (वर्तमान कड़ी पाटन) को बसाकर, भावी गुर्जर साम्राज्यकी राजधानी स्थापित की। सम्वत् ९९८ में सोलंकी-वंशके शूरवीर मूलराजने अपने मामाके राज्यको उदरस्थ कर लिया। गुजरातको सुसंस्कृत बनानेके लिए उसने दूर-दूरके ब्राह्मणोंको निमंत्रित किया और गिरनारके ग्रहरिपुको अधीन करके, कच्छके लाखाको मारकर, लाटके सेनापति बारपको हराकर, पाटनकी सत्ता बढ़ाई। उसका पुत्र चामुंड लाटकी राजधानीको भरोंच ले गया और लाटको सर किया। सन् १०८० में उसके पौत्र भीमदेवके समय, मुहम्मद गज़नीने सोमनाथपर आक्रमण किया और पाटनको हस्तगत कर लिया। जब मुहम्मद लौट गया तब शूरवीर भीमदेवने पाटनको फिर ले लिया और अपनी सत्ता बढ़ाई। भीमदेवकी वणिक-पत्नी बकुलादेवीसे बड़ा पुत्र क्षेमराज उत्पन्न हुआ। दधिस्थलीको अधीन करके क्षेमराजने वाणप्रस्थ ग्रहण कर लिया और पाटनका राज्य अपने सौतेले छोटे भाई कर्णको सौंप दिया। कर्णके मृत्यु-कालका इतिहास मैंने 'पाटनका प्रभुत्व'में ग्रथित किया है और उसके सिरोंको इस उपन्यासके साथ जोड़ा है।

'पाटनका प्रभुत्व' उस समयका है, जब सिद्धराज जयसिंहके पिता कर्णदेव मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए थे। उस समय क्षेमराजका पुत्र देवप्रसाद राजपूत सामंतोंका अग्रणी था और पाटनका दंडनायक बननेके लिए तड़प रहा था और इसमें असफल होकर वह उसकी सत्ताके विरुद्ध उपद्रव कर रहा था। चन्द्रावतीमें जैनोंने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली थी, और पाटनकी सत्ताको भी हस्तगत करनेके लिए आनन्दसूरि नामक यतिको भेजा था।

पाटनमें मीनलदेवी वहाँके नगरसेठ महा अमात्य मुंजालकी सहायतासे एकचक्र-सत्ता स्थापित करनेका प्रयत्न कर रही थी। मुंजाल मीनलदेवीका भक्त था और उसीने कर्णदेवके साथ उसे परणाया था। इन दोनोंमें शुद्ध स्नेह-सम्बन्ध भी था।

देवप्रसाद अपने काकाकी बीमारीका समाचार सुनकर अपने वीरपुत्र त्रिभुवनपाल (कुमार पालके पिता) को लेकर पाटन आया।

आनन्दसूरि मीनलदेवीको अपने हाथमें लेता है और राजाकी मृत्युके पश्चात् मुंजालके बदले शान्तु मेहताको पाटनका दंडनायक बनाता है तथा देवप्रसादको कैद करनेका प्रयत्न करता है। अपमानित हुआ मुंजाल पाटनको त्यागकर चला जाता है, क्रुद्ध देवप्रसाद पाटनके राजदुर्गको फाँदकर दधिस्थलि पहुँचता है और पाटनपर आक्रमण करनेकी तैयारी करता है।

देवप्रसादकी स्त्री, मुंजालकी बहन, हंसादेवीको मीनलदेवीने कैद कर रखा था, और यह अफवाह उड़ा दी थी कि वह मर गई। इस समय रानी उसे छोड़ देती है और देवप्रसादको पाटनपर आक्रमण करनेसे रोकनेका बचन ले लेती है।

मीनलदेवी मुंजालकी लापरवाही और देवप्रसादकी धाकसे असहाय बन जाती है और पाटनकी जनतासे डर कर चुपचाप जयदेवसहित नगर छोड़कर चन्द्रावतीकी छावनीमें चली जाती है; फिर मुंजालको कैद करती है। अपनी सलाहको इतनी सफल हुई देखकर यति आनन्दसूरि जैनधर्मके कट्टर शत्रु देवप्रसादको दधिस्थलीमें मार डालता है।

परन्तु पाटनकी जनता उत्तेजित हो जाती है, राजमहलपर अधिकार करके सारी सत्ता त्रिभुवनपालको सौंप देती है और रानीका बहिष्कार करती है। रानी उलझनमें पड़ जाती है और अन्तमें मुंजालसे सहायता लेती है। सजीव हो गये स्नेहके कारण मुंजाल पाटनकी जनताको समझाता है और जनता रानी और जयदेवको स्वीकार कर लेती है। असफल यति मान-भंग होनेसे पाटन छोड़ देता है।

जयदेव सिंहासनपर आरूढ़ होता है। त्रिभुवनपाल रानीकी भतीजी प्रसन्न कुमारी (काश्मीरा देवी) का पाणिग्रहण करता है और मुंजाल पाटनकी पताकाको सारे गुजरातपर फहरानेका प्रयत्न आरंभ करता है। त्रिभुवनपाल लाट (साबरमतीसे लेकर दमनतकका प्रान्त) का दंडनायक नियत होता है और उदा मंत्रीको कर्णावती और खंभातकी सत्ता दी जाती है।

इन घटनाओंके पश्चात् चार वर्ष बीत जाते हैं।

गुजरातके नाथ

१—सरस्वतीके तीरपर

संवत् ११५४ के जाड़ोंकी रात थी। बड़ी कड़ी ठंढ पड़ रही थी। निकट ही सरस्वतीके नीरका गंभीर रव रात्रिकी शून्यतामें भयानक प्रतीत हो रहा था। उसके जल-कणोंसे शीतल हुआ पवन, जाड़ोंकी नहीं, वर्षाकी कँपकँपी उत्पन्न करनेवाली ठण्ढका भान करा रहा था। ऐसी रात थी कि घरके कोनेमें या प्रियतमाकी रजाईमें लिपटे पड़ा रहना ही भला मालूम हो। फिर भी चार-पाँच सौ मनुष्य पाटणके सामनेवाले तीरपर खुले मैदानमें पड़े थे। कुछ लोग जहाँ तहाँ आगके अलाव जलाकर जाड़ा भगानेका प्रयत्न कर रहे थे और कुछ उनके आसपास सो गये थे या सोनेका प्रयत्न कर रहे थे। कुछ इने गिने लोग न सोनेके विचारसे घुटने समेटे बैठे हुए थे। अँधेरेके कारण अलावोंकी अस्थिर-सी आगसे विचित्र प्रकारकी चिनगारियाँ निकल निकल कर रातको और भी भयंकर बना रही थीं। सारा दृश्य ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे पिशाचोंका सम्मिलन हो।

एक अलावके आगे एक युवक पैर लम्बे किये अधलेटा पड़ा था। भूमि-पर पड़ी हुई ढालपर वह अपना सिर रक्खे था। उसके सिरके साफ़ेसे प्रकट

हो रहा था कि वह सोरठका है। उसकी तलवार उसके सिरके पास पड़ी थी और तलवार बाँधनेका खेस भी पास ही था; परन्तु उसकी आँखोंमें निद्रा नहीं थी। वह हाथमें लकड़ीकी छोटी छोटी चैलियाँ लेकर ताक ताककर अलावके अंगारोंपर मार रहा था। उसके अलावके पास और कोई मनुष्य न था। कुछ दूरीपर एक वृक्षसे टिके हुए दो आदमी घुटने समेटे बैठे थे। कोई किसीसे बातचीत नहीं कर रहा था। युवक पचीसेक वर्षका मालूम होता था। उसका मुख ज़रा साँवला परन्तु सुन्दर था। उसकी आँखें बड़ी और तेजस्विनी थीं और क्षण क्षणमें मुस्कराहटसे नाच रही थीं। उसका शरीर सशक्त और सुगठित था। उसके पहनावेसे, उसके हाथोंकी पहुँचियों, भुजबन्दों, कानोंके कुण्डलों और गलेके छोटे-से सोनेके हारसे प्रकट होता था कि वह कोई सुखी मनुष्य है। उसके बैठनेकी तर्ज़, तथा मुख-परकी निश्चिन्तता और लापरवाहीसे प्रकट होता था कि वह किसी उच्च कुलका सुभट है।

कुछ ही देरमें दौड़कर आती हुई साँढ़नीके पैरोंकी आहट सुनाई पड़ी और तुरन्त ही मालूम हुआ कि जैसे साँढ़नी भूमिपर गिर पड़ी है। फिर शान्ति छा गई। अलावके आगे बैठा युवक ज्योंका त्यों बैठा रहा। उसे इस समय अलावकी आगमें लकड़ीकी चैलियाँ फेंकनेसे बढ़कर आकर्षक और कोई काम ही नहीं मालूम हो रहा था।

जिस ओरसे साँढ़नीके गिरनेकी आवाज़ आई थी, उस ओरसे एक मनुष्य बड़ी तेजीसे आया और उस युवकको जागता देखकर उसकी ओर मुड़ा। नवआगन्तुक युवक बीस-बाईस वर्षका मालूम होता था। वह शस्त्रोंसे सुसज्जित था। उसकी कमरमें तलवार और कटार, कन्धेपर ढाल और हाथमें एक बड़ी-सी लाठी थी। वह बैठे हुए युवककी ओर पलटा और क्षण-भर दोनों एक दूसरेको देखते रहे। सिरके साफ़ेके सिवा दोनोंका पहनावा एक-सा था। केवल नवआगन्तुकके शरीरपर आभूषण बहुत कम थे। दोनों अच्छे ऊँचे कद्दावर और रूपवान् थे। दोनोंकी आँखोंमें तलवारकी धारें चमकतीं थीं, दोनोंके भव्य कपालोंपर चन्दनके त्रिपुण्ड सुशोभित थे, दोनों गुजराती योद्धा थे और जिन योद्धाओंने सोलंकियोंके अधिनायकत्वमें दिग्विजय करना आरम्भ किया था, उन्हींमेंके मालूम होते

थे; फिर भी दोनोंमें बहुत अन्तर था। दोनोंके व्यक्तित्व भिन्न थे। नव आगन्तुक कुछ ऊँचा था, उसकी आँखें कुछ छोटी और तेज थीं, उसका शरीर अधिक कसा हुआ और छरहरा था। बैठे हुए युवकका गोल मुख, बड़े बड़े नथुने और बड़ी बड़ी आँखें मृगपतिके साहस और सत्ताकी सूचना करती थीं। नव आगन्तुककी अनीदार आँखें, दृढ़ और कठोर मुख, सकरी और नुकीली नाक गरुड़राजकी-सी झपट, शक्ति और सावधानता प्रदर्शित करती थीं। एक निडर और शान्त और दूसरा दूरंदेश तथा स्वस्थ मालूम होता था। पशु-राज और खग-राज,—सिंह और गरुड़ दोनोंकी-सी मुखमुद्रा चरित्रवान् मनुष्यकी होती है। ये दोनों दो प्रकारके नमूने थे।

तब आगन्तुकने बैठे हुए युवकसे पूछा, "भाई, पाटणके भीमनाथ घाटका उतार यहीं है क्या?"

बैठे हुए युवकने हाथकी चैलीको ज़रा देर तौला और बिना हिले-डुले शान्तिके साथ ज़रा व्यंगमें उत्तर दिया "जी हाँ, पूछनेका कारण?"

नव आगन्तुकने ज़रा अधीरतासे पूछा, "मुझे पाटण जाना है। नाव कहाँ मिलती है? क्या यहीं?"

सामने बैठा हुआ युवक विनोदमें जरा हँसा और अपनी पहुँचीको ऊँचे चढ़ाते हुए बोला, "तो क्या तुम्हारा खयाल है कि हम सब मूर्ख हैं?"

नव आगन्तुककी भवें तन गईं। बैठे हुए युवकके शान्त विनोदसे उसकी अधीरताने क्रोधका रूप धारण कर लिया। उसने कड़ाईसे पूछा, "क्यों? नाव कहाँ गई?"

"उस पार है। वहाँ जाओगे, तो मिल जाएगी।"

"तो जाना कैसे हो? मुझे बहुत जरूरी काम है।"

"एक उपाय है।" "क्या?"

बैठे हुए युवकने उत्तर दिया "विमानपर चढ़कर जाइए। बोलो, है विचार?"

"मज़ाक करते हो?" नवआगन्तुकने तनिक क्रोधके आवेशमें पूछा। उसकी गहरी आँखें चमक उठीं।

"देखो, क्रोध करनेका काम नहीं। सख्त जाड़ा पड़ रहा है और सारी

रात इसी तरह बितानी है। भला बिना मज़ाकके यह समय कैसे कटेगा? आओ, इधर बैठो।" कहकर बैठे हुए युवकने भूमिपर पड़ी हुई अपनी तलवार निकट खींचकर जगह दिखाई। "पाटण अभी कोनेमें पड़ा है।" कहकर तिरस्कारसे वह फिर हँस पड़ा और हाथकी चैलियोंको अलावमें डालने लगा।

ज़रा दूर अन्धकारमें वृक्षके नीचे दो मनुष्य बैठे हुए थे। उनमेंसे एक बोला "क्या?"

दोनों युवक उस ओर मुड़े। वृक्षके नीचे बैठे हुए दोनों जनें कपड़े ओढ़कर मुख ढाँके हुए थे। एककी पगड़ी सफ़ेद थी और दूसरेकी लाल। बस, इतना ही वे देख सके। लाल पगड़ीवाला उपर्युक्त शब्द बोल उठा, परन्तु वह कुछ आगे बोले कि दूसरे मनुष्यने हाथ खींच कर रोक दिया।

"अर्थात्? मुझे इसी समय पाटण जाना चाहिए। क्या यहाँसे तैरकर पार नहीं हुआ जा सकता?" अनुभवी तैराककी दृष्टिसे नदीका पाट नापनेका प्रयत्न करते हुए नवआगन्तुक बोला।

"हाँ, ठीक है। उस किनारे बिना अलावके ठिठुर कर मर जाओगे। और अगर गाँवमें घुसोगे, तो बिना आज्ञा नदी पार करनेके अपराधमें हाथीके पैरों तले जा पड़ोगे।" बैठे हुए युवकने ज़रा हँसकर कहा।

"तब फिर क्या करूँ?"

"बैठो, क्या तुम्हें अकेलेको ही जल्दी है? यहाँ तो नित्य ही इतने आदमी आकर लौट जाते हैं। उन्हींमें आज तुम एक अधिक सही।"

"परन्तु इस तरह रोकनेका कारण?"

"पूछो जाकर सज्जन मंत्रीसे। मालवेका राजा चढ़ आया है, यह ख़बर नहीं सुनी?"

नवआगन्तुकने कहा, "सुनी है। इसीलिए तो मैं त्रिभुवनपाल महाराजका सन्देश लेकर लाट*से आया हूँ। परन्तु मालव-सेना कितने निकट आ गई है?"

"पाँच हाथ आई हो या पचास कोस। बनियेके राजमें सब बराबर।"

* दमनसे साबरमती तकका देश लाट कहलाता था। उसका मुख्य नगर भरोंच था

" तो क्या वे मैदानमें नहीं उतरे ? " नव आगन्तुकने बैठकर तापते हुए पूछा ।

" नहीं जी, सज्जन शाहको पाटण सौंपकर शान्तु मेहता सन्धि करने गये हैं ।"

" सन्धि ? हमारे महाराज त्रिभुवनपाल तो सेना लेकर आ रहे हैं । "

" तो उनसे कहो कि लौट जायँ वापिस जहाँसे आये हों वहीं । "

" और जयदेव महाराज..."

" वे पाप धोने गये हैं । सुना है कि द्वारकाके निकट मौज कर रहे हैं। अवन्ति-नाथसे युद्ध करनेकी फुरसत किसे है ? इतना ही अच्छा है कि पासमें धन है, इसलिए वणिकविद्या करके ज्यों-त्यों सेनापति उबक*को वापस लौटा देंगे । " बैठे हुए युवकने तिरस्कारसे हँसकर कहा ।

" अच्छा ! परन्तु तुम रहनेवाले कहाँके हो ? "

" मैं लाटका रहनेवाला हूँ, और तुम ? "

" मैं सोरठका हूँ । जूनागढ़,—जूनागढ़के निकट वंथली,—वहींका मैं हूँ ।

" तुम्हारा नाम क्या है ? मेरा तो कृष्णदेव है । "

" मेरा नाम काक है । " नव-आगन्तुकने उत्तर दिया " यह तो बड़ा जुल्म है, मैंने आज बीस दिनोंसे आरामकी साँस तक नहीं ली और यहाँ सन्धिकी बातें चल रही हैं ! हमारे महाराज त्रिभुवनपाल भी पहुँचने ही वाले हैं । "

" क्या वे हाथीपर बैठकर आ रहे हैं ? जबतक आयेंगे, तबतक तो मालव-सेना वापिस लौट जायगी । "

" नहीं, मैं समुद्र-मार्गसे खंभात होकर आया हूँ । वे पैदल रास्तेसे सेनाके साथ निकले हैं । "

जरा मज़ाकमें आँख मारकर कृष्णदेवने कहा, " कहो, उदा काका तो आनन्दमें हैं ? "

" क्या तुम श्रावक× हो ? "

उत्तरमें कृष्णदेव खिलखिलाकर हँस पड़ा, " नहीं भइया ! " और जब उसकी हँसी रुकी, तब उत्तर दिया, " मैं पहली ही बार पाटण आ रहा हूँ । इन सबके तो मैंने केवल नाम ही सुने हैं, देखा तक नहीं; परन्तु उदा

---

* ' उपगव '—द्याश्रय महाकाव्य । × ' श्रावक ' अर्थात् जैन ।

मेहताकी ख्याति बहुत सुनी है। वह तो खंभातके स्वामी बन बैठे हैं। उनकी ख्याति सत्य है, या केवल बातें ? "

" उनके खरे प्रभावके आगे ख्यातिकी कोई गणना ही नहीं। पाटणके स्वामीको तो नहीं देखा, परन्तु खंभातके स्वामीकी सत्ता और समृद्धिके आगे किसीकी कोई गिनती नहीं। "

" जब सभी ऐसे हैं, तभी तो पाटणके स्वामीकी कुछ चलती नहीं। "

" क्यों ? " काकने पूछा।

" शान्तु मेहता राजा, उदा मेहता राजा, मुंजाल मेहता राजा,—फिर बेचारे जयदेव महाराजको राजा बननेका अवसर ही कहाँसे मिल सकता है ? "

" कृष्णदेव, पाटणकी सीमामें बैठकर पाटणके ही राजाकी निंदा कर रहे हो ? " कृष्णदेवके मौजी स्वभावको और भी खिलानेके लिए काकने कहा, परन्तु अचानक पीछे मुड़कर देखा कि झाड़के सहारे बैठे हुए वे आदमी धीरे धीरे कुछ बातें कर रहे हैं।

" निन्दा कैसी ? भले ही स्वयं जयदेव महाराज इसे सुन लें। "

" जैसा तुम कह रहे हो, यदि वैसा ही हो, तो बहुत बुरी बात है। इससे तो हमारे महाराजका प्रताप लाटमें अधिक है। "

" पहाड़ दूरसे ही सुन्दर दीखते हैं। "

काकको कुछ सन्देह हुआ, इसलिए वह वृक्षकी ओर मुड़ा। अँधेरेमें बैठे हुए उन दो व्यक्तियोंमेंसे एक व्यक्ति, दूसरेका हाथ थामे हुए, धीरेसे, परन्तु आग्रहसे कुछ कह रहा है। काकको ऐसा प्रतीत हुआ कि वे लोग उनकी बातें बहुत ध्यान-पूर्वक सुन रहे हैं।

" देखो, वे हमारी बातें सुन रहे हैं " धीमेसे उसने कृष्णदेवसे कहा।

" सुन लेने दो। चाहें तो नाक-कान काट लें। " उसने ज़ोरसे उत्तर दिया।

" तुम्हें पाटण अच्छा नहीं लगता तो यहाँ आये ही किसलिए ? " काकने पूछा।

" बचपनसे ही मैंने पाटणकी सुन्दरियोंके विषयमें सुना है कि... "

गम्भीरतासे काकने बातको बदला और कहा, " यदि हमारे त्रिभुवनपाल महाराज यहाँ रहें, तो महाराजको न जाने क्या क्या सिखा दें। "

" बिना मरे भी क्या किसीने स्वर्ग देखा है ? "

" अजी, सो तो ठीक है; परन्तु यदि मेरी ही बात महाराज सुनें, तो न जाने क्या कर डालें। "

" मैं पाटणका राजा होता तो सुनता। नहीं हूँ, यही अफसोस है ! किन्तु मुझे तो बेचारे इन लोगोंपर दया आती है। " कहकर कृष्णदेवने ठंढमें सोये हुए लोगोंकी ओर हाथसे संकेत किया।

" क्यों ? "

" बेचारे बिना धनी-धोरीके ढोर-जैसे मालूम होते हैं। ऐसे समय सबको पाटणके क़िलेमें कर लेना चाहिए। इसके विपरीत नित्य ही न जाने कितने लोग भयके मारे आते हैं और फाटक बन्द देखकर लौट जाते हैं। रक्षा नहीं करनी है तो यह कोट, यह क़िला, किस कामका ? "

" सत्य है। त्रिभुवनपाल महाराज तो पाटणको ही पृथ्वीका मध्य समझते हैं। "

" इस समय तो यह पानीका मध्य है। चारों ओरसे खाइयाँ खोद दी गई हैं, इसलिए जहाँ देखो वहाँ पानी ही पानी नजर पड़ता है।"— कृष्णदेवने कहा।

" ऐसा मालूम होता, तो दौड़ा दौड़ा कर अपनी साँढ़नीके प्राण नहीं ले लेता। आखिर बेचारी गिर ही पड़ी। "

" चलो, अब शान्तिसे सोओगे। मुझे तो भाई नींद आ रही है। " कहकर कृष्णदेवने तलवार सिरके नीचे रखी और सोनेकी तैयारी की।

२—वृक्षके नीचेके दो पुरुष

कृष्णदेवके कथनमें असत्यता नहीं थी, केवल तीक्ष्णता थी। वह पहली ही बार पाटण आ रहा था; परन्तु किसी पक्के भेदियेने उसे सब बातोंका सही ज्ञान करा दिया था।

जब चार वर्ष पहले जयसिंहदेव सोलंकी पाटणके सिंहासनपर आसीन हुए थे, तब राजतन्त्र ठीक नहीं था; परन्तु महा आमात्य मुंजाल और राज-माता मीनलदेवीका मतभेद दूर हो गया था। देवप्रसादका काँटा दूर हो

चुका था और उसके लोकप्रिय पुत्र त्रिभुवनपाल जैसे राजभक्तने दंडनायकका पद प्राप्त कर लिया था। आनन्दसूरिकी मददसे जैन-शासनके प्रवर्त्तनकी लालसा भी बहुत कुछ अदृश्य हो गई थी और त्रिभुवनपालको राज्यका स्तम्भ बना देखकर राजपूत मंडलेश्वरोंने महा आमात्यका शासन स्वीकार करना आरम्भ कर दिया था। इन सब कारणोंसे राज-तंत्रको सुधारनेमें मुंजालकी बुद्धिको बिलम्ब न लगा।

राज्य बढ़ गया था और मुंजालने उसे एक सूत्रमें बाँध दिया था। उस बन्धनको पुष्ट करनेके लिए महाराजा और राजमाता राज्यमें पर्यटनके लिए निकले थे और वृद्ध आमात्य शान्तु मेहता पाटणमें रहकर उसकी रक्षा कर रहे थे।

त्रिभुवनपाल लाटके दण्डनायक थे और वे उसे सर करनेमें लगे हुए थे।

उदा मेहताको पहले कर्णावती * और फिर स्तंभतीर्थ× दोनों सौंपे गये थे। परन्तु सारे राज्यमें ये दोनों नगर, यदि किसीसे कम थे, तो केवल अनहिलवाड़ पाटणसे,—अर्थात् कहा जाता था कि उनके अधिपतिने चार वर्षोंमें अपार धन और अमाप सत्ता एकत्र कर ली थी। मुंजालकी राजनीतिको यह भला न मालूम हुआ। उसने कर्णावतीको नागर मंत्री दादाकको सौंप दिया और तब उदयनके हाथमें केवल खंभात ही रह गया। कुछ वर्षों पहले सज्जन मंत्रीको सोरठ सौंपा गया था; परन्तु उनका स्वास्थ्य ठीक न होनेके कारण इस समय वे पाटणमें आये हुए थे। सोरठमें पट्टणी-शासनके केन्द्रस्थान वनथलीमें इस समय उनका पुत्र परशुराम अधिकारी था।

इसी समय अवन्तिनाथ लक्ष्मवर्माने सेना लेकर गुजरातकी सीमापर आक्रमण कर दिया। उनके सेनापति उबकके आक्रमणसे एकके बाद एक क़िले हाथसे निकल जाने लगे। इस समय मुंजाल, राजा और रानी प्रभास होकर द्वारिकाकी ओर गये थे और पाटण स्वामी-विहीन था। इसलिए उबकके हृदयमें उसके स्वामी बननेकी आशाएँ उत्पन्न हो गईं। वह राजधानीकी ओर बढ़ा आ रहा था।

शान्तु मेहता घबरा गये। चारों ओर सहायता माँगनेके लिए मनुष्य दौड़ाये। जितनी सेना उनके अपने पास थी, उसे लेकर सामना करनेके लिए

* वर्तमान अहमदाबाद। ×खंभात।

गये और सज्जन मंत्रीको पाटण सौंप आये। एक मुठभेड़ भी न हो पाई थी कि शान्तु मेहताने शौर्यको बिसारकर बुद्धिका पक्ष स्वीकार कर लिया और धन देकर मालव-सेनाको वापिस लौटानेकी युक्ति रचनी आरम्भ कर दी। महाप्रतापी भीमदेवने एक बार धन लेकर मालवाको जीतनेका कार्य त्याग दिया था। उनके पौत्रके प्रधानने वह धन ब्याजसहित फिर लौटा देनेका विचार करना आरम्भ किया।

सेनापति उबकको गुजरातपर चढ़ आते देख गाँवोंकी गरीब प्रजा पाटणकी शहरपनाहके अन्दर घुसनेकी इच्छासे दौड़ी आ रही थी। परन्तु शान्तु मेहताको सबसे बड़ा भय यह था कि उबक पाटणके चारों ओर घेरा डाल देगा, और यदि ऐसा हुआ, तो अधिक दिनों टिकनेके लिए जितने कम मनुष्य शहरमें हों, उतना ही अच्छा। यह विचार कर उसने फाटक बन्द करनेकी आज्ञा दे दी। परिणाम यह हुआ कि आजकी भाँति प्रतिदिन सैकड़ों लोग आते और दुःखसे मुक्त होनेके बदले अधिक दुखी और निराधार होकर वापस लौट जाते। भयसे व्याकुल बनी हुई उनकी कल्पना-शक्ति उन्हें यह विश्वास करा देती कि वे जीवित ही मृतकके समान हैं। गरीब प्रजाका स्वामी शासक उनसे दूर था और उनका शत्रु विनाशक आगे बढ़ता आ रहा था।

सबेरा होनेपर एक नाव इस पार आती थी और कोई परिचित मनुष्य या सन्देश होता, तो उसे ले जाती थी। जब तक वह नाव यहाँ आये, तब तक काकके लिए इसके सिवाय और कोई चारा ही नहीं था कि यहीं पड़ा रहे।

काक सोने लगा। आसपास पड़े हुए लोगोंको भी मध्यरात्रिके बाद नींद आने लगी। अलावोंकी लपटें शान्त हो गईं। केवल जलते हुए अंगारे रह गये। इतनेमें, समझमें नहीं आया कि किस कारणसे, काक जाग पड़ा। सावधान शिकारीकी-सी चपलतासे उसने कान लगाये और सोचने लगा कि वह क्यों जाग पड़ा। उसे दो जनें कुछ धीरे धीरे बातें करते सुनाई दिये।

"जैसे भी हो, हमें नगरमें बहुत जल्दी पहुँचना चाहिए।" एक लड़केका-सा स्वर सुनाई पड़ा।

"हाँ, और लोगोंके जागनेसे पहले।"—दूसरा ओजस्वी और शान्त स्वर सुनाई दिया।

"तैयार हो गये ? चलो, रास्ता बता दूँ।"

"हाँ, डूँगरको भी उठाऊँ ?"

"नहीं।"

दोनों जनें सुसज्जित होकर चल पड़े। काकको सन्देह हुआ। काकको यह कुछ अद्भुत-सा मालूम हुआ कि ऐसे समयमें दो मनुष्य चुपचाप राज-शासन भंग करके नदी लाँघने जा रहे हैं। काकका स्वभाव ऐसा था कि जब तक वह किसी बातकी तहतक नहीं पहुँच जाता, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता और उसके मनमें एक बार जो बात बैठ जाती, उसका निकलना फिर बड़ा कठिन हो जाता। वह पलक मारते ही उठा और जिस ओर वे दो मनुष्य जा रहे थे, उसी ओर, उनके पीछे पीछे चल पड़ा। जैसे बाघ वनमें अपने शिकारके पीछे लुकता-छिपता दौड़ता है, उसी प्रकार दौड़कर काकने कुछ ही देरमें उन्हें जा मिलाया और उनकी बातोंको सुननेका प्रयत्न करने लगा। परन्तु वे दोनों मौन ही चले जा रहे थे।

कुछ देर तक दोनों तेज़ीसे चलते रहे। पीछे पीछे काक भी लुकता-छिपता चला जा रहा था। कुछ देर बाद बड़ेने कहा, 'इस ओर आओ' और दोनों ऊबट मार्गपर चलने लगे। कुछ ही देरमें एक दस-पन्द्रह झोंपड़ोंका मछुओंका गाँव आ गया। वहाँ उनमें जो बड़ा था, वह ठहर गया और उसने अपने छोटे साथीको भी ठहरनेके लिए सूचित किया। काक वृक्षकी आड़में खड़ा हो गया।

बड़ेने पहले झोंपड़ेका द्वार खटखटाया। पहले तो कोई आवाज नहीं आई पर अन्तमें किसीने पूछा, "कौन है ?"

"द्वार खोलो।" बड़ेने उत्तर दिया। आखिर मछुआ काँपता काँपता आया। जरा द्वार खोला और केवल सिर बाहर निकालकर बोला, "कौन है ?"

"तेरे पास कोई डोंगी है ?"

मल्लाहने द्वार बन्द करते हुए उत्तर दिया, "नहीं।"

"और तूँबे ?"

"इस समय इन सबका क्या काम है ?"

"उस पार जाना है।"

"उस पार नहीं जाया जा सकता। मेहताजीका हुकम है। इस समय तूंबे-ऊँबेकी बात कैसी ?"

उस आदमीने जरा आगे सिर करके मछुएके कानमें कुछ कहा और काकने सुना कि उसके हाथमें कुछ टंक* दे दिये गये हैं। तुरत ही मछुएने द्वार खोल दिया। उसका कठोर स्वर उस मनुष्यके प्रभुत्वसे काँपने लगा और वह बोला, "अन्नदाता, तूँबे तो हैं। कहिए तो बाँस बाँधकर डोंगी बना दूँ।"

"हाँ, चल, जल्दी कर।"

परन्तु मछुएको कुछ भरोसा नहीं हुआ, इस लिए वह अन्दर गया और दिया लेकर बाहर आया। दियेके प्रकाशमें उसने देखा और तुरन्त दिया रखकर वह अपने काममें लग गया।

काक बहुत विस्मित हुआ। उसने सोचा, या तो ये मालवाके जासूस होंगे या कोई बड़े अधिकारी। यदि बड़े अधिकारी हैं, तो इस प्रकार अकेले चुपचाप क्यों भटक रहे हैं। उसे ऐसा लगा कि अवश्य ही ये कोई जासूस हैं और यदि ऐसा है, तो उन्हें इस प्रकार जाने देना उसे ठीक न मालूम हुआ। यदि कोई अधिकारी हैं, तो उन्हें भी रोकना उसे कुछ अनुचित प्रतीत नहीं हुआ। आखिर ये लोग कौन हैं, इसका विचार करता हुआ काक मछुए और उन दो मनुष्योंके पीछे लग गया। काकने उन्हें पीछेसे पहचाननेका प्रयत्न किया कि ये किस श्रेणीके मनुष्य हैं, परन्तु वह कुछ भी निश्चय नहीं कर सका। अँधेरी रात थी, इसलिए वह पहने हुए वस्त्रोंका मूल्य भी नहीं आँक सका। बड़ा मनुष्य, जिसने सफेद पगड़ी बाँध रखी थी, सतर होकर दृढ़ चालसे चल रहा था। उसका सिर गौरवसे उठा हुआ मालूम होता था। फिर भी ऐसा प्रतीत हुआ कि वह अपने छोटे साथीके प्रति आदरका व्यवहार कर रहा है। काकने सुना था कि उबकके साथ मालव-पतिका भाई नरवर्मा भी सेना-सहित आया है। वही दोनों तो ये नहीं हैं? और ये दोनों अकेले आये हैं, तो क्या पाटणका रक्षक इनसे मिल गया है? सज्जन मंत्री क्या दगाबाज़ हो गया है?

डोंगी तैयार हुई और मछुएके साथ वे दोनों उसपर जा बैठे। मछुआ बाँससे पानी काटने लगा। कुछ दूरसे काक भी पानीमें जा कूदा और धीरे धीरे निःशब्द उस डोंगीकी दिशामें तैरने लगा। काकको सीधे जाना ज़रा कठिन प्रतीत हुआ; कारण कि सरस्वतीका जल बड़े प्रबल वेगसे बह रहा था।

---

* उस समय चलनेवाले सोने और चाँदीके सिक्के।

अल्पवयस्कने पूछा, " किसीके तैरनेका स्वर सुनाई पड़ रहा है ?"

काक तुरन्त ठहर गया। " नहीं।"

" अन्नदाता, कोई मालूम तो जरूर होता है।" मछुएने ताककर देखनेका प्रयत्न किया।

" होगा। हमें क्या मतलब ? हम अपना काम करें।"

काकने समझ लिया कि अधिक देर न छिपा जा सकेगा। इसलिए वह तेज़ीसे तैरकर उस पार जा पहुँचा और ज्यों ही डोंगी उस पार लगी, कि वह उससे उतरनेवाले दोनों मनुष्योंके सामने जा खड़ा हुआ।

सफ़ेद पगड़ीवाले मनुष्यने आगे आकर ओजस्वी स्वरमें पूछा," कौन है ?"

काकने पूछा, " आप कौन हैं ? जयदेव महाराजका आदेश भंग करके इस पार क्यों आये ?"

अल्पवयस्कने कहा, " अरे, यह तो त्रिभुवनपालका भट* है !"

" हाँ, वही हूँ। प्रतीत होता है, कल रातकी सब बातें आपने भली भाँति सुन ली हैं। आप कौन हैं ? इस प्रकार चोरी-छुपे पाटणमें क्यों प्रवेश करना चाहते हैं ?"

वयस्क मनुष्यने कठोर स्वरमें कहा, " लड़के, बिना जाने-बूझे बीचमें न पड़ना चाहिए। हमें जाने दे।"

" कोई भी अपरिचित व्यक्ति इस समय पाटणमें प्रवेश नहीं कर सकता। लौट जाइए, नहीं तो ठीक न होगा।" कहकर काकने तलवार खींच ली।

अंधकारमें भी काकने उस वयस्क मनुष्यकी आँखें चमकती हुई देखीं। उसके साथीने भी तलवार आधी म्यानसे बाहर निकाल ली।

उस मनुष्यने गम्भीरतासे कहा, " तू अपनी डींग रहने दे। तुझे मालूम है कि तू किसके साथ बात कर रहा है ?" शब्दकी अपेक्षा आवाज़में अधिक कम्पन उत्पन्न करनेवाला असर मालूम होता था।

काक एक कदम आगे बढ़ आया।

उसने उत्तर दिया, " मैं डींग नहीं मारता। और मैं किसके साथ बात कर रहा हूँ, यह भी नहीं जानता; परन्तु विचार कर सकता हूँ कि आप लोग कौन हैं।"

---

* योद्धा। सौ मनुष्योंका नायक भट और हज़ारका नायक भटराज कहलाता था।

जरा तिरस्कारके साथ उस बड़े मनुष्यने पूछा, " कौन हैं ? "

काकने कहा, " सेनापति उबक और युवराज नरवर्मा । "

उत्तरमें वह मनुष्य खिलखिलाकर हँस पड़ा और यह पहली ही बार काकको मालूम हुआ कि उसका हास्य आकर्षक था ।

काकके हाथमें नंगी तलवार थी; पर उसकी परवाह किये बिना वह मनुष्य उसके पास आया । उसने शान्तिसे उसके कन्धेपर हाथ रखा और पूछा, " तूने कभी मुंजाल मेहताका नाम सुना है ? "

काक कुछ भी न समझ सका । उसने कहा, " हाँ । "

" तो मेरा ही नाम मुंजाल मेहता है । "

काक दो क़दम पीछे हट गया । उसकी बुद्धि कुंठित हो गई । उसे लगा कि पृथ्वी फट जाती और वह उसमें समा जाता, पर न तो पृथ्वी फटी और न उसे स्थान मिला । फिर भी उसे ऐसा जरूर प्रतीत हुआ कि स्थान देनेके लिए जैसे वह चक्रकी भाँति घूमने लगी हो । उसने यह किसका अपमान किया ? वह किसके साथ भिड़ पड़ा ? पाटणके नगरसेठ और महाअमात्य, त्रिभुवनपालके मामा और राज्यमें जयसिंह देवसे भी अधिक सत्ता रखनेवाले महापुरुषके साथ !

" प्रभु ! क्षमा ! "

काकको इसी घबड़ाहटमें पड़ा छोड़कर मुंजाल मेहता आगे बढ़ गये । परन्तु काक हाथमें आई बाज़ीको छोड़नेवाला न था । वह एकदम रास्ता रोककर खड़ा हो गया और बोला, " प्रभु, मुझे क्षमा कीजिए । परन्तु इसका विश्वास क्या कि आप मुंजाल मेहता ही हैं ? यह समय बड़ा विकट है, इस-लिए भूलभुलावेमें चाहे जिसे पाटणमें जाने देना अच्छा नहीं है । "

" सही है । अच्छा, चलो मेरे साथ ।—माँझी, तुम भी चलो । "

सब लोग साथ साथ चल पड़े । काक विचारमें पड़ गया कि यदि यह मुंजाल मेहता हों, तो यह साथवाला युवक कौन है ? क्या स्वयं जयसिंहदेव ? उसे यह प्रसंग स्वप्न जैसा मालूम होने लगा । काक विचार करता हुआ पीछे पीछे चलने लगा कि इस धृष्टताके लिए मुंजाल मेहता उसे क्या दंड देंगे । आख़िर ये सब पाटणके एक बाजूके दरवाजेपर जा पहुँचे ।

" कुंडी खटखटाओ । " मुंजालने हुक्म दिया ।

" जी।" काकने कुंडी खटखटाई और थोड़ी ही देरमें दरवाजेकी खिड़कीसे बाहर देखनेके लिए बने हुए छिद्रके पास एक चौकीदार आ खड़ा हुआ।

उसने पूछा, " कौन है ?"

" मैं मुंजाल मेहता। यहाँ नायक कौन है ?"

" वासेश्वर भट।—" चकित हुए चौकीदारने घबड़ाये हुए स्वरमें उत्तर दिया।

" झिंझुवाड़िया ?"

" जी हाँ !"

" बुलाओ उसे !"

वासेश्वर भट मशालचीके साथ आया और खिड़कीके छिद्रमेंसे मशालका प्रकाश बाहर आने लगा।

" कौन, वासेश्वर ? मैं मुंजाल हूँ। खिड़की खोलो।"

दूसरे ही क्षण काँपते हाथोंसे चौकीदारने खिड़की खोल दी। मशालके प्रकाशमें काकने मुंजालकी ओर देखा। उसकी भव्य मुखरेखा, तेजोराशि बरसाती हुई आँखें और पतली मूछोंकी छायामें छिपा हुआ गर्व-मुद्रित मुख —यह सब उसने देखा। मन्त्रिवरकी सुनी हुई प्रशंसाएँ उसे याद आ गई; पर वे अपर्याप्त मालूम हुईं। जवानीमें जीते हुए हृदयोंकी कथाएँ भी काकको याद आईं और वे सब सत्य प्रतीत हुईं। वह हाथ जोड़कर सिर झुकाकर खड़ा रहा गया।

मन्त्री काककी ओर घूमा, " काक भट, तुम इस माँझीके साथ जहाँसे आये हो, वहीं लौट जाओ। किन्तु सावधान! आजकी बात किसीसे न कहना।" कहकर मन्त्रीने अपने साथीको आगे किया और पीछेसे खुद भी खिड़कीमें प्रवेश किया।

इतनेहीसे प्राण बचे, अतएव ईश्वरका उपकार मानकर काक माँझीके साथ लौट आया। इससे उसे इतना सन्तोष अवश्य हुआ कि उनके पीछे लगनेसे इतना समझने और देखनेको तो मिला! जब वह लौटकर अपने स्थानपर पहुँचा, तब कृष्णदेव सो रहा था।

३—पाटणमें

पौ फटनेका समय हो रहा था। काकने सोनेका विचार त्याग कर फिर सरस्वतीमें प्रवेश किया और स्नान करके सन्ध्या की। वह जब लौटकर आया, तब कृष्णदेव बदन मोड़कर आलस हटा रहा था। उसने पूछा, "कहाँ गये थे?"

"जल्दी नींद खुल गई तो ज़रा सन्ध्या-स्नानसे निबट लिया। कहो, नींद तो अच्छी आई?"

"खूब अच्छी। पर तुम्हें तो पाटणके स्वप्ने आते रहे होंगे?"

"नहीं जी, मैंने तो खूब खर्राटे लिये।"

इस बातमें कितनी सचाई थी, इसपर कृष्णदेवने कोई विचार नहीं किया और कहा, "चलो भाई, मैं भी एक गोता लगा आऊँ।"

काक बैठे बैठे प्राप्त हुए अनुभवपर विचार करने लगा। बचपनसे ही उसे स्वावलंबनकी टेव थी। इसलिए नये संयोगोंमें नावको किस तरह बढ़ा ले जाना चाहिए, यह उसे आता था; पर गत रात्रिके अनुभवसे वह ज़रा घबरा गया था। लाटमें बैठे बैठे उसने मुंजाल मेहताका नाम तो बहुत सुना था। अपने नायक त्रिभुवनपालको भी उसने इस व्यक्तिके गुणोंसे चकित और इसके शासनसे काँपता हुआ देखा था। पाटनके शासनको अपनी मुट्ठीमें रखनेवाले ऐसे महान् राजनीतिज्ञको धमकानेकी उसने धृष्टता की, इसके लिए वह पछताने लगा। यदि मुंजाल मेहता क्रोधित हो जायँ, तो पाटनमें कितनी देर रहा जा सकता है?

काकने एक बातसे बड़ा सन्तोष पाया था। उसने मुंजालको जैसा नरसिंह सोचा था, वैसा ही पाया। उसका गौरव-पूर्ण मुख उसके हृदयमें रम गया। वह विचार करने लगा कि राजतन्त्रमें उसका और बेचारे बालक जयसिंहदेवका क्या स्थान होगा।

काककी विचार-माला कुछ ही क्षणोंमें भंग हो गई। एकदम उषाका आगमन हुआ। पूर्व दिशा लाल रंगसे रँग गई। अंधकार पिघलने लगा और उसका ज्वलन्त लाल रस चारों ओर फैलने लगा। काकने सिर उठाकर आकाशकी ओर देखा तो उसे अपना श्वास रुद्ध होता हुआ-सा मालूम पड़ा।

उसने सरस्वतीके प्रबल वेगसे बहते हुए लाल लाल जलको देखा, पाटणकी खुली हुई खाइयोंका पानी नगरकोटके तीनों ओर फैला हुआ देखा और देखा कि जैसे तप्त स्वर्णकी-सी जलकी मेखलामें किसी अप्सराकी अमर देह सुशोभित हो रही हो वैसे ही पाटण सुशोभित हो रहा है। उसका चौकोर कोट चारों ओर जल-तरंगोंसे घिरा हुआ था। उसके ऊपरके कंगूरे संगमरमरके थे और उनपर बहुत ही सुन्दर नक्काशी की हुई थी। सामने भीमनाथके घाटकी सौ विशाल सीढ़ियाँ स्वर्गकी सीढ़ियों-सी प्रतीत हो रही थीं। घाटके दोनों ओर संगमरमरके दो छोटे मंदिर अचेतन द्वारपालोंका काम कर रहे थे। बीचमें छज्जेवाला विशाल द्वार नक्काशी और छोटे-मोटे गुम्बजोंसे सुसज्जित था। अन्दरसे ताड़के वृक्षोंकी घटा कोटके कंगूरोंपर झालर-सी झूमती और वायु-लहरीमें नृत्य कर रही थी। पाटण ऐसा मालूम होता था, जैसे पृथ्वीपर साक्षात् इन्द्रपुरी अवतीर्ण हुई हो। परन्तु मानों इतनेसे पाटणकी महत्त्वाकांक्षा रुकी नहीं और इसलिए उसके विश्वकर्माकी कलाको भी विस्मरण करा देनेवाले भिन्न भिन्न रंगोंके सुन्दर सैकड़ों मन्दिर-शिखर कोटके कंगूरोंसे भी ऊपर बढ़कर अमरावतीको भी लज्जित करनेके लिए गगनभेदी स्वर्ग-द्वारके निकट अपनी पताकाओंको फहरा रहे हैं। उन शिखरोंपर शोभित सुनहरे कलश उदयोन्मुख सूर्यके प्रकाशमें अंगारोंके समान चमक रहे हैं। पाटणके कवि कहा करते थे कि 'पाटणके वीरोंकी तलवारों और मन्दिरोंके कलशोंके तेजसे सूर्यका प्रकाश भी मन्द पड़ जाता है।' यह बात काकको सत्य मालूम हुई। केवल इतनी बात और थी कि सूर्यनारायणको अधिक न सतानेके लिए ध्वजा-पताकाओंने कलशोंको ढँक रखा था और तलवारोंका तेज बुद्धिमान् मन्त्रियोंकी बुद्धिने रोक रक्खा था।

जो दृश्य काकने देखा, उसका आज नाम-निशान भी नहीं रह गया है। वर्तमान पाटण तो मुसलमानोंके द्वारा स्थापित नगर है। सरस्वतीका जल भी इस समय कालके प्रभावसे भिन्न प्रकारसे बहता है। शूर-वीर सोलंकियोंका अनहिलवाड़ पाटण, वर्तमान नगरसे पश्चिमकी ओर कई कोसोंके विस्तारमें बसा था। इस समय पुराने खंडहरोंमें केवल जैनाचार्य हेमचन्द्रकी पोषध-शाला है। असली अनहिलवाड़ भी है, जो कि पीछेसे पाटणका एक मुहल्ला बन गया था, और जो अपभ्रष्ट 'एनावाड़ा' नाम धारण करके अब एक छोटा-सा गाँव है।

उससे कुछ दूर वह स्थान भी है जो पाटणके व्यापारियोंका 'घी-काँटा' कहलाता था।—बस, यही उस नगरके प्रतापकी साक्षी दे रहे हैं। इस बातके कई प्रमाण मिलते हैं कि जो सरस्वती आज पूर्वसे पश्चिम सीधी बहती है, वह पहले वर्त्तमान घुमड़ी दरवाजेके आगे होकर हिंगलाज चाचरके घाटसे सीधी रानीकी बावड़ीकी ओर बहती रही होगी। भीमनाथका घाट रानीकी बावड़ीके उत्तरकी ओर था।

इन भूमिसात् खंडहरोंको आज हजारों मनुष्य पैरोंसे रौंधते हुए चले जाते हैं। उन्हें ध्यान भी नहीं रहता कि ये ईंट-पत्थर नहीं हैं, वरंच पुनीत स्मरण-चिह्न हैं। पत्थर नहीं, प्रतापी नगरकी पूज्य अस्थियाँ हैं। यह केवल भ्रमणशील पुरातत्त्वान्वेषकोंके देखनेका क्षेत्र नहीं हैं, वरंच गुर्जरोंके प्रभाव, बुद्धि और शौर्यके अश्वमेधका महातीर्थ है। नष्ट हुए साम्राज्योंकी यह श्मशान-भूमि है।

लाल उषाने सुनहरा रूप धारण किया और नगर अधिक स्पष्ट हो गया। सोनेसे मढ़े हुए कलश फिर सोनेसे मढ़ गये। काक इस भव्यताको एकचित्त होकर देखने लगा।

कृष्णदेव नहाकर आया, तो उसने पूछा, "क्योंजी, बड़ा विचार कर रहे हो!" काकने मौन-मुख पाटनकी ओर संकेत किया।

"बड़ा सुन्दर नगर है, क्यों?" फिर धीरे-से उसने कहा, "उबक आएगा, तो उसे बरबाद करनेमें बड़ा मज़ा आएगा!"

"कहते क्या हो?" काकने ज़रा कठोरतासे प्रश्न किया।

"अजी, और कुछ नहीं, इस नगरसे मैं थक गया हूँ। बहुत पुराना हो गया है।" काक समझ न सका कि कृष्णदेव मज़ाकमें कह रहा है या वास्तवमें। उसकी आँखें विनोदसे नाच रही थीं। उसके स्वरमें कोई गम्भीर अर्थ गूँज रहा था। "इस नगर-कोटका इतिहास तुम्हें मालूम है? चार सौ वर्ष पहले वनराजने इसे मिट्टीसे खड़ा किया था। रत्नादित्यने फिरसे बनवाया और मूलराज......"

कृष्णदेवका यह तुच्छतासे बोलना काकको पसन्द न आया। उसने सुधारा, "मूलराज नहीं, मूलराजदेव"—

होठ चबाकर कृष्णदेव बोला, "जी, भूल हो गई भाई काकजी! मूलराजदेवने पत्थरोंसे चुनवाया और उसका नाश हो गया।"

"कब ?"

"गर्जन देशके यवन आये, सोमनाथ*ध्वस्त हुआ और भीमदेव कंथकोट भाग गया, तब।"

"फिर यह किसने बनवाया ?"

"भीमदेवने जब यवनोंको मारकर भगा दिया, तब उसके एक मंत्री, इस मुंजाल मेहताके मौसा विमलशाहने और दूसरे दादाक मंत्रीके दादा दामोदरने, इस तरह इन दो अमात्योंने।"

"दादाक मंत्री तो नागर हैं ?"

कृष्णदेवने कहा, "हाँ, इस समय वे कर्णावतीमें हैं। उदा काकाको वहाँसे बिदाई मिल गई और दादाक मेहता वहाँ नियुक्त हुए हैं। फिर कोट छोटा हो गया, इस लिए उसे कुछ तुड़वाकर मुंजाल मेहताने और अधिक बड़ा बनवाया। अब केवल एक ही बात बाकी रह गई है। वह हो जाय, तो कथा पूरी हो।"

"वह क्या ?"

"नगर-कोटका टूटना।"

"कृष्णदेव, तुम यह कह क्या रहे हो ? कोई सुन लेगा तो..."

"सुन लेगा, तो ज्ञानी हो जाएगा। जिसकी उत्पत्ति हुई है, उसका लय भी तो होना चाहिए। और यदि पाटणका विनाश ही होना हो, तो ईश्वर करे, वह यश मुझे मिले।" दाँतोंके बीचसे बोलते हुए कृष्णदेवने कहा और फिर खिलखिलाकर हँस दिया, पड़ा, जैसे उसने यह मज़ाकमें ही कहा हो। फिर बोला, "ये सब तो केवल बातें ही बातें हैं। इस समय तो बस, जयसिंहदेव महाराजकी जय !"

काक इस विचित्र मनुष्यके मुखकी ओर देखने लगा। उसे कुछ सन्देह हुआ; परन्तु गत रात्रिमें सन्देह करके उसने ऐसी ठोकर खाई थी कि अब सन्देहकी ओर और बढ़नेका उसमें साहस ही न रह गया था।

"तुम कभी पाटण नहीं आये, परन्तु उसका इतिहास तो बहुत अच्छी तरह जानते हो।"

"पाटणके विषयमें तो सब कुछ जानना ही चाहिए। यह दुनियाकी

---

* गज़नीका सुलतान मुहम्मद, ई० सन् १०२४

राजधानी जो है!" ज़रा तिरस्कारसे कृष्णदेवने कहा, फिर "अरे, परन्तु यह क्या?" कहकर उसने उस पारकी ओर अंगुलीसे संकेत किया।

कृष्णदेव तो चकित हुआ, परन्तु काक समझ गया। सामनेवाले घाटका द्वार एकदम खुल गया और जैसे शान्तिका ही समय हो, इस तरह द्वारके ऊपरवाले नौबतखानेसे ढोल, नगाड़ों और शहनाईकी आवाज़ आने लगी। खुले हुए फाटकसे हाथियोंपर बैठे हुए एक-दो मांडलिक और कई अन्य लोग आये। कुछ लोगोंने बँधी हुई दो-तीन नौकाएँ छोड़ीं और वे उनमें बैठकर तेज़ीसे पानी काटते हुए इस पार आने लगे।

काकके आसपास पड़े हुए लोग हर्षोन्मत्त होकर इस दृश्यको देखते रह गये, किसीको इसका कारण ज्ञात न हुआ। केवल काक ही समझ पाया कि यह सब किसके आदेशसे हो रहा है।

नौकाएँ इस पार आईं और लोग उसमें बैठने लगे।

कृष्णदेवने एक माँझीसे पूछा, "क्यों रे, एकदम कैसे इतना साहस आ गया? इसका क्या कारण हुआ?"

"अन्नदाताका हुकम है।"

"अन्नदाता बहुत देरसे जागे!" कृष्णदेवने कुछ इस प्रकार कहा कि माँझी सुन न सका। वह और काक एक नौकामें जा बैठे।

"क्यों काक, तुम कहाँ जाओगे?"

"मुझे महाराजने जिससे मिलनेका आदेश किया है, उससे मिलने। तुम कहाँ जाओगे?"

"मैं एक मित्रके यहाँ जाऊँगा।" कृष्णदेवने संक्षेपमें वाक्य पूरा कर दिया।

"अभी तो राजधानीमें ही रहोगे?"

"इसके अतिरिक्त और कोई चारा भी तो नहीं है!"

दोनों जनें निकट आते हुए घाटकी ओर देखते देखते अपने विचारोंमें लीन हो गये। आखिर नौका घाटसे जा लगी। नमस्कार करके कृष्णदेव उतर पड़ा और अन्य लोगोंके साथ भीड़में मिल गया।

काक उसकी ओर देखता रहा। उसके शरीरकी छटा, बोलनेकी रीति और स्वभावकी उच्चताने उसे प्रभावित कर लिया। उसकी भेदभरी बातोंने उसके

हृदयमें सन्देह उत्पन्न कर दिया और उसे यह जाननेकी बड़ी उत्कंठा हुई कि यह कौन है। किन्तु फिर भी अपने कर्तव्यका स्मरण कर वह जिस जगह जानेके लिए आया था, उसकी खोजमें चला गया।

द्वारके आगे घोड़ेपर बैठा हुआ एक जवान सुभट सब आनेवालोंको ध्यानसे देख रहा था। काक उसके पास गया। वह जानता था कि मुंजाल मेहता पाटणमें ही हैं; फिर भी उसने ऐसा डौल बनानेमें बुद्धिमानी समझी कि जैसे वह गत रात्रिकी बात जानता ही नहीं।

" भटराज, सज्जन मंत्रीका निवास कहाँ है ? "

" क्या तुम कोई परदेसी हो ? " उस जवान सुभटने काककी ओर एक तीक्ष्ण दृष्टि डालकर पूछा।

" जी हाँ, मैं त्रिभुवनपाल महाराजका सन्देश लेकर आया हूँ। मुझे मन्त्री महाराजसे मिलना है। "

" तुम लाटसे आ रहे हो ? " " जी हाँ। "

" अच्छा, मेरे साथ चलो। मैं भी मन्त्रीजीके निवासकी ओर जा रहा हूँ। " कहकर घुड़सवारने घोड़ेका मुख फेरकर नगरका रास्ता लिया। काक उसके साथ हो लिया।

घोड़ेपर बैठा हुआ घुड़सवार काककी ओर देखता रहा। काकको प्रतीत हुआ कि जैसे वह किसी प्रकार निराश हो गया है। काकने स्वाभाविक चपलतासे उस जवानकी मुख-मुद्राके आधारपर उसके स्वभावकी कल्पना करनेका प्रयत्न किया। वह जवान उच्च कुलका राजपूत प्रतीत होता था; परन्तु अपनी भावहीन छोटी छोटी आँखों, संकुचित कपाल और मुखपरके भावोंसे बहुत अविश्वासी और मूर्ख मालूम हुआ।

" तुम तो पाटणके ही रहनेवाले होगे ? क्या भटराज हो ? "

" हाँ, मैं पाटणका ही रहनेवाला सोलंकी हूँ। महाराजका सम्बन्धी हूँ। तुम कौन हो ? राजपूत हो ? " घुड़सवारने पूछा। उसकी बोल-चालकी रीतिमें साफ साफ दंभ मालूम हो रहा था।

" नहीं, मैं ब्राह्मण हूँ। "

" तुम पाटण पहली ही बार आये हो न ? हमारे लाटके दंडनायक तो अच्छी तरह हैं ? आयेंगे या नहीं ? "

काक, जैसे उसने इस प्रश्नको सुना ही न हो, इस तरह निकटके एक भव्य मन्दिरकी ओर देखने लगा।

" यह किसका मन्दिर है ? "

" तुम नहीं जानते ? कैसे जान सकते हो ! यह मुंजालेश्वर महादेवका मन्दिर है। हमारे महा अमात्य हैं न, उन्हींने बनवाया है। " घुड़सवारने ' महा अमात्य ' शब्दपर वज़न देकर कहा।

" तुम्हारे पाटणके मकान भी बड़े भव्य और अद्भुत हैं। इस भागको क्या कहते हैं ? "

" यह मोतीचौक है। यहाँसे थोड़ी दूर चाँपा* मेहताका बाड़ा आयेगा। वहाँ सज्जनमंत्रीकी हवेली है।—हाँ, तुम्हारा नाम क्या है ? "

" मेरा नाम काक, और तुम्हारा ? "

" मेरा नाम है वीसलदेव सोलंकी। " घुड़सवारने जरा गर्वसे उत्तर दिया। इसी समय पालकीमें बैठकर एक सामन्त जा रहे थे। उन्हें देखकर वीसलदेवने घोड़ा उस ओर घुमाया। सामन्तने पालकीको ठहराया और घुड़सवारसे पूछा, " कौन ? "

" नहीं जी, कोई नहीं। " पालकीमें बैठा हुआ व्यक्ति दुबला-पतला और ऊँचा था। उसका मुख जरा पिचका हुआ-सा प्रतीत होता था। उसकी आँखोंमें किन्हीं किन्हीं रोगियोंकी आँखोंमें जैसा तेज चमकता है वैसा तेज चमक रहा था। उसे मूँछें मुखमें रखकर बोलनेकी आदत थी और उसके मुखका आकार वीसलदेवके समान था।

" अच्छा, चलो। " उसने पालकीवालोंसे कहा।

" मैं जरा सज्जन मन्त्रीके यहाँ जा रहा हूँ। " घुड़सवार बोला।

" अच्छा। " कहकर दोनों जने जुदे-जुदे मार्गपर चल पड़े।

" इन्हें पहचाना ? हाँजी, तुम कैसे पहचानोगे ! ये मेरे बड़े भाई मंडलेश्वर देसलदेव हैं। बड़े शूर सामन्त हैं। हमारा कुल बहुत बड़ा समझा जाता है। "

" हाँ, यह तो प्रकट ही हो रहा है। " काकने शान्तिसे कहा।

---

* वनराज चावड़ाका मंत्री और सज्जन मंत्रीका पूर्वज।

" यदि सच पूछो, तो जैसे त्रिभुवनपाल वैसे हम। वरंच हम और भी निकटके हैं। "

" अच्छा ! यह कैसे ? " काकने जरा हँसकर पूछा।

" कर्णदेव महाराजके एक छोटे काका थे, उनके हम पौत्र हैं। "

" तब तो तुम त्रिभुवनपाल महाराजसे दूरीके ही हो। वे तो कर्णदेव महाराजके सगे भतीजे हैं। "

हः—हः—हः—कर वह हँस पड़ा; जैसे काक बिल्कुल ही मन्द-बुद्धि हो।

" क्यों ? " काकने पूछा।

" तुम कैसे जानोगे ? त्रिभुवनपालकी माता श्रावक मुंजालकी बहन थीं और उनके दादाकी माँ बकुलादेवी... "

देवप्रसादकी माँ बकुलादेवी अच्छे कुलकी न थीं, इस बातका संकेत पाकर काकको क्रोध आ गया; परन्तु उसका निश्चय था कि जहाँ तक हो, किसीको शत्रु न बनाया जाय, और इस वाचाल लड़केसे बहुत कुछ बातें मालूम हो रही थीं, इसलिए उसने उसकी बातोंका विरोध न किया।

" अच्छा अच्छा ! अब मैं समझा ! वाह ! मेरे धन्य भाग्य जो पाटणमें पैर रखते ही तुम जैसे व्यक्तिसे परिचय हो गया; तो फिर त्रिभुवनपाल महाराज दंडनायक कैसे बन गये ? "

" एक तो वे मुंजाल मेहताके भानजे हैं और दूसरे प्रसन्नदेवी राजमाताकी भतीजी हैं, इसलिए। आजकल मामा मौसीके क्या कम समझे जाते हैं ? "

" कौन, काश्मीरादेवी ? " " हाँ। "

" अब मैं समझा ! "

काक जिस तरह इन बातोंपर ध्यान दे रहा था, उसी तरह चारों ओर भी देख रहा था। उसने पाटणके भव्य मकान, गगन-बिहारी मन्दिर और धनिकोंकी वाटिकाएँ देखीं और लड़ाईके कारण बन्द दूकानें, घूमते-फिरते लोगोंके झुण्ड, चारों ओर घूमते हुए योद्धा, घोड़े, हाथी और घबराहटके तथा तैयारियोंके चिह्न भी देखे।

" यह लो, सज्जन मन्त्रीका निवास आ गया। चाँपा मेहताका बाड़ा तुम्हें मालूम है ? यह है चाँपा मेहताकी हवेली। अब तो इस नई हवेलीमें सज्जन मेहता रहते हैं। "

" यहाँ यह ध्वजा क्यों फहरा रही है ? "

" तुम नहीं जानते ? हमारे यहाँ जो करोड़पति होता है, उसके द्वारपर ध्वजा होती है । "

काकको ज्ञात नहीं था कि पाटणमें धनिकोंकी कमी नहीं है और कौन किस श्रेणीका है, यह जतानेके लिए धनिकोंके घरपर प्रति लाख एक दीपक बढ़ जाता था । करोड़पर ध्वजा फहराती और छप्पन करोड़ हो जानेपर द्वारके आगे भोंपा बजा करता था ।

काक और वीसलदेवने हवेलीमें प्रवेश किया । दालानमें लगभग चौदह वर्षका एक लड़का झूला झूल रहा था ।

" क्यों धनपाल, पिताजी कहाँ हैं ? "

" मुंजाल मेहतासे मिलने गये हैं, " लड़केने झूलेपरसे कूदकर उतरते हुए कहा, " अभी आनेवाले हैं । तुम कौन हो भाई ? "

" मैं लाटसे मन्त्रीजीके पास सन्देश लेकर आया हूँ । मन्त्रीजी कहाँ, राजमहलमें मिलेंगे ? "

" हाँ हाँ, परन्तु अपना सामान तो यहाँ रख दो, फिर मार्ग दिखानेको मैं साथ चलता हूँ ।—दादू, पैर धोनेको पानी तो ले आ । " कहकर धनपालने काकके हाथसे सामान लेकर नौकरको दे दिया ।—" आओ, तुम्हें दिखाऊँ, वीसलदेवजी, तुम भी आओ । तुम्हारे सोरठके भी एक मेहमान आये हुए हैं । "

काकको पाटणमें ठहरनेके लिए और कोई स्थान न था, इसलिए उसने लड़केका निमंत्रण स्वीकार कर लिया और उसके साथ हो लिया । " तुम सोरठके रहनेवाले हो, क्यों ? " जरा मुड़ कर उसने वीसलदेवसे पूछा ।

" हाँजी, मैं भूल गया । हम दोनों तरहसे कुलवान् हैं । सोरठके रा' नवघण हमारी माताके पिता हैं । "

" यह बात है ! "

काकने देखा कि इस रिश्तेदारीकी डींगसे धनपालका होठ गर्वसे जरा सिकुड़ गया है । काक इस गर्वका अर्थ समझ गया । सज्जन मन्त्री अभीतक सोरठके दण्डनायक थे और वहाँके रा'को नाकों चने चबवा रहे थे । इसके उपरान्त पाटणके गर्विष्ठ धनिकोंके आगे राजाओंकी भी कोई गणना न थी ।

अगला दालान छोड़कर अन्दरके कमरेमेंसे सब ऊपरके मंजिलपर चढ़े और एक-दो सोनेसे मढ़े हुए सुन्दर कमरोंको छोड़कर एक ऊपरके कमरेमें गये। जैसे ही ये लोग उसमें घुसे कि काक बोल उठा, " कौन, कृष्णदेव ? "

कृष्णदेव एक चाँदीसे मढ़े हुए पलंगपर आरामसे पड़ा हुआ था। वह धीमेसे उठा, नये आनेवालोंको एक ही दृष्टिपातमें जैसे उसने देख लिया और संयत रूपमें धीरेसे वीसलदेवकी ओर मुड़कर बोला, " कृष्णदेव नहीं, तो और कौन होगा ? "

काककी चपल आँखें वीसलदेवके मुखपर जा लगीं। मुखपर होनेवाले परिवर्तन और क्षणभरके लिए उसकी आँखोंमें उत्पन्न हुई घबराहट देखकर उसे आश्चर्य हुआ। कृष्णदेव शान्त था, परन्तु वीसलदेवके मुखपर घबराहट-सी दीख पड़ी। दोनों यह दिखानेका प्रयत्न कर रहे थे कि जैसे वे एक दूसरेको नहीं पहचानते। फिर भी यह बात काकको स्पष्ट ज्ञात हो गई, दोनोंही एक दूसरेको पहचानते हैं।

" इन्हे पहचानते हो क्या ? " धनपालने काककी ओर मुड़कर पूछा।

" चलो, इससे अच्छा और क्या होगा ?—कृष्णदेवजी, यह भी आपके साथ रहें तो क्या कोई हानि है ? "

" बिल्कुल नहीं। " जरा तिरस्कार-पूर्ण स्वरमें कृष्णदेवने कहा।

काक अधिक न बोला। उसे जल्दीसे जाना था, इसलिए, धनपालको लेकर जानेको तैयार हो गया।

ज़रा क्षोभसे काँपते हुए स्वरमें वीसलदेवने कहा, " अच्छा, तब तो मैं यहीं बैठता हूँ।—क्या मन्त्रीजी अभी न आयेंगे ? " काकको ऐसा प्रतीत हुआ कि वीसलदेव किसी कारणसे यहाँ ठहर गया है।

काक और धनपाल घोड़ोंपर बैठकर राजमहलकी ओर रवाना हुए।

धनपाल काकके सुपुष्ट और सुगठित शरीर, उसके मांसल बाहु और उसकी लम्बी तलवारकी ओर देखता रह गया।

" भटजी, तुम कभी लड़ाईके मैदानपर भी गये हो ? "

" हाँ, बहुत बार ! "

धनपाल कुछ देर चुपचाप चलता रहा; फिर उसने पूछा, " त्रिभुवनपाल महाराज कबतक आयेंगे ? "

" थोड़े ही दिनोंमें। क्यों ? "

" यदि किसीसे न कहो, तो कहूँ। "

" हाँ, कहो, क्या बात है ? "

" त्रिभुवनपाल महाराज पिताजीसे कह गये हैं कि जब वे आकर फिर लाटको जायँगे, तब मुझे भी लड़नेके लिए साथ ले जायँगे। मुझे अब चौदहवाँ वर्ष लगेगा। " अपनी योग्यता और शौर्यका विश्वास दिलानेके लिए धनपालने कहा।

४–पाटणके अधिकारी

काक और धनपाल तेज़ीसे राजमहलकी ओर गये। सन्देश लेकर अनेक सवार महलसे घोड़े दौड़ाते आ रहे थे। नगरके गण्यमान्य पुरुष,—कोई घोड़े पर, कोई पालकीमें और कोई हाथीपर बैठकर, मुंजाल और महाराजसे मिलने जा रहे थे। युद्धका अवसर था, इसलिए धमाचौकड़ी मची हुई थी। काकको प्रतीत हुआ कि सारा पाटण घरसे बाहर निकल पड़ा है। धनपाल वाचाल लड़का था। उसने बहुतसे लोगोंका परिचय कराया और कई लोगोंका इतिहास भी बताया।

आखिर वे राजमहलके आगे आ पहुँचे। वहाँ कुछ शान्ति दीख पड़ी।

" यहाँ इतने लोग हैं, पर जरा भी हो-हल्ला नहीं सुनाई पड़ता। " काकने धनपालसे कहा।

" सामर्थ्य किसकी है ? मुंजाल फूफा खा न जायँ ! "

" मुंजाल मेहता तुम्हारे फूफा होते हैं ? " काकने पूछा।

" हाँ, तुम्हें मालूम नहीं ? मेरी बड़ी बुआ थीं..."

" उनका कब स्वर्गवास हो गया ? "

" ओह ! बहुत वर्ष पहले। जयदेव महाराजके सिंहासनपर बैठनेके पहले ही उनका अवसान हो गया। " धनपालने तेजीसे बात उड़ानेका प्रयत्न किया, " यह दुर्ग अभी ही बना है, देखा ? "

" मुंजाल मेहताके कोई बाल-बच्चे नही हैं ? " काकने निर्दोष भावसे पूछा।

धनपालको बातें करना भला नहीं लग रहा था; परन्तु काकको तो पाटणका

परिचय प्राप्त करना था। धनपाल इतने लोगोंकी बातें तो कर गया; परन्तु घरकी बात करते ज़रा झिझकने लगा। यह देख उसे और भी अधिक मज़ा आने लगा।

" नहीं, कोई नहीं। "

" इस समय कितनी स्त्रियाँ हैं ? "

लड़केकी आँखें कुछ चमक उठीं। उसके होठ ज़रा फड़के और उसने धीमे स्वरमें कहा, " बुआके मर जाने पर उन्होंने फिर ब्याह नहीं किया। "

काकने इस बातको यहीं समाप्त कर दिया और पूछा, " इस दुर्गको नया कब किया गया ? "

" गत वर्ष ही तो किया है ? पहले छोटा-सा था। "

धनपालका कहना ठीक था। जिस दुर्गकी चर्चा पाठक पहले पढ़ आये हैं, उसमें मीनलदेवीने बहुत कुछ परिवर्तन करा दिये थे। पहले तो वह केवल सुदृढ़ ही माना जाता था, पर अब तो वह भव्य, सुन्दर और संगमरमरका प्रासाद जैसा बन गया है। प्रत्येक विशाल झरोखेपर अद्भुत कला-पूर्ण बेलें झूल रही है। कमरोंकी सोनेसे मढ़ी हुई छतोंके प्रतिबिंब नीचे स्फटिक-से चमकदार संगमरमरके फ़र्शोंपर पड़ रहे हैं। पहले सोलंकियोंका प्रासाद महाजनों-साहूकारोंके घरोंसे भी ज़्यादह सादा था पर अब वह उन लोगोंके लिए आदर्श रूप हो गया है। जो गुर्जर-साम्राज्य बन रहा था, पाटण नगर उसका हृदय था और उसकी आत्माके निवास-स्थानके रूपमें ही यह प्रासाद निर्मित हुआ था। जैसी शरीरकी सबलता थी, वैसी ही हृदयकी भव्यता और आत्माका मन्दिर भी उतना ही सुन्दर था।

राजप्रासादके आगे एक मन्दिर था और उसके आगे एक अद्भुत कीर्त्ति-स्तंभ खड़ा किया गया था। उसे पार करके वे राजप्रासादके विशाल चौकमें घुसे और वहाँसे होते हुए महलके चबूतरेके सामने आये और घोड़ेपरसे उतर पड़े। उस विशाल सुविस्तृत चबूतरेपर अनेक शूर-वीर घूम-फिर रहे थे। कई बैठे हुए थे, कुछ सो रहे थे। परन्तु सभी जरा चिन्तातुर दीख पड़ते थे।

धनपालने दीवारसे टिककर खड़े हुए एक अधेड़ उम्रके व्यक्तिसे पूछा, " क्यों विनय भाई, तुम खंभातसे कब आये ? "

" जब तुमने देखा तभी। मैं अभी ही नौकासे उतरकर आ रहा हूँ। "

" प्रसन्न तो हो ? " " हाँ जी, खूब। "

" पिताजी कहाँ हैं, कुछ पता है ? "

" हाँ, महाराजके पास हैं। "

" अच्छा " कहकर धनपाल जाने लगा। विनयने उसका हाथ थामकर रोका।

" क्यों ? " धनपालने पूछा।

" अन्दर कुछ उपद्रव-सा हो रहा है। " धीमे-से विनयने कहा।

" क्या ? "

" महाराज मेरे पिताजी और सज्जन काकापर कुछ क्रुद्ध हो रहे हैं। अभी जानेका समय नहीं है। "

विनयचन्द्र शान्तु मन्त्रीका पुत्र था और उदा मेहता इस वृद्ध मन्त्रीकी कनिष्ठा कन्यासे ब्याहा था, इसलिए अभीतक खंभातमें रहता था।

" पिताजीने सन्धि कर ली है, इससे जयदेव महाराज बहुत क्रोधित हुए हैं। "

" परन्तु, ये भट लाटसे सन्देश लेकर आये हैं और वह बहुत आवश्यक है। " कहकर कुछ तो सन्देशके मिस और कुछ हालचाल जाननेके विचारसे धनपाल अन्दर चला गया।

" आप शान्तु मेहताके चिरंजीवी हैं ? " काकने मधुरतासे पूछा।

" हाँ, क्या तुम त्रिभुवनपाल महाराजके सुभट हो ? "

" जी हाँ, उन्होंने मुझे भेजा है। उदा मेहता सेना लेकर कब आयेंगे ? "

" उनके पास कौन बहुत-सी सेना है जो लेकर आयें। "

काकने कुछ दिनों पहले ही खंभातकी प्रतापी सेनाको देखा था। इस झूठको सुनकर चौंका। पर जैसे कुछ जानता ही न हो, इस प्रकार उसने कहा, " अच्छा, यह बात है ! "

" हाँ, उनकी बहुत-कुछ सेना तो कर्णावतीमें ही है। "

" ओह ! तब महाराजने उदा मेहतासे कर्णावती ले ली, यह बड़ी भूल की। इस समय इनके पास वह होती, तो कितनी सहायता मिलती ? " काकने उसके मुखसे बात निकलवानेके लिए कहा।

" सच कहते हो, उदा मेहताने तो मुंजाल मेहताको बहुत समझाया, पर उस समय उन्होंने माना ही नहीं। अब देखो, यह... "

" सही बात है । " काकने कहा ।

इतनेमें धनपाल लौट आया और उसने काकसे कहा, " महाराज बुलाते हैं । "

बातचीतको अधूरी छोड़कर काक राज-मन्दिरमें चला गया ।

पाटणके राज्यकर्ताओंके विषयमें काकने बहुत कुछ सुना था । उनपर उसका अपना बहुत कुछ आधार था और गत रात्रिमें उनमेंसे सर्व-श्रेष्ठका उसने अपमान किया था । इन कारणोंसे उसे तनिक क्षोभ हुआ । सामान्यतया काक घबरानेवाला नहीं था । वह पाँच-छः वर्षोंसे युद्धों और राजनीतिक दावपेचोंमें रहा था, अतएव स्वभावसे ही निर्भय था । ब्राह्मण होनेके कारण उसे अपनी उच्चताका अभिमान था । जन्मकी और संस्कार श्रेष्ठतामें विश्वास होनेके कारण उसे बिना सत्ताके ही स्वास्थ्य और प्रभाव आदि गुण स्वभावसे मिल गये थे । और अनेक अवसरोंपर अपनी बुद्धि और बाहुके बलसे उसने विजय प्राप्त की थी, इसलिए उसे आत्मविश्वास भी था । ऐसे स्वभाव, संस्कार और जीवनके कारण उसे जरा क्षोभ अवश्य हुआ था, फिर भी वह बाहरसे शान्त और स्वस्थ बना रहा ।

महलके जिन खण्डोंसे होकर वह जा रहा था, उनमें नक्काशीका बहुत ही सुन्दर कलापूर्ण कार्य किया गया था; परन्तु विमलशाहके जिन मंदिरोंको देखकर इस कालके लोग चकित हो जाते हैं, उनके शिल्पियोंद्वारा तैयार हुए राज-मन्दिरका सौन्दर्य या वैभव देखनेमें उसका ध्यान न था । उसकी तीक्ष्ण दृष्टि केवल यह देखनेमें लगी थी कि राज-महलमें क्या क्या हो रहा है ।

कुछ देरमें धनपाल उसे एक बड़े कमरेमें ले आया । इस कमरेका आधा फ़र्श दो हाथ ऊँचा पटा हुआ था और उसके सामने सोनेसे मढ़ी हुई छड़ोंवाला कुठघरा था । उस उच्च स्थानपर मुलायम गद्दी शोभायमान थी जिसपर पाँच व्यक्ति बैठे हुए थे ।

काक चबूतरेके सामने ज़रा खड़ा रहा और वहाँ बैठे हुए मनुष्योंकी ओर एक सर्वग्राही दृष्टि उसने डाली । एक क्षण-भर उसने प्रत्येकका मूल्य आँकनेका प्रयत्न किया ।

गद्दीके बीचोंबीच एक ज़रीन तकिया लगा था और उसपर अधीर-सी दशामें एक सोलह-सत्रह वर्षका लड़का बैठा था । वह इकहरे शरीरका

था। उसका रंग गेहुँएँ रंगसे ज़रा साँवला था। उसके पहुँचे काले थे। उसने जरीकी चौड़ी किनारवाली धोती पहन रखी थी और उसका सारा अंग अलंकारोंसे झिलमिला रहा था। उसके चंचल मुखपर क्रोधके बादल घिरे हुए थे। उसकी भवें तनी हुई थीं और उसकी बड़ी बड़ी आँखोंमें लाल रेखाएँ खिंच आई थीं। काक तुरन्त समझ गया कि यही पाटण-पति महाराज जयसिंहदेव हैं। उनके दाहिनी ओर महाअमात्य मुंजाल मेहता बैठे थे। कल रातको उन्हें काकने देखा था, उसकी अपेक्षा प्रकाशमें वह उनके मुखकी भव्य मुख-रेखाएँ अधिक स्पष्ट देख सका। उन्होंने पगड़ी पैरोंके आगे रख छोड़ी थी और ज़रा लापरवाहीसे तकियेपर हाथ टेककर कुछ लेटी हुई अवस्थामें वे सब बातें सुन रहे थे।

सामने तीन जनें बैठे थे। पहला वीसल देवका बड़ा भाई देसलदेव मालूम हुआ, जो जाते समय मार्गमें पालकीमें बैठकर आता हुआ मिला था। उसकी धँसी हुई आँखें इस समय अधिक धँसी हुई मालूम होती थीं और बिल्लीकी-सी चपलतासे चारों ओर घूम रही थीं। काकने सोचा कि राजाका निकट संबंधी होनेके कारण वह इस समय यहाँ आया है। काकका यह सोचना निर्मूल न था। मंडलेश्वर खेंगारकी बात पाठक पहले पढ़ आये हैं। उनका यह बड़ा पुत्र था। खेंगार मंडलेश्वर स्वर्गीय कर्णदेव महाराजके परम मित्र थे और बहुत नज़दीकके रिश्तेमें भाई लगते थे। उन्होंने अपने शौर्यसे सौराष्ट्रमें एक बड़ा मंडल जीतकर उसपर सर्वोपरि सत्ता जमा ली थी और जूनागढ़के रा' नवघणके समान अभिमानी राजाकी बहनसे विवाह किया था। वे अन्य मंडलेश्वरोंकी भाँति उपद्रवी न थे और उन्होंने अपने जीवन-पर्यन्त अपने मंडलको अन्य मंडलेश्वरोंकी भाँति स्वतन्त्र न बनाकर पाटणके राजाके अधीन रखा था।

मंडलेश्वर खेंगार तीन वर्ष पहले स्वर्गवासी हो गये थे और देसलदेव मंडलेश्वर बना था। मुंजालकी राजनीतिक शक्तिसे अधिकांश मंडलेश्वर पाटणकी सत्ता स्वीकार करते थे, अतएव देसलके लिए भी उसे स्वीकार करनेके सिवा कोई चारा न था।

उसके पास, ज़रा आगे बढ़कर, औंधे पैरों एक शस्त्र-सज्जित योद्धा बैठा था। उसका शरीर प्रचंड था और भुजाएँ लम्बी थीं। काकको ऐसा

प्रतीत हुआ कि अगर ' नर-सिंह ' समासकी तरह ' नर-हस्ती ' समास हो सकता, तो वह किसी ऐसे ही मनुष्यपर घटित होता । उसका संपूर्ण शरीर बख्तरसे सज्जित था और उसकी लम्बी तलवार सामने रखी थी। उसके विशाल चेहरेपर लम्बे गलमुच्छे और बड़ी बड़ी आँखें कुछ अद्भुत प्रभाव उत्पन्न कर रही थीं। फिर भी उसके मुखपर भलमनसाहत और पवित्रता दीख रही थी। इस समय उसका मुख लज्जासे मुरझाया हुआ और आँखें भीनी-सी देखकर काकको कुछ वैचित्र्य प्रतीत हुआ। इस योद्धाका नाम और पराक्रम उस समय इतना लोकप्रसिद्ध था कि काक उसे तुरन्त पहचान गया। वह था सज्जन मंत्री।

वनराजदेवके जिस मंत्री चाँपाने चाँपानेर बसाया था, सज्जन मंत्री उसीका वंशज था। पावागढ़ जैसी दुर्जय चौकीके रक्षक और चाँपा जैसे प्रतापी पूर्वजकी ख्यातिके उत्तराधिकारी तथा पाटणके धनाढ्योंके अग्रणी सज्जन मंत्रीने अपनी प्रतिष्ठासे पाटणको भी प्रख्यात कर दिया था। कर्णदेवके आरंभ किये हुए युद्धोंमें उसके पराक्रम अद्भुत रूपमें प्रकट हुए थे। वह समरांगणमें चलता तो गजेन्द्रकी भाँति भूमिको कँपा देता। हुंकार भरता तो घन-गर्जनाकी-सी प्रतिध्वनि होती। संहार करता तो शंकरके ताण्डव नृत्यका भान करा देता। जैसा पावागढ़ दुर्जय था, वैसा ही उसका पति भी समझा जाता था।

परन्तु उसका हृदय बालकसे भी अधिक कोमल था। उसका स्वभाव भोला और भला था। उसके हाथ उदार थे। इन सबके परिणामस्वरूप पाटणमें उसकी धाक न जमती थी और सोरठका रा' नवघण उसे छकाया करता था। खानगी व्यवहारमें सभी उसे लूटते और उसका घर अतिथियोंसे भरा रहता। इस समय यह वीर ढीला-सा हो गया प्रतीत होता था।

इसकी बगलमें एक त्रिपुंडधारी वृद्ध मंत्री बैठा था। काकको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह स्वस्थ चित्तसे सब कुछ देख रहा है। काक उसे न पहचानता था। वह मूलराजदेवके मंत्री देवयुका वंशधर और सोलंकियोंका परंपरागत मंत्री लूला * था। वह नागर था और जैनेतर मंत्रियोंमें अग्रगण्य समझा

---

* प्रभासपाटनका शिलालेख संवत् १२७२

जाता था। वह बहुत वृद्ध हो गया था, फिर भी पाटणकी राजसभामें इसकी सलाह-सम्मतिकी निरंतर आवश्यकता पड़ती थी।

महाराजाको क्रोधित देखकर काक चबूतरेके आगे ठहर गया, पर ज्यों ही उसपर दृष्टि पड़ी कि जयसिंहदेवके कपालपरसे सिकुड़नें कम हो गईं और मुंजाल ज़रा सतर हो गया। यह देखकर काक ऊपर चढ़ा और उसने महाराजके निकट जाकर दंडवत् प्रणाम किया।

जयसिंहदेवने पूछा, " तुम्हें ही त्रिभुवनपालजीने भेजा है ? तुम्हारा ही नाम काक है ? "

काकने हाथ जोड़कर दोनों प्रश्नोंका उत्तर दिया, " जी हाँ, महाराज। "

" उनका पत्र तो पढ़ लिया, और भी कुछ कहलाया है ? "

काकने कहा, " हाँ महाराज, मण्डलेश्वरने कहलाया है कि वे कर्णावतीके पास ठहरेंगे और आपका संदेश आनेपर मालवेकी ओर जायेंगे। "

मुंजाल मेहताने पूछा, " उनके पास कितनी सेना है ? "

काकने उनकी भेदक दृष्टि और प्रश्न करनेकी रीतिको देखा और रातकी घटना याद आते ही वह ज़रा घबराया। " महाराज, मण्डलेश्वरके पास चार हज़ार पैदल सेना और दो सौ हाथी हैं। "

" देखो, तब हमारे पास चौदह हजार पैदल सेना और सात सौ हाथी तो हो गये।—क्यों सज्जन मेहता ? " जयदेवने कहा।

सज्जनने धीमे-से उत्तर दिया, " महाराज, मण्डलेश्वरकी तो खबर अभी आई है। पर उबकके पास तो बीस हजारसे अधिक घोड़े हैं और ग्यारह सौ हाथी..."

परन्तु इन प्रश्नोत्तरोंपर ध्यान न देकर मुंजाल प्रश्न करने लगा।

" तुम कहाँसे आये हो, खंभातसे ? "—

" जी हाँ। "

" तुम कितने वर्षोंसे सेनामें हो ? "

इस प्रश्नका कारण काक न समझ सका। उसने उत्तर दिया, "पाँच वर्षोंसे।"

" तुम्हारी धारणासे खंभातमें कितनी सेना है ? "

काकने पहले प्रश्नका अर्थ समझ लिया। उसने कुछ क्षण विचार कर कहा, " महाराज, मेरी धारणा है कि पाँच हजार सेना तो सहज ही तैयार हो सकती है। "

जयदेवने पूछा, " और हाथी ? " " तीन सौ होंगे । "

जयदेवने कहा, " तो उदाने सेना भेजनेसे क्यों इनकार किया ? उसकी सेना आती, तो हम लोग लड़ सकते थे । "

सज्जन मंत्रीने सची बात कह दी, " अन्नदाता, आपने उससे कर्णावती ले ली, इससे उसे बुरा लगा है । "

मुंजालके कपालपर सिकुड़नें पड़ गईं । उसने तिरस्कार-पूर्वक कहा, "जिस समय उबक पाटनपर आक्रमण करने आ रहा है, वह समय क्या ऐसी द्वेष-पूर्ण बातें करनेका है ? "

क्रोधसे जयसिंहदेवने कहा, " अर्थात्, मालिक मैं हूँ या उदा ? मैं उसे और शान्तु मेहताको दिखा दूँगा । "

" यह बात पीछे होगी, अभी हमें मालवियोंको निकाल भगानेकी बात करनी चाहिए । " मुंजालने शान्तिसे कहा ।

" अब बाकी क्या रह गया है ? शान्तु मेहताने कभीकी सन्धि कर ली होगी । " तिरस्कारसे महाराजने कहा ।

" अभीतक सन्धिका सन्देश नहीं आया है । " लूला मेहताने पहली बार मुख खोला । उसका स्वर धीमा और वृद्धतासे काँप रहा था ।

" तब, यदि हम सेना भेजें, तो क्या शान्तु मेहता अभी लड़ सकते हैं ? " देसलदेवने तीखे स्वरमें कहा ।

" हाँ, यह बात भी ठीक है । तुम इसी समय एक हज़ार सेना लेकर जाओ । सन्ध्या समय हम सब बाक़ी सेना लेकर जा पहुँचेंगे । " मुंजालने एकदम देसलदेवसे कहा । ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मुंजालके तेजस्वी नयनोंका प्रताप देसलदेवको जला रहा हो । वह निस्तेज हो गया । यह परिवर्तन काकने देखा ।

" मैं,—मैं ? " ज़रा घबराये स्वरमें देसलदेवने पूछा ।

" हाँ, तुम्हीं तो ? तुम नहीं जाओगे तो कौन जाएगा ? शान्तु मेहता सन्धि कर रहे होंगे तो तुम्हारी भी सम्मति काम आएगी और विग्रहमें तो पूछना ही क्या है । " मुंजालने ठहरकर कहा, " धनपाल !... "

" जी ! " जैसे नींदमें चौंककर जाग पड़ा हो, इस प्रकार घबराकर धनपाल बोल उठा । इस समय वह सबसे दूर बैठा हुआ सबकी बातें सुन रहा था और उनके मुखोंको देख रहा था ।

" भीमा नायकसे कह आओ कि मध्याह्न तक दो हजार सैनिकोंको तैयार करे। "

" परन्तु,—परन्तु " देसलने बोलनेका प्रयत्न किया।

" क्या कहा ? " जरा कठोरतासे महाअमात्यने पूछा। उसके नेत्रोंसे निश्चलता प्रकट हो रही थी, स्वरमें दुर्जय सत्ता स्पष्ट प्रतीत हो रही थी और जब उसका यह स्वरूप प्रकट हुआ करता, तब पाटणमें उसके सामने बोलनेका किसीको भी साहस न होता। देसलदेवने होठ चबाये और बात बदलकर कहा, " परन्तु, मैं कहता हूँ कि त्रिभुवनपालजीको सन्देश भेज दिया जाय, तो कैसा ? " " क्या सन्देश ? "

" कि जल्दीसे वे भी शान्तु मेहतासे आ मिलें। "

" हाँ, यह मार्ग भी अच्छा है। " जयसिंहदेवने कहा।

" अच्छा। " मुंजालने कहा और वह काककी ओर मुड़ा, " काक भट, तुम लम्बी यात्राके कारण थक गये होगे। "

" यदि आपका कोई आदेश हो, तो मैं तैयार हूँ। " काकने कहा।

" अच्छा, तब आज सन्ध्या समय कर्णावती जाओ और मंडलेश्वर महाराजसे कहो कि भोगपुरकी ओर आकर हमसे मिलें।—क्यों, ठीक है न ? " मुंजालने देसलदेवसे पूछा।

वह कोई विचार करता हुआ पकड़ा गया, अतएव जल्दीसे, " जी हाँ, जी हाँ। " कहकर उसने उत्तर दे दिया।

" अच्छा, तब जाओ।—तुम्हारा वर्ण ? " " मैं विप्र हूँ। "

मुंजालने स्वरको कुछ प्रतिष्ठासूचक कर लिया और कहा, " अच्छा, तो फिर राजमहलमें ही भोजन करना। "

" यदि सज्जन मंत्रीकी आज्ञा हो, मैं उन्हींके यहाँ ठहरा हूँ। "

" मेरे ही घर ? "—सज्जन मन्त्री बीचमें ही बोलनेका प्रयत्न करने लगे कि कहीं अतिथि चला न जाय।

हँसते हुए मुंजालने कहा, " तुम्हारे आतिथ्यके सामने तो राजमहलकी भी कोई गणना नहीं है। अच्छा, ऐसा ही सही। चलो देसलदेवजी, तैयारी करो। " कहकर मुंजालने पगड़ी उठाकर सिरपर रखी, " काक भट, तुम जाओ। "

" जो आज्ञा। " कहकर काकने पैर छुए और रवाना हो गया। अब तक

जयसिंहदेव गहरे विचारोंमें लीन होकर बैठा हुआ था। और सब तो उठ गये; परन्तु लूला मंत्री उठते उठते मुंजालके पास जो पानोंकी थाली रखी थी, उसमेंसे पान लेनेके बहाने निकट आया और धीमेसे बोला, " परन्तु पाटणका क्या होगा ? "

" मुझे ध्यान है, निश्चिन्त रहिए। " मुंजाल महताने धीरेसे उत्तर दिया। जैसे कोई बात हुई ही नहीं, इस प्रकार लूला, सज्जन और देसल साथ ही साथ वहाँसे बाहर निकल पड़े।

जयसिंहदेव विचारोंमें तल्लीन हो गया था। वह जिस तकियेपर बैठा था, अचानक उसपरसे लुढ़क पड़ा और उसने एक गहरा निःश्वास लिया। मुंजाल कुछ देर उसकी ओर देखता रहा और बोला, " क्यों, क्या विचार कर रहे हो ? "

" और क्या होगा ? मुझे प्रतीत होता है कि सोलंकी कुलको कलंकित करनेके लिए ही मैं उत्पन्न हुआ हूँ। " निराशा-भरे स्वरमें जयदेवने कहा।

"क्यों ?" मुंजालने व्यंगसे पूछा। उसका मुख वात्सल्य-भावसे दीप्तहो गया।

" तुम क्या जानो ? तुम आमात्य हो, परन्तु सोलंकी नहीं; पाटणके स्वामी नहीं। इस समय पाटणकी नाक कट रही है। इससे मेरे हृदयमें जितना आघात हो रहा है, इतना और किसे होगा ? " जयसिंहने व्याकुलतासे कहा।

मुंजालके मुखपर अजीब परिवर्तन हो गया। उसकी हँसी लोप हो गई, उसका वात्सल्य-दर्शक भाव अदृश्य हो गया और उसके बदले उसके मुखपर कठोरता छा गई। उसकी तेजस्वी आँखोंपर अवर्णनीय शोककी छाया आ पड़ी। उसने बहुत ही अज्ञात रूपसे धीमा-सा निःश्वास लिया और खेदयुक्त स्वरमें कहा, " सच बात है। चाहे जैसा होऊँ, परन्तु हूँ मैं आखिर प्रधान ही, और तुम राजा हो। राज्य जितना तुम्हारा है, उतना कहीं मेरा हो सकता है ? "

जयसिंहमें इन मार्मिक वचनोंका अर्थ समझनेकी शक्ति न थी। उसने कहा, "ठीक कहते हो। नहीं तो इस प्रकार तुम बैठे रहते ? शान्तु मेहता धन देकर सन्धि करे, उदा मेहता मेरे आदेशकी अवहेलना करे और वह काक यह विचारे कि उबक और नरवर्मा पाटनमें आ पहुँचे ! मेरी कीर्तिको क्या इससे और अधिक धूलमें मिलाना है ? "

" इसीसे तो मैं तुमसे कभीसे कहता आ रहा हूँ कि बचपन कब त्यागोगे? किसलिए तुम राज्य-तंत्रके संचालनकी चेष्टा नहीं करते ? "

" कैसे करूँ ? मुझे तो कुछ भी समझमें नहीं आता । "

" कब समझोगे ? यदि कल कहीं मैं मर गया तो ? उसे हाथमें लो और चलाओ, सब समझमें आ जाएगा ।"

" किस प्रकार चलाऊँ ? "

" किस प्रकार ? तुम्हें 'कालस्य कारणं*' बनना चाहिए । तब राजा बनोगे । "

" यदि कोई भूल हो जाय, तो ? हमारा राज्य-तंत्र क्या कुछ छोटा-मोटा है ? "

धीमे धीमे मुंजालने कहा, "सुधारनेवाला मैं तो बैठा हूँ। जयदेव, जब तुम बालक थे तब मैंने देवीको वचन दिया था कि तुम्हें चक्रवर्ती बनाऊँगा। चाहे जिस प्रकारसे हो उस वचनका पालन करनेकी सामग्री मैंने इकट्ठी की है। पाटण इस समय सबल बन गया है। उसकी सैन्य सज्जित है। उसके वीर साहसी और सावधान हैं। अब केवल एक बात रह गई है। "

" वह क्या ? "

" वह यह कि तुम चक्रवर्ती बननेका संकल्प करो। जयदेव, तुमने मुझे अभी राजा और अमात्यके बीच भेद बताया है; वह होगा; परन्तु मेरे समान मन्त्री न तो किसी राजाको मिला है, न मिलेगा। " मुंजालने गर्वसे मस्तक ऊँचा किया और उसके संस्कारशील स्वरमें सत्ता गरज उठी।— " और कोई होता, तो पिछले चार वर्षोंमें अपार धन एकत्र कर लेता, स्वयं चक्रवर्ती बन जाता और मौसा विमल मन्त्रीकी भाँति किसी चन्द्रावती× में जाकर स्वच्छंन्दतासे राज करता; परन्तु मैं इसे मूर्खता समझता हूँ। पाटण-की महत्तासे मुझे अपनी महत्ता बढ़ानी थी और वह मैंने बढ़ा ली है। कर्ण-देवके समयकी निर्बल सेनाएँ किसके कारण सबल हुई ? उपद्रवी मंडलेश्वर

---

* 'राजा कालस्य कारणम्' महाभारतके इस वाक्यका हिस्सा।

× आबूके पासका एक नगर। भीमदेवके विमलमन्त्रीने पीछेसे पाटण छोड़कर चन्द्रा-वतीमें स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था।—विमल-प्रबंध।

किसके कारण अधीन हुए ? लाट आज किसकी नीतिसे गुजरातमें मिल गया है ? रा'नवघण किसकी युक्तिसे शिकंजेमें कस गया है ? यह सारा प्रताप, जिस अमात्यको तुमने पाटणके प्रति असावधान रहनेका उलहना दिया, उस ही अमात्यका है । "

मुंजाल रुक गया । उसके शब्दोंसे जयदेव दंग हो गया । मन्त्रीके मुख-पर जो दिव्य तेज प्रदीप्त हो रहा था, उसे ही वह देखता रह गया ।

" हाँ, मैं अभिमानी हूँ । " मुंजालने विचार करते हुए मस्तक हिलाया और आगे कहा, "सत्ता मुझे प्रिय है, परन्तु इस सत्ताका मैंने स्वयं सृजन किया है । तब किसलिए मैं गर्व न करूँ ? फिर भी,—फिर भी मैं तुमसे विनती करता हूँ कि जिस प्रकार यह सत्ता मैं चला रहा हूँ उससे भी अधिक तुम चलाओ और मेरे आसरे रहकर छोटे मत बनो । लो, इस समय विकट अव-सर उपस्थित हुआ है, इसका फैसला कर डालो । आजसे ही राजा बनो । "

जयसिंह नम्र हो गया और उछलते हृदयसे उसने मुंजालके हाथपर हाथ रख दिया ।

" मेहताजी, मुझे क्षमा करो । जल्दीमें मेरे मुखसे कुछका कुछ निकल गया । तुमने जो कुछ मेरे और पाटणके लिए किया है, उसे मैं कैसे भूल सकता हूँ ? चाहे जो हूँ, परन्तु मैं तुम्हारा शिष्य ही तो हूँ । "

" यह विचार ही दूर कर दो । तुम मेरे राजा हो । देखो, तुम इस समयकी परिस्थितिपर विचार कर रहे थे । भली भाँति विचार कर देखो और कोई मार्ग निकालो । "

जयदेवने कहा, " मेहताजी, देखिए, यदि मैंने कुछ कर डाला, तो वह भारी पड़ेगा । मैं तो इन सबको दण्ड देना चाहता हूँ । "

" देते क्यों नहीं ? " ज़रा हँसकर मुंजालने कहा, " परन्तु एक बात स्मरण रखना । " " वह क्या ? "

" बलके बिना दण्ड न देना चाहिए । बलहीनके दण्ड और निर्धनके दानसे अन्तमें हँसी होती है । " कहकर मुंजाल खड़ा हो गया । " तुम विचार कर देखो । फिर हम लोग बातें करेंगे । "

मुंजाल वहाँसे चला गया । परन्तु ज्यों ही वह वहाँसे निकला, त्यों ही उसकी आँखोंमें कुछ खेद मालूम हुआ और मस्तक नत हो गया । उसके हृदयमें व्याकुलता छा गई ।

मुंजालके जानेपर जयदेव भी गहन विचार करने लगा; परन्तु इतनेहीमें लगभग एक अट्ठारह वर्षका कांतिवान् युवक उसके पास आया। " प्रणाम है महाराजके चरणोंमें। "

जयदेवने कोई उत्तर नहीं दिया।

" ओहो, यात्रासे लौटनेपर कितना रौब आ गया है! हमारी तो बात ही नहीं पूछते! " युवकने कहा। यह लूला मंत्रीका पुत्र और जयदेवका मित्र था।

" शोभ, चुप रहो। मैं विचार कर रहा हूँ। "

" मैं भी विचार कर रहा हूँ! " " कैसा? "

" पहले तुम बताओ, फिर मैं कहूँगा। "

" अब मैं वास्तविक राजा बनने जा रहा हूँ। मुंजाल मेहता कहते हैं कि अब सारा राज-तंत्र मुझे चलाना चाहिए। बताओ, तुम क्या विचार कर रहे थे? "

" मैं भी यही कर रहा था। वास्तविक राजा बन जाओ, तो मुंजाल मेहताको बिदा और बंदेको महाअमात्यका पद! " बन्दरकी तरह मुँह बनाकर शोभने कहा।

" अरे बम्हन, अपना मज़ाक रहने दे! " कहकर जयदेवने उसका कान ऐंठ दिया।

" यह लो, मैं चुप हो गया! "

" एक काम करो। " " बताओ। "

" बाहर लाटसे एक सुभट आया है। उसका नाम काक है। उसे चुपचाप बुला लाओ। कोई जानने न पाए। "

" अजी, तनिक भी नहीं " कहकर शोभ वहाँसे दौड़ता हुआ चला गया।

....

५—कृष्णदेवका काल-यापन

जब धनपाल और काक राजमहलकी ओर गये, तब वीसलदेव वहाँ जा धमका, जहाँ कृष्णदेव था। कृष्णदेव निश्चिन्त होकर झूलेपर लेटा हुआ सोनेका प्रयत्न कर रहा था। वीसलदेव आया तो कृष्णदेवने ठंडे दिलसे उसकी ओर देखा और पूछा, " क्यों? "

वीसलदेवने कहा, " हमने तुम्हारी कितनी राह देखी और बड़े भाई तो अधीर ही हो गये थे। " कृष्णदेवके आगे उसका आडम्बर दूर हो जाया करता था और एक सेवककी भाँति बातें किया करता था।

कृष्णदेव ज़रा कटाक्षसे उसके सामने देखने लगा और कुछ देरमें बोला, " भाग्य उसके ! "

" परन्तु उसका क्या होगा ? "

" किसीका कुछ न होगा। " कहकर तिरस्कारसे कृष्णदेवने पीठ फेर ली।

" तब बड़े भाईसे क्या कहूँ ? "

" कि संध्याको मुझसे मिलें। " " कहाँ ? "

" कर्णेश्वर महादेवपर। " " अच्छा, प्रणाम। "

कृष्णदेवने कुछ भी उत्तर न दिया। और अधिक बात करनेका प्रसंग न मिलेनेसे बेचारा वीसलदेव निराश होकर चला गया। उसके जानेके पश्चात् कृष्णदेवके मुखपर कुछ देर हँसी छाई रही; फिर वह कुछ बेचैन-सा होकर पीछेकी ओरकी खिड़कीके सामने जाकर खड़ा हो गया।

घरका यह हिस्सा बहुत पुराना था और बहुत व्यवहारमें भी न आता था। उसकी यह खिड़की पीछेवाली वाटिकाके जिस भागमें पड़ती थी वह भी निर्जन था। वास्तवमें यह वाटिका नहीं थी, परन्तु तरु-लताओंके स्वच्छन्द विकासके कारण उत्पन्न हुआ एक वन-सा था। एक मोर मोरनियोंसहित इन सारे फल-फूलोंके मालिककी भाँति वहाँ आनन्दसे विहार कर रहा था। कृष्णदेव कुछ देर देखता रहा, फिर सामनेके आकर्षक दृश्यका आकर्षक बढ़नेसे वह खिड़कीमेंसे नीचे वाटिकामें छलांग मारकर कूद पड़ा। उसको इस प्रकार असभ्य असंस्कृत रीतिसे नीचे उतरते देख कलापी मस्तक ऊँचा करके सोचमें पड़ गया और तब ऐसा जान पड़ा कि वह मादाओंको एकत्र करके वहाँसे चले जानेको तैयार हो गया है।

कृष्णदेव वाटिकामें घूमने लगा। बहुत देरतक घूमनेपर भी उस वाटिकाका अंत न आया। आख़िर वह लौट पड़ा। कुछ दूर चलनेपर उसे एक जलकुंड दिखलाई दिया।

यह स्थान बड़ा रमणीय था। जलकुण्डके चारों ओर वृक्षोंकी घटाने शान्त और शीतल मण्डप रच दिया था। कृष्णदेव वहाँ इस प्रकार खड़ा हो गया,

जैसे उसे और कोई काम ही नहीं है। कुछ देर बाद, सोनेका विचार कर, वह एक वृक्षके तनेके सहारे लेट गया। निद्रा आनेके पहले उसे विचार आया कि इस प्रकार निरर्थक समय बितानेसे,—इस प्रकार पड़े रहनेसे उसके स्वार्थों और योजनाओंकी हानि तो न होगी? परन्तु उस स्थानके सौन्दर्य और शान्तिका नशा उसकी रगोंमें फैल रहा था। उसने आँखें मूँद लीं और वह निश्चिन्त होकर सोने लगा। थोड़ी देरमें,—कितनी देर हो गई, इसका उसे ध्यान नहीं रहा,—कंकणोंकी आवाज़से वह जाग पड़ा। लेटे ही लेटे उसने मुड़कर देखा। सामने जल-कुण्डमें एक बाला स्नान कर रही थी। दूसरे ही क्षण वह बाला उधर फिरी और एक सुन्दर तेजस्वी मुखकी कान्ति वहाँ फैल गई। कृष्णदेवका शान्त हृदय भी अशान्त हो गया। बाला कम-उम्र थी। लगभग चौदह-पन्द्रह वर्षकी होगी। उसके लम्बे बिखरे हुए बालोंके बने वस्त्रमेंसे उसके अंगोंका मनोहर लालित्य कुछ तो दिख रहा था और कुछ व्यंजित हो रहा था। इतनी अल्प अवस्था होनेपर भी उसके मुखपर मस्तीकी मोहिनी रेखाएँ खिंच आई थीं। आँखोंमें उन्मत्तताका आरम्भ हो गया था। कृष्णदेव रसिक था और सौन्दर्यका अनुरागी था। वह इस बालाको देखकर पागल हो गया। वह विचार करने लगा कि यह कोई नागकन्या है, या मर्त्यलोककी मानव-बाला?

उस नाग-कन्याकी दृष्टि लता-पत्रोंमेंसे चमकती हुई कृष्णदेवकी आँखोंकी ओर गई और वह घबराकर देखने लगी, "कौन है?"

"मैं हूँ।" कृष्णदेवने ज़रा हँसकर कहा और वह उठकर बैठ गया।

"मैं कौन?" ज़रा रौबसे बालाने पूछा।

"अरे, क्रोध क्यों कर रही हो?" कहकर कृष्णदेव खड़ा हुआ औ लड़कीके सामने देखने लगा। लड़की इस सुन्दर और संस्कारी पुरुषको देखकर कुछ लजाई और कुछ घबड़ाई। वह केवल नीचे देखने लगी।

"मैं समझा कि कोई नागकन्या है, कहींसे मार्ग भूल पड़ी है, मैं तो डर गया!" कहकर कृष्णदेव हँस पड़ा, फिर जरा निर्लज्जतासे बोला, "मैं नाग-कन्याओंसे बहुत डरता हूँ।"

उसके शब्द क्रोध उत्पन्न करनेवाले थे। यदि वह एक-दो वर्ष और बड़ी होती तो इन शब्दोंको सुनकर अपमान समझती; पर वह बालिका ही थी। उसमें

नवयौवनाओंसे अधिक सहन-शक्ति थी और सिवाय इसके कृष्णदेवका मुरलीका-सा स्वर नागको भी वशमें करनेवाला था;—फिर वह नाग-कन्या तो थी नहीं, थी केवल मर्त्य लोककी एक बालिका। वह बेचारी कृष्णदेवके मनोहर मुखकी ओर देखती रह गई। उसके संस्कारशील मज़ाकिया स्वर और उसके मोहभरे हास्यके पाशमें वह उलझ गई। उसने उसे पहले कोई नौकर या निम्न श्रेणीका मनुष्य समझा था, परन्तु अब वह घबरा गई। वह समझ ही न सकी कि अब वह पानीसे कैसे निकले। उसे सूझा ही नहीं कि इस पुरुषसे दूर हट जानेके लिए कैसे कहे।

कृष्णदेव बालाकी घबराहटका कारण समझ गया परन्तु वह वहाँसे हटा नहीं। उसकी तेजस्वी आँखें बालाके अंग-अंगकी छाप अपने अंतरमें डाल रही थीं। घबराहटके कारण उसके मुखपर आनेवाले भावोंकी रमणीयता देखकर वह प्रसन्न हो रहा था। आखिर लड़की लज्जासे,—बाल-सुलभ घबराहटसे निर्दोष रूपमें हँस पड़ी। उत्तरमें कृष्णदेव भी हँसने लगा।

दो क्षण ठहरकर कृष्णदेव बोला, " तुम्हें बाहर निकलना है ? ठहरो, मैं आड़में चला जाता हूँ। परन्तु देखना, लोप न हो जाना, मुझे विश्वास नहीं कि मर्त्यलोककी हो। "

बाला फिर हँसी। कृष्णदेवने उसके मनकी बात समझ ली है, इस कारण लजा जानेवाली वह मुग्धा न थी। कृष्णदेव वृक्षके पीछे जाकर खड़ा हुआ कि बालाने जल्दी जल्दी कपड़े पहन लिये।

अन्तमें जब वह कृष्णदेवके निकट आई, तब वह दूर देखता हुआ सीटीके साथ गीत गा रहा था।

" आ गई ? तुम सज्जन मंत्रीकी कन्या हो, क्यों ? "

अपने बालोंका जूड़ा ठीक करते हुए बालाने कहा, " हाँ। "

" तुम्हारा नाम क्या है ? "

" सोमसुन्दरी। आप किस देशसे आये हैं ? "

" जिस देशमें तुम्हारे पिताजीने अपना दबदबा जमा रक्खा है, उस देशसे। " ज़रा तिरस्कारसे कृष्णदेवने कहा।

सोमने कहा, " सोरठसे ? मेरा जन्म भी वहीं हुआ था। "

" बिना इसके इतना रूप भी तो नहीं हो सकता। "

सोम हँस पड़ी । बोली, "तब तो तुम बड़े भैयासे मिले होगे ?"

"किससे,—भट्टराज परशुरामसे ? नहीं, आते समय मैं नहीं मिल सका।" कृष्णदेवने यह इतने तिरस्कारसे कहा कि सोम भी सिर उठाकर उसकी ओर देखने लगी। यह देखकर कृष्णदेवने तुरन्त प्रश्न किया, "तुम्हारे पिताजी तो प्रसन्न हैं ? बीचमें कुछ अस्वस्थ हो गये थे न ?"

सोमको प्रतीत हुआ, जैसे यह घरका ही आदमी है। उसने कहा "अब अच्छे हैं। सच पूछो तो वे कुछ अस्वस्थ ही न थे, परन्तु बहुत बरसोंसे पाटण न आये थे इससे..." सोम हँस पड़ी । उसके हास्यमें पवित्रता थी।

"तुम्हारा विवाह कहाँ हुआ है ?" कृष्णदेवने पूछा। उसके पूछनेकी रीति इतनी स्नेह-पूर्ण थी कि हर किसीको विश्वास पैदा हो जाता।

"अभी मेरा विवाह नहीं हुआ।"

"तब सगाई तो हो ही गई होगी ? सज्जन मन्त्रीकी कन्या कहीं यों ही रह सकती है ?"

सोम लजाकर नीचे देखने लगी और स्वभावकी वह भली थी, अतएव कुछ खिन्न हो गई। उसे कुछ कमी महसूस हुई। "मेरी सगाई होनेवाली है।"

"तुम यहाँ नित्य नहाने आती हो ?"

"हाँ, मुझे स्नान करनेका शौक़ है। अच्छा, अब मैं घर जाऊँगी। माताजी बिगड़ेंगीं। आज मुझे बहुत विलम्ब हो गया।"

कृष्णदेवने कहा, "इसमें क्या हर्ज है ? बिगड़ना तो माँ-बापोंका धर्म ही है और वे बिगड़ें, इसके लिए उलटे चलना लड़के-बच्चोंका धर्म है !" सोमको फिर हँसी आ गई। वह वेगसे घरकी ओर चल पड़ी।

"तुम्हारे भाई परशुराम इस समय कहाँ हैं ? कुछ खबर है ?"

"अन्तिम समाचार तो वनथलीसे आये थे।"

"ऐसा ! तब तो यहाँ सज्जन मंत्रीको बड़ी मेहनत पड़ती होगी। सेना बहुत होगी ?"—कहकर "कितनी सेना होगी भला ?" कृष्णदेवने पूछा—

"मुझे क्या ख़बर ?"

"हत् तुम्हारा भला हो ! सज्जन मंत्रीकी लड़की होकर इतना भी नहीं जानतीं ? तुम्हें तो सब ख़बर रखनी चाहिए।"

सोमने कहा, "सत्य है, मेरे सामने बातें तो बहुत होती हैं, पर इन सबसे मुझे क्या सरोकार ?"

"कहीं ऐसा हो सकता है ? मैंने सुना है कि त्रिभुवनपालकी पटरानीने तो एक बार पाटणको नष्ट होते होते बचा लिया था।" तिरस्कारसे कृष्णदेवने कहा।

"प्रसन्नदेवी बहुत होशियार हैं।"

"सोम ! ओ सोम बहन !" किसी पुरुषकी आवाज़ ज़रा दूरसे सुनाई पड़ी।

"कौन है, लक्ष्मण ? तुम कहाँसे आये लक्ष्मण ?" उत्तरमें सोमने भी पुकारकर कहा। उसकी पुकारमें स्नेहकी उर्मियाँ थीं। कुछ ही क्षणोंमें लगभग पच्चीस बरसका एक युवक, शस्त्र-सज्जित योद्धा, दौड़ता हुआ आया; परन्तु कृष्णदेवको देखते ही वह झिझककर खड़ा हो गया।

"यह अपने अतिथि हैं। सोरठसे आये हैं।" सोमने लक्ष्मणसे कहा। लक्ष्मण जरा अभिमानसे देखता रहा, "तुम कब आये ?"

"जब तुमने देखा।"

"क्यों, मालवी सेनापति कितनी दूर है ?"

"बहुत दूर है, तुम क्यों घबराती हो ?" कहकर लक्ष्मण निकट आया।

"यह सन्धिकी जो बातें चल रही हैं, वह सच हैं या झूठ ?" कृष्णदेवने पूछा।

लक्ष्मणने कहा, "सच भी नहीं और झूठ भी नहीं।"

"तुम पिताजीसे मिले ?"

"हाँ, मिल आया। चल, अब तू जल्दी पैर उठाती है कि नहीं ? मुझे भूख लग रही है।" कहकर लक्ष्मणने जल्दी मचाई। इतनेमें घर आ गया और कृष्णको दूसरी ओर बिदा करके दोनों भाई-बहन अन्दरके खंडमें चले गये।

६—काकका आत्म-विश्वास

पाटणके शासन-कर्त्ताओंके पाससे बाहर जाते हुए काकके मनमें न जाने क्या क्या विचार आने लगे। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि यह परखनेका प्रयत्न कर रही थी कि पाटणके राज-तंत्रमें क्या क्या रंग हैं।

बाहर निकलते समय उसने वीसलदेवको राज-महलमें घुसते देखा और इसलिए वह जाकर उससे मिला।

" क्यों, तुम कहाँसे आये ? "

" बड़े भाईसे काम है। वे अन्दर बैठे हैं ? "

" हाँ। अभी तुम नहीं जा सकते। परन्तु तुम तो सज्जन मंत्रीके यहाँ बैठनेवाले थे ? "

" हाँ, परन्तु क्या किया जाय ? मुझे आवश्यक कार्य है। " वीसलदेवने जल्दीसे कहा। काकको प्रतीत हुआ कि उसे अपने भाईसे कोई बहुत आवश्यक बात कहनी है। सम्भव है, वह कृष्णदेवके सम्बन्धमें ही कुछ हो।

" अजी, ऐसा कौन-सा महान् कार्य है ? पहले उबकको मार भगानेकी बात वे करें, फिर और कुछ। "

" अजी, तुम क्या जानो ? लो, ये आ गये। " कहकर वह वीसलदेवकी ओर बढ़ा। काकने बड़े ध्यानसे दोनों भाइयोंकी बात सुननेका प्रयत्न किया। वह सफल तो नहीं हुआ; परन्तु देसलदेवके मुखपर भावोंका परिवर्तन उसने अवश्य देखा।

इतनेमें एक अपरिचित लड़केने आकर उसके कन्धेपर हाथ रखा। बोला, " काकभट तुम्हीं हो ? " " हाँ, क्यों भाई ? "

" ज़रा मेरे साथ आओ, कुछ काम है। " " क्या काम है ? "

"महाराज बुला रहे हैं। " लड़केने ज़रा झुककर कानमें कहा। काक चौंक पड़ा। काकने सोचा कि गत रातके व्यवहारके लिए शायद कोई दण्ड देंगे; परन्तु मौन-मुख वह उसके साथ हो लिया। शोभने दूसरा रास्ता लिया और जिस खंडमें वह पहले गया था, उससे भिन्न दिशाके एक कमरेमें उसे ले गया।

एक सोनेसे मढ़े हुए झूलेपर जयदेव अधीरतासे झूल रहा था। उसके मुखपर चिन्ता और निश्चय दोनों दीख रहे थे। काक आया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। जयदेवने झूलेको रोक लिया।

"शोभ, तुम ज़रा बाहर जाकर खड़े रहो। कोई आए, तो आकर कहना।"

"जो आज्ञा।" कहकर शोभ बाहर चला गया।

"काक भट, तुम जो पत्र लाये हो, उसमें त्रिभुवनपालजी लिखते हैं कि तुम बहुत ही विश्वासपात्र, साहसी और सावधान हो।"

"जी।" काकने कहा।

"मुझे प्रतीत होता है कि यह बात झूठ है।" जयदेवने धीमेसे कहा।

काकको ज़रा विस्मय हुआ। क्या इसीलिए फिर मुझे बुलाया है? वह कुछ न बोला।

"कल रातको तुम बहुत गप मार रहे थे।"

काकने ज़रा गर्वसे कहा, "क्षमा कीजिए अन्नदाता, मैं गप नहीं मार रहा था। जो कहता था, सत्य कहता था।"

"तब तुम यह समझते हो कि मैं नामका ही राजा हूँ, क्यों?" राजाने ज़रा गर्वसे पूछा।

काक चेत गया कि राजाको कोई गरज़ है, इसलिए उसने अपना प्राबल्य दिखाना आरम्भ किया है। "महाराज, त्रिभुवनपाल महाराजने जब मुझे सलाहकर बनाया था तब अभय वचन दिया था। सत्य कहनेकी आज्ञा न हो, तो सलाह न लेनी चाहिए।"

जयदेवने मस्तक उठाकर उसकी ओर देखा। उसे प्रतीत हुआ था कि यह मनुष्य उसका मान भंग कर रहा है। परन्तु काकका मुख देखनेपर ऐसा कुछ भी न दीख पड़ा। हाथ जोड़के, अपना सुदृढ़ और सुगठित शरीर सम्मान-पूर्वक सिकोड़कर शांति और विनयकी मूर्त्तिके समान वह खड़ा था। महाराजने नखसे शिख तक उसे निहारा। उसके मांसल अंग, उसका छटा-पूर्ण खड़े रहनेका ढंग देखकर उसपर श्रद्धा हुई; परन्तु अपरिचित मनुष्यपर एकदम विश्वास करना उसे न रुचा।

" मुझे सलाह नहीं लेना है। केवल इतना ही जानना चाहता हूँ कि त्रिभुवनपालजी इस समय हों, तो वे क्या कहें।" " जो आज्ञा।"

" तुम्हारी क्या यह धारणा है कि ये श्रावक महाजनलोग मुझे निकम्मा बना रहे हैं ?"

" नहीं महाराज, मैं तो यह मानता हूँ कि उन्हींसे पाटणकी सत्ता स्थिर है।"

जयसिंहदेवको सन्देह हुआ। उसने काककी ओर सूक्ष्म दृष्टिसे देखा और कहा, " अर्थात् ?"

" त्रिभुवनपाल महाराजका और मेरा दोनोंका यही मत है। आज हमारा राज्य टिका हुआ है, इसका कारण यही है कि श्रावकोंको नये राज्य स्थापित करनेकी आकांक्षा नहीं है। वे पाटणके मन्त्री बनकर सन्तुष्ट हैं और कहींसे भी धन कमाकर आखिर जब पाटणमें आकर रहते हैं, तभी प्रसन्न होते हैं,— शोभा पाते हैं।"

" तुम नागर हो ?" " जी नहीं।"

" तुम नागरोंकी सत्ता दुर्जय मानते हो ?"

" अन्नदाता, मैं यह नहीं मानता। त्रिभुवनपाल महाराज कहते थे कि मूलराजदेव महाराजने नागरोंकी सत्ता बढ़ाई। यदि ऐसा है, तो मूलराजदेव महाराजकी बुद्धि वास्तवमें धन्य है।" " क्यों ?"

" इन लोगोंको भी पाटणपर स्नेह है। श्रावकोंके समान स्नेह नहीं है, फिर भी जैन-सत्ताको काबूमें रखनेके लिए ये लोग सबल अस्त्र हैं। दोनों ही परस्पर एक दूसरेसे मात होते रहते हैं।"

" काक, इतनी अधिक जानकारी तुमने कहाँसे प्राप्त की ?"

" आज तीन वर्ष हुए, मंडलेश्वर महाराज मेरे साथ छोटीसे छोटी बातका विचार करते रहे हैं।"

जयदेव विचारमें पड़ गया। काकपर उसे विश्वास हो गया।

" यह बात है, तब तुम यह क्यों कह रहे थे कि मैं नामका राजा हूँ ?"

" महाराज, मुझे दण्ड देनेके लिए ही क्या यह सब कुछ पूछ रहे हैं ? तब व्यर्थ ही क्यों कष्ट उठाते हैं ? जो दण्ड आप देंगे, उसे मैं स्वीकार करूँगा।"

जयदेव हँस पड़ा, " काकभट, तुम्हारी शंका निर्मूल है। त्रिभुवनपालजी

जबतक नहीं आते, तबतक मेरे पास बातचीत करनेवाला कोई नहीं है। इस लिए पूछता हूँ, तुम्हें दण्ड देनेके लिए नहीं पूछता।"

काकने कहा, "आपको सलाहकारोंकी क्या कमी? महाअमात्य क्या किसीसे कुछ कम हैं?"

जयदेवने होठ चबा लिये, "मैंने एक नियम बना लिया है। अब मुझे मुंजाल मेहताकी सलाहके विना ही राज्य चलाना है।"

काकको सन्देह हुआ। मुंजालके विरुद्ध किसी षड्‌यन्त्रमें शामिल होना औंधे गणपति बिठाने जैसा था। उसे ऐसी मूर्खता न करनी थी।

"अन्नदाता, क्षमा कीजिए। परन्तु यदि ख्याति सत्य कहती हो और इस अवसरपर मेरा अपना अनुभव सच्ची साक्षी दे रहा हो, तो एक ही बात कहूँगा। इस विचारको ही हृदयसे निकाल दीजिए। जिस दिन महाअमात्य आपके विरुद्ध हुए, उस दिन क्या होगा, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। यह आपको स्मरण होगा कि आप जब सिंहासनपर आसीन हुए थे, तब मुंजाल मेहता बिगड़ खड़े हुए थे।

"हाः हाः हाः" कह कर जयदेव खूब हँसा। कहा, "तुम्हें किसने कहा कि मैं मुजाल मेहताके विरुद्ध हो जाऊँगा? पगले, उन्हें तो मैं पितातुल्य समझता हूँ। उन्होंने मेरे लिए जो किया है, उतना किसीने नहीं किया। असलमें बात यह है कि वे मेरी कसौटी करना चाहते हैं और मुझे भी खरा उतरना है।"

"जी।"

शुद्ध हृदयसे जयदेवने पूछा "अब मुझे क्या करना चाहिए? एक ओर शान्तु मेहता सन्धि कर आये। दूसरे उदा मेहताने मेरी नाक काट ली। मेरी प्रतिष्ठा भंग न हो और उन्हें दण्ड मिल जाय, ऐसा कोई मार्ग चाहिए। अब मैं अधिक समय सहन न कर सकूँगा।"

"महाराज, शान्तु मेहताने जो किया, वह ठीक ही किया।"

"क्या ठीक किया, अपना सिर?"

"अन्नदाता, शान्तु मेहता लड़नेके लिए चले गये होते तो पाटणको नवघण रा'ने कभीका अपने अधीन कर लिया होता।"

"सोरठके नवघण रा'ने?" राजाने चकित होकर पूछा।

"उदा मेहता निर्लज्ज होकर बैठे हैं। दादाक मेहताने कर्णावतीमें नाम-

मात्रको सैनिक रख छोड़े हैं। मोढेरामें कुछ भी सेना नहीं है। यहाँकी सारी सेना उबकका सामना करनेको जाय, और फिर सोरठी लोग यहाँ आ पहुँचें, तो पाटणका क्या हाल हो ?"

"परन्तु रा' को तो परशुराम सँभाले हुए है ?" राजाने कहा।

"महाराज, मुझे तो यह भ्रम ही मालूम होता है। रास्तेमें आते समय मैं सब पूछ-ताछ करता आया हूँ। मानिए या न मानिए; परन्तु नवघण रा' तो इस अवसरसे लाभ उठाकर मंजिल-दर-मंजिल पाटणपर चढ़ा आ रहा है।"

"इस बातका किसीको कुछ ज्ञान क्यों नहीं है ? ऐसा हो, तब तो मामला गंभीर है।"

काकने कहा, "मुझे तो विश्वास है कि महाअमात्य सब जानते हैं।" आज अपने नहीं देखा, देसलदेव महाराजको उन्होंने पाटनसे किस युक्तिसे बाहर निकाल दिया ? मुझे प्रतीत होता है कि इसका कारण भी वही है।"

महाराज दंग हो गये। उन्हें कुछ शंका हुई थी, वह ठीक उतरी। "परन्तु आज सन्ध्याको तो हम भी पाटणसे सेना लेकर जानेवाले हैं ?"

"मैं भी इसे ज़रा न समझ सका। हो सकता है, महाअमात्य सन्ध्याको मना भी कर दें; परन्तु मुझे खा-पीकर क्यों बुलाया है, इसे मैं जानता हूँ।"

"किस लिए ?"

"देसलदेवके कारण उसके सामने कुछ और ही कहा; परन्तु सच्चा संदेश तो मंडलेश्वर महाराजको मेरे द्वारा इतना ही कहलाएँगे कि उन्हें या तो कर्णावतीमें सेना लेकर रहना चाहिए या बढ़वानकी तरफ़ प्रयाण करना चाहिए।" काकने भविष्य कहना शुरू किया।

"तब देसलदेव विश्वासघातक है ?"

"मुझे प्रतीत होता है कि वह कुछ गड़बड़ अवश्य कर रहा है। मैं कुछ दिनोंमें पता लगा लूँगा।"

"तुम जो कुछ कह रहे हो, यदि वह सत्य हो, तो काक, तुम भी बड़े जबर्दस्त आदमी हो। परन्तु उदा मेहताका क्या होगा ?"

"उनको मात करना बड़ा कठिन काम है। आपकी आज्ञा हो तो मैं कर्णावती जाकर वहाँसे खंभात हो आऊँ। कोई मार्ग अवश्य मिल जाएगा।"

जयदेव बोला, "हाँ, अवश्य जाना। उसे ठिकाने लगाना होगा। उसका

सिर फिर गया है। " । कुछ क्षण पश्चात् उसने फिर कहा, " देसलदेवको जाने देना..."

" जिस प्रकार भी हो, तुरन्त।" काकने कहा।

" हाँ, हमें जाना नहीं चाहिए, पाटणमें ही रहना चाहिए और तुम्हें त्रिभुवनपालजीसे कहना चाहिए कि वे उबकका सामना न करके रा' नवघणका करें, " जयदेवने कुछ याद करना शुरू किया। इसी समय शोभ आ पहुँचा और बोला, " महाराज, मेहताजी आ रहे हैं। "

राजाने घबराकर कहा, " कौन, मुंजाल?—काक, उस झरोखेमें चले जाओ। "

बिना एक शब्द बोले एक छलाँग मारकर काक वहाँ घुस गया। जयदेव झूलेपर झूलने लगा। ऐसे झूलने लगा, जैसे बिल्कुल स्वस्थ और शान्त बैठा हो। उसका हृदय हर्षसे नाचने लगा और उसका मस्तिष्क मुंजाल और काककी बुद्धिके विचारमें लीन हो गया।

मुंजाल हँसता हुआ आया। उसे विश्वास था कि जयदेव निराधार होकर बैठा होगा, और आखिरमें क्या करना होगा, उसे वह सिखाएगा। वह आया और उसने शोभको देखा। शोभ वहाँसे चला गया।

" क्यों महाराज, क्या विचार किया? " मुंजाल झूलेपर बैठ गया। एकान्तमें इन दोनोंके बीच राजा और प्रधानका संबंध ज़रा भी न रहा था। काक झरोखेमेंसे कान लगाकर सुनने लगा।

" प्रत्येक बातकी तुम्हें मुझे ख़बर देनी होगी। कई बातोंकी ख़बर तुम्हें मिलती है और मुझे नहीं मिलती। "

" हाँ, जो पूछो, बतलाऊँ, " मुंजाल ऐसे कहने लगा, जैसे बच्चेको लड़ा रहा हो।

" शान्तु मेहताके क्या समाचार हैं? "

" सज्जन मेहताका लड़का लक्ष्मण अभी आया है। वह कहता है कि संधि बहुत कुछ हो गई है। फिर अब? "

" रा'नवघण कहाँ है? "

मुंजाल चौंक उठा, " कहाँ है, यह मुझे ठीक नहीं मालूम। "

" वह पाटणपर आक्रमण कर रहा है। " जयसिंहने जरा गंभीरताका

ढोंग करके कहा। मुंजाल अधिक चौंका। उसकी धारणा थी कि यह बात यदि प्रकट हो गई, तो लोगोंमें घबराहट फैल जायगी।

" और यहाँ दगाबाज़ लोग विश्वासघात करनेके लिए तैयार हैं। "

" क्या कह रहे हो ? " यह समझमें न आनेसे कि राजाको यह ख़बर किससे और कहाँसे मिली, महा अमात्य ज़रा उलझनमें पड़ गये।

" विचार करनेसे मुझे प्रतीत हुआ है कि मैं भ्रममें था। ऐसा दिखता है कि शान्तु मेहताने सावधानी और बुद्धिमानीसे ही यह सन्धि की है।"

" जयदेव, यह बुद्धिमानी कहाँसे आई ? "

" आप जैसे मन्त्रीके सहवाससे। " जयदेवने रौबके साथ हँसकर कहा। झरोखेमें काक भी हँसने लगा। मुंजाल अपने जीवनमें पहली बार उलझनमें पड़कर अपने आस-पास देखने लगा। उसने कहा, " अच्छा, फिर ? "

" मुझे विश्वास हो गया है कि इस समय अधिक भय रा'नवघणका है। इसलिए उसे सीधा करना चाहिए। हम शान्तु मेहतासे मिलनेके लिए सेना लेकर सन्ध्याको नहीं जाएँगे। देसलदेवको जाने दिया जाय। उसे भोजनका निमन्त्रण भेज दिया जाए और वह यहाँसे सीधा ही रवाना हो जाए। " जयदेव अधिकार-पूर्वक अपने आदेश कहने लगा। मुंजाल मौन-मुख देखता रहा।

" हाँ—और—" जयदेव आगे बोलने लगा, " त्रिभुवन भाईने जो आदमी भेजा था, उसका नाम क्या था ? "

इस झूठसे काकको हँसी आ गई। उसका शिष्य उसे उस्ताद मालूम हुआ।

" काक। " मुंजालने कहा। वह ज़रा चकित हो गया। यह बुद्धि बाल-राजामें कहाँसे आई ?

" हाँ, काक। उससे कह दीजिएगा कि त्रिभुवन भाई कर्णावतीमें रहे या वीरमगाँवकी ओर जायँ। "

" जयदेव ! " मुंजालने झूलेपरसे उतरकर उसके सामने फिरते हुए कहा, " यदि ये विचार तुम्हारे ही हों, तो मेरा धन्यवाद लो। तुम्हारे आगे बड़े बड़े चक्रवर्ती भी धूल चाटेंगे। तुम्हारी दृष्टि ठीक है। आज पाटणका राजा सचमुच पाटणके योग्य हो गया। "

काक मन ही मन फूल उठा। इस समय पाटणका राजा तो वही था !

" मन्त्रीराज, आपकी भी यही धारणा है ? "

" हाँ, मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरे ही विचार तुमने चुरा लिये हैं। "

" चाहे जैसा होऊँ परन्तु आपका शिष्य ही तो ठहरा ! " जयदेवने गर्वपूर्वक हँसते हुए कहा।

" अच्छी बात है, मैं जाता हूँ। शोभको भेजकर देसलदेवको बुला लेना। "

" हाँ, ठीक। "

मुंजाल कमरेमें चारों ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालकर बाहर चला गया। मन ही मन उसने कहा, " यह कौन पैदा हो गया है, तनिक ध्यान देना होगा। "

मुंजालके जानेपर जयदेव झरोखेमें पहुँचा। काक दूसरे सिरेपर खड़ा खड़ा कमरबंदको फिरसे बाँध रहा था।

" काक ! "

" महाराज ! "

" मैंने मुंजाल मेहतासे कह दिया है कि तुम्हारे द्वारा क्या संदेश भेजें। मुझे प्रतीत होता है कि रा' नवघणका अधिक भय नहीं है। "

काकने मन ही मन कहा, "देखो कैसा झूठा है ! " पर प्रकटमें कहा, "जी।"

" तुम कर्णावती होकर खंभात जाना और मुझे संदेश भेजना। "

" जो महाराजकी आज्ञा। " कहकर उसने प्रणाम किया और बिदा ली।

७—काश्मीरादेवी

काक अपनी चतुराईसे प्रसन्न होता हुआ महलमेंसे अगले चौकमें जा निकला। दिन चढ़ने लगा था, इसलिए उसे भी भूख लगी थी; परन्तु सज्जन मेहताके घरका अन्न-जल ग्रहण करना उसके भाग्यमें अभी तक नहीं था।

एक पार्श्वक सामने आ खड़ा हुआ।

" भटजी, आप लाटसे आये हैं ? "

" हाँ भाई, क्यों ? "

" मेरे साथ चलिए। देवी बुला रही हैं। "

काक ज़रा चकित हुआ, " कौन, मीनलदेवी ? "

पार्श्वक हँस पड़ा, " नहीं, काश्मीरादेवी। "

"वे यहीं हैं ? मैंने तो सोचा था कि मीनलदेवीके साथ होंगीं। चलो, आया।" कहकर काक पार्श्वकके साथ तीसरी बार महलमें प्रविष्ट हुआ। उसने पाटणमें आते ही नये नये चमत्कार देखे थे; और अब यह कैसा होगा, विचार करने लगा। त्रिभुवनपालका वह विश्वासपात्र नौकर था; अतएव उसकी स्त्री काश्मीरादेवीकी ख्यातिसे वह अपरिचित न था। 'पाटणके प्रभुत्व' में वर्णित उसके बालपनके कार्य-कलाप पट्टणी योद्धाओंके मुखसे उसने सुने थे। मण्डलेश्वर महाराज अपनी अर्धांगिनीको कैसे निश्चल प्रेमसे पूजते हैं, इसकी उसे खबर थी और अपने सेनापतिकी इस होशियार स्त्रीको देखनेकी उसे हवस भी थी। त्रिभुवनपालकी सम्मानिता पत्नी और मीनलदेवीकी अभिमानिनी भतीजी काश्मीरादेवीका पाटणमें अद्भुत स्थान था। सारे पट्टणी लोग, उसे इतना मान देते थे, जैसे वह पाटणकी राज-लक्ष्मी ही हो। पाटणके शूर-वीर, राजनीतिज्ञ, धर्म-धुरन्धर, कवि और चारण आदि सभी एकमतसे दो जनोंको अग्रस्थान देते थे: पुरुषोंमें मुंजालको, स्त्रियोंमें काश्मीराको।

वह जयदेवको नचाती, मीनलदेवीको बहुत बार हँफाती, मन्त्रियोंकी राजनीतिको उलट देती, योद्धाओंको शस्त्रोंका व्यवहार सिखाकर लज्जित करती और कारिन्दोंको तंगकर त्राहि त्राहि करा छोड़ती। फिर भी प्रत्येक जन स्नेह और मानकी दृष्टिसे उसका आदर करता। पाटणकी राज्यसत्ताका मूर्त्तस्वरूप मंत्री मुंजाल भी अपने हुक्मोंका भंग काश्मीरादेवीको करने देता।

अनुचर काकको महलके पिछले भागमें ले गया। वहाँ एक रूपवती स्त्री झूलेपर बैठी हुई थी। वहाँ उसने अपने पैरोंके बीच एक तीन-चार वर्षके बालकको ज़बर्दस्ती खड़ा कर रखा था। बालक पैरोंके बीचमेंसे निकल भागनेका प्रयत्न कर रहा था और युवती एक हाथमें उसके लम्बे बाल पकड़े, दूसरे हाथसे एक स्वर्ण-मंडित कंघी लेकर बाल सँवारनेकी तैयारी कर रही थी।

काक देहलीपर ही ज़रा देर ठहर गया। उसे ज्ञात न था कि यह स्त्री कौन है, अतएव सम्मानमें दूर ही खड़ा रह गया।

"देवीजी!" अनुचरने कहा।

"क्यों ?" युवतीने दृष्टि उठाकर देखा। "ओहो, कौन, भटजी ? आइए।" गौरवसे काकका आदर करते हुए स्त्रीने कहा।

काकने उसे प्रणाम किया। काश्मीरादेवी ऊँची और सबल स्त्री थी। उसके मुखकी रेखाएँ गौरवयुक्त और भरी हुई थीं। बीस वर्षकी अवस्थामें भी वह अधेड़ उम्रकी-सी प्रतीत होती थी। फिर भी उसके हास्यमें और आँखोंमें विद्युत्की चमक थी। उस चमकने शब्दोंसे भी अधिक सत्कार किया।

" तुम लाटसे आये हो ? " उसके बोलनेमें आतुरता थी, फिर भी मुंजाल मेहताकी सत्ता-दर्शक रीतिका कुछ हल्का-सा अनुकरण दिखाई पड़ता था।

" हाँ देवीजी, मंडलेश्वर महाराज खूब आनन्दसे हैं और ईश्वर चाहेगा, तो कुछ ही समयमें यहाँ आ पहुँचेंगे। "

" कोई चिट्ठी-पत्री नहीं दी ? "

काकने मधुरतासे कहा, " मंडलेश्वर महाराजने समझा कि आप महारानीके साथ यात्राको गई होंगीं। "

" मेरी यह क्या शामत आई ? अरे ओ बदमाश ! " यह अन्तिम शब्द काश्मीरादेवीने उस बालकके लिए सम्बोधित किये। वह इस अवसरका फायदा उठाकर देवीके पैरोंके बीचसे छूट भागा था और दूरपर एक कोनेमें खड़ा हुआ था। छुटकारेसे प्रसन्न होकर खड़ा-खड़ा हँस रहा था।

" खड़ा रह छोकरे ! " कहकर काश्मीरादेवीने काकसे कहा, " जरा उसे पकड़ तो लाओ। "

" जी। " कहकर काक बालककी ओर गया। बालककी मुख-रेखाएँ पिताके समान ही थीं और बुद्धि-दर्शक तेज आकर्षक था। काकको अपने स्वामीके पुत्रपर स्नेह उत्पन्न हो गया।

" भइया, भइया, इधर तो आओ देखें। "

बालकने मुट्ठी बाँधी और कोनेमें खड़े खड़े वह काककी ओर आँखें निकालने लगा।

" मारूँगा ! " उसने काकको धमकाया। काक धीरे-धीरे उसके निकट जा पहुँचा।

" राजा भइया, ज़रा चलो तो सही। तुम्हारे बापूजीने क्या क्या चीजें भेजी हैं, देखो, आओ। "

" बापूजी गाँव गये हैं। " बालकने उत्तर दिया।

" अरे, देख क्या रहे हो ? वह कहीं ऐसे मानेगा ? पकड़ लाओ उसे। " काश्मीरादेवीका आदेश हुआ। काक उसे पकड़ने गया, पर वह सटक गया।

" वह ऐसे नहीं मानेगा। पकड़ो। "

काकने बालकको पकड़ लिया। काकको अपने स्वामीके बालकको पकड़ते तनिक क्षोभ हुआ और बालक मचलकर ज़ोरसे कूद-फाँद करने लगा। हाथों और पैरोंसे वह जितने प्रहार कर सकता था, उतने काकपर किये और " छोड़ दे ! छोड़ दे ! " कहकर बड़े ज़ोर ज़ोरसे चीत्कार करने लगा। उसे बाँहोंमें भरकर लाते हुए काकको बड़ी कठिनाई हुई। उसे ज्ञात न था कि वह अपनी बाँहोंमें गुजरातके भावी सम्राट् कुमारपालको उठाकर ले जानेका महान् कार्य कर रहा है। काककी कठिनाई देखकर काश्मीरादेवी हँसने लगीं।

अचानक पीछेसे एक सवाल सुनाई पड़ा, " कुमार, यह क्या कर रहे हो ? "

काक चौंका और क्षुभित हुआ। कुमारपालकी चीख-पुकार एकदम शान्त हो गई। काश्मीरा एकदम झूलेपरसे उठकर आँचल सँभालने लगी। मुंजाल मेहताने काकसे कहा, " काक भट, उसे जमीनपर रख दो। "

काकने काश्मीराकी ओर देखा। वह कुछ न बोली, अतएव उसने कुमारको भूमिपर रख दिया। वह भी बिल्कुल चुप हो गया।

" क्यों रे, उत्पात मचा रहा है ? इधर आ। " बालक धाकके मारे मुखको शांत रखकर आगे गया। " मामाजी, अब मैं उत्पात न करूँगा। "

" अच्छा, चलो, बालोंको ठीक करवा लो। " इतनेमें काश्मीरादेवीने पड़ी हुई चौकी उठाकर रख दी और मुंजाल उसपर बैठ गये। कुछ दूर बैठकर काश्मीरादेवी समझदार बने हुए कुमारके बाल सँवारने लगी।

" क्यों काक भट, यहाँ कैसे ? " " मैंने बुलाया है। "

" मैं भी यही समाचार कहनेके लिए आया था। त्रिभुवनका पत्र आया है। काकभट तो त्रिभुवनके मित्र हैं। बैठो, बैठो। " मन्त्री मधुरतासे हँसने लगे। काक ज़रा फूल उठा कि महा अमात्य भी उसपर खुश हैं। काश्मीरा देवीने भी यह जानकर एक हास्य-किरण उसपर डाली, कि वह उसके पतिका केवल सुभट ही नहीं, मित्र भी है। काक सविनय दूर बैठ गया।

" तुम अभी राजगढ़में ही हो ? मैं सोच रहा था कि कदाचित् तुम सज्जन मेहताके यहाँ पहुँच गये होगे ? "

" जी नहीं, अभी नहीं गया। "

" तुम जयदेव महाराजके पास गये थे ? "

" जी नहीं, " काकको बिल्कुल झूठ बोलना ठीक न लगा, " मुझे उन्होंने बुलाया था। "

" त्रिभुवनपाल भोगपुर न जाकर वीरमगाँव जायँ, यह सलाह तुमने दी थी ? "

काकको लगा कि मुंजाल खानगी सलाह देकर उसकी चोरी पकड़ रहा है; परन्तु उसे सूझा नहीं कि इससे कैसे बचा जाय ? आखिर उसने बात उड़ा दी। कहा, " आपको खबर तो होगी कि रा' नवघण गुजरातपर आक्रमण करनेकी तैयारी कर रहा है ? "

" हाँ, और मैं यह भी जानता हूँ कि उसने अपना कोई छुपा भेदिया भी यहाँ भेजा है। वह तुम्हारा मित्र है, तुम्हारे साथ सज्जन मेहताके यहाँ ठहरा है और इस समय तुम वहाँ जानेके लिए अकुला रहे हो। इसका क्या विश्वास कि ऐसी सलाह देकर तुम हमें फँसाना नहीं चाहते ? " ऐसा लगा, मानों मुंजालकी आँखोंसे तेजका फव्वारा निकल रहा है।

काककी प्रसन्नता जाती रही। मुंजालकी मार्मिक प्रश्नावलीने उसके अभिमानपर आघातपर आघात किये। शासकोंने ऐसा अच्छा आदर दिया, जयदेव महाराजने उसे सलाहकार बनाया, उसकी सलाहसे महा अमात्य भी चकित हो गये : इन सब अनुभवोंसे उत्पन्न हुआ उसका गर्व खर्व हो गया। वह घबड़ा गया और कहने लगा, " अन्नदाता, मंडलेश्वर महाराजका पत्र..."

" हाँ, वह बेचारा भोला मनुष्य है। तुमने कल कहा था कि भुलावेमें डालना कितनी गंभीर बात है ! "

" महाराज, आपको खबर नहीं कि मंडलेश्वर महाराजकी मैंने कितनी सेवा की है।" काकने मान भंग हो जानेके कारण उत्पन्न हुए गर्वसे उत्तर दिया, " क्या करूँ, इस समय वे तो हैं नहीं। इस लिए अब आप जैसे कहें, मैं विश्वास करा दूँ। "

सामने बैठे हुए उस तेजस्वी नर-सिंहके तेजसे जो इस समय पाटणके अधिकारकी मूर्त्ति बनकर उसे अपना प्रताप दिखा रहा था, काक चौंधिया गया। वह अपनी लघुतासे लज्जित हो गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह इस महान् मुत्सद्दीके आगे एक अपक्व और अल्प-बुद्धि बालकके समान है।

" किस लिए तुमने महाराजको ऐसी सलाह दी कि हमें भोगपुरकी ओर न जाना चाहिए ? "

काकने कहा, " मेरी धारणा है कि रा'नवघण पाटणपर चढ़े आ रहे हैं, इस लिए।" वह भूल गया कि मन्त्रीने चतुराईसे जान लिया है कि उसने ही महाराजको सलाह दी है।

मन्त्रीने पूछा, " इसका परिणाम क्या होगा, यह तुम्हें ज्ञात है ? उबकके साथ सन्धि करनी ही होगी।"

" मेरी धारणाके अनुसार, महाराज, अभी यह बुरा नहीं है।"

" किसने कहा ? तुम्हें पाटणकी क्या ख़बर है ? " मुंजालने इस प्रकार कहा, जैसे वे उलहना दे रहे हों। " पाटणके बहुतसे योद्धा और हमारे सब श्रावक इस सन्धिसे प्रसन्न होंगे। उन्हें सन्धि ही चाहिए।"

" तो इसमें बुरा क्या है ? "

" क्या बुरा है ? " ज़रा भौंहें चढ़ाकर मुंजाल कहने लगा, " तुम अपरिचित मनुष्य हो, तुमसे कहनेमें क्या लाभ ?—परन्तु, तुम त्रिभुवनके मित्र हो, यह समझ कर कहता हूँ।" कहकर मुंजाल एक नटकी-सी खूबीसे क्रोधका आवेश छोड़कर ज़रा हँसने लगा। यह अचानक परिवर्त्तन देखकर काक चकित हो गया। मनुष्यको मात करनेके कैसे कैसे दाव मुंजाल मेहताको आते थे, इसका अभी उसे भान नहीं था। मुंजाल स्वर धीमा करके आगे कहने लगा, " पाटणमें मालवेका एक पक्ष है। यह सन्धि होगी, तो वह सबल हो जायगा और साधु-गण अपना अहिंसा-पुराण शुरू कर देंगे। इसके परिणामका भी ज्ञान है ? " " जी नहीं।"

" मालवा बड़ा है। उसमें एकतन्त्र है। वह पाटणको खा जायगा और हमारे श्रावक अहिंसाका भजन करते हुए अवन्तिके परमारोंके दास बन जायेंगे।"

काक गहरे विचारमें पड़ गया। इस बातका उसे तनिक भी ध्यान नहीं था। मुंजाल कुछ रुका, अतएव काक बीचमें बोल उठा, " परन्तु अभी तो हम शान्ति स्थापित कर लें, फिर देखा जायगा।"

" पगले, इस शान्तिका अर्थ श्मशानकी तैयारी है। जयदेव महाराजको चक्रवर्त्ती बनना हो तो एक ही मार्ग है कि जालन्धरकी भाँति प्रभु सोमनाथसे वर माँग ले कि लड़ो, नहीं तो लड़नेवाला दो। समझे ? " कहकर

मुंजाल हँस पड़ा। वह काकको ठिकानेपर ले आया था। अपनी चतुराईकी छाप उसने उसपर बैठा दी थी और काकको अपने बुद्धि-बलपर बिलकुल श्रद्धा न रह गई थी।

"आपका मतलब मैं समझ गया।" काकने इस प्रकार कहा जैसे गहरे विचारमें पड़ा हुआ हो। तब यह प्रश्न कि मुंजालने स्वतः उसकी सलाहकी प्रशंसा क्यों की थी, उसे इतना गहन मालूम हुआ कि उसने इसका निर्णय करना ही छोड़ दिया। इस समय उसने केवल मंत्रीके व्यक्तित्व, उसकी बुद्धि और वाक्पटुताको देखकर संतोष किया।

"राज्य-शासनका कार्य कोई बच्चोंका खेल नहीं है। उसमें सलाह-सम्मति देना सरल नहीं है।"

"महाराज, कहाँ आप और कहाँ मैं? आपकी बुद्धिके आगे दसों दिशाओंके राज्य काँपते हैं, तो फिर मेरी क्या शक्ति?"

"इसीका नाम है खुशामद!" मुंजाल ज़रा तिरस्कार प्रकट करके फिर बोला "भटजी, तुम बड़े समझदार हो, तुम्हारे रंग-ढंग भी मुझे पसन्द हैं; परन्तु यह कूद-फाँद अच्छी नहीं।"

काकका हृदय अल्पताको प्राप्त हो गया था और इसका भी उसे भान हो गया था कि उसका स्थान क्या है, तथा मंत्रीका स्थान क्या है। मुख नीचा करके उसने सब उपदेश सुन लिये।

८—मुंजाल और काश्मीरादेवी

"अच्छी बात है, तुम्हारी बात ही स्वीकार की जाय। हम यहीं रहेंगे और तुम त्रिभुवनपालसे कह आओ कि वे वीरमगाँव नहीं, परन्तु नलकाँठेकी ओर जायँ। वहाँ यदि नवघण आयेगा, तो उसे पकड़ना सरल होगा।"

"जो अन्नदाताकी आज्ञा।"

काश्मीरादेवी कुमारके बाल सँवारकर अभी तक मौनमुख बैठी हुई थी। मुंजालने उसकी ओर फिरकर कहा "प्रसन्न, त्रिभुवनको कोई सन्देश कहलाना है?"

" नहीं। " तनिक हँसकर काश्मीरादेवीने कहा।

" चलो कुमार, यहाँ आओ। " तनिक मज़ाक़से मुंजालने कहा, " इन भूदेवको प्रणाम तो करो। देखो, यह तुम्हारे बापूजीके पास जा रहे हैं। तुम्हें जाना है ? "

कुमार अपनी माँके पास बैठा था। वह उठा और मुंजालके निकट आकर अधबीचमें खड़ा हो गया। " बापूजीके पास ! " उसने अपनी इच्छा प्रकट की।

मुंजालने हँसकर कहा " नहीं। तुम्हें तो मैं अपने पास रखूँगा। तुम्हें मैं अपना बेटा बनाऊँगा। यहाँ आओ। अरे, जरा मेरे पास तो आओ। " कहकर तनिक झुककर मंत्रीने उसका हाथ पकड़ा और अपने पास खींचा। धाकके मारे कुमार न निकट आ सका और न इनकार ही कर सका। आखिर वह घसिटता हुआ आया और मन्त्रीने उसे छातीसे लगा लिया।

" जब तुम बड़े होओगे, तब इन काक भटके साथ तुम्हें लड़ने भेजूँगा। अच्छा, काक भट, अब तुम्हारे लाटमें कितना उत्पात शेष है ? "

" अन्नदाता, बहुत कुछ भाग तो सर हो गया है; परन्तु कुछ इक्के-दुक्के राज्य अभी तक बहुत सताया करते हैं। "

" इसका अन्त कब आयेगा ? "

" यह कैसे कहा जा सकता है ? जब तक सेनापति ध्रुव है, तब तक कुछ नहीं कहा जा सकता। "

" वह कहाँ है ? "

" यही नहीं ज्ञात होता। जंबूसरसे तापीके तटतक उसकी आन गूँजती है और वह साथमें मृणालकुमारीको लिये घूमता है, अतएव लोग उसे पुराने राजाओंका प्रतिनिधि मानते हैं। "

" मृणालकुमारी तो पद्मनाभ महाराजकी कन्या है और पद्मनाभ वह जिसे मैंने मारा था। " मुंजालने यह समझ कर समझाया कि कदाचित् काश्मीरादेवी जानती न होंगीं।

" ऐसा क्या ! "

काकने कहा, " जी नहीं, पद्मनाभ महाराजके कुमारकी कन्या। "

" तब इसका उपाय यह है कि मृणालकुमारीको पाटण ले आएँ और ध्रुवको सेनापति बनाकर मालवा भेज दें।

" अन्नदाता, बिना ऐसा कुछ किये लाटका उपद्रव शान्त न होगा।" मृणालकुमारी जहाँ होती हैं, वहाँ लाटका पूर्व गौरव सतेज हो जाता है; परन्तु उन्हें पाटण कैसे लाया जा सकता है ? "

" एक ही मार्ग है। त्रिभुवनसे कहा जाय कि उससे विवाह कर ले। —क्यों कुमार, तेरी एक नई माँ आ जाय, तो कैसा ? " कहकर मन्त्रीने काश्मीरादेवीकी ओर देखा। वह तनिक लजाकर नीचे देख रही थी; परंतु उसकी आँखों और मुखपर तूफान-सा आ गया था। "

" इस बातकी सूचना तो मैंने मंडलेश्वर महाराजको दी थी।"

" तब बाधा क्या है ?—क्यों प्रसन्न, तुम्हें कोई बाधा है ? "

" स्वामीकी जैसी इच्छा हो, वैसा करें। इसमें मैं क्या कहूँ ? परन्तु मैं तो जानती थी कि एक स्त्रीके रहते दूसरीसे विवाह करना बहुत बुरी बात है।" काश्मीरादेवी हँसी। मुंजाल मेहता खुद फिरसे विवाह करनेका विचार नहीं करते थे और इससे उनके बहुतसे सगे-सम्बन्धी असन्तुष्ट थे। दुलारी लड़कीके-से स्वच्छन्द भावसे प्रसन्नने यह व्यंग-बाण छोड़ा था। इसे वे समझ गये। उत्तरमें मन्त्री भी हँस पड़े। काक इन शब्दोंका अर्थ न समझ सका, परन्तु मंत्रीका स्नेहमय हास्य उसे बड़ा आकर्षक प्रतीत हुआ। किन्तु उसके स्वरमें जरा कर्कशता थी।

"अच्छा, यह बात है !" मन्त्रीने मज़ाकमें पूछा "तुम सभी कुछ जानती हो। अच्छा, जरा त्रिभुवनको तो आने दो। काक भट, तब उठो, लाटका भी कुछ किया जायगा।"

काकने नमस्कार किया और वहाँसे आज्ञा ली; परन्तु मंत्रीने प्रतिनमस्कारके लिए ज्यों ही हाथ उठाये, त्यों ही कुमार, जो अभी तक उनकी गोदमें कैद होकर बैठा था, उठकर भाग गया।

" हत् तेरेकी ! तू भी मेरे न पास रहेगा ? अच्छा !" कहकर मन्त्री हँसे और उठ खड़े हुए, परन्तु उनके हास्यमें खिन्नता थी।

" मामाजी, आपकी तबीयत कुछ ठीक नहीं मालूम होती।"

" किसने कहा ? " ज़रा गर्वसे अपने सशक्त, स्नायविक सुगठित शरीरकी ओर दृष्टि डालकर मन्त्रीने पूछा।

" आप चिन्तातुर-से लगते हैं।" गम्भीर अर्थभरी दृष्टिसे मुंजालकी ओर देखकर प्रसन्नने पूछा।

" नहीं बेटी, ऐसी कोई बात नहीं है। यह उत्पात-उपद्रवोंकी दुबिधा ही क्या कुछ कम है ? " कहकर मुंजाल वहाँसे चला गया। काश्मीरादेवी दूर तक देखती रही। बहुत दिनोंसे वह एक विषयपर विचार कर रही थी और वह विचार-माला आज फिर उसने ग्रहण कर ली। उसकी आँखोंमें जो तूफान चमक रहा था, वही उसके विचारोंका कुछ आभास दे रहा था।

कुमारको यह मौन अच्छा न लगा। उसने काश्मीरादेवीकी साड़ीके छोरको सिरपरसे खींच लिया। इससे भी उसका मन नहीं भरा; अतएव वह एक लट पकड़कर खींचने लगा। प्रसन्नने पूछा, " यह क्या कर रहा है ? "

" बोलती क्यों नहीं ? "

" इसी कारण तो, एक नई मामीजी लानी है। "

* * *

मुंजाल मेहता जब वहाँसे रवाना हुए, तब वे लाटके उत्पात-उपद्रवोंका विचार कर रहे थे और काकको उपयोगमें लानेकी युक्ति खोज रहे थे। कुछ देरमें वे बड़बड़ाये, " यही बात ठीक है। मृणालकुमारीका त्रिभुवनके साथ विवाह करना ही चाहिए। "

९—वीसल विजयाकी शरण लेता है

काक जब सज्जन मंत्रीके यहाँ गया, तब कृष्णदेव दिखलाई न पड़ा। एक-दो जनोंसे पुछवाया भी; परन्तु पता न लगा कि वह कहाँ है। किन्तु धनपाल घरके पिछले भागमें उसे राँधनेकी सामग्री देनेके लिए जा रहा था, कि वीशलदेव घबराया हुआ आया और काकसे बिना बोले ही जहाँ वह ठहरा था, उस ओर जाने लगा।

" क्यों भाई, इतनी जल्दीमें ? " काकने कहा। " ज़रा काम है। "

" परन्तु कृष्णदेव वहाँ नहीं है। ज़रा बैठना पड़ेगा। " काकने जरा हँसीमें कहा, " बैठो न यहीं। "

" नहीं, नहीं, मुझे अभी तो बड़े आवश्यक कामसे जाना है। "

" तो फिर लौटकर आना। क्यों, तुम्हारे बड़े भाई गये ? "

" नहीं जी, राजमहलसे निमंत्रण आया है और वहींसे वे सीधे बाहर ही बाहर रवाना हो जायँगे । "

" ओह, यह तो बड़ा जुल्म है ! व्यर्थ बेचारे सुखी जीवको दुखमें डाल रहे हैं । "

" अजी, छोड़ो भी इस बातको । " वीसलदेवने इस प्रकार कहा, जैसे वह बहुत ही तंग आ गया हो ।

" भटजी, इधर आइए । " दूसरे कमरेसे धनपालकी पुकार सुनाई पड़ी।

काकने कहा, " अच्छा, आता हूँ । वीसलदेवजी, तब मैं तो जाता हूँ । कृष्णदेवसे कोई सन्देश कहना है ? " तीक्ष्ण दृष्टिसे वीसलदेवके विचारोंको परखनेका प्रयत्न करते हुए काकने कहा ।

" नहीं जी, केवल...नहीं, कुछ नहीं । " कहकर वीसलदेव चला गया । इसके पश्चात् काकने भोजन बनाया और खाया । फिर जब वह तैयार होनेके लिए गया, तब कृष्णदेव उससे मिला ।

" कृष्णदेव, वीसलदेवजी तुमसे मिलने आये थे । तुम कहाँ गये थे ? "

" अर्थात्, मुझे यहीं खूँटेकी तरह गड़े रहना चाहिए ? "

" उन्हें कोई बहुत आवश्यक काम था । कोई बात कहनी थी । "

" मुझसे ? " कृत्रिम आश्चर्य दिखाकर कृष्णदेवने कहा ।

" हाँ, वह तो यही कह रहे थे । " " होगी । "

" तुम मंडलेश्वर देसलदेवको पहचानते हो क्या ? "

कृष्णदेवने कहा, " हाँ, मेरा गाँव उन्हींके मंडलमें है । तुम राजमहलमें जाकर क्या कर आये ? "

" कुछ नहीं, केवल देवोंके दर्शन कर आया । अभी फिर जाना है । "

दोनोंने थोड़ी देरतक उड़ती हुई बातें कीं और काक फिर राज-महलकी ओर रवाना हो गया ।

काकको कृष्णदेवके प्रति सन्देह तो पहलेसे ही था, मुंजालकी बातोंसे उसकी और भी पुष्टि हो गई थी । इस समय वीसलदेव आ गया अतएव उसे प्रतीत हुआ कि वह सन्देह सच्चा है । कृष्णदेव कौन है, यहाँ क्यों आया है और वीसलदेव क्या पूछना चाहता है, इस विषयमें उसने अनेक तर्क-वितर्क किये; परन्तु वह कुछ भी निर्णय न कर सका । और निर्णय न होनेसे इस रहस्यका पता लगानेकी उसकी इच्छा बढ़ती ही गई ।

मुंजाल मेहताके साथ बात करते समय वह उलझनमें पड़ गया था और मंत्रीके तेजस्वी व्यक्तित्वके आगे निस्तेज हो गया था। वह जब महलमेंसे निकला, तब मंत्रीके पैर पूजनेका भाव उसमें उत्पन्न हो गया था; परन्तु बाहर निकलकर जब वह अकेला विचार करने लगा, तब उसे यह विश्वास हो गया कि उसने महाराजाके आगे जो विचार प्रकट किये थे, वही ठीक थे। महा-अमात्य भी उनसे सम्मत थे, फिर भी केवल घबराहटमें डालनेके लिए ही मन्त्रीने इस प्रकार बात करके उसे अप्रतिभ कर दिया था। काकके हृदयमें मन्त्रीके प्रति पूज्य भाव तो था; परन्तु उसने उसकी राज-नीतिज्ञताके प्रति जो अभिप्राय प्रकट किया था, वह उसे न रुचा। मन ही मन वह बड़बड़ाने लगा, "मन्त्रीवर, तुमने भी मुझे खूब दबोचा ! कोई हर्ज नहीं। परन्तु याद रखना, तुमसे भी एक दिन स्वीकार करा लूँगा कि काक मुत्सद्दी है। तुम महापुरुष हो, सर्वसत्ताधिकारी हो, तो भले रहो, परन्तु तुम्हें भी छकाऊँ,—तुम्हें भी दिखा दूँ कि लाटका पानी कैसा है और एक दिन तुम्हींसे राज-तन्त्रमें मैं अपनी बात स्वीकार करवा लूँ, तब मेरा नाम काक ! परन्तु यह किया कैसे जाय ? महाराजाको तो विश्वास करा ही दिया है, यदि उदा मेहता और पंजेमें आ जायँ, तो बेड़ा पार है। इस कृष्णदेवका कुछ रहस्य तो है। यदि उसका भी कुछ भेद मिल जाय, तो अच्छा है। परन्तु उस वीस-लके बिना पता नहीं चलेगा। वीसलदेव, तुझे भी ईश्वरने ही मिला दिया है !" इस प्रकार बोलता हुआ काक राजमहलमें जानेके बदले देसलदेव मंडलेश्वरका घर पूछता हुआ वहाँ जा पहुँचा। उसका महल राज-महलके बगलमें ही था। पूछनेपर मालूम हुआ कि देसलदेव पाटणसे दोपहरकी ही रवाना हो चुके हैं। वीसलदेव उन्हें घाटतक बिदा करने गया था और लौटकर सो रहा था। काकको मन ही मन ज़रा हँसी आई। जब मालव-सेना पाटणकी ओर बढ़ी आ रही है, जब दुंदुभियोंके नादपर योद्धा-गण नाच रहे हैं, तब वीसलदेव महाराज शान्तिसे सोये पड़े हैं ! घड़ीभर काकने वहाँ प्रतीक्षा की। अन्तमें वह अधिक धीरज न रख सका और आवश्यक कामका मिस करके वीसलदेवको जगा देनेके लिए एक राजपूत नौकरसे कहा। कोई आधी घड़ीमें वीसलदेव उठकर आ पहुँचा।

"क्यों वीसलदेवजी, थके-हारे सो रहे थे, क्या ? मुझे ज़रा आवश्यक काम था, इसलिए जगाना पड़ा।"

वीसलदेवने जँभाई लेते हुए कहा, "क्या बात है? आज तो मैं क्षण-भर भी चैनसे न बैठ सका। कहिए, क्या काम है?"

"महाराजने इसी समय जानेका आदेश किया है। अतएव मनमें आया कि ज़रा तुमसे भेंट कर लूँ। तुम जैसोंकी..."

"हाँ, मुझे खबर है। बड़े भाई कहते थे। त्रिभुवनपालजीके पास भोगपुर जानेका सन्देश लेकर ही तो जा रहे हो?"

"ओ हो, तुम भी बड़ी खबर रखते हो जी!" काकने कहा।

"अवश्य। हमीं न रखेंगे, तो फिर कौन रखेगा? तब आज तुम जाओगे न? अकेले हो, या कोई साथ है?" जरा चिन्ताग्रस्त मुखसे वीसलदेवने पूछा।

"नहीं, मैं अकेला ही जा रहा हूँ। मुझे कौन खाये जाता है? क्यों?"

"कुछ नहीं, यों ही पूछा था। आज-कल समय ऐसा है कि अकेले जाना बड़ा कठिन जाता होगा।"

काकको प्रतीत हुआ कि वीसलदेव ऐसा भोला आदमी तो नहीं है कि व्यर्थ ही ऐसे प्रश्न करे, अतएव उसने चतुराईसे काम लेना आरम्भ किया। "हाँ जी, आज-कल लड़ाईका समय है। अकेले जाना ज़रा जोखिमका तो अवश्य है; परन्तु किया क्या जाय?—हाँ, हमारे कृष्णदेवजी फिर मंडलेश्वरसे मिले क्या?"

"अरे नहीं जी। वह भी अपनी पीड़ा अलग बढ़ा रहा है। मुझे अभी..." मुखसे बात निकल तो गई, पर बीचहीमें ध्यान आ जानेसे वीसलदेव चुप हो रहा।

"हाँ, अभी तो तुम्हें उससे मिलना है? वह भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।" काकने अपनी बाज़ी खेलना आरम्भ किया और धीरे धीरे वीसल देव उसमें फँसता गया।

"ऐसा! ठीक है। अब सन्ध्या होने ही वाली है। तुम कृष्णदेवको कहाँ पहचानते होगे?"

"मैं और न पहचानूँ?" कहकर काक हँसने लगा। उसे तनिक भी ज्ञात न था कि कृष्णदेव कौन है; परन्तु उसके हँसनेसे वीसलदेवको विश्वास हो गया। "परन्तु तुम्हारे भाई तो मिले नहीं, अब क्या होगा?"

" यही तो आफत है। अच्छा, चलो, अब तुम्हारे जानेका समय हो रहा होगा। " बात उड़ानेका प्रयत्न करते हुए वीसलदेवने कहा।

" हाँ, अब तुम्हें भी कृष्णदेवके पास जाना होगा। नमस्कार। मेरे योग्य कोई काम-काज है ? "

" नहीं, सन्ध्याके समय जाओगे ? "

" नहीं, अभी जाऊँगा। " कहकर काक वहाँसे उठा और राजमहलकी ओर रवाना हुआ। जाते जाते उसने देखा कि तुरन्त ही वीसलदेव अपने महलसे निकल कर पालकीपर जा बैठा और सज्जन मंत्रीके भवनकी ओर रवाना हो गया।

काक कुछ देर अपनी साँढ़नी और शस्त्रोंके तैयार करनेमें लगा रहा, इसके बाद कोई वस्तु सज्जन मंत्रीके यहाँ रह गई है, उसे ले आऊँ, इस बहाने वहाँके लिए रवाना हुआ। दोपहर बीत जानेको आया था, फिर भी कृष्णदेव सोनेका ढोंग किये पड़ा था। काकने उसे जगाया नहीं और वह लौटकर फिर राजमहलमें आ गया। उसे विश्वास हो गया कि वीसलदेव वहाँ पहुँच गया है।

काक अपनी साँढ़नी लेकर भीमनाथके घाटपर पहुँचा। सरस्वतीके उस पार जानेके लिए नौकाएँ आने-जाने लगी थीं; पर भीमनाथके घाटके सिवा और सब घाट बन्द थे। साथ आये हुए साँढ़नीवाले नौकरको साँढ़नीके पास बैठाकर दर्शन करनेके मिस काक भीमनाथके मन्दिरमें जा बैठा। नौकाएँ उस पारसे भरकर पाटणकी ओर आ रही थीं, परन्तु, पाटणसे शायद ही कोई मनुष्य जा रहा था। इसलिए जानेवाले कौन कौन हैं, उनपर दृष्टि रखना सरल था। काकको विश्वास था कि या तो वीसलदेव या उसका कोई आदमी मधुपुर अवश्य जायेगा और वहाँ देसलसे मिलकर कृष्णदेवका सन्देश कहेगा। वह सन्देश क्या है, सो भी किसी प्रकार जान लेनेका काकने दृढ़ निश्चय कर लिया था। सूर्यास्त हो गया; पर कोई भी नहीं आया। काक अधीर हो गया। यदि मुंजाल या महाराजको खबर लग गई कि वह समयपर रवाना नहीं हुआ, तो उसपर व्यर्थ दोष आयगा। काकने अपनी साँढ़नी उस पार भेज दी और थोड़ी ही देरमें रवाना होनेका निश्चय करके बैठ रहा।

काकने आसिका ली, जलाधारीमेंसे बिल्वपत्र लिया और निकटके ओसारेमें, जहाँ भाँग घोटनेकी सिल-लुढ़िया पड़ी थी, वीसलदेवको ले गया। वीसलदेवको विलम्ब भला न लग रहा था; परन्तु काकको छोड़कर अकेले जानेकी हिम्मत भी उसमें नहीं थी। अतएव वह बैठ गया और काकने जितनी पिलाई, उतनी भाँग उसने पी ली। विजयाका प्रभाव ज्यों ज्यों वीसलदेवपर होता गया, त्यों त्यों उसका मुँह खुलने लगा।

१०—कृष्णदेवका सन्देश

विजया गगनविहारी गंधर्वोंका पेय है। यह अवनिको अमरावती बनाती है; अरसिकमें रसिकता उत्पन्न करके उसे काव्यमयताके शिखरपर पहुँचाती है; उदासीनतामें डूबे हुए लोगोंको अटूट हास्यका अधिकार अर्पित करती है और पाषाण-हृदयोंको आर्द्र बनाकर विरहाश्रु गिरानेकी आज्ञा देती है। सुरा निर्लज्ज बनाती है, अफीम अहदी बनाती है, गाँजा धुनी बनाता है, परन्तु भाँग मनुष्यकी कल्पना-शक्तिको उत्तेजित करके उसे व्योममें रची जानेवाली सुनहरी सृष्टिका स्वामी और भोक्ता बनाती है।

वीसलदेवने विजयाकी आराधना करके यही पद प्राप्त किया। उसे अपना हृदय विशाल होता प्रतीत हुआ; मनोबल मस्तकमें उछल-कूद करता जान पड़ा; दृष्टि सूक्ष्म और सर्वग्राही होती ज्ञात हुई; और बुद्धिने नये नये तंत्र रचने आरंभ किये। उसे प्रतीत हुआ कि वह स्वयं दुर्जय है, देसलदेव मूर्ख और अभिमानी है; जयसिंहदेवको राज्य पानेका अधिकार था ही नहीं, मुंजाल मंत्री उलटी बुद्धिका है। उसकी आकांक्षाएँ नये स्वरूपमें, परन्तु चुटीली असरकारक भाषामें प्रकट होने लगीं। उसके विशाल मस्तिष्कमेंसे अनेक नई नई युक्तियाँ उदय हुईं, अनेक षड्यंत्रोंकी रचना हुई और अपना नायक वह स्वयं बना। उसे विश्वास हो गया कि जयसिंहदेव आज केवल उसीके आधारपर राज्य कर रहा है।

ये सब बातें वीसलदेवके उत्तेजित मस्तिष्कमेंसे निकलने लगीं। उत्तेजन केवल भाँगका ही न था; काक भी धीमे धीमे उससे बातें करवा रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि काकपर वीसलदेवकी श्रद्धा बढ़ती गई। उसे

वह प्राणप्रिय मित्र प्रतीत हुआ और उसे ऐसा भास होने लगा कि उसके साथ मेरा पूर्वजन्मका सम्बन्ध है। उसने अपनी महान् युक्तियोंमें उसकी सहायता चाही। काक पीछे हटनेवाला न था। उसने भी वीसल देवको सदैवके लिए मित्र बनकर रहनेका वचन दिया और उन दोनोंके बीच कितनी समानता है, इसका विवेचन किया। काकने शपथ ली कि वह जीवन-भर वीसलदेवका मित्र बनकर रहेगा।

मित्रताका बंधन इस प्रकार दृढ़ हो जानेके बाद काकने सोरठकी चर्चा चलाई। उसने सूचित किया कि वह कृष्णदेवको जानता है और इसका भी उसे भान कराया कि इस समय वीसलदेवके समान महारथीके पाटण छोड़ जानेसे कितनी हानि होगी। अपनी महत्ताकी इतनी अधिक कदर होती देखकर, वीसलदेवने बहुत ही गुप्त रूपसे कहा कि उसका भी यही मत है। काकने उसे विश्वास दिलाया कि वह जो गुप्त सन्देश ले जा रहा था, उसे यदि उससे कह दे, तो वह बिना चूके उसे अवश्य देसलदेवसे जाकर कह सकता है। वीसलदेव ऐसा करनेके लिए राजी हो गया; परन्तु साथ ही आशंका प्रकट की कि इससे उसके बड़े भाई बहुत गुस्सा होंगे।

इस प्रकार बातें करता हुआ काक जब वीसलदेवको नदीपर ले गया, तब आखिरी नौका निकल चुकी थी; अतएव तैरकर जानेके सिवा कोई उपाय न था। रात पड़नेसे ठंढ शुरू हो गई थी और वीसलदेव कुशल तैराक न था; इससे उसे तैरकर नदी पार करना कठिन मालूम हुआ।

आखिर काकने उसे फिर समझाया। वीसलदेव जैसा महान् सामन्त इस प्रकार व्यर्थ धक्के क्यों खावे? क्यों पाटणमें ही रहते हुए उसका ध्यान न रखे? क्यों अपने बड़े भाई जैसे स्वार्थीके लिए निरर्थक ठंढमें ठिठुरते हुए नदी पार करे?

यह बात वीसलदेवके गले उतर गई। अभी कुछ ही दिन हुए उसका भाई अपने कार्योंमें उससे सहायता लेने लगा था, इसलिए, किसी उस्तादके पंजेमें वह अबतक न फँसा था।

"काक, मित्र, तो इतना काम करोगे?"

"अवश्य। तुम्हारे एक शब्दपर मैं अपना सिर उतार कर दे सकता हूँ।"

"तो मधुपुरके किनारे नीलकंठेश्वर महादेवके मन्दिरमें जाना।"

" अच्छा।"

" वहाँ आधी रातके पश्चात् भाई साहब आएँगे, या कोई उनका ख़ास विश्वासपात्र आदमी मिलेगा। उससे इतना कहना।"

" क्या ?" ध्यानपूर्वक काकने पूछा।

" माघ कृष्णा द्वादशी। पांचालेश्वरकी जय। याद रहेगा ?"

" क्यों नहीं ? अच्छी तरह।"

" देखना, परन्तु यह बात किसीके कान तक न पहुँचे।"

" अजी, पहुँचेगी कैसे ? अगर पहुँचे, तो उसका कान ही काट डालूँ। वीसलदेवजी, अब तुम चैनसे लौट जाओ।"

"मित्र, मेरा यह इतना-सा काम भली भाँति कर दोगे तो तुम्हारा बेड़ा पार कर दूँगा।"

रात्रिके अन्धकारमें काकके होठ तिरस्कारसे मुड़ गये, पर वीसलदेवने उन्हें न देखा।

" काक, मैं जाता हूँ।"

" हाँ, चैनसे जाओ।" कहकर काक वीसलदेवसे बिछुड़ गया और उस पार जानेके लिए नदीकी ओर रवाना हुआ। वह निराश हो गया था। कारण, सन्देश स्पष्ट नहीं था।—वीसलदेवको फुसलानेका सारा परिश्रम उसे व्यर्थ प्रतीत हुआ। इस अर्थहीन सन्देशमें वह अर्थ खोजनेका प्रयत्न कर रहा था। नदी लाँघनेको उसने लाँग चढ़ाई; परन्तु पानीमें पैर रखनेके लिए वह बढ़ ही रहा था कि रुक गया और पैर पटका।

" हत् तेरे मूर्खकी, इतनी भी समझ नहीं है ?" कहकर वह एकदम पीछे लौटा और देखने लगा कि वीसलदेव घाटपर है या नहीं। घाट निर्जन था। काक लाँग खोलकर तेज़ीसे फिर नगरमें घुसा और तेज़ीसे राजमहलकी ओर चल दिया। मार्ग इस समय सूना था, अतएव तेज़ीसे जानेमें कोई अड़चन नहीं हुई।

राजमहलके दरवाजेके आगे कुछ रक्षक बैठे हुए थे। काकने कहा, "भाई, कोई जाकर मन्त्रि-पुत्र शोभ महाराजको बुला लाओगे ?"

सद्भाग्यसे एक मनुष्यने उसे पहचान लिया।—"कौन ! आप तो त्रिभुवनपाल महाराजके भटराज हैं ?"

"हाँ, मैं वही हूँ, जरा उठो न।"

एक रक्षक उठकर गया और थोड़ी देरमें लौटकर काकको महलमें बुला ले गया। महलके चबूतरेपर शोभ खड़ा हुआ था।

"क्यों भटजी, अभी तुम गये नहीं?" ज़रा गरम होकर शोभने पूछा।

"महाराज, यह पूछनेका काम आपका नहीं है।" शान्तिसे काकने उत्तर दिया "मुझे काम है।"

"क्या?" ज़रा नरम होकर शोभने पूछा।

"महाराजसे मुझे मिलना है।"

"सो इस समय कैसे बन सकता है?"

"बिना मिले काम चल ही नहीं सकता; मुझे महाराजने बुलाया था।"

"अच्छा ठहरो, जागते हों तो पूछ आऊँ।"

शान्त स्वरमें काकने कहा, "न जागते हों, तो जगा लेना। कोई दूसरा न जान पाए, भला।"

जयसिंहदेवने जबसे काकके साथ एकान्तमें बातचीत की थी, तबसे शोभके हृदयमें उसका दर्जा बढ़ गया था। वह तेजीसे अन्दर गया और जयसिंहदेव जहाँ बैठे थे वहाँ जाकर बात की।

जयसिंहदेव पहले तो क्रोधित हुआ; परन्तु यह विचार कर उसे पिछले मार्गसे बुलानेका आदेश किया कि काक बिना कारण लौटकर आनेवाला आदमी नहीं है। ज्यों ही काक ऊपर पहुँचा त्यों ही महाराजने आँखें निकाल कर पूछा, "तुम अभी तक गये नहीं?"

"बिना सबल कारणके आपके आदेशका अनादर मैं कभी नहीं कर सकता।" हाथ जोड़कर काकने कहा और शोभकी ओर देखा।

"शोभ, तुम बाहर जाकर खड़े रहो, किसीको अन्दर न आने देना।"

शोभके जानेपर महाराजने काकसे पूछा, "अब बताओ, किस कामसे तुम रह गये?"

"अन्नदाताको एक नई ख़बर सुनाना है।"

"इसके लिए मेरे पास आनेकी आवश्यकता?"—ज़रा कठोरतासे जयदेवने पूछा, "क्या मेहताजी नहीं थे?"

काकने शान्तिसे कहा, "यदि अन्नदाताको ऐसा मालूम होता हो, तो मैं

चला जाऊँ। महाराजने आज मुझसे कुछ बातें कीं थी, इससे मैंने सोचा कि महाअमात्यकी अपेक्षा आपहीके पास खबर पहुँचाऊँ, तो ज्यादा ठीक होगा। यदि मुझसे भूल हुई हो, तो क्षमा कीजिए। मैं अन्नदाताकी आज्ञा लेता हूँ।" कहकर काक प्रणाम करके आगे बढ़ा।

जयदेवकी जिज्ञासा बढ़ रही थी। उसने काकको जाते देखा, तो नरम पड़ गया। बोला, "मेरी अपेक्षा मेहताजी जान लें तो अधिक अच्छा। उन्हें सब कुछ ज्ञात है।"

"महाअमात्यके पास अनेक जासूस हैं। मैंने समझा कि..."

"तो ठीक है, अब आये हो तो कहो।"

"अन्नदाताकी आज्ञा हो, तो मैं महा अमात्यसे ही जाकर कहूँ।"

जयदेवने होठ चबाकर कहा, "चलो, अब मुझसे ही कहो, जल्दी।"

"जो आज्ञा। सोरठका रा' गुजरातपर चढ़ा आ रहा है, यह बात सत्य है।"

"यह कौन-सी नई बात कही?"

"महाराज, नलकाँठेमें वह अपने साथियोंको इकट्ठा कर रहा है।"

"ऐसा?" "जी हाँ, पंचालेश्वरके आगे।"

"ऐं!" ज़रा चकित होकर जयदेवने पूछा।

"महाराज, माघ कृष्ण द्वादशीको वह वहाँसे निकलकर गुजरातपर आ चढ़ेगा।" धीमे स्वरमें काकने कहा।

"क्या कहते हो! तुमने कैसे जाना?"

"महाराज, अभी आपसे कहूँगा तो सब चौपट हो जायगा। महाराजकी आज्ञा हो, तो मैं फिर कहूँगा; परन्तु बात बिल्कुल सत्य है और नवघण रा'को मज़ा चखानेका ऐसा अवसर और नहीं मिलेगा।"

"अच्छा, मैं मुंजाल मेहतासे पूछ देखूँगा।"

"जैसी अन्नदाताकी इच्छा। परन्तु इसकी अपेक्षा आप मेरे ही द्वारा मंडलेश्वर महाराजसे कहला दें कि वे नवघण रा'को ठिकाने लगा दें, तो कैसा?"

"बुरा नहीं है।"

"और अगर आप उस समय वहाँ आ पहुँचें, तो—?" काकने ज़रा आँखको छोटी करके कहा।

जयदेव समझ गया कि किस लिए काक इस समय इस जगह आया था। किस लिए वह मुंजालके पास नहीं गया और काककी बात माननेसे वह कैसा यश प्राप्त कर सकेगा, आदि विचार उसके मस्तिष्कमें एकदम घूम गये। यदि जयदेव स्वयं जाकर नवघणको पराजित करे, तो मुंजाल मेहता भी जयदेवका प्रभाव जान जाएँ और शान्तु मेहताकी की हुई सन्धिका कलंक भी कुछ कम हो जाय। इस परिणामका विचार आते ही बालराजाका मुख खिल उठा।

"ठीक है, मैं देखूँगा," अपनी प्रसन्नता मन ही मन दबाते हुए जयदेवने कहा, "परन्तु तुम जल्दो जाओ।"

"मुंजाल मेहताको भी यह समाचार सुना दूँ ?" हाथ जोड़ कर काकने पूछा। जयदेवने देखा कि काक उसका मज़ाक कर रहा है। उसने ज़रा भौंहोंको चढ़ाकर उत्तर दिया, "तुम जाओ, मुझे जैसा उचित मालूम होगा, मैं करूँगा।"

"जैसी महाराजकी आज्ञा।" कहकर काक वहाँसे रवाना हुआ।

११—काकका पहुँचाया हुआ सन्देश

काक जब मधुपुर पहुँचा, तब आधी रात बीत गई थी और नीलकंठेश्वर महादेवके मंदिरमें पुजारीसे दीख पड़नेवाले चार-पाँच मनुष्य सोये हुए थे। काक विचारमें पड़ गया कि अब देसलदेवका पता कैसे लगाया जाय ? आखिर उसे कुछ सूझ न पड़ा और वह चबूतरेपर जा बैठा।

कुछ देरमें एक घुड़सवार आ पहुँचा। उसने अपना घोड़ा बाहर बाँध दिया और मन्दिरमें आकर महादेवजीको साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। नवागन्तुकने सारे शरीरपर कवच धारण कर रखा था। उसके मुखपर ढाटा बँधा हुआ था। अपनेको छिपानेका उसने बहुत प्रयत्न किया था, फिर भी काकको विश्वास हो गया कि यह देसलदेव ही है। परन्तु इस भयसे कि कहीं भूल तो नहीं कर रहा है, वह इस प्रकार सिर झुकाकर बैठ गया, जैसे नींदमें झोंके खा रहा हो।

नवागन्तुकने चारों ओर दृष्टि डाली और आखिर वह काकको ताक ताक कर

देखने लगा। वह बहुत देरतक विचार करता रहा कि बोले या नहीं; परन्तु अन्तमें धीरज न रहनेसे उसने पूछा "भटजी, आप पाटणसे आये हैं?"

"मुझसे पूछ रहे हैं?" काकने इस प्रकार कहा जैसे अभी नींदसे जागा हो।

"हाँ।" नवागन्तुकने पूछा "पाटणके नये क्या समाचार हैं?"

काकने आवाज़ पहचान ली। नवागन्तुक देसलदेव ही था।

"महाराज, आपके रवाना होनेके बाद की तो कोई खबर नहीं है।"

देसलदेव चौंक पड़ा। "मैं रवाना हुआ? मैं पाटण गया ही नहीं!" ज़रा कठोर स्वरमें उसने कहा।

"ऐसा क्यों कह रहे हैं? आप कौन हैं, मुझे विदित है।"

"क्यों?"

"मैं आपहीसे मिलनेके लिए आया हूँ, यों।"

"किसने? जयदेव महाराजने भेजा है?" ज़रा भयभीत स्वरमें देसलदेवने पूछा।

"नहीं, वीसलदेवजीने।" धीमेसे काकने कहा, "कृष्णदेव महाराजका सन्देश कहनेके लिए।"

देसलदेव चौंका और उसकी भवें चढ़ गईं।

"वीसलदेव क्यों नहीं आया?"

"कृष्णदेव महाराजने मेरे द्वारा सन्देश कहलाना ठीक समझा। मैं उनका मित्र हूँ।"

"तुम तो त्रिभुवनपालके मित्र हो?"

"दोनोंका मित्र होनेमें कौन-सी बाधा है?" ज़रा हँसकर काकने कहा, "क्या आप दोनोंके मित्र नहीं हैं?"

"क्या सन्देश लाये हो?"

"फाल्गुण शुक्ल चतुर्थी—पांचालेश्वर।" काकने धीमे-से कृत्रिम सन्देश कह सुनाया। इसे ठीक स्मरण रखनेके लिए देसलदेवने धीमे-से मनमें दोहरा लिया।

"और कुछ?"

"और कुछ नहीं। अब आपकी आज्ञा हो, तो मैं जाऊँ। मुझे त्रिभुवनपाल महाराजसे भी सन्देश कहना है।"

" क्या ? "

" कि भोगपुरकी ओर जाकर शान्तु मेहतासे मिलें। "

" ठीक है, ठीक है, " देसलदेव अपने हर्षको न दबा सका, " तुम्हारा नाम काक भट है न ? "

" जी। कभी आवश्यकता हो, तो सेवकको अवश्य याद कीजिएगा। "

" अच्छी बात है। चिन्ता न करो। " कहकर घुड़सवार वहाँसे रवाना हो गया। अंधकारमें काक हँसता हुआ खड़ा रहा। जब देसलदेवके घोड़ेकी टापोंका स्वर सुनाई देना बन्द हो गया, तब वह मन्दिरमें घुसा। फिरसे महादेवके दर्शन किये और साँढ़नीको पलानकर कर्णावतीकी ओर चल पड़ा।

" कर्णावतीसे कुछ ही दूर त्रिभुवनपाल महाराज उसे मिल गये। काकने सभी बातें सविस्तर कह सुनाईं और यह भी खबर दी कि माघ कृष्णा द्वादशीको नलकांठेमें 'पांचालेश्वर'में नवघण रा' अपने सामन्तोंसे मिलनेवाला है।

कुछ देर मंडलेश्वरके पास रहकर काकने दूसरी साँढ़नी ली और खंभातका मार्ग पकड़ा।

१२–खंभातके मार्गपर

स्तंभतीर्थ या खंभातके मार्गपर ज्यों ज्यों काक बढ़ता गया, त्यों त्यों उसे आसपासके प्रदेशमें परिवर्तन प्रतीत होने लगा। गाँव बड़े और समृद्धिवान् दीख पड़े। प्रजाका बहुत बड़ा हिस्सा जैन मालूम हुआ। जैन साधु और यति जब तब दिखलाई देने लगे और जगह-जगह चैत्य (मंदिर), पोषधशालाएँ (उपाश्रय) और आश्रम-गृह हालहीके बनाये हुए नज़र आये।

काक स्वयं ब्राह्मण था। वैदिक और पौराणिक प्रणालीमें वह पला था और मानता था कि वह भूदेवके ऊँचे पदपर है। इन कारणोंसे कट्टर श्रावकोंको वह तिरस्कारसे देखता था।

इस कथाके कालमें गुजरातकी प्रजाका अधिकांश न तो पूरा जैन था और न पूरा पौराणिक ही। दोनों भाग केवल पंथ ही समझे जाते। अधिकांश लोग शिवके दर्शन करके पार्श्वनाथकी पूजा करनेमें कोई विरोध नहीं देखते

थे। धनिक लोग दोनों पन्थोंके मंदिर बनवानेमें कृतकृत्यता मानते थे। आम लोग विद्वान् श्रोत्रियोंके और जैनसाधुओंके भी,—दोनोंके पैर पूजते थे। जिसे जो भाता उसीको इष्टदेव मान उसकी आराधना करता था। जिस समयका इतिहास यहाँ दिया गया है, उस समय श्रावकों और शैवोंमें प्रजाका स्पष्टतः विभाजन नहीं हुआ था और यह भी नहीं माना जाता था कि जैन-धर्म हिन्दू-धर्मसे भिन्न है।

परन्तु इन दोनों पंथोंके जो नेता थे, उनके मनमें ऐसी अस्पष्टता नहीं थी। उनकी मान्यताके अनुसार अपना अपना मत प्रत्येकको न्यारा और विशुद्ध मालूम होता था। इसका परिणाम यह होता कि राजधानियों और बड़े धनी नगरोंमें धार्मिक झगड़े चला करते थे और सत्ताधिकारियों तथा धनिकोंको अपने पंजेमें फँसानेके लिए प्रत्येक मत प्रयत्न किया करता था।

गुजरातमें मूलसे ही जैन-धर्मका ज़ोर चला आ रहा था। वल्लभीपुरका विनाश होनेके पहले वहाँ बौद्ध-मतको हराकर जैन-मतने अपनी सत्ता स्थापित की थी। वल्लभीपुरके पतनके पश्चात् पंचासरमें भी जैन-मतका प्राबल्य था।

यह माननेके लिए कारण मिलते हैं कि जैन साधुके द्वारा बचाये हुए, जैन साध्वीके द्वारा लालित-पालित और जैन-मन्त्रीकी सेवा स्वीकार करनेवाले वनराजके समयमें यह मत अधिक फैला होगा। गुजरातके अधिकतर धनिक इसी मतके थे और उनका धन अनाथोंके रक्षक अहिंसा-पूजक जैन साधु लोगोंकी भलाईके लिए ख़र्च करते थे। जैन साधु मानते थे कि गुजरातका सिंहासन हमारे मतके आश्रयसे ही अमर रहा है, और रहेगा। इसके सिवाय वे गुजरातके नरेशोंको अपने अनुयायी बना रखनेकी हवस हमेशा रखते थे। परिणाम चाहे जो हुआ हो, परन्तु गुजरातका इतिहास जैनशासनका एक अध्याय बन गया है।

गुजरातका गौरव नष्ट हो गया, पाटण उजड़ गया, उसे मुसलमानों और मराठोंने जीता, खोया और फिर जीता। चावड़ा गये; सोलंकी गये; नागरों, श्रीमालियों और पोरवाड़ोंका अस्त हुआ; फिर भी जिन पार्श्वनाथकी प्रतिमाओंने वल्लभीपुरका वैभव देखा था, और जो विनाशकालके पश्चात् पंचासर पहुँच गईं, वे ही प्रतिमाएँ सोलह सौ वर्षके बाद आज भी अपनी पुरानी राजधानीमें विराजती हैं और हमारे मध्यकालीन इतिहासके सूत्रधार

वनराज और उसके मन्त्री चाँपा मेहता उन्हें प्रणिपात कर रहे हैं। *

जैन-शासनका प्राबल्य होते हुए भी उस समय सौराष्ट्रके महादेवका डंका सारे देशमें बजता था, और गुजरात तथा सौराष्ट्रके अधिष्ठाता देव वही समझे जाते थे। जूनागढ़ और पाटनके राजाओंकी विजय-घोषणाएँ 'सोमनाथकी जय' पुकारती थीं। यह प्रताप सोलंकी-शिरोमणि मूलराजका था।

चाहे मूलराज शिवभक्ति अपने स्वदेशसे लाया हो, चाहे उसने गुजरातका राजा बननेके लिए राजनीतिक चालके रूपमें ही अधिष्ठाता देवकी भक्ति गिरनारके ग्रहरिपुसे अधिक दिखाई हो, चाहे आसपासके सुधरे हुए देशोंकी विद्या और कौशल्यको लानेके लिए ही ब्राह्मणोंको उत्तेजन देना उसने आवश्यक समझा हो, और चाहे जैनमतकी अहिंसा उसके बहादुर अधिकारलोलुप हृदयको अच्छी न लगी हो,—चाहे जो कारण हो; परन्तु उसने शैव-मतको ही रांज-धर्म बनाया, दूर दूरसे ब्राह्मणोंको बुलाकर गुजरातके संस्कारोंकी समृद्धिमें वृद्धि की और पाटणके राज्याधिकारियोंको वह 'जय सोमनाथ' का मंत्र सिखा गया। इस मंत्रको ध्यानमें रखकर मूलराजके वंशज ब्राह्मणोंको आदरसे पूजते रहे और अपने देशकी संस्कृतिको सतेज रखनेका प्रयत्न करते रहे।

इस परिस्थितिमें जैन लोग पाटणके राजाओंको अपने पंथका अनुयायी बनानेके लिए प्रयत्न तो बहुत करते, परन्तु निष्फल होते थे।

भीमदेव और कर्णदेव कट्टर शिवभक्त थे। मीनलदेवी जैन पिताकी पुत्री होते हुए भी राज्य-कार्योंमें धर्म-विरोध प्रविष्ट करनेके विरुद्ध थी और अधिकतर मन्त्री जैन होते हुए भी शैव और जैनमतके प्रति बहुत अधिक प्रीति अप्रीति प्रकट न करते थे।

जबसे राज-तंत्र मुंजाल मेहताके हाथमें आया, तबसे उसकी राजनीति स्पष्ट प्रकट हो गई। मत-मतान्तरोंके झगड़ोंमें न पड़कर पाटणकी सत्ताको शौर्यके बलसे बढ़ाना और गुजरातको एक साम्राज्य बनाना ही वह अपनी नीति समझता था। इस नीतिसे कट्टर श्रावक और जैन-साधु बहुत नाराज़ रहते और राज्यमें अधिक पैर फैलानेके अवसरकी प्रतीक्षा करते रहते।

* पाटणमें पंचासर पार्श्वनाथका मंदिर अभीतक है, जिसमें वनराज और चाँपा मेहताकी असली प्रतिमाएँ हैं।

इसी समय पाटणके राज्याधिकारियोंमें एक नया कूटनीतिज्ञ प्रविष्ट हुआ। वह उदा मेहता था। उसकी पूर्वकथा, उसकी चतुराई और किस प्रकार वह मन्त्री बना, इसका कुछ इतिहास 'पाटणके प्रभुत्व'में दिया गया है। जब उसने मन्त्रीका पद प्राप्त किया, तब उसे पाटणका अधिकार हथियानेकी बहुत हवस थी; परन्तु मुंजालके व्यक्तित्वके आगे उसकी वह हवस व्यर्थ हो गई। उसने कर्णावती और खंभात दोनों माँग लिये और मीनलदेवीने उसे वे दे भी दिये।

उदाकी महत्त्वाकांक्षा अपरिमित थी। अन्य सब मन्त्रियोंको लज्जित करनेके लिए वह धर्म-धुरन्धर बन गया। कर्णावती और खंभात जैसे बन्दरोंमें बहकर आते हुए अपार धनको वह जैनमतके उद्धारके लिए व्यय करने लगा। अनेक देशोंके जैन साधु और जैन विद्वान् उदा मेहताके दरबारमें चक्कर काटने लगे। भूखे कंगाल सधर्मी जैन निहाल होने लगे। उदा मेहताने धीमे धीमे सिर उठानेका प्रयत्न किया। अतएव मुंजालने उससे कर्णावती वापिस ले ली। तब घायल मन्त्री खंभातमें जाकर रहने लगा।

खंभात गुजरातका मुख्य बन्दर था और गुजरातके धनिक लोग समुद्रीय व्यापार बहुत करते थे, अतएव इस नगरमें ही सबकी पूँजी एकत्र थी। इससे उदाका धन और अधिकार अनुपम हो गया। खंभातमें धन तो था ही, अब वह जैन-धर्म और उदाकी सत्ताका प्रमुख स्थान बन गया था। इसलिए यदि काकको खंभातमें भव्यता प्रतीत हुई, तो यह कोई नई बात न थी।

काक ज्यों ज्यों खंभातके निकट आता गया, त्यों त्यों घबराता गया। उसका उठाया हुआ काम बहुत ही गहन और कठिन था। जयदेव महाराजने तो केवल जीभ हिला दी थी; परन्तु काकको प्राणोंकी जोखिम थी। जिस मन्त्रीकी सत्ताको भंग करनेका वह विचार करता था, वह सारे देशमें सबसे चुस्त और चालाक समझा जाता था। उसके अनुचर बारहों मंडलों और बावनों नगरोंमें घूमते रहते थे। उसके धनसे लुभाकर भले भले लोग जयसिंहदेव महाराजकी भी नौकरी छोड़ आते थे। ऐसे मनुष्यसे शत्रुता की जाय? यदि कहीं उदा बिगड़ खड़ा हो, तो क्या स्वयं महाराज भी उसे बचा सकेंगे? काकके हृदयमें सन्देह उत्पन्न हो रहे थे, फिर भी उसने साहस न छोड़ा। उसकी धमनियोंमें जवानीका रक्त उछल रहा था। उसे उदा मेहताको देखनेकी इच्छा थी। एक ही दिनमें उसने पाटणके राजनी-

तिज्ञोंको अपनी बुद्धिका परिचय दे दिया था और फिर उसे नये नये अनुभव करनेका शौक भी था। वह उत्साहसे आगे बढ़ा।

१३-ख़तीब *

माघ शुक्ला द्वादशीके प्रातःकाल काक बिल्कुल खंभातके निकट आ पहुँचा। उसकी साँढ़नी थक गई थी और उसे भी ज़ोरकी भूख लगी थी, इसलिए उसने विश्राम करनेका निश्चय किया।

वह साँढ़नीपरसे उतरा, निकटके तालाबमें नहाया, सन्ध्या की और एक सघन वृक्षके नीचे आग सुलगाकर भोजन बनाने लगा। भोजन बनाते-बनाते वह उदा मेहताका विचार करने लगा।

अचानक ऊपरके वृक्षकी डालियाँ हिल उठीं। एक टूटी हुई टहनी काकके आगे आ गिरी। काक चौंका और ऊपर देखा, तो वृक्षकी सघन डालियों और पत्तियोंके बीच उसे कोई बंदर-सा दीख पड़ा। काकने उठकर एक ढेला मारा। वह ठीक बंदरको लगा और तब उसने ऊपरकी एक और डालीपर जानेका प्रयत्न किया।

काकने उसे डाली थामकर ऊपर चढ़ते हुए देखा और वह घबरा गया। वृक्षपर छिपनेवाला न तो बन्दर था, और न मनुष्य। काकको उसका मुख बन्दरकी तरह प्रतीत हुआ। उसकी लम्बी बिना बाँधी हुई दाढ़ी भयंकर रूपसे इधर उधर हिल रही थी। उसने शरीरपर कोई कपड़ा-सा लपेट रक्खा था। काकने उसे नीचे उतरनेके लिए संकेत किया। वह ऊपर काँप रहा था और हाथ जोड़नेका प्रयत्न कर रहा था। काकने उसे धमकाया, परन्तु वह न तो बोला और न उतरा ही।

काकका मिजाज बिगड़ गया। उसने अपने नौकरसे साँढ़नीपर बँधे हुए धनुष और बाण मँगवाये और वह धनुष हाथमें लेकर बाण साधने लगा। उस मनुष्यने समझमें आये ऐसी करुण आवाज़ की और नीचे उतरने लगा। उतरते उतरते वह घबराकर फिसल पड़ा और भूमिपर आ गिरा। वह निराशा भरे स्वरमें कुछ बोला। काकको 'लाला' के ऐसा कुछ सुन पड़ा।

---

* जमी-उल-हकायत। सर ह० इलियटके इतिहासमें दिये अनुवादपरसे।

भय और निर्बलतासे वह मुर्देकी भाँति पड़ा हुआ था। उसके मुखपर भय-के स्पष्ट चिह्न थे। उसके होठ काँप रहे थे। वह अपनी आँखोंको बहुत ही दयनीय रीतिसे खोल रहा था। शक्ति, शौर्य और संस्कारके गर्वसे काक उस मनुष्य-जन्तुकी ओर देखने लगा।

" कौन है तू ? " कठोरतासे काकने पूछा।

" या—वा " उसने कहा।

" या वा क्या ?" आँखें निकालकर काकने पूछा, " बोलता है या नहीं ? नहीं तो अभी एक ही बाणमें समाप्त कर डालूँगा ! "

उस मनुष्यने हाथ जोड़े और घसिटता हुआ आकर काकके पैरोंको छूने लगा। काक स्पर्शसे दूषित होनेके भयसे पीछे हट गया और बोला, " शान्तम् पापम् ! खबरदार, मुझे न छूना। तू है कौन ? "

" मुसलमीन। " उसने जमीनपर दाढ़ी घिसते हुए कहा। काक कुछ भी न समझा।

" तेरा सिर। कोई मनुष्यकी भाषा आती है या नहीं ? "

" यवन। "

" हाँ, ऐसा बोल न ! यहाँ कहाँसे आया ? तू कहाँ रहता है ? "

उस मनुष्यने अँगुलीसे खंभातकी ओर संकेत किया।

" इस वृक्षपर कहाँसे आया ? "

कुछ गुजराती और कुछ ऐसे शब्दोंसे जो समझमें न आए और हाथके संकेतसे उसने समझाया कि उसका घर-द्वार नष्ट कर दिया गया है और उसके स्त्री-बच्चे मार डाले गये हैं।

" किसने यह सब किया ? "

" इसराबक। " कहकर श्रावक लोग जिस ओर चन्दन घिस रहे थे, उस ओर उसने अँगुली दिखलाई।

" श्रावकोंने ! किस लिए ? "

" यवन। " उसने संक्षेपमें उत्तर दिया। काक समझ गया।

" तुम्हारा नाम क्या है ? " " खतीब। "

" खतीप ? " सबलको निराधार और निर्बलका नाम बिगाड़नेका जो अधिकार होता है, उसका उपयोग करते हुए काकने कहा। काक कुछ देर

देखता रहा और विचार करने लगा कि वह जिस कार्यको साधनेके लिए आया है, उसमें इस मनुष्यसे सहायता मिल सकती है या नहीं ?

" तुमने किसीसे फरियाद की ? "

खतीबने सिर हिलाया और आकाशकी ओर अँगुली की " अल्लाह ! "

" उदा मेहताके पास फरियाद करना चाहिए थी न ? " काकने पूछा।

" इसराबक। "

" क्या कह रहा है ? भट्टार्क जयसिंहदेव महाराजके राज्यमें कहीं ऐसा हो सकता है कि मन्त्री फरियाद न सुने ? "

खतीबने सिर हिलाया और दाढ़ीपर हाथ फेरा।

" चल मेरे साथ ! हम लोग मन्त्रीसे फरियाद करें ! "

बूढेने सिर हिलाकर इनकार किया।

" हरामखोर, तब तू झूठ बोलता है। सच्चा हो, तो चल। " कहकर काकने दाँत पीसे। खतीबने निराशाके साथ स्वीकार किया।

" अच्छा, बैठो, मैं खा लूँ। "

खतीबने पेट दिखाकर समझाया कि वह भी भूखा है।

" अच्छा, ठहर। जो बचेगा, वह तुझे दे दूँगा। " कहकर काक भोजन करने बैठा और जो अधिक बचा, वह खतीबको दे दिया।

खतीब जब खा चुका तब काकने फिर अपने वस्त्र पहने, शस्त्र सजाये और नौकरको एक सघन वृक्षके नीचे साँढ़नी बाँध रखनेका आदेश देकर खतीबको साथ ले, वह खंभातकी ओर चला।

ज्यों ज्यों खंभातके निकट पहुँचता गया, त्यों त्यों उसकी समृद्धिकी साक्षी देनेवाले रमणीय उद्यान और चैत्य दिखाई पड़ने लगे। दोपहरके समय दोनों जने खंभातके फाटकके पास जा पहुँचे। काककी तीक्ष्ण दृष्टि खंभातके दुर्गकी शक्तिका माप करनेमें कुछ समय लगी रही। इस विचारको छोड़कर काकने खतीबकी ओर देखा, तो वह अधिक काँपता दिखाई पड़ा।

" क्यों ? " काकने पूछा।

नगरके बाहर कई झोंपड़ियाँ और एक ईंटोंका मकान जल रहा था। किसी किसीमेंसे थोड़ी थोड़ी अग्निकी लपटें कभी कभी निकलती दिखाई देती थीं। खतीबने उस ओर अँगुलीसे संकेत किया और सिर पीट लिया।

" यही तेरा घर है ? "

ख़तीबने सिर हिलाकर कहा, " हाँ । "

" यह बड़ा मकान कैसा है ? "

ख़तीबने संकेतसे समझाया कि वह ईश्वर-प्रार्थनाका स्थान है ।

" अच्छा, चल । " काकने कहा ।

डरते डरते ख़तीबने दुर्गके फाटकपर बैठे रक्षकोंकी ओर अँगुली की ।

" डरता क्यों है ? जब मैं साथ हूँ, तब किसका साहस है कि तेरा बाल भी बाँका करे ? चल । " कहकर काकने अपनी लाठी मजबूतीसे पकड़ ली, कमरबन्दमें तलवार ढीली की और द्वारपालोंकी ओर चला ।

१४—खंभातका आतिथ्य

काकका हृदय ज़रा ज़रा धड़क रहा था । फिर भी साहससे वह दरवाज़ेमें घुसा । ख़तीब उसके पीछे पीछे चला आ रहा था ।

द्वारपालोंने ज्यों ही ख़तीबको देखा, त्यों ही वे चिल्ला पड़े और एक व्यक्ति भाला लेकर उसकी ओर बढ़ा । काक दो कदम पीछे हटा और अपने शरीरको ख़तीबकी रक्षाके लिए बीचमें कर दिया । भालेवाले द्वारपालने काकको देखा और उसकी तेजस्वी मुखमुद्रा और शस्त्रोंको देख कर वह ज़रा झिझका । काक गौरवसे पाँचों द्वारपालोंकी ओर देखने लगा ।

" यह तो ख़तीब है, " एक द्वारपालने आगे आकर कहा, " इधर आ । "

हलाल होते हुए बकरेकी भाँति ख़तीब काककी ओर देखने लगा ।

" क्यों, क्या काम है ? " काकने कठोरतासे पूछा ।

" भटजी, आप अपना रास्ता लीजिए । हम आपको नहीं बुलाते । " दूसरे द्वारपालने कहा, " ख़तीब, इधर आ, नहीं तो समझ लेना कि तेरी मौत ही आ गई है । " इस द्वारपालने पहलेवालेसे भाला लेकर ख़तीबकी ओर ताना ।

" ख़तीब, तुम घबराना मत । " कहकर काकने तुरन्त भालेको सामनेसे थाम लिया और द्वारपालसे कहा, " ज़रा सावधानीसे बातें करना, हम उदा मेहताके पास जा रहे हैं । "

पाँचों द्वारपाल और ये बातें सुनकर एकत्र हुए अन्य दो-चार मनुष्य खिलखिलाकर हँस पड़े ।

" अरे वाह रे उदा मेहताके पास जानेवालेका मुँह ! " जिसका भाला काकने पकड़ लिया था वह बोला और भाला खींच लेनेका उसने प्रयत्न किया। परन्तु इस खींच-तानमें सारा भाला काकके हाथमें आ गया। द्वारपाल क्रोधमें आकर अपशब्द बोलने लगा। काक तिरस्कारसे हँसा और उसने खतीबकी भुजा पकड़ कर उसे आगे कर लिया। इस छीन-झपटको और खतीबको देखकर रास्तेसे आने-जानेवाले लोग खड़े हो गये। काकने ज़ोरसे कहा, " रास्ता छोड़ो। "

अपने भक्ष्यको हाथसे निकल जाते देख जैसे हिंसक प्राणी खीझ पड़ता है उसी तरह द्वारपाल खीझ पड़े। उनमेंसे दो-तीन खतीबको पकड़ने दौड़े और एकने तो उसका हाथ भी पकड़ लिया। निराधार खतीब मौतको निकट पहुँचा हुआ समझकर आकाशकी ओर आँखें करके अपने खुदाको याद करने लगा।

काकने देखा कि बात मार-पीट तक आ पहुँची है। उसने वह भाला फेंक कर अपना दाहिना हाथ खाली किया और अपनी लाठीको उस हाथमें ले लिया। साथ ही खतीबको पकड़कर वह आगे घसीटने लगा।

निकट खड़े एक दर्शकने खतीबपर थूक दिया। थूक काकपर भी पड़ा। क्रोधमें उसकी ओर आँखें निकालकर काक बोला, " चांडाल, ब्राह्मणपर थूकता है ? "

थूकनेवाला डरकर पीछे हट गया। पीछेसे एक व्यक्तिने आवाज़ लगाई, " मिथ्या-दृष्टि ! * "

इस आवाज़में और भी दो-चार आदमी मिल गये।

काक दरवाजेके मैदानमें आ गया। खतीबको एक ओरसे उसने पकड़ रखा था और दूसरी ओरसे द्वारपाल उसका हाथ खींच रहा था। अतएव दर्दके मारे वह बेचारा चिल्लाने लगा। काकने देखा कि अब बिना हाथ दिखाये छुटकारा नहीं है। उसने उस द्वारपालसे दूर हटनेके लिए कहा और अपनी लाठी तानी। पीछेसे किसीने एक ढेला मारा जो काकको लगा।

पीछेसे आकर एक द्वारपालने काककी पीठपर भाला ताका।

जिस तरह सिंह बिगड़ता है उसी तरह काक बिगड़ उठा। उसने

---

* जैनधर्मको न माननेवालोंको जैनियोंद्वारा दिया गया नाम।

गर्जना की; लाठीसे भालेके दो टुकड़े कर दिये और जिसने ख़तीबका हाथ पकड़ रखा था, उसे एक ही झपट्टेमें अलग कर दिया।

कुछ ही क्षणोंमें यह सब हो गया। इतनेमें सामनेके मार्गसे दो-चार सैनिक आते दिखलाई पड़े। द्वारपालोंमें साहस आ गया। अतएव जो भी शस्त्र मिला, उसे लेकर वह काकपर झपटे। एकत्र हुए लोगोंने ढेलोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। वे सैनिक भी यह उपद्रव देखकर उसमें शामिल होनेको दौड़ आये।

काक 'जय सोमनाथ' की घोषणा करके अपनी लाठी घुमाने लगा। लाठी-पटा चलाना लाटके निवासी अपनी बपौती समझते थे। अतएव काक जैसे योद्धाकी लाठी इस समय सजीव हो गई और सुदर्शन-चक्रके वेगसे वह उसके मस्तकके आसपास घूमने लगी। उस लाठीने एकसे अनेक रूप धारण किये। उन्मत्त हाथीकी सूँड़की भाँति वह चारों ओर घूमने लगी। किसीकी तलवार दूर जा गिरी, किसीके भालेके दो टुकड़े हो गये, किसीकी पगड़ी धूलमें मिल गई और किसीका सिर फूट गया। लोग चीखने चिल्लाने लगे। सुनकर और भी अधिक आदमी दौड़ आये और चारों ओर घरोंके चबूतरोंपर खड़े होकर लोग देखने लगे। सब ख़तीबको भूल गये और काकहीको पकड़नेका प्रयत्न करने लगे।

काकने देखा कि इस प्रकार और अधिक देर नहीं चल सकता। उसका दाहिना हाथ घायल हो गया था, अतएव उसकी लाठी अधिक देर नहीं चल सकती थी। इस कारण वह अधिक कठोर आघात करने लगा। यमराजके समान इस नरकी भयंकर शक्तिसे लोग बिखरने लगे।

एकाएक दो घुड़-सवार बड़े तेज घोड़ोंपर बैठे फाटकमें आ घुसे। वे बड़ी दूरसे थककर आ रहे मालूम होते थे। उन्होंने भी यह उपद्रव देखा; काकको देखकर कुछ बात की और पुकार कर कहा, "शान्ति! शान्ति!"

काकपर आक्रमण करनेवाले लोगोंने उन्हें देखा और वे एकदम रुक गये। कुछ लोग वहाँसे भागने लगे। इन दो घुड़सवारोंमेंसे एकने सत्ता-पूर्ण स्वरमें पूछा, "नायक, यह क्या कर रहे हो?"

लोगोंकी घबराहट देखकर काक अधिक जोशसे आघात करने लगा। परन्तु दो-चार क्षणोंमें ही लोग हट गये। काक रुका और कपालपरसे पसीना पोंछने लगा।

उन दो घुड़सवारोंमेंसे एक आगे आया और मीठे स्वरमें बोला, "भटजी, व्यर्थ ही इन लोगोंको क्यों मार रहे हैं ? आप अपने रास्ते जाइए।"

काकने तिरस्कारपूर्ण दृष्टिसे योद्धाके सामने देखा, " हाँ, मैं अपने रास्ते ही जाऊँगा और देखता हूँ कि कौन बीचमें आता है । "

घुड़सवार हँसा और उसने दूसरेकी ओर संकेत किया। दोनों जनोंने हँसकर अपने घोड़े दौड़ा दिये।

इस मज़ाकसे काकको क्रोध आ गया । परन्तु उसे रोककर उसने चारों ओर देखा। उसके आघातके शिकार पाँच-छः जनें बेसुध पड़े थे। द्वारपाल दरवाज़ेपर पहुँचकर, एक दूसरेकी चोटें देख रहे थे। कुछ लोग चौराहेके उस सिरेपर खड़े यह देख रहे थे कि काक अब क्या करता है और घबराया हुआ ख़तीब एक चबूतरेपर खड़ा सिर झुकाये यावनी भाषामें कुछ बड़बड़ा रहा था।

" मूर्ख, यह क्या कर रहा है ? चल, उठ। " कहकर काकने ख़तीबका हाथ पकड़ा और आसपास देखा। सामने एक छोटेसे घरके एक अधखुले द्वारमें एक स्त्री खड़ी थी। उससे काकने कहा," बहन, जरा क्षण-भर विश्राम करने दोगी ? "

स्त्री घबड़ा गई और द्वार बन्द करने लगी। काकको क्रोध आ गया। वह वेगसे चबूतरेपर चढ़ गया, द्वारको धक्का मार कर खोल दिया और ख़तीबसे बोला, " चल, अन्दर आ। "

ख़तीब काँपता काँपता पीछे आया और काकने धीरजसे द्वारको अन्दरसे बन्द कर लिया।

" दौड़ो, दौड़ो, अरे दौड़ो ! " कहकर स्त्री चिल्लाई। अतएव अंदरसे तीन पुरुष दौड़ते हुए आये।

" भाइयो, घबड़ाते क्यों हो ? " काकने मधुरतासे पूछा, " यह नगर है, या वीरान ? परदेसी अतिथिका कोई भाव ही नहीं पूछता है। "

तीनों नवआगन्तुकोंमेंसे एक वृद्ध पुरुष बोला, " परन्तु पराये घरमें..."

" काकाजी, आज पन्द्रह दिनोंसे कमर सीधी नहीं की है। क्या एक क्षणभर बैठने न दोगे ? "

" कौन, ब्राह्मण हो ? " बूढ़ेने काककी रुद्राक्षकी माला और त्रिपुंड्र देखकर पूछा। " जी हाँ। "

" अच्छा, तो पधारो। परन्तु यह यवन कौन है ? "

" एक गरीब बेचारा निराधार है। आप लोगोंने इसका घर-द्वार जला छोड़ा; फिर भी सन्तोष नहीं हुआ ? उस दालानमें यह पड़ा रहेगा, फिर भी कोई हर्ज है ? "

बूढ़ा समझ न पाया, अतएव उसके एक साथीने कहा, " दामू फूफा, कल जिन यवनोंके घर जलाये गये हैं, यह तो उन्हींमेंसे एक है। "

" तो तुम यहाँके रहनेवाले नहीं हो ? " घरके अन्दरके भागमें प्रवेश करते हुए काकने पूछा, " श्रावक हो ? "

" नहीं भाई, मैं तो धंधूकाका हूँ।" बूढ़े दामूने कहा, " मेरा दुर्भाग्य, कि कल यहाँ आया हूँ। बिराजो, महाराज। हम तो मोढ़ वैश्य हैं। जलका क्या प्रबंध करें ? " कहकर बूढ़ेने पानकी रकाबी काकके आगे बढ़ा दी।

" मुझे पानी नहीं चाहिए। घड़ी-दो घड़ी विश्राम करके मैं आज्ञा लूँगा। मुझे अब इस नगरमें नहीं रहना है। "

" क्यों, तुम उदा मेहताकी नौकरी नहीं करते ? "

"मैं, उदा मेहताकी ?" गर्वसे मस्तक ऊँचा करके काकने कहा, "मैं नौकरी करूँगा तो जयसिंहदेव महाराजकी करूँगा। तुम्हारे लिए उदा मेहता चाहे जैसे हो; परन्तु मेरे मनसे तो..." कहकर काकने उन लोगोंकी ओर देखा। उसने सोचा कि खंभातके नागरिकोंके आगे उदा मेहताको गालियाँ देना उचित नहीं।

एक युवकने कहा " अरे, अरे, कुछ कहना नहीं, यहाँ तो हवा भी बातें उड़ा ले जाती है ! "

" परन्तु यहाँ कहने जैसी बातें ही कौन-सी हैं ? मैंने तो सुना है कि उदा मेहता राम-राज्य करते हैं ? "

" ठीक है। जो श्रावक हो, उसके लिए तो राम-राज्य ही है। " बूढ़ेने कटुतासे कहा।

" तो अन्य लोग महाराजके कानों तक बात क्यों नहीं ले जाते ? " काकको इन लोगोंकी बातमें कुछ रहस्य प्रतीत हुआ। उसने देखा कि ये लोग उदाकी राजनीतिके विरोधी हैं। अतएव वह जाँचने लगा कि ये उसके लिए कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं या नहीं, " कभी किसीने सुना है कि मुंजाल मेहताके हाथसे किसीके प्रति अन्याय हुआ है ? "

" अजी महाराज, नदीमें रहकर भी कहीं मगरसे वैर किया जा सकता है ? आप तो परदेसी हैं। उदा मेहताको पहचानते नहीं ? " बूढ़ेने कहा।

" परन्तु ऐसा उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? "

" भटजी, इस बातको जाने दो। "

" नहीं जी, कुछ तो कहो। मेरी उससे कोई मैत्री नहीं है। देखा नहीं, अभी अभी मेरी जो पूजा यहाँ हुई है ? "

" जी नहीं, हम तो अपने ही गोरख-धन्धेमें लगे थे। " बूढ़े दामूने निःश्वास छोड़ा।

इन लोगोंको विश्वास दिलानेके लिए काकने खतीबका और अपना अनुभव सविस्तर कह सुनाया।

" अजी महाराज, तुमसे तो मार-पीट ही हुई, परन्तु हमारी तो सात पीढ़ियोंका सत्यानाश हो जानेकी तैयारी है। " बूढ़ेने सजल आँखोंसे कहा।

" क्यों ? "

" मेरे लड़केको मूँड़ने बैठा है ! " बूढ़ेने फिरसे निःश्वास छोड़कर उत्तर दिया, " यह मेरे फूफाका भतीजा है। इसके इकलौते लड़केको कल साधु बनाया जा रहा है ! "

" परन्तु तुम आज्ञा क्यों देते हो ? "

" इसलिए कि हमारा सत्यानाश होनेवाला है, " बूढ़ा आक्रंदन करते हुए कहने लगा, " यह भक्ति घरमें घुसी नहीं और घर बिगड़ा नहीं भाई, हमारी बहू है श्रावक, वह एक-एक... "

" दामू फूफा, बातको जरा ढंगसे तो कहो कि भटजी कुछ समझें। " वह युवक आगे कहने लगा, " देवचन्द्रसूरि महाराज धंधूका नगरमें आये थे। 'उन्होंने हमारे चाँगाको देखा और कहने लगे कि यह लड़का तो बहुत बड़ा साधु होनेके लिए पैदा हुआ है। " " फिर ? "

" फिर बहू, लड़केकी माता और उसके नेमा * मामाने लड़का दे दिया। बूढ़ेसे न रहा गया और वह बीचहीमें बोल उठा, " स्त्रियोंकी बुद्धि ही ऐसी होती है ! "

" परन्तु तुम्हारा भतीजा क्या कर रहा था ? वह कहाँ है ? "

---

* नेमिनाग—कुमारपालप्रबंध।

" पहले तो वह लड़ा-झगड़ा; परन्तु उदा मेहताने सब नाश कर दिया नाश ! "

" उसने चाचिगको फुसला लिया। मेरा चाँगा कल मूँड़ दिया जायगा। " बूढ़ेकी आँखोंसे टप-टप आँसू टपकने लगे, " कैसा देवता-सा लड़का है मेरा ! "

" परन्तु इसमें उदा मेहताको क्या लाभ ? " काकने पूछा।

" भटजी, उनके ज्योतिषी लोग कहते हैं कि यह जियेगा, तो या तो बड़ा राजा होगा या महान् अर्हत् ! "

युवकने कहा " देवचन्द्रसूरि हठ पकड़ बैठे हैं। "

" बनाए अर्हत् उसके खुदके जो दो लड़के हैं, उन्हें। बड़ा आया है पराये लड़कोंको जती बनानेवाला ! " बूढ़ेने कहा।

" फूफाजी, इस प्रकार अकुला क्यों रहे हो ? "

" भटजी, यह दुख किसके आगे रोया जाय ? बाप स्वीकार कर रहा है, माँ स्वीकार कर रही है, अब कौन-सा मुँह लेकर फरियाद की जाय ? "

" किसी प्रकार तुम्हारे भतीजेको नहीं समझाया जा सकता ? " काकने उदाकी उस्तादीपर रीझकर कहा। उसे इस बूढ़ेपर दया आई और उसका दुःख निवारण करनेका मार्ग वह खोजने लगा। इसके उपरान्त यह भी वह सोचने लगा कि यह बात उसके काममें कुछ उपयोगी हो सकती है या नहीं।

" अजी महाराज, उदा मेहताको तुम नहीं पहचानते। अच्छे अच्छे अड़ियल टट्टुओंको भी वह समझाके सीधा कर लेता है। " जो तीसरा मनुष्य अभीतक चुपचाप बैठा हुआ था, और जो घरका मालिक था, उसने कहा।

" तब उसे बलसे नहीं, कलसे सीधा करो। " काकने कहा।

" कहो, किस प्रकार ? "

"अपने उस चाँगाको वहाँसे भगा ले जाओ। फिर किसे साधु बनायेंगे ?"

बूढ़ेने आकुलतासे काककी ओर देखा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे निराशा-पूर्ण आकाशसे आशाकी बूँदें टपक रही हों। बोला, " ऐं ? "

" परन्तु यह हो कैसे सकता है ? " भतीजेने उतनी ही आतुरतासे पूछा।

" वह लड़का है कहाँ ? "

" सालिग वसहिकामें*, भटजी। " बूढ़े दामूने हाथ जोड़कर कहा।

* एक उपाश्रयका नाम।

उसकी आवाजमें आशा झलक उठी, " तुम तो भगवान् शंकरके अवतार हो, मुझ गरीब बनियेका इतना काम कर दो। तुम शूर-वीर हो, दाना हो। भगवान सोमनाथने ही तुम्हें यहाँ भेजा है। "

काक इस खुशामदसे मूँछोंके भीतर मुसकराया। यह नया उपद्रव खड़ा करना उसकी युक्तियोंके अनुकूल होगा या या नहीं, इसपर उसने विचार किया। काकने एकदम अपने घुटनेपर हाथ मारा, " ठीक ! "

" क्या ? "

" मैं तुम्हारे चाँगाको ले आऊँगा। फिर और क्या चाहिए ? परन्तु यह किसीको ख़बर है कि उस वसहिकामें लड़का किस जगह है ? मैं रातको जाऊँगा। "

बूढ़ेने कहा, " हाँ, मुझे ख़बर है। भगवान् सोमनाथ तुम्हारा कल्याण करें। "

" परन्तु उसे नगरमेंसे बाहर कैसे ले जाओगे ? रातको कोटके फाटक तो बन्द रहते हैं ? "

" यह तो मरनेसे पहले ही भूत बन जानेकी बात हुई। "

" इसकी चिन्ता नहीं, " घरका मालिक बोल उठा, " हमारे सेठजीके जहाज़ हैं। कहिए, तो एक नौका तैयार करा रखूँ। भूतिया घाटपर जब रातको कोई नहीं हो तब वहाँसे निकला जा सकेगा। "

" हाँ, यह भी ठीक है। " कहकर काकने सबके नाम-ठाम पूछ लिये।

१५–खंभातका स्वामी

काकको खतीब मिल गया, अतएव खंभातमें अधिक रहना उसके लिए निष्प्रयोजन था। परन्तु उदा जैसे प्रख्यात मंत्रीको छकानेकी उसके मनमें बड़ी लालसा उत्पन्न हो गई थी और कुछ उस बूढ़ेपर भी दया आ गई थी। अतएव उसने सारा दिन यहीं बितानेका निश्चय किया। बूढ़ेके साथ बातचीत करते करते सबेरेकी थकावट दूर करनेके लिए उसने जरा सोनेका विचार किया; परन्तु साफ़ेका सिरहाना अभी भली भाँति बन भी न पाया था कि किसीने द्वार खटखटाया और घरका स्वामी सोमदत्त

घबराया हुआ आया, " महाराज, भटराज तिलकचन्द्र आपसे मिलनेके लिए आये हैं । "

काक कूद कर बैठ गया, " क्या ? "

" उदा मेहताके भटराज आये हैं और कहते हैं कि पाटणसे जो भटराज आये हैं, उनसे मिलना है । "

" परन्तु उन्होंने कैसे जाना कि वह मैं हूँ ? "

" हाँ, कहते हैं कि लाटके ब्राह्मण हैं, फिर आप नहीं तो और कौन होगा ? "

काक चौंका, " उदाके भटराजको कैसे खबर लगी ? "

एक क्षणभरके लिए वह विचारमें पड़ गया, जरा घबराया और फिर साहससे उत्तर दिया, " अच्छा, बुलाओ उन्हें । जब निन्यानवे भरे हैं, तो सौवाँ भी सही । उदा मेहता नहीं, तो उसका भटराज ही सही । परन्तु जरा ठहरो । " कहकर काक खतीबके निकट गया । उसारेके नज़दीक लकड़ी भरनेकी एक कोठरी थी, उसमें उसे बैठा आया और फिर निश्चिन्त होकर बैठा । सोचने लगा कि यह कैसे प्रकट हो गया कि मैं लाटका निवासी हूँ और पाटणसे आया हूँ ?

कुछ ही क्षणोंमें एक रूपवान्, तेजस्वी और जवान योद्धा आया और उसने काकको नमस्कार किया, " भटराज, प्रणाम । "

" जय सोमनाथ " कहकर काकने प्रतिनमस्कार किया । बोला, " विराजो, बोलो, कैसे पधारे ? "

" उदयन मन्त्री आपको महलमें बुला रहे हैं । " तिलकचन्द्रने कहा ।

" उदयनमन्त्री ? मुझे ? आप भूल तो नहीं कर रहे हैं ? "

" कहिए तो सही, त्रिभुवनपालके भटराज और जयसिंहदेव महाराजका सन्देश लेकर आनेवाले आप ही हैं ? "

" नहीं, मैं तो केवल त्रिभुवनपालका भट हूँ और अपने निजी कामसे आया हूँ । "

" तो ऐसा होगा । परन्तु आपकी ख्याति महाराजने इतनी सुनी है, कि आपको बुलानेके लिए मुझे भेजा है, इसलिए चलिए । "

" मेरी ख्याति ? " कृत्रिम आश्चर्य दिखलाते हुए काकने कहा, " अवश्य कोई भूल हो रही है । "

" भूल नहीं हो सकती, काक भटजी ! " तिलकचन्द्रने हँसते हुए कहा ।

काक निस्तेज हो गया । उसका नाम भी पहुँच गया है! उसने देखा कि अब बिना गये छुटकारा नहीं है । अतएव बाजी बदली ।

" हाँ, बिल्कुल ठीक है, मेरा ही नाम काक है । वाह, मन्त्री महाराजने मुझपर कितना अनुग्रह किया ! ऐसे देव-दुर्लभ व्यक्तिके दर्शनका लाभ ! अच्छा, आप चलिए, अभी कुछ ही देरमें मैं आता हूँ । "

" नहीं जी, अभी चलिए, महाराज प्रतीक्षा कर रहे हैं । "

काकने मनमें ' महाराज 'को जाने क्या क्या कह डाला और तब निरुपाय होकर खड़ा हुआ । तिलकचन्द्रने भी काकका पीछा न छोड़ा ।

" अच्छा, काकाजी ! " जाते जाते काकने बूढ़े दामूसे कहा, " अब तो जानेसे पहले सन्ध्या समय ही मिलूँगा । जय सोमनाथ । "

" जय सोमनाथ । प्रभु तुमको यश दिलाए महाराज ! " बूढ़ेने आँखोंको छोटा करके कहा ।

तिलकचन्द्रके साथ काक निकला और बाहर खड़ी पालकीपर जा बैठा । काकने देखा, तिलक उससे कुछ छुपा रहा है, अतएव वह इस प्रकार बातें करने लगा कि जैसे इसका उसे कुछ ज्ञान ही न हो । कुछ ही देरमें ये लोग एक अत्यन्त भव्य प्रासादके निकट आ पहुँचे ।

" उदयन मन्त्री यहीं रहते हैं ? "

" जी नहीं, यह तो वीतराग-प्रासाद (जैन-मन्दिर) है । मन्त्री महाराजने अभी बनवाया है । "

काकने कहा, " कैसी शोभा है ! सारी दुनिया देखी, परन्तु आपके चैत्योंको कोई नहीं पहुँचता । धन्य है उदयन मन्त्रीकी धार्मिक बुद्धिको ! " तिलकको ऐसा प्रतीत हुआ कि काक मसखरी कर रहा है ।

प्रासादके आगे दोनों पालकीसे उतर पड़े और अन्दर घुसे । जिस मन्दिरमें तीर्थंकरकी मूर्ति थी वह द्वारसे जरा दूर था और बीचमें संगमरमरका एक बड़ा-सा चौक था । चारों ओर फूलोंके पौधोंकी छोटी छोटी क्यारियाँ थीं और बीचमें एक छोटा, गोल, काले पत्थरकी सीढ़ियोंवाला जल-कुण्ड शोभाको बहुत अधिक बढ़ा रहा था । इस फुलवाड़ीकी रचना और दूर दिखलाई पड़नेवाले मन्दिरकी भव्यताने काकको भी चकित कर दिया । उसके

स्वभावमें सौन्दर्य-प्रेम न था और ऐसे सौन्दर्यसे वह परिचित भी न था; अतएव इस सुन्दर स्थानमें प्रसारित आनन्दके वातावरणसे वह कुछ बेचैन-सा हो गया।

तिलकचन्द और काक जा रहे थे, इतनेमें सामनेसे एक मनुष्य आता दीख पड़ा। उसमें कोई असाधारणता नहीं थी; अतएव काकका लक्ष्य उस ओर नहीं गया; परन्तु तिलक "भटजी, जरा ठहरिए," कहकर एकदम उस ओर बढ़ा। तिलक इस प्रकार सम्मानसे उसके पास गया कि काकको उस ओर ध्यान देना पड़ा।

वह एक मझोले क़दका और दुबला-पतला मनुष्य था। उच्च कुलके श्रावकोंकी अपेक्षा उसका रंग कुछ काला था। उसने एक सादा पीताम्बर पहनकर, बदनपर एक साधारण रेशमी दुपट्टा डाल रखा था। केवल सोनेसे मढ़ी हुई खड़ाऊँ ही उसकी समृद्धिका परिचय दे रही थीं। दोनों हाथोंमें नारियल लिये वह नीचे देखता हुआ चला आ रहा था।

तिलकको आता देख उसने ऊपर देखा और तब अत्यन्त मधुर हास्यसे उसका मुख आकर्षक बन गया। उसका मुख और मस्तक छोटे थे, केवल सीधी लम्बी नाक ही पहली दृष्टिमें ध्यान खींच लेती थी; परन्तु काक उसकी आँखें देखकर विचारमें पड़ गया। बहुत ही नम्रतासे वह खड़ा था। वह बहुत ही साधारण और निर्जीव मालूम पड़ रहा था, परन्तु उसकी आँखें, जो तिलकको आता देख उसका मतलब समझनेको उत्सुक होकर चपलतासे घूम रही थीं, देखकर उनके प्रभावका कुछ आभास हुआ। उसने धीमेसे, नम्रतासे, ज़रा हँसकर सिर हिलाते हुए पूछा, "काक भटजी आ गये?"

काक चौंका। उसे भान हुआ, यह सामान्य-सा दिखलाई पड़नेवाला, नम्रताकी मूर्त्ति-सा, जिसे उसने एक तुच्छ जैन समझा था, और कोई नहीं, खंभातकी सारी दौलतका मालिक और चार वर्षके अपने मन्त्रित्व-कालमें पाटणको भी घबरा देनेवाला उदयन मंत्री है। कहाँ तो लोगोंकी मान्यताके अनुसार बयालीसवें वर्षमें बुद्धिका भंडार समझा जानेवाला उदयन मंत्री और कहाँ तीस-पैंतीस वर्षका गरीब व्यापारी-सा लगनेवाला उदा! काकने उसमें मुंजाल मेहताकी तेजस्विता, सज्जन मंत्रीका ताप और दादाकका बुद्धिशाली रूप देखनेकी आशा की थी; परन्तु यह व्यक्ति सबसे भिन्न था।

उदयन मंत्री काकको देखकर हँसा। सच पूछो तो उसका सारा मुख ही हँस पड़ा। हास्य मधुर और मोहक था। आँखें हँस रही थीं, परन्तु वे तेजकी एक ही किरणसे काकको मापनेका यत्न कर रही थीं। मुंजाल मेहताकी तलवारकी धारके समान दृष्टिको काकने सह लिया था, परन्तु वह न समझ पाया कि पुष्प-वर्षा करते हुए इसके नयन-तेजको कैसे सहा जाय।

" कहिए भटजी, आ पहुँचे ? पाटणमें सब प्रसन्न तो हैं ? " उदाके स्वरमें एक अज्ञेय-सी खुशामद भरी हुई थी। उसका स्वर ही सामनेवालेको रिझानेके लिए बस था। घबराया हुआ काक विचार करता हुआ खड़ा रहा कि क्या उत्तर दे। " महाराज, कौन-से समाचार आपको चाहिए ? "

" सभी। " उदाकी आँखोंका प्रभाव देखकर, काकको प्रतीत हुआ कि मेरे छोटे-से छोटे शब्द या व्यर्थ-से व्यर्थ उच्चारणका भी मूल्य आँका जा रहा है, प्रयोजन खोजा जा रहा है और साथ ही उसका खुदका भी मूल्य आँका जा रहा है। " हम तो यहाँ परदेशमें पड़े हैं, जो भी समाचार मिल जाय, वही ठीक है। " कहकर अगले प्रश्नके उत्तरकी प्रतीक्षामें वह खड़ा रहा।

" सेनापति उबक पाटणपर चढ़ा आ रहा है और शान्तु मेहता सेना लेकर भोगपुर गये हैं। "

" हाँ, यह बात तो पुरानी है। फिर तुम...? " हँसते हुए मुखसे उदाने पूछा। काकको यह परीक्षा असह्य प्रतीत हुई; अतएव जो बातें उसने बनाई थीं, वे सभी एक साथ पेश कर दीं।

" महाराज, मैं तो मंडलेश्वर महाराजका संदेश लेकर काश्मीरादेवीके पास गया था और तुरन्त ही वापस लौट आया। "

" अच्छा ? " उदाने कहा, परन्तु काकने उसकी आवाज़से समझ लिया कि वह उसका एक भी शब्द सच नहीं मान रहा है, " तो अब तो तुम भृगुकच्छ (भरौंच) जा रहे होगे ? "

" जी नहीं, मेरा एक मित्र वहाँसे आनेवाला है, उसे लेने आया हूँ। "

" ऐसी बात है ? तब तो बहुत अच्छा हुआ कि मुझे ठीक समयपर ख़बर मिल गई। मंडलेश्वरके मित्र हैं, इसलिए मेरे भी मित्र हैं। कहिए, प्रसन्नदेवी तो आनन्दसे हैं ? "

" जी, काश्मीरादेवी प्रसन्न हैं। "

" अच्छा, मैं ज़रा पूजा कर आऊँ। क्षमा करना।—तिलक, भटजीको घर ले जाओ। देखो, इनकी बराबर सेवा-चाकरी करना। गुजरातमें ऐसे योद्धा कम ही हैं।" कहकर वह जरा हँसा और नमस्कार करके काकको तिलकके हाथ सौंप गया।

काकने देखा कि अब वह अच्छी तरह फँस गया है।

१६—उदाके घर

तिलकके साथ जब काक वहाँसे रवाना हुआ तब उसकी खिन्नताका पार न रहा। उदाको फाँसने जाकर वह स्वयं फँस गया और अब छूटनेका कोई मार्ग नहीं दिख रहा था। वह मौन-मुख चलता रहा, परन्तु, उसके मनमें तिलकका सिर तोड़ डालनेकी आतुरता बढ़ती गई।

" यह लो, मेहताजीका घर आ गया।" तिलकने कुछ दूर एक बड़ेसे घरकी ओर अंगुली दिखाकर कहा।

" तब यह क्या है?" पास ही एक भव्य परन्तु पुराना और बहुत बड़ा मकान था, उसे देखकर काकने कहा।

" यह तो सालिग वसहिका है।"

काक समझ गया, जहाँ बूढ़े दामूके भतीजेको रखा गया है। उस उपाश्रय और धर्मशालाको देखकर काकका हृदय अधिक खिन्न हो गया। किस मुखसे वह यहाँ आया था? और इस समय उसकी क्या दशा हो गई है? उसने दाँत किचकिचाकर मन ही मन उदा मेहताको न जाने क्या क्या कह डाला।

" इस ओर उपाश्रय नहीं है?" काकने उत्तरमें पूछा।

" जी नहीं, मेहताजीके घरकी ओरके भागमें धर्मशाला है।"

दोनोंने उदा मेहताके घरमें प्रवेश किया। घरके द्वारपर गौख बनी हुई थीं और अन्दर खुला हुआ चौगान-सा था जिसकी तीन दिशाओंमें मकान था। चौकमें दृष्टि डाली तो काकने वहाँ अपनी साँढ़नीको बँधा हुआ पाया और अपने सेवकको कुछ दूर एक नौकरके साथ बातें करते देखा। काककी आँखोंमें अँधेरा छा गया। उसे विश्वास हो गया कि साँढ़नी और सेवक अवश्य ही उदाकी उस्तादीसे यहाँ आ पहुँचे हैं।

" रघुआ ! " काकने आवाज़ दी ।

" महाराज ! " " तू यहाँ कैसे ? "

तिलकने मधुरतासे कहा, " भटजी, जब मुझे मेहताजीने आपको बुलानेके लिए भेजा था, तब एक दूसरे मनुष्यको आपकी साँढ़नीके लिए भी भेज दिया था । मेहताजीके आतिथ्यमें किसी तरहकी कमी होती ही नहीं । "

काकने होठ चबा लिया । मेहताजीमें वस्तुतः कोई कमी न थी । उन्होंने काकको नज़र-कैद ही नहीं किया बल्कि उसके भाग जानेका साधन भी यहीं मँगा लिया । काक उदा मेहताके आतिथ्यसे काँपने लगा । तिलक भी अतिथि-सत्कारकी कलामें कुशल था । काकके लिए हर प्रकारकी सुविधा वह करने लगा और उसने बहुत ही मधुरता और मानके साथ काकके लिए नाना प्रकारके सुख-साधन उपस्थित कर दिये । इस प्रकारका अपरिचित अतिथि-सत्कार देखकर काकका असंतोष बढ़ा । परन्तु किया क्या जाय ? इस सुख-सुविधामें,—इस सत्कारमें छिपी हुई कूटनीतिक चालको वह समझ गया और यह सोचकर कि वह कैसा फँस गया है, चिन्ता करनेके सिवा और कोई मार्ग उसे नहीं दीखा । कुछ देरमें उसने थकावटका मिस करके उदा मेहताके आनेतक कुछ देर सो जानेकी इच्छा प्रकट की । तुरन्त ही तिलकने बढ़िया पलंग बिछवाया और जैसी कभी देखी नहीं थी ऐसी सुकोमल शय्यापर चिंतातुर काक जा सोया । आँखें मींचकर उसने कोई मार्ग खोज निकालनेका प्रयत्न किया ।

दो-तीन घड़ीके पश्चात् उदा मेहता आये । आते ही उन्होंने बड़ी मधुरतासे काकका स्वागत किया । अपना घर दिखलाया । अपने दो छोटे लड़के बाहड़ और आँबड़ *का परिचय कराया । विविध प्रकारकी रसमयी, प्रसन्न करनेवाली बातें कीं और दो-चार दिन अवश्य ही खंभातमें रहकर अनहद उपकार करनेकी विनीत प्रार्थना की । काक इस चाशनीके समुद्रमें डूबने लगा ।

कुछ ही घड़ियोंमें इस राजनीतिज्ञकी मीठी मीठी बातोंका मोह काकपरसे दूर होने लगा और वह विचार करने लगा कि इस विकट परिस्थितिसे कैसे छूटे ? सन्ध्या होनेपर उसने अपने मित्रकी खबर जाननेके लिए बन्दरपर जानेकी इच्छा प्रकट की । उदाने स्वीकार किया । तुरन्त ही तिलकको बुलाकर

* ये ही पीछेसे इतिहासमें मन्त्री वाग्भट और दंडनायक आम्रभटके नामसे प्रसिद्ध हुए ।

आज्ञा दी कि काक भट जहाँ जहाँ जानेकी इच्छा प्रकट करें वहाँ वहाँ ले जाय। और कहा, "देखना, तुम्हारे सिर दोष न आए कि तुमने खंभात भली भाँति न दिखलाया। समझे?" जाते जाते उदा मेहताने काकको तिलकके सुपर्द कर दिया। काकने हँसते हुए पहरेदारका साथ स्वीकार किया और वह व्यग्र हृदयसे बाहर निकला।

बाहर निकलकर काकने सालिग वसहिका देखनेकी इच्छा प्रकट की। तिलक बड़े आनन्दसे उसे वहाँ ले गया। काककी शक्तियाँ इन उलझनोंसे और भी सतेज होती गईं। उसने चारों ओर दृष्टि डालकर सब कुछ ध्यानमें जमा लिया।

"उस ओर वह देवचन्द्र सूरि महाराजकी व्याख्यान-शाला है।"

"और इस ओर ये कोठड़ियाँ कैसी हैं?"

"इस भागमें धर्मशाला है। अधिकतर तो ये खाली रहती हैं; परन्तु इस समय दीक्षा लेनेवालोंके माता-पिता इनमें रहते हैं।"

"हाँ, दो-चार दिनोंमें यहाँ कुछ होनेवाला है न? मेहताजी कहते थे।" काकने बातको जाननेके लिए पूछा।

"हाँ, परसों धन्धूकाके एक वैश्यके लड़केको दीक्षा दी जानेवाली है। आप भी अच्छे अवसरपर आये हैं।"

"क्यों?" काक समझ गया कि यह लड़का बूढ़े दामूके भतीजेका ही लड़का होना चाहिए।

तिलकने कहा, "हमारे गुरुदेव इस लड़केके भविष्यके बारेमें न जाने क्या क्या कहते हैं।"

काक मन ही मन हँसा। यदि ईश्वरकी कृपा हो गई और सब पार उतर गया, तो कल सबेरे काक और वह लड़का दोनों खंभात छोड़कर कई कोस दूर जा पहुँचेंगे। काक बड़े वेगसे मन ही मन सारी योजना ठीक करने लगा और उधर तिलकसे गपशप भी लड़ाता रहा। बन्दरपर जाकर जहाज़वालोंसे अपने कल्पित मित्रकी खबर पूछी और आधे खंभातको खूँदकर सोमदत्तके घरके निकट आ पहुँचा।

"तिलकचन्द्रजी, ज़रा ठहरिए। मैं अपनी लाठी ले आऊँ। सबेरे सोमदत्तके यहाँ रह गई है।"

उत्तरमें एक अज्ञेय प्रकारसे तिलक हँस पड़ा। उसे मार्गमें छोड़कर काक घरमें गया।

बूढ़ा दामू और सोमदत्त उसीकी प्रतीक्षामें बैठे थे। काकको देखकर वे सहर्ष उठ खड़े हुए। काकने नाकपर अँगुली रखकर उन्हें चुप रहनेका संकेत किया और कानमें कहा, "काका, वसहिकामें, जहाँ तुम्हारा भतीजा है, वहाँ तुम आज रातको जा सकोगे?"

बूढ़ेने आँख मींचकर हामी भरी।

"तुम लड़केसे मिलनेका मिस करके रातको धर्मशालामें ही रहना। मैं आधी रातके समय आऊँगा और सोमदत्त, तुम उदा मेहताकी हवेली और धर्मशालाके बीच जो गली है, वहाँ खड़े रहना।"

"अच्छा।"

"और उस ख़तीबको बैठाकर नौका भूतिया घाटपर तैयार रखना। देखो, भूल हुई, तो समझ लेना, प्राण न बचेंगे।"

"महाराज, ईश्वर आपको दीर्घायु करे। इस काममें विजय अवश्य प्राप्त होगी।"

"ख़तीबको भोजन कराया?"

"हाँ, वह पीछेकी ओर सो रहा है।" सोमदत्तने कहा।

काकने अपनी लाठी ली और बाहर निकला। तिलक वहाँ बड़ी निश्चिन्ततासे खड़ा था। उसे साथ लेकर वह उदा मेहताके यहाँ आया, फिर उसने नहाया, भोजन बनाया और खाया। वह इन सब कामोंसे निवृत्त हुआ ही था कि उदा मेहता आ पहुँचे।

"क्यों, कहिए काक भटजी, खंभात कैसा प्रतीत हुआ? पाटण और भृगुकच्छसे तो तुलना नहीं हो सकती; परन्तु साधारणतया ठीक ही है न, क्यों?" उदाने हँसते हुए पूछा।

"यह आप क्या कह रहे हैं महाराज? मेरी धारणाके अनुसार तो इसके आगे पाटणकी भी कोई बिसात नहीं है। यहाँ कितना धन है!"

"धनका क्या उपयोग? शौर्यके बिना समृद्धि किस कामकी? यहाँ हमारे तिलककी भाँति बिरले ही हैं जिनके घर भोंपा भी बजता है और कवच कसे हुए हाथी भी झूमते हैं।"

काककी आँखोंमें ईर्ष्याका पार न रहा। इस तिलकके पास छप्पन कोटि टंक हैं? हे भगवान्, तेरे घर यह कैसा अन्याय है! काक मन ही मन बड़बड़ाया।

फिर उसने ज़ोरसे कहा, "ऐं?"

"यह कौन बड़ी बात है? आप जैसे योद्धा यहाँ हों, तो पाँच वर्षमें करोड़ोंका धन एकत्र कर लें।"

काकके मुँहमें पानी आ गया। कहाँ जयदेव महाराजकी रूखी चाकरी और कहाँ उदा मेहता जैसी कामधेनु गायकी सेवा?

"यहाँ तो आपके समान वीरोंकी ही कमी है। हमारे दुर्गपालका स्वर्गवास हो गया है। उसकी जगह कोई योग्य व्यक्ति मिलता ही नहीं।"

काकका मन पिघल गया। ऐसा स्वामी, इतना धनाढ्य नगर, ऐसी नौकरी,—जीवन सफल करनेका अवसर तो यही दीख पड़ा। पर दूसरे ही क्षण उसे लाटकी राजनीति, विश्वासी त्रिभुवनपाल, मुंजाल मेहता, पाटणके राज्य-कर्ताओंमें अपना स्थान प्राप्त करनेकी महत्त्वाकांक्षा,—इन सबका स्मरण हो आया। कहाँ स्वयं ब्राह्मण, कहाँ उदा श्रावक मारवाड़ी? वह हँसा और बोला, "महाराज, आपका बड़ा अनुग्रह है, परन्तु मण्डलेश्वर महाराजके यहाँ मुझे कोई कमी नहीं है।"

"हमारा दुर्भाग्य।" मधुर हँसी हँसकर उदाने कहा, "परन्तु आज नहीं तो किसी भी समय, जब आवश्यकता हो, तब उदा मेहताके यहाँ आपको आपके शौर्यके अनुरूप स्थान अवश्य मिलेगा।"

"महाराज, यह उपकार कभी न भूलूँगा।"

"चलिए, अब मुझे प्रभु देवचन्द्रसूरिसे मिलने जाना है। मैं जा रहा हूँ। सबेरे मिलूँगा।"

काकने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और वह मन ही मन बड़बड़ाया, "सबेरे तो क्या, चौरासी लाख योनियोंमें भी तुमसे भेट न हो भइया!"

उदा चला गया और तिलक और काकने सोनेकी तैयारी की।

१७—काक अवसर खो देता है

थोड़ी देरमें दोनों सो गये; परन्तु काकको नींद नहीं आई। एक ही दिनमें जिन घटनाओंकी परम्पराका उसने अनुभव किया था उनका, और अब कैसे छूटना चाहिए, इसका, विचार करते हुए उसका समय बहुत जल्दी व्यतीत हो गया।

मध्यरात्रिके पहले ही नौबत बजी। काकने देखा, पास ही तिलक निश्चिन्त सो रहा है और घरमें सब जगह शान्ति छाई हुई है। बाहर शुक्ला द्वादशीकी चाँदनी सृष्टिपर अमृत-धारा बरसा रही है।

वह उठा और तुरन्त ही उसने कपड़े पहनकर शस्त्र सजा लिये; अपने साफ़ेको कमरसे लपेटा और हाथमें लाठी ले ली। वह चोरकी चपलतासे दो-एक कमरोंको पार करके दालानमें आया। उसने इस प्रकार धीरे-से द्वार खोला कि दो-चार पार्श्वक जो दूर सो रहे हैं वे जाग न जायँ। बाहर चौगानमें चाँदनीका प्रकाश था, अतएव उसे उस पार जाना बड़ा कठिन प्रतीत हुआ। वह कुछ देर विचारमग्न खड़ा रहा। चहारदीवारीके बड़े फाटकपर पाँच-छः नौकर सो रहे थे, उसे भय हुआ कि कहीं उनमेंसे कोई जागकर चिल्ला न पड़े।

वह तेज़ीसे दौड़कर एक खंभेके पीछे हो गया। कुछ देर ठहर कर भी जब उसने किसीको हिलते-डुलते न देखा, तो वहाँसे निकल कर एक वृक्षके पीछे छिप गया। इसी समय बड़े फाटककी देहलीपर सोये हुए नौकर जाग पड़े और काककी घबराहटका पार न रहा।

बाहर मशालें जल रही थीं। उनका प्रकाश चौगानमें पड़ा। काकने वृक्षके पीछे ‘खड़े रहकर देखा कि उदा मेहता देवचन्द्र सूरिसे मिलकर लौट रहे हैं। ‘ यदि इस समय वह मेरी ख़बर पूछें, या मशालके प्रकाशमें मुझे देख लें, तो क्या परिणाम हो?’ इस विचारसे काकका हृदय धड़क उठा। होठसे होठ दबाये वह खड़ा रहा।

उदा मेहता आये। एक दृष्टि चौगानकी ओर डाली और अपनी हवेलीमें चले गये। मशालवालोंने मशालें बुझा दीं और सब शान्त हो गया। काकके जीमें जी आया।

वह बड़ी तेज़ीसे बसहिकाकी ओरसे दीवालके पास गया। उस ओर घरका कोई भाग नहीं था और वहाँ उसने बाहर गलीकी ओर निकलनेवाला एक छोटा-सा द्वार भी संध्या समय देखा था। उस द्वारके पास जाकर वह निराश हो गया। उसमें बड़ा-सा खंभाती ताला पड़ा हुआ था।

वह उदा मेहताकी इस सावधानीको कोसनेमें लगा हुआ था कि इसी समय उसके कानोंमें किसी आनेवालेके पैरोंकी आवाज़ पड़ी। वह चौंका और बड़े नीमके तनेके पीछे छिप गया।

आनेवाली एक स्त्री थी। क़द उसका ऊँचा था और उसने काले वस्त्र पहन रखे थे। चाँदनीके प्रकाशमें काक केवल उसका सफ़ेद रंग ही देख सका। उसके हाथमें एक छोटी-सी थालीमें कुछ खानेका सामान था। वह आई और जरा भयसे इधर उधर देखने लगी। काकके प्राण तालूसे जा चिपके। स्थान निर्जन प्रतीत होनेपर स्त्रीने अपनी कमरसे ताली निकाली, ताला खोला, ताला हाथमें लेकर बाहर निकली और बाहरसे द्वार बन्द कर दिया।

पहले तो काककी इच्छा हुई कि स्त्रीके पाससे ताली छीन ले; परन्तु इस भयसे वह चुप हो गया कि कहीं वह चिल्लाकर सारे घरको ही न जगा दे।

परन्तु ज्यों ही उस स्त्रीके पैरोंकी आवाज़ सुनाई पड़ना बन्द हुआ त्यों ही वह एक बिल्लीकी-सी तेज़ीसे वृक्षपर चढ़ गया। उसकी एक बड़ी डाली चौगानकी दीवारपरसे बाहर झुक रही थी। क्षण ही भरमें उस डालीपर होकर काक दीवालके सिरेपर जा पहुँचा। उसके सद्भाग्यसे उसपर कीलें ठोके हुए नहीं थे।

उसने देखा कि वह स्त्री उपाश्रयकी दीवालका एक छोटा-सा द्वार खोलकर अन्दर चली गई। काक दीवालपरसे नीचे गलीमें कूद पड़ा।

ज्यों ही उसके पैर पृथ्वीपर पड़े, त्यों ही भूतकी भाँति एक मनुष्य उसके सामने आकर खड़ा हो गया। काकने चौंककर लाठी तानी कि वह मनुष्य बोल उठा, "अरे, यह तो मैं हूँ!"

"कौन, सोमदत्त? अच्छा, दामू काका कहाँ हैं?" "अन्दर हैं।"

"अच्छा" कहकर काकने सोमदत्तको दीवालसे सटाकर खड़ा कर दिया, फिर उसके कन्धेपर चढ़ उपाश्रयकी दीवालपर हाथ टेककर छलाँग मारी और दीवारके सिरेपर जा चढ़ा। अबतक सभी बातें निर्विघ्न पूरी होती जा रही थीं।

उसने जरा श्वास लिया और उपाश्रयके उस भागमें देखा जहाँ धर्म-शाला थी। वहाँ भी सब कुछ शान्त था। केवल वह स्त्री बिना पीछे देखे जा रही थी। वह मन ही मन फूलने लगा। उदा मेहता चाहे जैसे कूट-नीतिज्ञ हों, फिर भी उसने उन्हें मात कर दिया। प्रसन्न हृदयसे उसने नीचे देखा तो जिस जगह वह खड़ा था, वहाँ नीचे कुछ कीचड़ दीख पड़ी। दीवालपर ही आगे बढ़कर, पास ही जो एक छोटी कोठरी थी, पहले उसकी छतपर पहुँचकर फिर नीचे उतरनेका उसने निश्चय किया।

काक धीरे-से उस छतपर जा पहुँचा। उसके पैरोंसे तनिक भी आवाज़ न हुई; फिर भी अन्दरसे एक प्रश्न हुआ, "कौन है?"

स्वर किसी बालकका प्रतीत हुआ। उसमें सुमधुरता थी, फिर भी काक भयसे काँपता हुआ खड़ा रह गया।

"यह तो मैं हूँ बेटा!" नीचेसे उत्तर मिला। काक समझ गया कि वह प्रश्न किसीने उससे नहीं, बल्कि उस स्त्रीसे किया था। काक धीरे धीरे छतके एक किनारे आया और वहाँसे नीचे उतरा। उतरते हुए जरा धमाका हुआ। वह दीवालकी बगलमें थोड़ी देर खड़ा रहा, पर जब उसे यह मालूम हुआ कि किसीने उसे नहीं सुन पाया है तब तेज़ीसे उस ओर चला जिस ओर चाचिग और उसका लड़का ठहरे हुए थे।

जाते जाते उसने उस द्वारकी ओर देखा जिससे होकर वह स्त्री आई थी। उसमें ताला नहीं था, केवल साँकल लगी हुई थी। काककी प्रसन्नताका पार न रहा। यदि उस स्त्रीके लौटनेसे पहले ही वह बूढ़े दामू और उसके चाँगाको ले आवे, तो इस खुले हुए द्वारसे उसे सहायता मिले और दीवाल फाँदनेका परिश्रम बच जाय। भाग्य ही उसके लिए अनुकूलता उत्पन्न कर रहा था।

काक बड़े वेगसे उस कोठरीकी ओर गया। बूढ़ा दामू बड़ा चतुर था। वह द्वारको अधखुला रखकर अन्दर सोया हुआ था। काकने वहाँ पहुँचकर द्वारको जरा धक्का दिया। अन्दरसे बूढ़ा खाँसा; अतएव काक जरा ठहर गया। बूढ़ेने उठकर धीमे-से द्वार खोल दिया। बूढ़ा, उसका भतीजा चाचिग और चाँगा,—ये तीनों इसी कोठरीमें सोये थे। दूसरी कोठरीमें लड़केकी माँ सोती थी।

चाचिग निश्चिन्त खर्राटे ले रहा था। अतएव बूढ़ा दामू धीरेसे चाँगाको उठाकर बाहर लाया। लड़का आठ-नौ वर्षका, सुकुमार और रूपवान् था। इस अवस्थामें भी उसके मुखपर तेज झलक रहा था। वह शान्तिसे सोया हुआ था। बूढ़ेने कुछ आगे चलकर चाँगाको काककी गोदीमें दे दिया। इस प्रकार हाथोंके बदलनेसे लड़का जाग पड़ा। काक उसके मुखपर हाथ रखने लगा कि कहीं वह चिल्ला न पड़े, परन्तु लड़का न तो चिल्लाया और न घबराया ही। वह अपनी गहरी और बड़ी बड़ी आँखोंसे काकको देखने लगा। बूढ़ा आगे बढ़ आया।

" बेटा, घबराना मत, मैं तो तुझे लेने आया हूँ। "

" कहाँ ले जाओगे ? " उसने धीमे-से पूछा।

" अपने घर बेटा, धंधूका। "

" परन्तु मुझे तो वहाँ जाना नहीं। " लड़केने कहा।

" क्यों ? कल तेरे माँ-बाप भी वहाँ आ जायँगे, बेटा ! " बूढ़ेने आश्वासन दिया। "

" अब माँ बाप कैसे ? "

बूढ़ा देखता रह गया। काकको अचरज हुआ। आश्चर्यके कारण काककी गोदसे लड़का गिरते गिरते बचा।

" क्यों ? " बूढ़ेने आश्चर्यसे पूछा।

" मैंने तो संसार त्याग दिया है। " लड़केने निश्चल स्वरमें कहा।

" बेटा, पागल तो नहीं हो गया ? अभी जन्म लेकर तूने सुख तो कुछ देखा ही नहीं। तेरा विवाह करेंगे, तेरे लिए अच्छे अच्छे आभूषण...। "

" दादा, मुझे इन वासनाओंसे क्या प्रयोजन ? मैं तो वीतराग बनूँगा। " अभिमानसे बालकने कहा। आर्य-जीवनकी चरम भावनाका उच्चारण इतने-से बालकके मुखसे सुनकर दोनों जनें लज्जित हो गये।

काकने चाँगाको इस तरह गोदसे उतार दिया, जैसे वह धधकता हुआ अंगारा हो। ऐसा अनोखा पुतला उसने आज ही देखा। वह आँखें फाड़ फाड़ कर देखता रहा। बूढ़ा दामू भी दिङ्मूढ़ हो गया।

" बेटा, तू क्या न समझेगा ? तू घर तो चल, सब बातें पीछे होंगीं। " बूढ़ेने कहा।

" मुझे ले जाकर क्या करोगे ? धंधूका जाकर साधु बनूँ, उससे यह खंभात ही क्या बुरा है ? वहाँ गुरुदेव जैसे दीक्षा देनेवाले कहाँ मिलेंगे ? " दयनीय स्वरमें चाँगाने कहा,

काक इस लड़केको देखता रह गया। उसकी कान्ति, उसकी आँख और उसके वाक्योंसे काकके हृदयमें उसके प्रति भक्तिका भाव उदित हो गया। उसे प्रतीत हुआ कि जैसे बूढ़ा और वह बहुत अल्प हैं, और यह लड़का अद्भुत है। वह उसे वैराग्य-जीवनमेंसे खींच ले जाकर महा पाप करनेकी तैयारी कर रहा था।

काकने कहा, " काका, क्या देख रहे हो ? इसे ले जाकर क्या करोगे ? यह तो साधु होनेके लिए ही जन्मा है। "

" हाय, हाय ! " बूढ़े दामूने कहा। उसकी आँखोंमें आँसू आ गये।

" दादा, मुझे यहीं रहने दो। " लड़केने मिन्नत की।

" परसों तो वे तुझे मूँड़ लेंगे। "

" फिर मैं जगत्का उद्धार करूँगा न ? " निर्दोषितासे लड़केने अपने मनपर गुरुके जमाये हुए संकल्पको प्रकट किया। दो क्षण तीनों जनें मौन खड़े रहे। लड़केकी श्रद्धा दैवी थी। उस श्रद्धाने दोनोंको मात कर दिया।

" काका, यह सब परिश्रम निरर्थक है। इसे ले जानेमें कोई सार नहीं। "

" हे भगवान्, मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता है ! हमारा तो नाश ही होनेको बैठा है। " सिर पीटकर दामूने कहा।

" तो अब मैं जाकर सो जाऊँ ? "

काकने सिर हिलाकर स्वीकृति दी। बूढ़ेने कहा, " बेटा, ये भूदेव हैं, इनके पैर तो छुओ। "

लड़केने पैर छुए। काकने कहा, " भगवान् सोमनाथ तेरा भला करें ! " और अज्ञात रूपसे उसकी आँखोंमें पानी भर आया।

लड़का चला गया और बूढ़ेने भी अश्रुसहित काकका उपकार मान कर आज्ञा ली। काक अकेला खड़ा रह गया। उसका सारा परिश्रम निष्फल हो गया। उसे ज्ञात नहीं था कि भविष्यमें वह कैसे अवसरपर इस बालकसे मिलेगा और उसकी निष्फलताके परिणाम-स्वरूप गुजरातके इतिहासमें क्या क्या परिवर्तन होंगे। वह केवल अपनी असुविधाका ही विचार कर होठ काटकर द्वारकी ओर घूमा।

१८—काक खाली हाथ नहीं लौटता

काकके मनमें अब केवल समुद्र-मार्गसे खंभात छोड़नेका विचार रह गया था, अतएव जल्दीसे दरवाजा पार होकर बाहर निकल जानेके लिए वह उस ओर चल पड़ा। उसका मन अकुला गया था और यदि उसे कैद हो जानेका भय न होता, तो अवश्य अपनी अकुलाहट दूर करनेके लिए वह दो-चार जनोंको यमपुरी पहुँचा देता। परन्तु जब तक उसके हाथमें खतीब था, तब तक उसे विश्वास था कि वह उदा मेहताकी खबर अच्छी तरह ले सकेगा।

परन्तु दरवाजेतक पहुँचनेके पहले वह वहाँ आ पहुँचा जहाँसे वह स्त्री उस कोठरीमें घुसी थी। इतनेमें एक लकड़ीकी जालीसे आते हुए स्वरने उसका ध्यान खींचा। स्वर उसका था जिसने पूछा था कि कौन है? परन्तु उस स्वरमें ऐसी संस्कारिता, मृदुता और दुःख था कि मरते हुएके प्राणोंको भी रोक ले। शब्द भी वैसे ही आकर्षक थे। केवल उसका उच्चारण ज़रा परदेशी जैसा था।

"माँ, माँ, तूने मुझे जन्म तो दिया है; पर तू मुझे पहचानती नहीं। मैं श्रावकके साथ ब्याह करूँ?" प्रत्येक शब्दपर भार देकर वह बाला बोलती सुन पड़ी, "मैं,—कविकुलशिरोमणिकी पुत्री,—मैं उसका पाणिग्रहण करूँ?"

"वह कौन है, इसकी भी तुझे कुछ सुध है? मूर्ख, उससे विवाह करके तू कितनी बड़ी पदवी पायेगी, इसका भी तुझे ध्यान है?"

इन शब्दोंने लड़कीके क्रोधमें घी छोड़ दिया। उसका स्वर क्रोधसे काँप उठा। उसकी वाणीकी झंकारमें गर्वकी गर्जना तो पहलेसे ही थी।

"वह कौन है? भले ही अखिल विश्वका स्वामी हो; परन्तु मेरे लिए कौन है? कहूँ? मेरे पैर पूजनेका भी वह अधिकारी नहीं है। माँ, माँ, वाचस्पति रुद्रदत्तकी अर्धांगिनी होकर भी तेरा उद्धार नहीं हुआ जो आज तू श्राविका बन गई और श्रावकके साथ मेरा विवाह करनेको तैयार हो गई? और कौन-से पदके लोभसे? मैं कविकुलशिरोमणिकी लड़की हूँ, मेरे आगे जब महाराजाधिराजकी भी कोई गणना नहीं, तब तेरे आजकलके इन धन-वानोंकी क्या गिनती?" स्वर कभी ऊँचा हो जाता, कभी नीचा; उसमें प्रताप था, संस्कार था। काक सब कुछ भूल कर मूढ़की भाँति सुनता रहा। उसने

कविकुलशिरोमणि रुद्रदत्त वाचस्पतिका नाम सुना था। कर्णदेवके समय वे काश्मीरसे पाटण आये थे और वहीं घर बनाकर रहने लगे थे। अभी दो ही वर्ष हुए उनका स्वर्गवास हुआ है। उनकी लड़की यहाँ ?

" बेटी, तू तो बड़ी ज़िद्दन है। "

" हाँ, मुझे अपने पिताका, अपने वर्णका, अपने धर्मका अभिमान है। " गर्वसे लड़कीने कहा। यह अभिमान देखकर काकका रक्त भी उबल पड़ा।

" देख, तू पागल हो गई है। उसके जैसा पति तुझे कहाँ मिलेगा?"

" सृष्टिके प्रारंभसे ब्रह्मनिष्ठ वेद-मूर्तियोंका जो पुनीत रक्त चला आ रहा है, उसे मैं कलंकित करूँ ? इस भव और परभवमें चांडाल बनकर रहूँ ? इसकी अपेक्षा कुँआरी ही मैं मर जाऊँ, तो क्या बुरा है ? सरस्वती रह गई, तो मुझे रहनेमें कौन-सा पाप है ? "

" वैसे नहीं रहा जा सकता। "

" क्यों ? क्या सब तेरी तरह हलुआ खानेके लिए श्रावक बन जाते हैं ? "

" नहीं मानेगी तो परसों महाराज दीक्षा दिलवा देंगे। " माताने कहा। काकको कँपकँपी आ गई।

" तेरा और तेरे महाराजोंका क्या सामर्थ्य है ? "

" तो तू क्या करेगी ? " माताने पूछा।

" त्रिपुरारिने दाँत दिये हैं। धर्म-भ्रष्ट होनेसे पहले जीभ काट कर नहीं मरा जा सकेगा क्या ? " लड़कीने तिरस्कारसे कहा।

" मंजरी, जीव देना कहनेमें बड़ा सरल है, परन्तु वास्तवमें बड़ा कठिन है। " माताने कहा।

' मंजरी ! कितना मधुर नाम है !' काक बड़बड़ाया।

" गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः* लड़कीने तिरस्कारसे उत्तर दिया।

काकने बचपनमें अपने पण्डित मामासे नाम-मात्र ही संस्कृत सीखी थी, फिर भी वह इसका अर्थ समझ गया।

" देख, अभी विचार कर ले। महाराज स्वयं कल आयेंगे। "

" कह देना, कष्ट न करें। " " क्यों ? "

" क्योंकि उन्हें देखकर मेरी आँखें अपवित्र हो जायँगीं। "

---

*पण्डित मृतककी चिन्ता नहीं करते और जीवितकी भी नहीं करते।

" तेरे गर्वका तो पार ही नहीं है । "

" और तेरी अधोगतिका भी पार नहीं है । अतएव तुझे ऐसा प्रतीत होगा ही । तू अब साध्वी बन जा जिससे जैनशासका उद्धार हो जाय ! " तिरस्कारसे लड़कीने कहा ।

" मैं देखूँगी कि तेरा यह झूठा अभिमान कब तक रहता है । आज तीन दिनोंका उपवास तुड़वा दिया, इसीसे इतना बल आ गया है ? क्यों ? "

" तीन दिन क्या, तीन युगोंका उपवास करा दे न । मैं ब्राह्मण हूँ और ब्राह्मण ही रहूँगी । "

" ठीक है, मैं कल फिर आऊँगी । "

लड़कीने कोई उत्तर नहीं दिया ।

" विचार कर रखना । या तो विवाह करना होगा या दीक्षा लेनी होगी । और कोई उपाय नहीं है । "

लड़की केवल तिरस्कारसे हँस दी, यह काकने सुना और उसकी माँ वहाँसे निकली । उसके पैरोंकी आहट भी सुनाई दी । उसने बाहर आकर दरवाजेकी साँकल खोली, गलीमें पहुँची और बाहरसे ताला बन्द कर दिया ।

काकके कानोंमें लड़कीका स्वर, उसके शब्द, उसकी संस्कारयुक्त भाषा और उसकी धर्मपरायणता रम गई । वह खुद ब्राह्मण था और यहाँ एक ब्राह्मण कन्यापर अत्याचार हो रहा था । पलभरमें ये विचार तले-ऊपर उसके मस्तिष्कमें चक्कर काट गये । चतुराई और भय सबको दूर ठेलकर वह कोठरीकी ओर मुड़ा, द्वार खोला और अन्दर घुसा ।

कोठरीमें एक छोटा-सा दीपक जल रहा था । उसका मन्द प्रकाश केवल एक ही कोनेमें पड़ रहा था । वहाँ एक मैले गन्दे बिछौनेपर सोनेको तैयार एक हाथ ज़मीनपर टिकाये, दूसरे हाथसे बाल सँवारती हुई वह लड़की बैठी थी ।

काककी आँखोंमें अँधेरा छा गया । ऐसा सौन्दर्य न तो उसने कभी देखा था, और न इसकी कभी कल्पना की थी । मुखकी कोमलतापरसे उस बालाकी अवस्था सत्रह-अठारह वर्षकी प्रतीत हो रही थी । उसका ऊँचा और भरा हुआ शरीर पूर्ण कलाको पहुँचनेकी सूचना दे रहा था । उसका-सा स्फटिकके समान सफेद और शुद्ध रंग लाट या गुजरातकी रमणियोंमें काकने

कभी नहीं देखा था। काकको प्रतीत हुआ, यह बाला काश्मीरी पिताकी पुत्री है। उसकी अपूर्व मुख-रेखाएँ, उसके प्रफुल्ल नयनोंकी दुःखमयी किन्तु तेज चमक, उसके होठ और नाककी गर्विष्ठ मरोड़ उसके व्यक्तित्वको अप्रतिम मोहकतासे मण्डित कर रही थी। उसके अंग अंग खिले हुए थे, सौन्दर्य-पूर्ण थे, किसी अद्भुत शिल्पीकी दैवी कलाका परिणाम प्रतीत होते थे। विधिके द्वारा उत्पन्न की हुई, अनुपम सौन्दर्यकी रसमूर्तिके समान इस बालाको देखकर काक स्तब्ध हो गया।

काकको आता देख, बालाने गर्वसे मस्तक ऊँचा किया, कपालपर बल डाले और केवल अभिमान-पूर्ण नयनोंके तेजसे ही प्रश्न किया।

" घबराना नहीं, " मैं तुम्हें छुड़ानेके लिए आया हूँ। " कुछ देरमें इस मौन प्रश्नका उत्तर काकने दिया।

बालाने ज़रा तिरस्कारसे काकका नख-शिख निहारा और पूछा, " कौन हो ? "

" मैं जयसिंहदेव महाराजका भट हूँ; त्रिभुवनपाल मण्डलेश्वरका मित्र हूँ; लाटका ब्राह्मण हूँ। यह समय बातें करनेका नहीं है, अभी कोई आ पहुँचेगा। मैंने तुम्हारी सब बातें सुन ली हैं। तुम्हें अपने सिरपर मड़राते हुए दुखसे बचना हो, तो उठो। कल सबेरे मैं तुम्हें खंभातसे बाहर ले जाऊँगा। " काक जल्दीसे बोला।

बालाकी आँखोंमें अभिमान ज़रा कम हुआ। उसने धीमे-से पूछा, " कहाँ ले जाओगे ? "

" जहाँ तुम कहोगी। इस समय इस कारागारसे तो छूट जाओ। "

क्षणभर वह देखती रही। कुछ विचार करती रही कि काकपर विश्वास किया जाय या नहीं और फिर कुछ निश्चयपर आई।

" तुम ब्राह्मण हो ? " उसने फिरसे पूछा।

" हाँ। तुम्हें अविश्वास होना स्वाभाविक ही है; परन्तु मैं गायत्री माता—" कहकर काक शपथ लेनेको उद्यत हो गया।

" नहीं, नहीं, तुम्हारा वचन ही पर्याप्त है। " कहकर वह खड़ी हो गई। खड़े होते समय उसके पैर काँप उठे। तीन दिनोंके उपवाससे उसमें खड़े रहनेकी भी शक्ति नहीं थी; परन्तु वह होठ दबाकर उठी और उसने अपने

वस्त्र ठीक किये। काक उसके क़दकी ऊँचाई और उसके सुगठित बदनकी भव्यता देखता रहा।

" परन्तु बाहर कैसे निकलेंगे ? " उसने पूछा।

" मैं दीवालको लाँघकर उस छतपरसे आया हूँ। उसी रास्ते होकर चलेंगे। कहीं पकड़ गये, तो प्राण न बचेंगे। " कहकर काक बाहर निकला और आसपास देखने लगा। वहाँ कोई दीख न पड़ा, अतएव उसने मंजरीको बाहर बुलाया। फिर वह कोठरीकी बगलमें पहुँचा। बीचमें लगे हुए धरनके मुहानेको उसने उछलकर पकड़ लिया और हाथोंके सहारे लपककर ऊपर चढ़ गया। फिर वह छतपर आड़ा लेट गया, नीचे झुककर उसने मंजरीको हाथ थमा दिया और फिर उसे ऊपर खींच लिया।

" ज़रा नीचे झुककर चलो जिससे नीचेसे कोई देख न ले। " काकने मंजरीके कानमें कहा और वे तेज़ीसे दीवालके सिरेपर आ पहुँचे।

" अब क्या करें ? " काकने कहा, " तुम इतने नीचे नहीं कूद सकोगी ? "

मंजरीने सिर हिलाया। मुक्तिकी आशासे उसकी आँखें भी चमक रही थीं।

" अच्छा। " काकने कहा, " पीछे, मेरी पीठसे चिपक जाओ। " मंजरीने वैसा ही किया। मुक्त होनेकी आशासे जैसा वह कहता तुरन्त ही वह उसी प्रकार करती, " हाँ, ऐसे ही। ज़रा अपना हाथ मुझे दो। अब अपने पैरोंको बल देकर जकड़ लो। ज़रा कठोर बनो, साहस रखो। भगवान सोम-नाथका स्मरण करो। जय सोमनाथ ! " कहकर काक मंजरी-सहित नीचे कूद पड़ा।

ये दोनों जने नीचे आ तो गये सही-सलामत; परन्तु दो आदमियोंपर आकर गिरे। काकने मंजरीके हाथ छोड़ दिये और परिश्रान्ति और दुःखसे अशक्त हुई बेचारी सुकोमल बाला बेसुध होकर पृथ्वीपर लुढ़क गई। जिन दो जनोंपर ये लोग गिरे थे, वे भी एकदम इनकी तरफ़ आये।

काककी इन्द्रियाँ और बुद्धि अवसरपर चौगुना काम करती थीं। उसने दो नये मनुष्योंकी तरफ़ देखा और स्थितिको समझ लिया। एक तिलक था और दूसरा सोमदत्त। वह सन्ध्या-समय जब सोमदत्तके घर गया था तब तिलक हँसा था। क्यों, सो काक अब समझ पाया। तिलकको कुछ सन्देह हुआ होगा और उसने काक भागना चाहता है, या चाँगाको भगाना चाहता है,

ऐसी कल्पना की होगी। काकको विश्वास हो गया कि जब वह उठकर आया था, तब तिलक झूठमूठ ही सो रहा था और उसके पीछे पीछे खोज करता हुआ वह यहाँ सोमदत्तसे मिला होगा। उसी क्षण उसे खयाल आया कि स्थिति कैसी गंभीर हो गई है। एक ओर उदा मेहताकी हवेली और एक ओर उपाश्रयकी धर्मशाला। यदि तिलक पुकारे, तो सारा गाँव एकत्र हो जाय और मुक्तिके बदले मृत्यु प्राप्त हो। दीर्घ विचार करनेका समय नहीं था, अतएव काकने कर्त्तव्य ही आरम्भ किया।

ऊपरसे कौन गिरा, इसका निर्णय करनेके लिए तिलक निकट आ रहा था और यह धारणा करके उसने हाथ बढ़ा दिये थे कि काक होगा, परन्तु काक तत्काल ही बाघकी भाँति छलाँग मारकर उसपर टूट पड़ा। अचानक आक्रमण होनेसे तिलक ज़रा पीछे हटा और उपाश्रयकी दीवालसे जा सटा। काक उसपर झपटा। देखते देखते उसने उसका मस्तक दोनों हाथोंसे पकड़ लिया और ज़ोरसे दीवालसे दे मारा। रात्रिकी शान्तिमें एक धमाका-सा हुआ और उसके हाथसे बेसुध हुआ तिलक शवके समान भूमिपर जा गिरा।

"उठो सोमदत्त, चलो भूतिया घाटपर, नहीं तो अभी और कोई आ पहुँचेगा।"

"परन्तु दामू काका—"

"वे अन्दर हैं। तुम्हारा चाँगा स्वयं ही इनकार कर रहा है। वह साधु बनेगा। उसे बहुत समझाया। चलो, अब रास्ता दिखाओ।"

सोमदत्त आगे हुआ और बेसुध पड़ी मंजरीको उठाकर काक उसके पीछे पीछे चलने लगा।

'बेचारा छप्पन कोटिका स्वामी! वह सब धन अब किसके काम आयेगा?' काक तिलककी ओर देखकर मन ही मन बड़बड़ाया।

कहीं कोई देख न ले, कोई पकड़ न ले; इस भयसे काक चारों ओर देखता हुआ चल रहा था। अपनी शक्तिके अभिमानके कारण या अकेले ही काकको पकड़कर यश प्राप्त करनेकी लालसासे तिलकने काकके भागनेकी ख़बर किसीको नहीं दी थी। अतएव काक निर्विघ्न ही भूतिया घाटपर आ पहुँचा।

१९—खंभातकी खाड़ीमें

काक जब घाटपर आया, तब उसे वहाँ ख़तीब न दीख पड़ा।

" वह ख़तीब कहाँ गया ? " उसने कठोरता-पूर्वक सोमदत्तसे पूछा।

" न जाने कहाँ भाग गया। आपने घरके पीछेकी ओर उसे सुलाया था परन्तु आख़िर यवनकी जाति ही तो है !"

काकको भय हुआ कि ख़तीबके इस प्रकार गायब हो जानेमें भी उदाका ही हाथ होना चाहिए। उसने निःश्वास छोड़ा। इतना अधिक परिश्रम किया, फिर भी ख़तीब हाथसे निकल गया और जिस कार्यके लिए वह खंभात आया था, वह पूरा न हो सका। अब फिर खंभात लौट जाना भी असंभव था। अतएव उसने ज्यों त्यों करके मनको समझाया और वह अपने हाथ आई हुई रमणीका विचार करने लगा।

सोमदत्तने जो नौका तैयार करा रखी थी, काक मंजरीको लेकर उसमें जा बैठा। उसने सोमदत्तका आभार स्वीकार किया और दोनों माँझियोंको जल्दीसे नौका लेकर चलनेकी आज्ञा दी। उसने मंजरीका सिर अपनी गोदमें रख लिया और अन्तिम दिनके अनुभवका स्मरण करने लगा। उस दिन सूर्योदयके पश्चात् अपने किये पराक्रमोंको देखकर उसकी छाती वित्ताभर फूल उठी और सबेरा होते ही उदा मेहता कैसी उछल-कूद मचायेगा, इसका विचार कर उसके आनन्दका पार न रहा।

इतनेमें समुद्रके शीतल जल-कणोंकी शान्तिसे धीरे धीरे मंजरीको चेत आया। चेत आते ही वह सतर होकर बैठ गई और चारों ओर विस्मयसे देखने लगी।

" आख़िर तुम मुक्त हो गई। " काकने कहा।

" हाँ, अब मुझे कहाँ ले जा रहे हो ? "

" अभी तो जैसे बनें, दूर निकल जायँ। फिर दिशाका विचार करेंगे। तुम्हारे कोई सगे-सम्बन्धी नहीं हैं ? "

" नहीं, पिताजी स्वर्गवासी हो गये, माता बैरिन बन गई। रिश्तेदारोंमें रह गये केवल मेरी माँके पिता। वे जूनागढ़में रहते हैं। "

" वहाँ तो अभी नहीं जाया जा सकता। " काकने कहा।

" क्यों ? "

" जूनागढ़के रा' और जयसिंहदेव महाराजमें परस्पर युद्ध चल रहा है।"

मंजरीने निःश्वास छोड़ा।

" पाटणमें तुम्हारा कोई नहीं है ? "

बालाने सिर हिलाया और पूछा " गजानन पण्डितको पहचानते हो ? "

काकने कहा," हाँ, नाम सुना है। उनकी स्त्री काश्मीरादेवीकी सहेली हैं।"

"-काश्मीरादेवी कौन ?—प्रसन्नकुमारी ? "

" हाँ, वही। हमारे मण्डलेश्वर त्रिभुवनपालकी पटरानी। "

" मुझे गजानन पण्डितके पास पहुँचा दो। मेरे पिता उनके मित्र थे। "

" अच्छा। परन्तु अब तुम ज़रा सो जाओ न ? सिरहाने क्या रखोगी ? मैं अपना साफ़ा दूँ ? " कहकर काकने कमरसे बँधा हुआ साफ़ा खोला और सिरहानेके लिए मंजरीको दिया।

कुछ देरमें मंजरी सो गई और काक उसे देखता रहा। स्थान रमणीय था। वायुके झोंके आ रहे थे। नीचे समुद्रकी तरंगें नाच रही थीं, और ऊपर व्योममें विचरता नक्षत्र-मण्डल आँख-मिचौनी खेल रहा था। रस और भावसे अज्ञात काकका हृदय आनन्दसे विभोर हो गया। उसके पैरोंके निकट, रंभाको भी भुला दे ऐसी रमणी सो रही थी। युद्ध-कार्योंमें ही उसने जीवन व्यतीत किया था, अतएव वह सांसारिक सुख और आनन्द न लूट सका था। बूढ़ी माँके अतिरिक्त और किसी स्त्रीसे उसे काम न पड़ा था। किसी नवयौवनाको उसने निश्चिन्ततापूर्वक नहीं निहारा था। इस समय शान्त कौमुदीके निर्मल रुपहले प्रकाशमें मंजरीको वह देखता रहा। काकको इस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि किसी लावण्यमयी बालाको निहारना पुरुष-जीवनका बड़ेसे बड़ा आनन्द है। चन्द्रमाके अमृत-सिंचनसे रस-मय बना हुआ उसका मन मंजरीके अंग अंगमें नव-सृष्टिके अनुपम भेद देखने लगा और उसके शरीरकी दृष्ट-अदृष्ट छटा-पूर्ण रेखाओंमें अज्ञात काव्य-मयता खोजने लगा। मंजरीके मुखपर एक अज्ञेय-सी रसिकता थी। उसकी गर्दनकी मरोड़में एक अवर्णनीय सौन्दर्य था। उसकी भौंहोंकी भव्य कमानोंमें असह्य-से काम-बाणका संधान था। यह सब काकने देखा। अपूर्व अंग-लालित्यके निरीक्षणसे हृदयमें एक मर्मभेदी संगीत उठ खड़ा हुआ जिसकी

अश्रुत-सी तानमें उसका मन लीन हो गया और नागकी भाँति डोलने लगा। जिस मोहिनीने देव और दानवोंको भी डिगा दिया, उसके आगे बेचारे काककी क्या बिसात? चन्द्र-किरणें, जल-तरंगें, वायुके झकोरे और नौका,—ये सब स्वेच्छानुमार नर्त्तन कर रहे थे। फिर भी काकका हृदय सोई हुई मंजरीके बालोंकी लटें जैसे नाचती थीं, वैसे ही नाचता था।

कुछ देरमें काकको भी निद्रा आ गई। जब वह जागा तब सूर्योदय होनेकी तैयारी थी और मंजरी नौकाकी एक बाजू बैठी पानीमें हाथ डाले पहुँचेसे पानी काट रही थी। सूर्यके इस काव्यत्व-हीन प्रकाशमें काकको मंजरी रातसे भिन्न ही मालूम हुई। रातके समय स्वप्न-सुन्दरीका जो अनुपम सौन्दर्य प्रतीत होता था वही दिनके समय विकासोन्मुख यौवनमें शोभायमान लक्ष्मीका अद्भुत तेज जैसा जान पड़ा। रातको वह रसरूपी पर्वतके शिखरपरसे देख रहा था, इस समय मानो पूज्य-भावके पातालमेंसे देखने लगा।

वह उठा और उसे देखकर मंजरी ज़रा हँस पड़ी। उसके हास्यमें मधुरता थी; परन्तु साथ ही सत्ताशालिनी सम्राज्ञीका गर्व भी था। काकने नौका किनारे लगवाई और दोनों जने उतर पड़े।

" हम लोग कहाँ जा रहे हैं? "

" मेरा विचार साबरमतीके मार्गसे कर्णावती जानेका है। मेरे महाराज वहीं हैं। वे प्रतीक्षा करते होंगे। "

" कितने दिन लग जायँगे? "

" छः-सात दिन लगेंगे। सब जगह युद्धकी तैयारियाँ हो रही हैं और मैं यों ही भटकता फिरूँ, यह कैसे चल सकता है? "

मंजरीने उत्तर नहीं दिया।

" मैं तुम्हें कर्णावतीमें छोड़कर महाराजके पास जाऊँगा। ",

" फिर? "

" जब युद्ध समाप्त हो जायगा, तब लौटकर तुम्हें पाटण ले जाऊँगा। नहीं तो किसीके जरिए गजानन पंडितके पास संदेश भेज दूँगा कि आकर तुम्हें ले जायँ। " इतनेमें ही किनारेसे ज़रा दूर खंडहर-सा बना हुआ महादेवका एक मंदिर दीख पड़ा। उसकी बगलमें एक गाय चर रही थी।

" खड़ी रहो, मैं देखूँ, कोई हो तो कुछ दूधका प्रबन्ध करूँ। "

" चलो, मैं भी चलती हूँ । " कहकर गर्वसे पैर उठाती वनदेवीके समान मंजरी साथ साथ मंदिरमें आई। वहाँ एक वृद्ध ब्राह्मण रहता था। उसने इन दोनोंके लिए दूध और भोजनकी व्यवस्था कर दी ।

" मैं बनाऊँगी, तो तुम खा सकोगे ? "

" हाँ, तुम भी तो ब्राह्मण ही हो न ? " ज़रा हँसते हुए काकने कहा ।

उत्तरमें मंजरी तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने लगी । ब्राह्मणकी जाति जाने बिना उसके हाथका खानेको तैयार हो जाना उसे हलकेपनका चिह्न प्रतीत हुआ ।

" तुम्हारा वेद कौन है ? "　　　　" ऋग्वेद । "

" शाखा ? "　　　　" शाकल । "

मंजरी ज़रा हँसी और नहानेको चली गई । जब वह नहाकर लौटी तब काक लकड़ियाँ बीन लाया था । नहाकर मंजरी जब लौट आई, तब मंदिरके टूटे हुए चबूतरेपर खड़ी होकर सागरमें मिलती हुई साबरमतीका प्रवाह देखने लगी । उसके मुखपर उल्लास प्रसर रहा था ।

" काकभटजी, देखो । " उत्साहसे वह बोली । इतने समयमें उसने अभी ही उत्साह बतलाया था ।

" कैसा सुन्दर है ! मेरे पिता इस समय होते तो पागल हो जाते ! "

" क्यों ? " काककी समझहीमें नहीं आया कि पागल हो जानेकी इस समय कौन-सी बात है ।

" देखो न सरिता कैसी बह रही है ! पुरूरवाका भ्रम कितना ठीक प्रतीत हो रहा है ! " कहकर वह अपने संस्कारयुक्त कोयलके समान स्वरसे बोली—

" **तरंगभ्रूभंगा क्षुभितविहगश्रेणिरसना,**
विकर्षन्ती फेनं...... "*

काव्य और सृष्टि-सौन्दर्यको एकरूप अनुभव करनेसे उसकी आँखोंमें उल्लास उछलने लगा और उसकी चमकती हुई आँखें काकपर पड़ीं । काक ज़रा मूढ़की भाँति उसकी ओर देख रहा था । उसे जीवनमें सृष्टि-सौन्दर्य या काव्यका अध्ययन करनेका अवसर नहीं मिला था । नित्यकर्मके

---

* कालिदासके विक्रमोर्वशीयमें पुरूरवा नदीको भागते हुए देख उसकी उर्वशीके साथ तुलना करते हैं—तरंगरूपी भौंहोंको चढ़ाये हुए, क्षुभित पक्षियोंकी पंक्तिरूपी मेखलावाली फेन (रूपी खिसके हुए वस्त्रको) खींच रही...

आवश्यक श्लोकोंके सिवाय संस्कृत-भाषाके साथ उसका परिचय नाममात्र ही था। अतएव मंजरी क्या कहना चाहती है, इसका केवल तनिक आभास ही उसे हुआ और वह कुछ भी न समझ सका।

मंजरी उसकी अज्ञानताको समझ गई। उसके मुखके उल्लासपर कठोरताका मेघ छा गया। उसके होठ और उसकी नाकपर तिरस्कारके बल पड़ गये।

"तुम्हें संस्कृत नहीं आती?" दाग देनेवाली स्थिरतासे उसने पूछा।

काक लजाकर नीचे देखने लगा। वह भूल गया कि मैं मुंजाल और उदाकी कसौटीपर चढ़ा था। उसने अपनी अल्पताका अनुभव किया और अपनी मूर्खतापर लज्जित हो गया।

"लाटमें क्या ब्राह्मण पढ़ते नहीं?"

"पढ़नेवाले पढ़ते हैं; परन्तु मेरा तो युद्धोंमें ही लालन-पालन हुआ है।"

मानों यह कहती हुई कि मैं तुमसे बहुत ऊँचेपर हूँ, इतनी ऊँचे कि तुम मुझे छू भी नहीं सकते, जरा सीधी होकर वह बोली, "अच्छा, तो तुम नहा आओ, मैं भोजन तैयार करके रखती हूँ।"

काकका स्वाभिमान कुचला जाकर चूर चूर हो गया था, इसलिए जब वह नदीपर नहाने गया, तब रुआसा हो रहा था। इस बालाने उसे स्पष्ट रूपमें दिखला दिया कि वह चाहे जैसा शूर-वीर हो, चाहे जितना कूटनीतिमें चतुर हो फिर भी अल्प और संस्कार-हीन है। उसने आसपास देखा, परन्तु प्रबल वेगसे बहती हुई पंक-पूर्ण नदी, जहाँ तहाँ कुछ वृक्षों और उड़ते हुए सफेद पक्षी, इनके अतिरिक्त वह कुछ भी न देख पाया। उसने निःश्वास छोड़ा, कहाँ मंजरी और कहाँ वह!

काक और मंजरीने भोजन किया और फिर यात्रा आरम्भ की। मंजरी कम बोलती और काककी ओर इस प्रकार गर्व और दयासे देखती, जैसे उसपर कृपा कर रही हो। नन्दी जिस सम्मानसे पार्वतीको देखता है उस सम्मानसे काक उसकी ओर देखता और उसकी ज़रा ज़रा-सी इच्छाको पूर्ण करनेमें अपनी कृतार्थता समझता।

मंजरीका स्वभाव गर्विष्ठ था। उसके संस्कार बहुत शुद्ध और उच्च थे। उसका हृदय स्वच्छ और उसका स्वभाव सरल और आनंदी था। वह अनेक प्रकारकी बातें करती और सुनती। काक अपनी मूढ़तासे घबराकर अधिक

न बोलता था, फिर भी, वह जो कुछ बोलता, उसमें वह तनिक अभिमान और स्नेह-मय कृतज्ञतासे रस लेती।

काकको इतना ही बस था। वह जैसे सातवें स्वर्गमें रहकर समय बिता रहा था। वह राजनीतिक झगड़े-बखेड़ों और युद्धकी बातोंको भूलने लगा। रास्तेमें ठहरते हुए, मुकाम करते हुए, ज्वार-भाटेसे रुकते हुए, हारे-थके वे लोग नवें दिन कर्णावती पहुँचे। वहाँ काक दादाक मेहतासे, जो कर्णावतीमें नियत नागर मंत्री था, मिला। खंभात जाते समय जब वह त्रिभुवन पालसे मिला था, तब दादाकसे भी उसकी भेंट हुई थी। अतएव उसने काकका सत्कार किया। मंडलेश्वर नलकी ओर गये हुए थे। काकने उनके पास जानेकी इच्छा प्रकट की, अतएव काकके लौट आने तक मंजरीको अपने ही यहाँ रखनेका दादाकने आग्रह किया। काकने स्वीकार कर लिया। जब काक पांचालेश्वरकी ओर जानेको तैयार हुआ, तब मंजरीसे मिला। अपने ही मनोराज्यमें रमण करनेवाली मंजरीपर सांसारिक सुख-दुख या वियोग-संयोगका अधिक प्रभाव न होता था। उसने संयत होकर शान्तिसे काकको आशिष दी। जब काक बिदा हुआ, तब उसका हृदय अनिवार्य भावोंसे भरा हुआ था।

पांचालकी ओर त्रिभुवनपाल क्यों गये हैं, यह दादाकको मालूम था। अतएव, पचास घुड़सवार उसने काकको दिये। उनको लेकर काक शीघ्रतासे पांचालेश्वरकी ओर चल दिया।

२०—नवघण रा' का पीछा

काक अपने अनुचरोंके साथ कर्णावतीसे निकला तो गँवाये हुए अव-सरके लिए पश्चात्ताप करने लगा। मंजरीके साथकी यात्रामें उसके हृदयने अवर्णनीय आह्लाद चखा था। फिर भी वह उदाको हरा न सका, ख़तीबको हाथसे खो बैठा; अतएव अब जयदेवको क्या मुँह दिखाएगा, इस प्रकारके अनेक विचारोंसे उसका हृदय तलमलाने लगा। यह तलमलाहट उसने अपने घोड़ेपर निकाली और त्रिभुवनपालकी सेनाको खोजता हुआ वह बड़े वेगसे आगे बढ़ा।

मार्गमें उसने उड़ती हुई अनेक गप्पें सुनीं। किसीने कहा, त्रिभुवनपाल जूनागढ़की ओर गये हैं; किसीने कहा, नवघण मारा गया; किसीने कहा, त्रिभुवनपाल हार गये। काकको यह सब झूठ मालूम हुआ क्योंकि माघ कृष्णा द्वादशीके दिन नवघण अपने सामन्तोंसे पांचालेश्वरमें मिलनेवाला था और इसके पहले ऐसी आशा नहीं थी कि कोई युद्ध आरंभ हो।

ज्यों ज्यों वह नलके निकट आता गया, त्यों त्यों उजड़े हुए गाँव, सेनाके पड़ावके स्थान आदि आगे बढ़ती हुई सेनाके चिह्न दिखलाई पड़े। पर यह सेना किसकी होगी? गुजरातकी या सोरठकी? इस प्रश्नका निराकरण ढूँढ़ता हुआ वह आगे बढ़ा। मार्ग निर्जन था; आस-पासका प्रदेश ऊजड़ था। कुछ देर तक कोई ख़बर न मिलनेके कारण काकको चिन्ता होने लगी।

माघ कृष्णा नवमीके दिन प्रातःकाल एक कुएके निकट काकको दिखलाई पड़ा कि अभी ज़रा देर पहले ही बीस-पच्चीस सवार जल्दीमें विश्राम करके चले गये हैं; और पूछताछ करनेसे मालूम हुआ कि वे सवार पांचालेश्वरकी दिशासे आकर जसदनकी ओर जा रहे थे। काक विचार करने लगा कि इतने थोड़े सवार त्रिभुवनपालके नहीं हो सकते। नवघण रा' सोरठकी ओर लौट जाय, यह भी संभव नहीं। तब यह सैनिक किसके हैं?

काकने पता लगानेके लिए अपने बीस सवारोंको उनके पीछे भेजा और वे कौन हैं, इसका निश्चित उत्तर लानेकी आज्ञा दी। वे सवार गये कि काकने धीमे धीमे अपनी यात्रा भी आरंभ की जिससे पता लगाकर आनेवाले उससे मिल सकें।

सन्ध्या हो गई परन्तु उन सवारोंमेंसे कोई भी नहीं लौटा; अतएव काकको अधिक चिन्ता होने लगी। दिनभरसे कोई समाचार नहीं मिला था। कहीं त्रिभुवनपाल हार तो नहीं गये? इस शंकाका समाधान करनेके लिए सबसे सरल मार्ग पांचालेश्वरकी ओर जाना था। कारण, यह तो मार्गकी परिस्थितिसे स्पष्ट ही ज्ञात हो रहा था कि एक बड़ी सेना उस ओर गई है। काकने अनुमान किया कि वह सेना गुजरातकी ही होनी चाहिए। सूर्यास्त होते ही उसने मशालें जलानेका आदेश दिया और घोड़ेको दौड़ाता हुआ वह आगे बढ़ने लगा। उसके साथी तीसों सवार चुने हुए और होशियार थे। वे भी साहससे नायकके साथ हो लिये।

अचानक घोड़ोंकी टापें सुनाई पड़ीं। कुछ सवार बहुत ही तेजीसे पांचालेश्वरकी ओरसे आते हुए दिखलाई पड़ रहे थे। वह सौ-पचाससे अधिक मालूम हुए। उनकी तीव्र गति अस्वाभाविक अधैर्य प्रकट कर रही थी। काकने तुरन्त मशालोंको बुझानेका आदेश दिया और आनेवाले सैनिकोंको घेर लेनेके लिए अपने सवारोंको दो भागोंमें बाँट दिया। काकको यह स्पष्ट मालूम होने लगा कि द्वादशीके पहले कोई युद्ध अवश्य हुआ है; परन्तु उसका परिणाम क्या हुआ होगा?

अँधेरी रात साँय साँय कर रही थी। इस ओर काकके सैनिक आतुरतासे प्रतीक्षा कर रहे थे। सामनेकी ओर नये आनेवाले बढ़े आ रहे थे। अचानक अन्धकारमें एक घुड़सवारकी परछाई एक ओरकी पहाड़ीपर दिखलाई पड़ी। वह वहाँ ठहर गया। कुछ ही क्षणमें चार, छः, आठ, दस और पचीस घुड़सवार दिखे। प्रतीत हुआ कि वे कोई सलाह कर रहे हैं। वे सबके सब काककी सेनाकी ओर बढ़ आये।

"जय सोमनाथ" का घोष करके काकने घोड़ेको एड़ लगाई। तीसों सवार नंगी तलवारोंसे सामने आते हुए सैनिकोंपर टूट पड़े। नये आनेवालोंके नायकने तलवारके एक चुटीले आघातसे एक सैनिकको समाप्त कर दिया और "जय सोमनाथ" का घोष किया। काक चौंका, उसका हृदय उछल पड़ा। प्रचंड गर्जना करके वह गरज उठा, "जयसिंहदेव महाराजकी जय!" सामनेवाली टुकड़ीने भी इस ही घोषकी प्रतिध्वनि की। प्रत्येकका शस्त्र, प्रत्येकका घोड़ा जहाँका तहाँ पाषाण-वत् निश्चल हो गया। चकमकसे पलीते सुलगाये गये, मशालें जलीं और काक तथा सामनेकी टुकड़ीका नायक घोड़े परसे कूदकर एक दूसरेसे लिपट गये।

"कौन, महाराज?"

"कौन, काक?"

यह नायक मंडलेश्वर त्रिभुवनपाल था।

यह वीर जयदेवका भतीजा, उस समयके वीरशिरोमणि देवप्रसादका पुत्र, मुंजाल मेहताका भानजा, राजमाता मीनलदेवीकी भतीजी काश्मीरा देवीका पति और इस समय लाटका दंडनायक था। 'पाटणका प्रभुत्व' के पाठकोंसे वह अपरिचित न होगा। उस समयके गुजरातमें वह सम्बन्धसे

और शौर्यसे अप्रतिम समझा जानेवाला, नीति और टेकमें रामचन्द्रजीकी उपमा पानेवाला, वीरता और शत्रुका दमन करनेमें अपने परदादा भीमदेव सोलंकीका स्मरण करानेवाला, पाटणकी प्रजाकी आँखोंका तारा था। यह नर-पुंगव शरीरका ऊँचा और ज़रा साँवला था। उसकी प्रचण्ड भुजाएँ और विशाल छाती, उसकी अद्भुत शक्तिकी साक्षी देती थी। उसका रूपवान् मुख और बड़े बड़े भव्य चक्षु क्षण-क्षणमें खिल उठते थे। उसकी नाक, उसके स्वभावके तीव्र, उत्तम, सरल और हठी होनेका भान कराती थी। इस समय मसालोंके प्रकाश और बिना पगड़ीके बिखरे हुए बालोंकी भव्यतामें उसका मुख, श्वाससे फूले हुए नथुने और चमकती हुई आँखें दुर्जय प्रताप प्रकट कर रही थीं।

" इस समय आप कहाँसे ? " काकने पूछा।

" मैं ? तुम खंभातसे आ रहे हो, इसलिए तुम्हें ख़बर नहीं है। जब मैं कर्णावतीसे निकला, तब मुझे ख़बर लगी कि नवघण रा' कृष्णचतुर्थी या पंचमीको ही पांचालमें आ पहुँचा है; यह खबर मिलते ही मैंने तत्काल पांचालपर आक्रमण कर दिया। "

" फिर ? " आतुरतासे काकने पूछा।

" परसों मैंने पांचालको हस्तगत कर लिया और रा' की सारी सेना पकड़ी गई; परन्तु नवघणको अगले दिन विश्वास हो गया था कि पांचालका पतन निश्चित है; अतएव कुछ सवारोंको साथ लेकर वह भाग खड़ा हुआ। यह ज्ञात हुआ कि मैंने तुरन्त उसका पीछा किया। "

" वह पकड़ा नहीं गया ? "

" नहीं भाई। तुम्हारी मशालें देखकर मुझे प्रतीत हुआ कि अब नवघण पकड़ा गया। "

" तो महाराज, वह दूर नहीं जा सका है। "

" क्यों ? "

" आज सबेरे मुझे ऐसा लगा कि जसदनके मार्गसे पैंतीस सवार गये हैं। मैंने उनके पीछे अपने सैनिक भेजे हैं; परन्तु अभी तक कोई ख़बर नहीं आई। "

" अवश्य वह नवघण ही होगा। चिन्ता नहीं, वह आधा दिन ही आगे है! इतना ही न ? तुम्हारे घोड़े कैसे हैं ? " त्रिभुवनपालने पूछा।

" जैसे चाहिए वैसे । "

" अच्छा, तो अब समय गँवानेमें लाभ नहीं। एक अच्छा घोड़ा मुझे दो। मेरा घोड़ा मरणासन्न हो रहा है। " कहकर मंडलेश्वरने अपना घोड़ा बदला।

" महाराज, कहीं जयसिंहदेव न आ पहुँचे हों ? " जब दोनोंके घोड़े आगे बढ़े और उनके अन्य साथी जरा पीछे रह गये, तब काकने पूछा।

" कैसे आ सकते हैं ? और ऐसे समय क्या प्रतीक्षामें बैठे रहा जा सकता है ? "

" तब पांचालमें इस समय कौन है ? "

" मेरा सेनापति । "

काकने जरा खेदसे सिर हिलाया।

त्रिभुवनपालने पूछा, " क्यों ? मैंने पांचाल हस्तगत कर लिया, इससे ईर्ष्या कर रहे हो ? "

" महाराज, आपकी होड़ किसीसे हुई है कि मैं करूँगा ? परन्तु जयदेव महाराज मुझपर क्रोधित होंगे । "

" किस लिए ? "

" एक तो पांचालको अपने हाथों लेनेका सुअवसर निकल गया इसलिए और..."

" और ? "

" और जिस कामके लिए मैं खंभात गया था, वह भी न हुआ, इसलिए।"

" खंभातमें कुछ न कर सके ? " मंडलेश्वरने पूछा।

" किया तो बहुत कुछ, बुढ़ियाने पीसा सारी रात, परन्तु पिसा कुण्डीभर!"

" कुण्डीभर तो हाथ लगा ? और वह कुण्डी कैसी है ? " जरा हँसते हुए मण्डलेश्वरने पूछा। अन्धकार था, अन्यथा काकके मुखपर छाई हुई लज्जाको देखकर मण्डलेश्वर और अधिक हँसते।

" बस, कुछ न पूछिए। आप कविकुलशिरोमणि रुद्रदत्तको पहचानते थे ? "

" हाँ, क्यों नहीं। वह तो गजानन पंडितके मित्र थे ? "

" हाँ, वही। उनकी लड़कीको साध्वी बना रहे थे। "

" अच्छा, उसे उठा ले आये ? "

" जी हाँ। "

"शाबाश ! अच्छा, सब बात कहो।"

घोड़ोंकी तेज़ीमें जिस प्रकार बातें हो सकती थीं उस प्रकार काकने त्रिभुवनपालको अपने खंभातके पराक्रमोंका सारा पुराण कह सुनाया और निवेदन किया कि यदि उसे कुछ हो जाय, तो वे ही मंजरीकी रक्षा करें। त्रिभुवनपालने कुछ मज़ाक़ करते हुए यह स्वीकार कर लिया और दोनों जनें उदा मेहताको किस तरह ठीक किया जाय इसकी योजनाएँ गढ़ते हुए आगे बढ़ने लगे।

प्रातःकाल उन्हें कुछ पता मिला। रास्तेमें मरे पड़े हुए दो-एक घोड़ोंने दिशा सुझाई। कुछ देरमें वे एक तालाबके किनारे आ पहुँचे। वहाँ लड़ाई होनेके चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे और इसपरसे उन्होंने अनुमान किया कि काकके सवारोंसे नवघणकी टुकड़ीका मुकाबिला हुआ होगा। तीन मुर्दे साक्षी दे रहे थे कि लड़ाई हाथोंहाथ तलवार तक आ पहुँची होगी। उन्होंने कल्पना की कि तीन-चार पहर पहले यहाँ लड़ाई हुई होगी।

घोड़ोंकी टापोंके चिह्न देखते हुए, आगे जानेवालोंको पकड़नेके लिए, वे यथासम्भव तेज़ीसे आगे बढ़े। इस प्रकार चार घड़ी बीत गई कि सामने दो रास्ते मिले। एक पथदर्शकने जसदनका रास्ता दिखलाया। इस रास्तेसे बहुत-से घुड़सवार गये थे, अतएव त्रिभुवनपाल उस ही पर बढ़ा। कुछ दूर जानेपर काकने उसे रोका और दूसरा रास्ता, जो सरधारकी ओर जाता था, उस ओर मुड़ा। "महाराज, उस ओर जाना व्यर्थ है।"

"क्यों ?"

"नवघण सरधारके रास्ते गया है।"

"क्यों ?"

"यह देखिए, मालूम होता है इन दो रास्तोंसे लाभ उठाकर बचनेके लिए, नवघणने सरधारका रास्ता पकड़ा है। उसके सवारोंके पदचिह्न जसदनकी ओर हैं, और केवल तीन-चार घोड़े ही सरधारके रास्ते जाते दिखाई पड़ते हैं। हमारे सैनिकोंने भूल की है।"

"हाँ, सचमुच ऐसा ही मालूम होता है।"

"तब, यदि आप आज्ञा दें, तो पाँच सवार लेकर मैं सरधारके रास्ते जाऊँ ?"

"नहीं काक, हम-तुम दोनों चलेंगे," महत्वाकांक्षी मंडलेश्वरने कहा,

"और कहीं वे जसदनकी ओर गये होंगे, तो हमारे आदमी सबको पकड़नेके लिए बस हैं। परन्तु इस प्रकार अकेला हो तो उसे अकेले हाथों मात करनेकी बात ही जुदी है।"

"जैसी महाराजकी आज्ञा।"

त्रिभुवनपालने अपने घुड़सवारोंको जसदनकी ओर भेजा और काक तथा चुने हुए पाँच सवारोंको अपने साथ लिया।

दो-तीन घड़ीकी कठोर दौड़के पश्चात् वे एक पहाड़ीपर आ पहुँचे। पहाड़ीकी चोटीपर पहुँचकर मंडलेश्वरने आवाज़ लगाई, "वह है नवघण!"

२१—रा'नवघण पकड़ा गया

त्रिभुवनपालकी दृष्टि ठीक ही पहुँची थी। आगे दौड़ते हुए घुड़सवारोंमेंसे एक जूनागढ़का रा'नवघण खुद था। नवघणको विश्वास था कि इस बार वह पाटणको अवश्य हस्तगत कर लेगा। जो समाचार उसे मिले थे उनके अनुसार शान्तु मेहता भोगपुरमें थे, त्रिभुवनपाल लाटमें थे, सोरठके सेनापति परशुराम द्वारिकाकी ओर थे और मुंजाल मेहता गये थे तीर्थयात्राको। देसलदेवने सहायताका वचन दिया था। माघ कृष्णा द्वादशीके दिन पांचालेश्वरमें सामन्तोंको एकत्रित करके गुजरातपर टूट पड़ना ही बाकी था। पाटणको हस्तगत करनेके लिए अधीर हुआ नवघण दस दिन पहले ही पांचाल आ पहुँचा। परन्तु सोलंकियोंकी कुलदेवी जागती ज्योति थी। उसने दो व्यक्तियोंको दिव्य चक्षुओंका दान किया, एक मुंजालको और दूसरे, काकको। मुंजाल एकदम पाटण पहुँच गया। उसने परशुरामको नवघणका पीछा करनेके लिए भेजा और देसलदेवको भोगपुर रवाना किया। काकने कृष्णदेवका सन्देश जान लिया, देसलदेवको झूठी खबर दे दी और त्रिभुवनपालको समय रहते पांचाल भेज दिया। परिणामस्वरूप पांचालका पतन हुआ और नवघणको जूनागढ़का मार्ग खोजते हुए प्राण लेकर भागना पड़ा।

उन चारों सवारोंको देखते ही काक और त्रिभुवनपालने सैनिकोंसहित

बिना श्वास लिये पीछा किया। वे पहाड़ीसे नीचे उतरे कि आगे दौड़ते हुए सैनिकोंका दीखना बन्द हो गया; परन्तु उनके घोड़ोंकी टापें सुनाई पड़ती रहीं। त्रिभुवनपालने अधीरतासे घोड़ेपर अत्याचार किया और इतना तेज न चल सकनेके कारण एक सवारका घोड़ा तो ठोकर खाकर भूमिपर ढेर हो गया।

प्रत्येक पलका मूल्य युगके बराबर था। त्रिभुवनने और काकने गिरते हुए सवारकी ओर देखा तक नहीं; केवल अपने घोड़ेको और भी ज़ोरसे एड़ लगाई। चारों पैरों परसे उछलते हुए घोड़े शरकी शक्तिसे आगे बढ़ने लगे। अभी घंटाभर भी न बीता होगा कि रास्तेमें एक मरणासन्न घोड़ी और एक बेसुध सवार पड़ा हुआ मिला। नवघण रा'का एक साथी गिर गया था।

" काक, तुम्हारा घोड़ा कैसा है ? "

" कोई चिन्ता नहीं, परन्तु हमारे सवार पीछे रहने लगे हैं। "

" हर्ज नहीं, आगे बढ़ो। "

सारे प्राण उनके कान और एड़ियोंमें आकर अटके हुए थे। आगे दौड़ते हुए घोड़ोंकी टापें निकट आती सुनाई पड़ रही थीं और पीछेसे घोड़ोंकी आवाज़ सुनकर आगेवाले अधिक तेज़ी दिखा रहे थे। शिकारी और शिकार दोनों आगे बढ़ रहे थे, एक मारनेकी आकांक्षासे और दूसरा मरनेके भयसे।

त्रिभुवनपालका एक और सवार गिर पड़ा। आगे जानेवालोंके तीन सवार थे, ये लोग पाँच थे। घोड़ोंमें भी सवारोंका साहस और बल आ गया था। वे जानवर नहीं थे पर जीवित गोफणकी तरह आगे बढ़ते थे। उन्होंने जंगलको पार किया।

सामनेके खुले मैदानमें उन्होंने तीन सवारोंको भागते देखा। त्रिभुवनपाल और काकके घोड़े रक्तके प्यासे होकर उनके पीछे पड़ गये।

" महाराज, आज्ञा हो तो बाण चलाऊँ ? अब पहुँच जायगा। "

" नहीं, कहीं ऐसा न हो कि नवघणको जा लगे और वह नीचे आ रहे। शत्रुके प्राण लेनेसे क्या लाभ। उसे पकड़ना चाहिए। " हठीला राजपूत बोला।

केवल त्रिभुवन और काक दो ही आगे बढ़े। उनके सवारोंके घोड़े ज़रा पीछे रह गये थे। नवघणके सवारों और इन दोनोंके बीचका अन्तर कमसे कम होने लगा। अचानक मालूम हुआ कि आगे दौड़ते हुए सवारोंने कुछ

निश्चय किया है। दो सवारोंने अपनी गति धीमी कर दी और एक आगे भागा।

काकने कहा, " महाराज, ये दो जने हमें रोकनेके लिए आ रहे हैं और वह नवघण भागा जा रहा है ! "

" चिन्ता नहीं। "

" देखिए, देखिए, वह बाण साध रहा है। " काकने कहा। सवार केवल पच्चीस क़दम दूर रह गये। देखते देखते एक बाण आया और त्रिभुवनपालके कन्धेपर लगकर दूर जा गिरा। मण्डलेश्वरने सिंहगर्जना की और तलवार निकालकर दोनों सवारोंपर आक्रमण किया। काक ऐसे समय फिरसे सलाह लेनेके लिए ठहरनेवाला न था। उसने अपना चाप चढ़ाया और त्रिभुवनपालको तीरसे घायल करनेवालेके घोड़ेको जमीनपर गिरा दिया। उसने गिरते गिरते निराशाके जोशसे खुली तलवार काकपर फेंकी। काक नीचे झुक गया और तलवार सिरपरसे होकर निकल गई। दूसरे ही क्षण त्रिभुवनके भालेने दूसरे सवारको बेधकर भूमिपर गिरा दिया।

इतना कार्य होते ही काक और त्रिभुवनके घोड़े इस प्रकार उछल पड़े जैसे घिरे हुए बाघ बिगड़कर पिंजरेसे बाहर कूद पड़ते हैं। सन्ध्या होनेमें अब थोड़ी ही देर थी। नवघणके घोड़े और उनके घोड़ेके बीचका अन्तर बढ़ गया था। इस अन्तरको कम करनेके लिए उत्सुक वीरोंने यथासम्भव शीघ्रता की। अब केवल घोड़ेके पैरोंपर ही नवघणका भाग्य आकर अटक गया था।

अचानक काकने और त्रिभुवनने सामने एक छोटा-सा नाला देखा और हर्षसे वे चिल्ला उठे। उन्हें विश्वास हो गया कि अब नवघण पकड़ा जायगा; परन्तु उस सोरठी योद्धा और उसकी घूँघरोंवाली घोड़ीको वे पहचानते न थे। वह एक क्षणके लिए नालेके पानीके पास थमी और दूसरे ही क्षण नवघणकी एड़के प्रतापसे जैसे उसके दो पंख लग गये और हवामें उड़कर वह नालेके उस पार जा पड़ी। त्रिभुवन और काक दोनों स्तब्ध रह गये।

परन्तु दोनोंमेंसे कोई पीठ फेरनेवाला न था। उन्होंने भी एड़ लगाई। दोनों हवामें उड़े और उस पार पहुँच गये। काकने पीछे घूमकर देखा और उसके प्राण उड़ गये। त्रिभुवनका घोड़ा इस पार अवश्य आ पहुँचा था, परन्तु कूदते हुए दो-तीन हाथ पीछे रह गया। घोड़ेके पिछले पैर कीचड़में धँस गये और मंडलेश्वर आधे घोड़ेके नीचे आ रहे।

त्रिभुवनपालने ज़ोरसे आवाज़ दी, " काक, मेरी चिन्ता न करो। नवघण निकल न जाय ! "

काक समझ गया कि त्रिभुवनपालको कोई अधिक चोट नहीं आई है। अतएव उसने उसे कीचड़में ही पड़ा छोड़, अपने घोड़ेको चारों पैरोंसे हवामें उड़ा दिया। नवघणने भी पीठ फेरकर नहीं देखा। पीछे एक आदमी है या दस-पाँच हैं, बिना देखे ही वह अपनी घोड़ीको दौड़ाता चला गया। घड़ी बीती, दो घड़ी बीतीं; दोनोंका श्वास फूलने लगा। बीचमें अन्तर केवल पचीस हाथका था; परन्तु जब तक नवघणकी घोड़ीका पानी कम न हो, तब तक वह हजार योजनका था।

कुछ देरमें एक ऊँचा टीला सामने आ गया। यह विचार करके कि उसपरसे जानेमें घोड़ी अधिक थक जाएगी, नवघणने उसे उसकी बगलसे घुमाया। आगे नवघण था और पीछे काक। इस प्रकार दोनोंने टेकरीकी प्रदक्षिणा आरम्भ कर दी। टीलेके पीछे अभी वे पहुँचे भी न थे और देख भी नहीं पाये थे कि आगे क्या है, क्या नहीं, कि दो सौ सैनिक चिल्लाते हुए उठ खड़े हुए और दोनोंको चारों ओरसे घेर लिया।

टीलेकी आड़में किसी सेनाका पड़ाव था। बगलमें पाँच-छः सौ साँढ़नियाँ बँधी हुई थीं और दो हजार सैनिक भोजन बनानेकी तैयारी कर रहे थे। नवघण और काक दोनोंका श्वास रुक गया। दोनोंने समझा कि यह विरुद्ध पक्षकी सेना है; परन्तु जरा स्वस्थ होते ही काकको धीरज हुआ। इस पड़ावके बीचोंबीच एक ऊँचे झंडेपर पताका फहरा रही थी और सन्ध्याका समय हो गया था, फिर भी उसपर पाटणका राज-चिह्न काकको स्पष्ट दिखलाई दे गया। एक ज़रीसे बुना हुआ मुर्गा, जिसपरसे जयसिंहदेव भविष्यके इतिहासमें ताम्रचूड़-ध्वजके नामसे अमर होनेवाले थे, सन्ध्या-वायुकी लहरियोंमें लहरा रहा था।

काककी परीक्षा सच्ची थी। इस सेनाका नायक सज्जन मन्त्रीका बड़ा पुत्र और सोरठका सूबेदार भटराज परशुराम था। यह मुंजाल मेहताका प्रताप था कि परशुराम अपनी सेना लेकर यहाँ पड़ा हुआ था। काकको नवघणका गुजरातपर आक्रमण करनेका संकल्प मालूम हुआ, इसके पहले ही राजनीतिज्ञ-शिरोमणि महा अमात्य तीर्थाटनमें भी नवघणपर नजर रख रहे थे और

जैसे ही नवघणकी हलचलका पता पड़ा कि उन्होंने परशुरामको उसका पीछा करनेका आदेश भेज दिया। उसी आदेशके अधीन होकर भटराज मंज़िल-दर-मंज़िल पांचालकी ओर जा रहा था और रास्तेमें ज़रा विश्राम कर लेनेके लिए इस समय उसने यहाँ मुकाम किया था।

सैनिक काक और नवघण दोनोंको पकड़ कर भटराजके पास ले गये। वहाँ पहुँचते ही मुंजालका आदेश लेकर आनेवाले दामा चारणने रा'नवघणको पहचान लिया।

"अरे, शाबाश है, मेरे जूनागढ़के धनी, शाबाश।" वह भयंकर कटाक्ष-पूर्ण उच्च स्वरमें बोल उठा, "कहाँ गये तुम्हारे हिनहिनाते घोड़े और कहाँ गये तुम्हारे कवचधारी सवार?"

परशुरामके आसपास बैठे हुए मनुष्य खिलखिलाकर हँस पड़े और खड़े होकर निकट आ गये।

नवघणने चारणके शब्द सुनकर होठ चबा लिये। उसकी आँखोंसे अग्नि निकलने लगी। उसकी सफ़ेद दाढ़ीसे उसका क्रोधपूर्ण मुख अनुपम गौरवके साथ चमक उठा। वह एक अक्षर भी न बोला।

काक बोल उठा, "महाराज, मुझे किस लिए क़ैद किया है? मैं तो मंडलेश्वर महाराजका सुभट हूँ।"

"मंडलेश्वर?" परशुरामने कठोरतासे पूछा।

"मंडलेश्वर त्रिभुवनपाल महाराज। आपको खबर न होगी कि मंडलेश्वर महाराजने पांचालको हस्तगत कर लिया है और वे इन रा'नवघणका पीछा कर रहे थे। मैं भी उन्हींके साथ था।"

कठोर निश्चलतासे परशुराम उसके सामने देखता रहा। कहा, "पर मैं कैसे मानूँ?"

"आप पांचाल जायँगे, तो मालूम हो जायगा।"

"पांचालमें कौन है?"

"महाराज जयसिंहदेव।"

भटराजके होठपर ज़रा बल आ गये, जैसे काककी बातको सही नहीं माना हो।

"दोनोंको साँढ़नीपर बाँध लो और चलो अब कूच करें।" कहकर वह घूमा और उसने अपने भटोंको आदेश दिया।

"मुझे कैद कर रहे हैं? देखिए, पछताइएगा!" काकने दाँत किच-किचाकर कहा।

बिना कुछ बोले ही परशुराम चला गया और मूछें चबाता हुआ काक नवघणके साथ साँढ़नीसे बाँध दिया गया।

२२–मंडलेश्वरकी खोजमें

जब परशुरामकी सेनाने पांचालका मार्ग लिया, तब काकने भटराजका ध्यान खींचा कि त्रिभुवनपाल कुछ कोसकी दूरीपर पड़े हुए हैं। परशुरामने काकको नवघणका अनुचर समझा, अतएव उसकी बातको कल्पित समझकर दूसरा ही रास्ता पकड़ लिया और मंडलेश्वर महाराज असहाय अवस्थामें पड़े रह गये। सेना ज्यों ज्यों आगे बढ़ी, त्यों त्यों नई-पुरानी बातें मालूम होती गईं और आखिर पांचालके पतनकी बातपर विश्वास होनेपर परशुरामने अपनी सेनाको टुकड़ियोंमें बाँट दिया और भागनेवाले शत्रुओंको पकड़नेके लिए चारों ओर रवाना कर दिया।

काक मन ही मन विचार करने लगा कि वह इस प्रकार बँधकर पांचाल पहुँचेगा, तो बेचारे परशुरामका क्या हाल होगा! तीसरे दिन पांचालसे निकली हुई टुकड़ी आ मिली और उसे ख़बर मिली कि जयसिंहदेव महाराज वहाँ आ पहुँचे हैं। काकने यह देखनेका बहुत प्रयत्न किया कि इस टुकड़ीमें उसका कोई परिचित है या नहीं; किन्तु उसकी साँढ़नी सबसे पीछे थी, अतएव वह किसीको न देख सका। कुछ ही क्षण बीते कि एक सुभट उसे भटराजके पास ले जानेको आया।

जब काक परशुरामके पास पहुँचा, तब उसके पास एक वृद्ध योद्धा बैठा हुआ था और कुछ मनुष्य ज़रा दूर खड़े हुए थे। परशुरामने उसे कठोर दृष्टिसे देखा।

"तुम कहते हो कि तुम मंडलेश्वर महाराजके साथ थे?"

काकको इस कठोरतासे क्रोध आ गया। वह अपने मनको रोककर कुछ क्षण भटराजकी ओर तिरस्कारसे देखता रहा।

" जब मैंने कहा था, तब आपको सुननेकी परवाह नहीं थी; अब मुझे कहनेकी परवाह नहीं है । " काकने कहा ।

परशुरामकी आँखें क्रोधसे भभक उठीं । कठोरतासे दबे हुए उसके होठ ज़रा काँपे । उसका हाथ तलवारकी ओर गया । उस बूढ़े सुभटके पीछे दो-एक जनें बैठे थे, उनमेंसे किसीने उससे कुछ कहा । अतएव वह बीचमें पड़कर बोला, " तुम कौन हो, काक भट ? "

काकने गौरवसे मस्तक हिलाकर हामी भरी ।

" त्रिभुवनपाल महाराज कहाँ हैं ? "

काक कुछ न बोला ।

" हम उन्हें खोजनेको निकले हैं, वे कहाँ हैं ? "

" मुझे छोड़ दो । मैं खोज निकालूँगा । उनके मित्र और सुभट होनेके नाते यह अधिकार मेरा है । "

सत्तापूर्ण स्वरमें परशुरामने कहा " यह नहीं हो सकता । यह कौन है, मैं नहीं जानता । केवल इतना जानता हूँ कि रा'नवघणके साथ यह सोरठकी ओर भागा जा रहा था । महाराजकी आज्ञाके सिवा मैं इसे नहीं छोड़ सकता । "

" परन्तु महाराज, " उस वृद्ध योद्धाने कुछ कहना चाहा ।

" परन्तु-बरन्तु कुछ नहीं । मेरा शासन तुमने सुन लिया बहादुर ! ले जाओ कैदीको फिर अपनी जगह । " भटराजने काकको फिर ले जानेका आदेश किया ।

काकको जब फिर ले जाया गया, तब वह मूछोंके भीतर मुस्करा रहा था । उसे केवल यही चिन्ता थी कि त्रिभुवनपाल कहाँ पड़े होंगे ।

रात हुई । साँढ़नीसे बँधा हुआ काक आधा जाग रहा था । अचानक उसने सुना कि साँढ़नीके पास पड़े हुए सैनिक बैठकर किसीसे धीरे धीरे बातें कर रहे हैं । कान फड़फड़ाकर काक जाग गया ।

" महाराजकी कड़ी आज्ञा है । " एक सैनिक बोला ।

एक आवाज़ आई । यह आवाज़ उस वृद्ध योद्धाकी थी । " पागल, तू मुझे पहचानता नहीं ? मुझे जयसिंहदेव महाराजने भेजा है । इस काक भटको साथ न ले जाऊँ, तो मंडलेश्वर महाराजका पता लगेगा कैसे ? "

" परन्तु भटजी, इस प्रकार मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ? भटराज तो हमारा सिर ही उड़ा देंगे । "

" नहीं छोड़ोगे तो कल सबेरे जयसिंहदेव महाराज तुम्हारा सिर उड़ा देंगे।"

" बापजी, यह सब हम नहीं जानते। हम तो अपने नायकको जानते हैं। इन्हें छोड़ दें, तो हम कहाँ जायँ ?"

" हमारे साथ मंडलेश्वर महाराजको खोजने।" उस वृद्धके साथ खड़े हुए एक योद्धाकी आवाज़ आई। काक चौंका। वह आवाज़ किसी परिचित स्त्रीकी थी।

" तुम घबड़ा किसलिए रहे हो ? मैं साथ हूँ न। मुझे नहीं पहचानते ?" कहकर उसने सिरपरका साफ़ा अलग कर दिया। " मैं मीनलदेवीकी भतीजी, मुंजाल मेहताकी भानेजबहू हूँ। मेरे साथ चलो। किसमें साहस है कि तुम्हारा बाल भी बाँका कर सके ? बोलो, किसकी आज्ञा मानोगे ? काश्मीरादेवीकी या परशुरामकी ?" सादे धीमे स्वरमें किन्तु ओजस्वी उच्चारणसे पुरुष-वेशमें सुसज्जित काश्मीरादेवीने पूछा। चित्रवत् खड़े हुए सैनिक कुछ बोल न सके। उसने साँढ़नीके पास जाकर काकके बन्धन अपनी तलवारसे काट डाले।

काक उठ खड़ा हुआ और उसने काश्मीरादेवीके पैर छुए, " देवी, आप यहाँ ?"

" तुम्हारे मंडलेश्वर कहाँ हैं ?"

" रा'नवघणके पीछे घोड़ा दौड़ाते हुए सरधारके रास्ते कीचड़में फँस गये थे। स्वस्थ हैं। कोई चोट नहीं आई है। मैं साथ ही रहता; परन्तु उन्होंने मुझे रा'नवघणका पीछा करनेकी आज्ञा दी थी।"

" अच्छा, चलो। मेरी साँढ़नियोंको देर हो रही है।" कहकर काश्मीरा देवी सिरपर साफ़ा बाँधते हुए आगे आगे चली और वे तीनों सैनिक, वृद्ध योद्धा तथा काक उसके पीछे पीछे चलने लगे।

कुछ देरमें वे छावनीसे बाहर आये, कुछ दूर बँधी हुई साँढ़नियोंको कसा और फिर तेज़ीसे वे सरधारके रास्ते चल पड़े। काश्मीरा देवी, काक और उस वृद्ध योद्धाके साथ साँढ़नीपर बैठी थी। उसने काकसे आरंभसे अंत तक सारा इतिहास सुनानेको कहा। काकने सब सुनाया और पूछा, " परन्तु देवीजी, इस वेशमें कैसे ?"

" तुमने जयदेव महाराजको ख़बर दी थी, उसके अनुसार पाटणसे

वे चुपचाप कुछ सैनिक साथ लेकर निकले। मोढेरासे भी कुछ सैनिक लिये; परन्तु यहाँ आकर तो महाराजके क्रोधका पार न रहा।"

"क्यों ?"

"क्यों कि उन्हें पांचाल हस्तगत करनेका यश न मिला। तुमपर तो बहुत ही क्रोधित हैं, तुम्हें ख़बर है ?"

"क्या ?"

"इस समय परशुराम तुम्हें पांचाल ले गये होते तो तुम हाथीके पैरों तले होते। महाराज कहते हैं कि तुम मंडलेश्वरको यश प्राप्त करानेके लिए पहले ही ले आये।"

"यह भी ठीक है!"

"और तुम्हारे मंडलेश्वरने पांचाल हस्तगत कर लिया है, इससे वे मुझपर भी क्रोधित हुए और आज्ञा दी कि उन्हें खोजने भी किसीको न भेजा जाय। जयदेवको भी अब राजमद चढ़ गया मालूम होता है।"

"इसीलिए तुम इस वेशमें मंडलेश्वर महाराजको खोजने निकली हो ?" काश्मीरादेवीकी बुद्धि और साहसपर निछावर होकर काकने पूछा।

"तब और क्या करती ?" काश्मीरादेवीने कहा।

रात और दिन मंजिलोंपर मंजिलें तय करते हुए वे लोग वहाँ पहुँचे जहाँ सरधारके रास्तेमें त्रिभुवनपालको कीचड़में गिरते हुए काकने देखा था। बड़ी कठिनाईसे पैरोंके चिह्न देखते, पूछ-ताछ करते और ठोकरें खाते हुए आखिर पता लगाकर वे लोग पासके एक गाँवमें एक ब्राह्मणके यहाँ मंडलेश्वरसे मिले। काकने पहली ही बार मंडलेश्वर और काश्मीरादेवीको एक साथ देखा और दोनोंमेंसे कौन अनुपम है, इसका निश्चय करनेमें वह असमर्थ हो गया। काकको वे लोग अपना कुटुम्बी-सा समझते थे, अतएव गाढ़ स्नेहके उल्लासोंका अनुभव करते हुए उन्होंने कुछ देर विश्राम किया और फिर पांचालकी ओर चल दिये।

२३—दो योद्धा

वे लोग निर्विघ्न पांचाल पहुँच गये। पहुँचनेके पहले ही उन्हें ख़बर लग गई थी कि पांचालमें रा' नवघणके पहुँचनेके पहले ही पाटणसे मुंजाल मेहता

और खंभातसे उदा वहाँ आ पहुँचे हैं। रा' नवघणको यह दंड दिया गया था कि अपने शस्त्र डालकर, मुखमें तिनका लेकर जयदेव महाराजसे क्षमा-याचना करे। असहाय नवघणने ऐसा ही किया; अतएव खंडनी लेकर वह छोड़ दिया गया और सोरठपर पुनः शासन स्थापित करके मुंजाल और उदाके साथ जयदेवने पाटणकी ओर प्रयाण किया। इन सब उड़ती हुई ख़बरोंमें सत्य क्या है, इसका निर्णय वे नहीं कर सके।

पांचालके दरवाजेमें प्रवेश करते ही त्रिभुवनपालने अपना परिचय दिया और दरवानको लेकर परशुरामके निवासपर जानेकी इच्छा प्रकट की। दो दरबान रास्ता दिखानेके लिए आगे हो लिये।

परशुरामकी हवेलीपर पहुँचनेसे पहले बाज़ारसे जाते हुए एक मनुष्यने काकको पहचाना और कहा, "अरे यह तो उस नवघणका साथी है जो रातमें भाग गया था।" इन शब्दोंने कई लोगोंका ध्यान खींच लिया और कुछ लोग पीछे हो लिये। काक इस खलबलीका कारण जान गया; परन्तु साथमें मंडलेश्वर थे, अतएव वह निश्चिन्त था।

हवेलीके आगे वे लोग साँढ़नियोंसे उतरे और दोनों दरबान भटराजको ख़बर देने दौड़े। द्वारमें ज्यों ही त्रिभुवनपालने प्रवेश किया कि एक सैनिकने भालेको आड़ा रखकर उन्हें रोक दिया। मंडलेश्वरका उग्र स्वभाव भभक उठा। उनकी आँखोंमें बिजली चमक उठी। उन्होंने तुरन्त तलवार निकाली और भालेके दो टुकड़े कर दिये।

"देवप्रसाद सोलंकीके पुत्रको रोकनेका साहस करता है?" उसने गर्जना की। सैनिक घबड़ाया। ऐसे वेशमें, इतने-से मनुष्योंके साथ लाटका दंडनायक यहाँ आये, इसपर उसे विश्वास ही नहीं हुआ। फिर भी वह चुप हो गया। केवल रोकनेका कारण बतानेके लिए काककी ओर अँगुलीसे संकेत किया।

"यह मेरा मित्र है। किसका साहस है कि इसको छुए?"

"महाराज, क्षमा कीजिए, यह साहस मुझमें है।" इस तरह शान्तिसे कहता हुआ परशुराम त्रिभुवनपालके स्वागत-सत्कारके लिए बाहर आया। क्षणभर जैसे चमकती हुई दो तेज़ तलवारें आपसमें भिड़ गई हों, इस प्रकार त्रिभुवनपालकी ज्वलन्त आँखोंका प्रतापी तेज और परशुरामके स्थिर नयनोंका

शान्त, निश्चल, सत्तादर्शक तेज भिड़ गया। दोनों प्रचण्ड थे। दोनों कवच और शस्त्रोंसे सज्जित थे, दोनोंकी मुख-मुद्रा तेजस्वी थी।

" परशुराम, तुम मुझे क्या समझते हो ? " सिंह-नाद करके क्रोधसे सुर्ख हुए त्रिभुवनपालने पूछा। उसके हाथकी नंगी तलवार काँप उठी। उसके अनुचरोंने भी तलवारपर हाथ रखा।

सामने परशुराम शान्तिसे, सम्मान-पूर्वक निर्भय खड़ा रहा। कहा, " अन्नदाता, मैं जानता हूँ कि आप दसों दिशाओंके दुश्मनोंका दर्प हरनेवाले गुजरातके वीर-शिरोमणि हैं। "

इन शब्दोंसे त्रिभुवनपालका क्रोध ज़रा शान्त हुआ।

" इसीलिए ऐसा आदर कर रहे हो ? यहाँ तो पाटणके शासनकी कोई गणना ही नहीं है। "

" गणना है, इसीसे ऐसा आदर कर रहा हूँ। "

" क्यों ? "

" भट्टार्क जयदेवमहाराजकी आज्ञा है। " परशुराम शान्तिसे बोला।

" क्या ? "

" आपके साथ यह जो मनुष्य है..."

" काक भट ? " त्रिभुवनपालने पूछा।

" जी हाँ, यह रा'नवघणका मित्र है और मेरे पाससे छूटकर भाग गया है। "

" तो यह सब भ्रम है। मैं और यह रा'नवघणका पीछा कर रहे थे। रा'को पकड़ते हुए इन्हें भी तुमने पकड़ लिया और मैं कहाँ पड़ा हुआ था, यह जाननेके लिए मेरी—काश्मीरादेवी—इन्हें तुम्हारे पाससे छुड़ाकर ले गई।" कहकर मंडलेश्वरने काश्मीरादेवीकी ओर दृष्टि की। परशुराम पुरुष-वेशमें खड़ी काश्मीरादेवीको पहचानकर ज़रा अस्वस्थ-सा हो गया। लज्जाकी लालीसे छाया हुआ मनोहर मुख उसने देखा और अपने अविनयको याद करके हाथ जोड़ लिये। " महाराज, देवीजी, मुझे क्षमा कीजिए; परन्तु इन भटको क़ैद करना होगा। "

" क्यों, अब क्या है ? " काश्मीरादेवीने पूछा।

" महाराजकी कड़ी आज्ञा है। इन्होंने जाकर खंभातमें बड़ा षड्यन्त्र रचा था। "

" किसने कहा ? " त्रिभुवनपालने पूछा ।

" उदा मेहता फ़रियाद लाये थे । वे कहते थे कि इन्होंने नेतृत्व करके यवनोंके घर-बार जला डाले हैं । इसके लिए महाराज इन्हें प्राण-दण्ड देने-वाले हैं । " त्रिभुवन, काश्मीरा और काक तीनोंने एक दूसरेकी ओर देखा । इस बातका मूल क्या है, यह तीनों जानते थे । उन्हें विश्वास हो गया कि यह बातका बतंगड़ उदा मेहताने ही बनाया होगा । आखिर त्रिभुवनपाल ज़रा हँस पड़े ।

" परशुराम, तुमने कभी मुझे असत्य बोलते सुना है ? "

" नहीं महाराज ! "

" तब मेरी बात मानो । इस बातमें गूढ़ अर्थ छिपा है और मैं जब पाटण जाकर जयदेव महाराजसे मिलूँगा, तब सब ठीक हो जायगा । पहले यह कहो कि यहाँ क्या क्या हुआ और फिर हमें पाटण जाने दो । "

" सुखसे महाराज । परन्तु काक भटके लिए पच्चीस सवार साथ भेजने पड़ेंगे । "

" अब तक विश्वास नहीं है ? "

" महाराज, आज्ञा तो आज्ञा ही है । आपका वचन है, अतएव इन्हें बाँधनेकी जरूरत नहीं है । अब आप अन्दर पधारिएगा? देवीको भी विश्रामकी आवश्यकता होगी । "

" तुम्हारा यह आदर-सत्कार देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम विश्राम न करने दोगे । " काश्मीरादेवीने हँसते हुए कहा ।

" अब देखो काकभट, तुम भी राज-सेवक हो । आज्ञा पालन करते हुए यदि मुझसे अविनय हुआ, तो क्षमा करोगे । " कहकर वह तीनों जनोंको अन्दर ले गया । काकका हृदय अचानक जैसे चिर गया । उसके हाथसे जो खतीब निकल गया था, उसका लाभ उठाकर उदाने यह सारा चक्र रच डाला था ।

सब कार्योंसे निवृत्त होकर मंडलेश्वरने पांचालमें क्या हुआ, इसका परशुरामसे सारा हाल-चाल पूछा ।

" महाराज, मैं रा'नवघणको लेकर पांचाल आया, उसके पहले ही पाटणसे मुंजाल फूफा यहाँ आ पहुँचे । "

" ऐं ! "

" उन्हें सब खबर थी। मैं सब समाचार दिया करता था।" मंडलेश्वरने काककी ओर देखा। काकने भी निःश्वास छोड़ा। उसने कितनी होशियारी दिखलाई पर जहाँ तहाँ मुंजाल मेहता आगे ही रहे।"

" और खंभातसे उदा मेहता आये।"

" फिर ?"

" नवघणसे दाँतोंमें तिनका लेकर क्षमा-याचना कराई और खण्डणी लेकर मुक्त कर दिया। अब वह जूनागढ़ जाकर जयदेव महाराजके सामन्तकी भाँति राज करेगा।"

" और हमारे देसलदेवका भी कुछ हाल मालूम हुआ ?"

" जी नहीं, वह तो शान्तु मेहताके साथ है।"

" ऐसा ? तब मालवाके सेनापतिका क्या हुआ ?"

" उसके साथ तो सन्धि हो गई। शान्तु मेहता उबकको लेकर होली तक पाटणमें आ पहुँचेंगे।"

" यह सन्धि तो व्यर्थ की गई।" काश्मीरादेवीने कहा, " नहीं तो उसे रक्तकी धाराओंसे होली खिलाई जाती।"

मंडलेश्वरने पूछा " परन्तु उदा मेहता पाटण कैसे गये ? वे कुछ व्याकुलसे हो रहे थे न ?"

" व्याकुल तो बहुत अधिक दिख रहे थे, परन्तु करें क्या ? मुंजाल फूफाको तो जानते हो न ? उदा मेहताको खबर नहीं थी कि वे आनेवाले हैं। इसीलिए वे यहाँ आ गये अन्यथा आते ही नहीं। और आये, इसलिए फँस गये। और मनसे या बेमनसे उबकका अतिथि-सत्कार करने पाटण जाना पड़ा।

मंडलेश्वरने कहा, " काक, तुम्हें सावधान हो जाना चाहिए, तुम्हारा हार्दिक मित्र आगे गया है।"

" कोई हर्ज नहीं," काकने साहस दिखलाकर कहा; परन्तु, उसका हृदय धक-धक कर रहा था कि उसका अब क्या होगा ?

एक रात विश्राम करके वे सब परशुरामसे छुट्टी लेकर पाटणकी ओर रवाना हुए। भटराजने उनके साथ पच्चीस साँढ़नियाँ कर दीं और उसके नायकको गुप्त रूपसे आज्ञा दे दी कि यदि काक भागनेका प्रयत्न करे, तो उसे समाप्त कर देना।

दूसरा खण्ड

१—सेनापति उबक

फाल्गुन सुदी तेरसके प्रातःकाल पाटणका रंग कुछ न्यारा ही था। प्रत्येक राजमार्ग नगर-जनों और राज-पुरुषोंसे, प्रत्येक झरोखा और अटारी हँसतीं और नयन-बाणोंकी वर्षा करती हुई सुन्दरियोंसे, और प्रत्येक चबूतरा नई पिच-कारियोंकी परस्पर तुलना करते हुए बालकोंसे भर रहा था। मान त्याग कर गजेन्द्र तेज चालसे जा रहे थे। मनचले सैनिक कठोरता त्याग कर, गलेमें पुष्पमाला डाले, मूँछोंपर ताव दे रहे थे। मन्त्रियोंकी मुख-मुद्राएँ त्रासदायी गाम्भीर्य छोड़कर हास्य-विनोदमें लीन हो रही थीं।

पाटणने महोत्सव प्रारम्भ किया था। आज मालवेका सेनापति उबक शान्तु मेहताके साथ सन्धि करके पाटणके अतिथि-सत्कारका स्वाद चखने आ रहा था और पाटणके बाल-राजाने अतुल पराक्रम दिखलाकर सोरठके रा' पर पूर्वजोंको भी दुर्लभ अपूर्व विजय प्राप्त की थी। पट्टणियोंका भय भाग गया था और गर्वका पार न रह गया था। और फिर यह अवसर तो अनुपम ही था। होलीके लिए केवल दो दिनकी देर थी। मदनदेवकी पूजा करनेके लिए उत्सुक बने हुए रसिक पुरुष और रसिका ललनायें वसन्तोत्सव आरम्भ करनेके लिए मानों एक पैरपर खड़ी थीं और अपने मनोंको उसके लिए अनेक प्रकारसे उत्तेजित कर रही थीं।

एक महीने पहले पाटण भयंकर रूपसे शस्त्र-सज्जित था, परन्तु इस समय प्रफुल्ल मौजी-सा बन गया था। युद्धकी कठोरता भूलकर पट्टणी लोग स्वच्छन्द आह्लादका अनुभव कर रहे थे।

भीमनाथके घाटपर राज-पुरुषोंका समूह एकत्र था। भीमनाथ महादेवके मन्दिरमें उबकका स्वागत-सत्कार करनेके लिए आज एक बैठक की गई थी और इस अवसरके अनुकूल नये नये भड़कीले वस्त्र परिधान कर सभी सामन्त, मन्त्री और सेठ-साहूकार आ रहे थे। कुछ दूरीपर उबक और मंत्रियोंको लौटा ले जानेके लिए लाकर खड़े किये हुए हाथी अधीरतासे झूम रहे थे।

ऐसे अवसरपर पाटण-निवासियोंका गर्व हृदयमें समाता न था। अपने महापुरुषोंको देखकर प्रसन्न होना, उनके गौरवको देखकर ही गौरवान्वित होना, महाप्रजा होनेका यह मन्त्र पट्टणी लोग भली भाँति जानते थे। और इस कारण, ज्यों ज्यों राज्याधिकारी आने लगे त्यों त्यों लोगोंका हर्ष बढ़ता गया।

सज्जन मंत्री भटराज मुरारपालको लेकर उस पार उबक और शांतु मेहताको बुलाने गये और उदा, लूला, देसलदेव आदि इस पार ही रहे। लोग सिर ऊँचा कर करके देख रहे थे, परन्तु, अभी तक मुंजाल मेहता नहीं आये थे और यह अफवाह फैल रही थी कि जयसिंहदेव महाराज तो आयेंगे ही नहीं।

यह गप्प भी उड़ रही थी कि उदा मेहताने पाटणकी सहायताके लिए सेना नहीं भेजी, अतएव, महाराज उसपर क्रोधित हैं। किन्तु उदा मंत्रीका हँसता हुआ और चारों ओर नमस्कार उच्चारण करता हुआ स्वस्थ मुख देखकर लोगोंको आश्चर्य हुआ। हम देख आये हैं कि वह मुत्सद्दी यहाँ किस लिए आया है। उसने काकका पीछा किया और ऐसा समझकर कि जयसिंहदेव पांचालमें अकेले हैं, उन्हें भी अपने हाथमें लेनेके लिए तीन सौ सवारोंके साथ वहाँ आ पहुँचा। परन्तु उसके दुर्भाग्य कि किसीको खबर होनेके पहले ही मुंजाल मेहता वहाँ आ धमका और मुंजालकी इच्छाका अनादर करके खंभात लौट जानेका साहस उसमें न था, इसलिए हँसते हुए वह इस महोत्सवमें भाग लेनेके लिए पाटण आया। उसे सामना करना आता था, परन्तु सामना करनेसे यदि हानि होती हो तो ज़रा नत होकर इच्छित कार्य साध लेनेकी युक्ति भी उसे आती थी। वह ऐसे ही पाँसे फेंका करता था।

लोगोंमें एक बातसे जरा चिन्ता फैल गई थी। इस चिन्ताका कारण त्रिभुवनपाल थे। इन राज-पुरुषोंमें लाटके दंडनायक पांचाल तक आ जाने-

पर भी न आयें, यह लोगोंको विचित्र-सा मालूम हुआ। इस बातका विचार करनेके लिए मुंजाल चूका न था। उसने त्रिभुवनपालको खोज निकालनेके लिए सैनिक भेजे थे और उसे यथा-सम्भव शीघ्र यहाँ ले आनेकी आज्ञा दी थी। पर यह बात कोई जानता नहीं था; अतएव, इस सम्बन्धमें अनेक गप्पें उड़ रही थीं।

उस पारसे एक बजरा रवाना हुआ और लोगोंका ध्यान उस ओर गया। उसमें आठ आदमी थे। ज्यों ज्यों वह बजरा इस पार आता गया, त्यों त्यों सर्वसाधारण और राज-पुरुषोंमें शान्ति छाने लगी। उस बजरेमें पाटणका नया अतिथि आ रहा था। सदियोंसे अवन्ति और पाटणके बीच सतत वैर चले आते रहनेके कारण इस अवसरपर सारे पाटण-निवासियोंका आनन्द अदृश्य हो गया। इस भीड़में ऐसे बहुत-से लोग थे जिन्होंने मालवाके साथ लड़ते हुए अपने बाप, भाई और बेटे गँवाये थे। बहुत-से ऐसे थे कि जो मालवाके साथ सन्धि करनेकी अपेक्षा प्राण दे देना अधिक पसन्द करते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जो अभी कुछ ही दिनों पहले मालवियोंके साथ भिड़ आये थे। इन सब लोगोंको शान्तु मेहताकी की हुई सन्धि भली न लगी थी। उनके हृदयोंमें आजका यह अवसर शूल-सा साल रहा था। ऐसा मालूम होता था कि उनके मनकी तड़फड़ाहट इस समय बाहर निकल पड़ी है।

बजरेमें सबसे आगे ऊँचा-सा साफ़ा बाँधे एक प्रचंड सोंटेके समान सीधा मनुष्य खड़ा था। उसकी आँखपर भरे हुए घावकी एक बड़ी-सी लकीर दीख रही थी और इससे उसकी मुखाकृति विकराल प्रतीत हो रही थी। वह उबक था। पाटण-निवासियोंके विचारसे वह मालवाकी सत्ताकी मूर्त्ति था और वह सत्ता उनके द्वेषकी, वैरकी केन्द्रस्थान थी। इस भावसे उबकका आगमन पाटणकी पराजय है, सारी जनतामें सनसनी फैल गई। सभी लज्जितसे हो गए थे। वृद्ध योद्धाओंकी आँखोंमें पानी आ गया। उबकके पीछे वृद्ध शान्तु मेहता विषण्ण-मुख खड़े थे। पाटण-निवासियोंके जो भाव थे, वही उनके भी थे; परन्तु बुद्धिमानीके आगे उन्होंने गर्वको दूर कर दिया था। यह सन्धि करते हुए उनका हृदय चिर गया था; परन्तु इस सन्धिके ही कारण पाटण इस प्रकार खड़ा हुआ था।

इन दोनोंके पीछे सज्जन मेहता, भटराज मुरारपाल और एक जवान मालवी

योद्धा खड़ा था। बजरा इस किनारे आ लगा। मुंजाल मेहता अभीतक नहीं आये थे; अतएव लूला और उदा स्वागतके लिए आगे बढ़े। इस व्यवहारमें उन्हें भी लघुता प्रतीत हो रही थी, फिर भी इस भावको दबाकर उन्होंने उबकका स्वागत किया। लूला मन ही मन बड़बड़ाया, "मुंजालको आज क्या हो गया कि आया नहीं ?"

उबकने सत्ता और तिरस्कारसे भरी दृष्टि लोगोंपर डाली और यद्यपि उसकी वृद्धावस्था आरम्भ हो चुकी थी, फिर भी एक जवानकी भाँति कूदकर वह बजरेसे नीचे उतरा। वह कठोरताका अवतार था। उसके होठ गर्व और निश्चलतासे दबे हुए थे। उसकी एक पूरी और दूसरी घावसे दबी हुई आधी आँख तीरकी भाँति तेज़ीसे दृष्टिपात कर रही थी। उसके कदम सीधे और अटल थे। मस्तकपरसे वह गर्विष्ठ और स्वावलम्बी मालूम होता था। उसके मुखपरके चार-पाँच घावोंके चिह्न उसकी वीरताकी साक्षी दे रहे थे और उसके अद्भुत मुखको भव्यता प्रदान कर रहे थे।

उसके बाद शान्तु मेहता और वह जवान योद्धा उतरा। वह युवक नहीं; किन्तु मुखकी कोमलतापरसे बालक या पुरुष वेशमें कोई स्त्री-सा प्रतीत होता था। वह जमीनपर तो उतरा; परन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसके पैर शायद ही ज़मीनपर टिके हैं। उसके शरीरपर शस्त्रोंका बोझ लदा था, फिर भी उसके सुकुमार शरीरकी छटा ऐसी थी कि चाञ्चल्यमें किसी नवोढ़ाको भी लज्जित कर दे। उसके मुखको सचमुचमें मुखारविन्द ही कहा जा सकता था। उसकी बड़ी बड़ी आँखोंमें अपार्थिव तेज था। वह तेज सारे लोक-समूहपर पड़ता था; पर देवों या दीवानोंके दृष्टिपातकी भाँति वह लोक-समूहपर न ठहरकर जैसे किसी अदृश्य या कल्पना-प्रदेशकी अनिर्वाच्य भव्यता देखनेमें लगा हो, इस प्रकार दूर और दूर जानेका प्रयत्न कर रहा था।

बहुतसे व्यक्ति पार्थिव तत्त्वहीन होते हैं। उन्हें देखकर प्रतीत होता है कि वे आकाशसे अल्प समयके लिए ही नीचे उतरकर आये हैं और अब थोड़ी देरमें फिर चले जायँगे। ऐसे व्यक्ति संसारमें दिखाई तो पड़ते हैं, परन्तु उसमें मिल नहीं जाते; जन-समाजके समागममें वे आते तो हैं, परन्तु उससे सम्बन्ध नहीं स्थापित करते। वे चलते हैं, फिरते हैं, जीवन बिताते हैं, परन्तु किसीको छूते नहीं है; हम उन्हें पूजते हैं, परन्तु अपना नहीं बना सकते।

उनके लिए अपने प्राण समर्पण करते हैं, परन्तु उनके स्नेहकी आशा नहीं कर सकते। उस युवकको देखनेवालेके मनपर छाप लग जाती थी कि यह ऐसा ही कोई व्यक्ति होगा। ऐसा ही उसका रूप था।

मन्त्री लूला और उदाने उबकको नमस्कार किया, "पधारिए सुभट-शिरोमणि, आपके दर्शन करके हम कृतार्थ हो गये।" लूलाने कहा।

अपनी ऊँचाईके कारण कैलासके समान प्रतीत होनेवाले सेनापतिने नमस्कार किया, और अपने कठोर स्वरमें कहा, "मेरे भी धन्य भाग्य कि मैंने इस आयुमें पाटणको देखा।"

जिस जिस पट्टणीने यह वाक्य सुना, उसका मुख लज्जासे लाल हो गया। उबकके इस वाक्यने उनके गौरवपर गहरा आघात किया। पर उदा मेहताका मुख ज्योंका त्यों रहा, "सेनापतिराज, आप अवन्ति कब दिखलायेंगे?" भीमनाथके मन्दिरकी ओर घूमते हुए उसने पूछा।

उबक इस प्रश्नका अर्थ समझ गया। उसकी पूरी आँख चमक उठी; परन्तु वह केवल शूर-वीर ही न था, चतुर भी था। "चलिए, कल सबेरे ही। कहिए, जयसिंहदेव महाराज कैसे हैं?" कहकर उबकने चारों ओर इस प्रकार देखा, जैसे उसने जयसिंहदेवको यहाँ देखनेकी आशा रखी हो।

"महाराजाधिराज इस समय सन्ध्या-विधिमें लगे होंगे।" मन्त्री लूलाने उत्तर दिया। इसी समय वे लोग मन्दिरके आगे आ पहुँचे। सज्जन मेहता इतना समझ गये कि यह अवसर ऐसा विचित्र उपस्थित हो गया है कि किसीको सूझ ही नहीं रहा है कि क्या कहा जाय। उन्होंने उदाके कानमें मुख लगाकर पूछा, "मुंजाल मेहता कहाँ हैं?"

"न मालूम कहाँ हैं।" उदाने धीमे-से उत्तर दिया। उबक समझ गया कि ये सब अपनी लघुतासे लजाकर मरे जा रहे हैं, अतएव वह, मन ही मन कुछ फूल उठा। बिना लड़े ही वह विजयका आनन्द चख रहा था। उदा अपना रंग जमाये रखनेके लिए मेहनत करने लगा, "जी, यह दुर्ग आपने देखा? आपकी अवन्तिका ऐसा ही है, या इससे अधिक अच्छा? मैं अभी तक अवन्ति नहीं गया।"

उबकने दुर्गकी ओर दृष्टिपात किया और उस युवककी ओर घूम कर पूछा "कीर्तिदेव, क्यों, हमारा दुर्ग इससे तो कुछ ऊँचा है? क्यों न?"

कीर्तिदेवने दुर्गपर दृष्टि डालकर कहा, " नहीं, यह ऊँचा है।"

इसी समय शान्त खड़े हुए लोगोंमें खलबली-सी मच गई। उबक और उसके आसपास खड़े हुए राज-पुरुष आश्चर्यसे पीछेकी ओर हटे। घाटके दरवाज़ेसे होकर मुंजाल मेहताका हाथी गौरवसे पैर बढ़ाता हुआ आ रहा था। अधिकारकी अपूर्व भव्यता मुंजालकी मुखमुद्रापर थी और राजसत्ताकी मूर्त्तिके समान वह सब लोगोंकी ओर देख रहा था। उसके आनेतक सब मन्दिरकी सीढ़ियोंके आगे खड़े रहे, परन्तु, हौदेपर वह अकेला नहीं था। हाथी बैठा और लोगोंने साथ बैठनेवालेको पहचान लिया।

लोगोंके हर्षका पार न रहा। उन्होंने एक गगनभेदी गर्जना की, " मंडलेश्वर महाराजकी जय ! "

त्रिभुवनपाल अभी घड़ीभर पहले ही हारा-थका पाटणमें आया था। आते ही मुंजालको खबर मिली और उसने उसे एकदम अपने साथ ले लिया। मंडलेश्वरने यात्रामें मैले हुए वस्त्र ही पहन रखे थे। एकत्र जन-समूह यह बात भूल ही गया कि अभी कुछ क्षण पहले ही वह खिन्न था। उसने उबकका आगमन भूलकर त्रिभुवनपालका स्वागत करनेके लिए प्रसन्नताके अनेक घोष आरम्भ कर दिये। सारा वातावरण बदल गया।

उबक होठ चबाता हुआ देखता रहा। मुंजाल इस प्रकार आया, यह उसे अपमानजनक मालूम हुआ; परन्तु वह करे क्या ?

" यह कौन है ? " उसने त्रिभुवनकी ओर देखकर पूछा।

" महाराजाधिराजके भतीजे और लाटके दंडनायक त्रिभुवनपाल मंडलेश्वर। " उदाने कहा।

" कौन, मंडलेश्वर देवप्रसादजीके पुत्र ? "

" जी हाँ। "

उदाकी जीभ बन्द हो गई। मुंजालके हाथीपरसे तीन जने उतरे। तीसरे व्यक्तिको उदाने देखा और वह चौंक पड़ा। उदाको उस व्यक्तिने देखा और वह ज़रा हँस पड़ा। दोनोंने भयंकर दृष्टिपातका विनिमय किया। यह तीसरा व्यक्ति काक था।

२—कीर्तिदेव

मुंजाल मेहताके आनेकी गड़बड़ीसे लाभ उठाकर उदा मेहताने एक भटको संकेत करके पास बुलाया और उसके कानमें कुछ कहा। वह भट वहाँसे निकला और लोगोंकी भीड़में अदृश्य हो गया।

मुंजालका व्यक्तित्व ऐसे अवसरपर चमक उठता था। वह आया और प्रसंग बदल गया, वातावरणमें भिन्नता आ गई। लज्जित पट्टणी लज्जाका कारण भूलकर उसे देखने लगे। वनराजके-से गौरवसे डग भरता हुआ वह इस प्रकार आया, जैसे उसका गर्वयुक्त मस्तक गगनसे जाकर लग रहा हो। कृपाकी दृष्टिसे सबकी ओर देखकर, जरा हँसकर उसने सबको उनकी अल्पताका अनुभव करा दिया। नज़रसे, बातसे, हास्यसे और सत्ताके दुर्जय गौरवसे उसने सबपर और चर्चाके वातावरणपर अपने व्यक्तित्वका प्रभाव स्थापित कर दिया। मालूम होने लगा कि उबक विजेता नहीं, सामान्य-सा योद्धा है और सारे महारथी और मंत्री जैसे मुंजालके दरबारी हैं। ऐसा अद्‌भुत व्यक्तित्व कभी कभी नरसिंहोंमें ही दिखाई पड़ता है। कारण तो नहीं मालूम होता, परन्तु सब उनके लिए मार्ग छोड़ देते हैं। समझमें नहीं आता, फिर भी सब उनका शासन मानते हैं। इतिहासकी रंगभूमिपर ऐसे व्यक्ति जब आते हैं तब दूसरे तत्त्व पुरुषार्थ-विहीन हो जाते हैं। इतिहास-क्रम रुक जाता है। समय-शक्तियोंका मान भूलकर दर्शकोंका मन उसके आसपास लिपट जाता है। नायकके मोहमें नाटकका अर्थ विस्मरण हो जाता है। भूतकालकी रंगभूमिपर ऐसे अनेक व्यक्ति हुए हैं। परशुराम, मधुसूदन भगवान श्रीकृष्ण और समस्त जगत्‌के राजनीतिज्ञ-शिरोमणि भगवान् चाणक्य। मध्य-कालीन गुजरातकी छोटी-सी रंगभूमिपर ऐसा ही व्यक्ति था मुंजाल।

मुंजालने उबकका स्वागत किया, आदर किया। त्रिभुवनका परिचय कराया और उसके शौर्यका बखान करके उबककी दृष्टिमें भी ईर्ष्या उत्पन्न कर दी। दो वर्षोंके बाद त्रिभुवनपाल पाटणमें लौटा था, इसलिए लोगोंमें उसे देखनेकी बहुत लालसा थी। इस लालसाके कारण जब सब मन्त्री उबकको हाथीपर लेकर लौटे, तब मंडलेश्वर ही इस सवारीका नायक बन गया। उसको देख, लोग हर्षके घोष करने लगे। उसके हाथीकी

सूँड़पर नगर-जनोंने फूलों और फूल-मालाओंकी वर्षा कर दी और सिखाये हुए हाथीने वे सब मालाएँ सूँड़से उठाकर मंडलेश्वरके हौदेमें डाल दीं। आगे जाते हुए हाथीपर बैठे मुंजाल और उबककी ओर कोई देख ही नहीं रहा था। बल्कि सब अपने युवक मंडलेश्वरको,—जिस महारथीने लाटमें पाटणका डंका पिटवाया था, देख देख कर और झुक झुक कर प्रणाम कर रहे थे। उबकका आदर करनेको गया हुआ जुलूस त्रिभुवनकी विजय-सेना बनकर लौटा। लोगोंका ससम्मान नमस्कार, अटारियोंपर चढ़ी हुई युवतियोंकी नयन-किरणों और बालकोंकी पिचकरियोंका केसरिया रंग झेलता हुआ त्रिभुवन-पाल अपने सारे कष्ट और जयदेवकी ईर्ष्याको भूल गया।

पीछे बैठा हुआ काक त्रिभुवनके साथ बैठे हुए उबकके भटराज कीर्तिदेवको देखता रहा। वह देवाङ्गनाके समान शरीर-तेजसे दीप्त था और उसके लापरवाह बैठनेके ढँगसे गौरव और सौन्दर्य प्रकट हो रहा था। परन्तु उसका यह शरीर, यह सौन्दर्य-छटा, तेजस्वी और किसीको कुछ न समझनेवाली आँखें, ललनाओंको लुभानेवाले आधे बन्द होठ,— इन सबकी ओर काक नहीं देख रहा था। वह केवल यह निर्णय कर रहा था कि उसका मुख परिचित-सा क्यों लग रहा है। उसने त्रिभुवनपालकी ओर देखा। क्या इन दोनोंके मुखमें कुछ समान लक्षण हैं? काकको विस्मय हुआ। कहाँ देवप्रसादका पुत्र और कहाँ उज्जयिनीका भटराज!

"आपपर इन लोगोंका अथाह प्रेम मालूम होता है।" कीर्तिदेवने एकदम पूछा।

त्रिभुवन ज़रा हँसा। बोला, हाँ, "मुझे ये लोग बहुत मानते हैं। पहले मेरे पिताको चाहते थे। मामाको तो चाहते ही हैं।"

"मामा?" साश्चर्य अपने सुन्दर नयनोंको ऊपर उठाकर कीर्तिदेवने पूछा।

"हाँ, महा अमात्य।"

कीर्तिदेवके होठ बन्द हो गये। काकने देखा और विचारमें पड़ गया।

"आप श्रावक हैं?"

"नहीं," मुक्त हृदयसे हँसकर त्रिभुवनने कहा, "पर मेरी माताजी श्रावक थीं। सोलंकी लोग भगवान सोमनाथके सिवा और किसीको इष्टदेव नहीं मानते। क्यों, यह पूछनेका क्या कारण है?"

" कारण कुछ नहीं। आप अवन्ति कब आयेंगे ? "

" सो कैसे कहा जा सकता है ? "

" अब पाटण और अवन्तिके बीच सन्धि हो गई है। क्या आप इसके विरोधी हैं ? मैंने सुना है कि यहाँ इसके बहुत-से विरोधी हैं।" कीर्तिदेवने पूछा।

" आपका क्या खयाल है ? "

" मेरा खयाल ? मेरे ही कारण यह सन्धि हुई है। महा कालेश्वरसे मेरी अहर्निश प्रार्थना है कि यह सन्धि सतत बनी रहे। पाटण और अवन्ति आर्यवर्तकी आँखें हैं। इन दोनोंका पारस्परिक विरोध क्या आपको नहीं सालता ? "

" नहीं, यह विरोध यहाँ बहुतोंको तो उल्टा रुचिकर है। सच पूछिए, तो मुझे नहीं लगता कि यह सन्धि अधिक दिनों टिकेगी। " त्रिभुवनपालने कहा।

" क्यों नहीं टिकेगी मंडलेश्वर महाराज ? बाहुमें बल है, तो उसे दिखानेके स्थान बहुत हैं। तीन सौ वर्षोंतक तो लड़ते रहे, अब और कहाँ तक लड़िएगा ? आप बलवान् हैं तो ऐसी छोटी छोटी लड़ाइयोंको छोड़कर महायुद्ध क्यों नहीं आरम्भ करते ? " कीर्तिदेवके शब्दोंमें एक कल्पनातीत हृदय-भेदी प्रताप था। त्रिभुवन उसे न समझ सका। काक यह देखकर फिर विस्मित हुआ। इस मनुष्यकी बातोंमें कुछ गुह्यार्थ जरूर है।

" यह मेरा काम नहीं है। राजनीतिकी बातोंको मामा जानें। "

कीर्तिदेवकी आँखें तिरस्कार-पूर्वक हँस पड़ीं। काकने इस हास्यको समझ लिया। इतनेमें राजमहल आ गया। सवारी ठहर गई और सब उतर पड़े।

काक पाटण आनेपर अपने ऊपर झूमते हुए भयको जरा भूल गया था और उसे प्रतीत हो रहा था कि मुंजाल और त्रिभुवनके आश्रयमें उसे कुछ भी न होगा। उसका अधीर हृदय केवल यही विचार कर रहा था कि कब उसे त्रिभुवनपाल आज्ञा दें और कब वह तुरन्त काश्मीरादेवीके पास जाकर मंजरीसे मिले। वह ज्यों ही हाथीसे उतरा त्यों ही डूँगर नायक उसके निकट आ पहुँचा।

" भटजी, आपको बुला रही हैं। "

" कौन ? " पीछे घूमकर काकने पूछा।

" काश्मीरादेवी । "

काकका हृदय धड़क उठा । त्रिभुवनपाल उबकको जयदेव महाराजके पास ले जानेमें लगे हुए थे, अतएव उसे छुट्टी पानेका यह अच्छा अवसर मालूम हुआ । उसने डूँगर नायकसे पूछा, " देवी राजगढ़में हैं ? "

" हाँ, मीनलदेवीके पास हैं । "

काकको त्रिभुवनपालसे आज्ञा लेनेकी इच्छा हुई; परन्तु उनके आसपास इतने मनुष्य थे कि मिलना असम्भव था । काक चुपचाप डूँगरके पीछे हो लिया ।

लोगोंकी भीड़को बचाकर बगलसे होकर विशाल राजमहलके एक अपरिचित कमरेसे डूँगर काकको ले गया । काक राजमहलसे अभी परिचित न था, अतएव वह नहीं जानता था कि मैं कहाँसे होकर जा रहा हूँ । वह निश्चिन्ततासे एक कमरेमें जाने लगा और डूँगरने उसके कन्धेपर हाथ रखा । वह तुरन्त पलटा । पीछेसे किसीने एकदम उसे पकड़ लिया । कुछ ही क्षणोंमें वह एक तहखानेके आगे घसीटा जाने लगा । फिर उसे धक्का दिया गया और वह उसमें जा गिरा । उसके गिरनेसे तहखानेके जीव-जन्तुओंमें खलबली मच गई । ऊपरसे डूँगरने उसका द्वार बन्द कर दिया ।

काक तुरन्त सब कुछ समझ गया । जयदेव महाराज और उदा मेहता वैरका बदला ले रहे हैं !

३—मुंजालका हृदय

जयदेव महाराज शोक-ग्रस्त थे । उन्हें प्रतीत हो रहा था कि उबकका आना पाटणका पतन है । उनका अभिमानी स्वभाव अल्पताकी परिसीमा तक पहुँच गया था । उन्होंने नवघणको जीता, परन्तु उबकने उनको जीत लिया था । उनकी कीर्तिमें कलंक लग गया था । उनके हृदयमें क्रोध था, जोश था और साथ ही क्षुद्र-दौर्बल्यकी निराशा भी थी । मुखपर तमाचा लगाकर उन्होंने अपनेमें साहस रखा और इस उपन्यासके आरम्भमें, जिस खण्डमें पाटणके राज-कर्ता एकत्र हुए थे, उसमें जाकर वे बैठ गये । प्रयत्न-पूर्वक ही उन्होंने अपने मुखपरसे क्रोध और निराशाके चिह्न दूर किये ।

मुंजाल उबकको लेकर आया। उसके साथ मंडलेश्वर और मंत्री भी थे। जयदेवने उबकका स्वागत किया। योद्धाने दो-चार मधुर वचन कहकर महाराजकी कृपा-याचना की। विनय-विधि पूर्ण होते ही उबकने कहा, "कृपानाथ, हमारे महाराजने संदेश कहलाये हैं।"

"क्या ?"

"मुझे माता सरस्वतीका प्रसाद प्राप्त नहीं है, इसलिए थोड़ा कहूँ तो बहुत समझ लीजिएगा।"

"अजी, यह क्या कह रहे हैं ? कहिए, अवन्तिनाथने क्या कहलवाया है ?"

"हमारे महाराजाधिराज आपके सम्बन्धी बनना चाहते हैं।"

"किस प्रकार ?"

"आपके साथ अपनी पुत्री ब्याहकर।"

जयदेवके मुखपर सन्तोष छा गया। जो विजेता होता है, उसे कन्या देकर हारा हुआ राजा प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता है। पर यहाँ तो विजयी राजा हारे हुएको कन्या दे रहा है ! जयदेवका मुख प्रफुल्लित हो उठा।

"और आपको अवन्ति आनेका निमन्त्रण भिजवाया है।"

"और कुछ ?"

"और कुछ क्या होगा ? आपकी कृपा और पाटणकी मैत्री।"

सदाकी टेवके अनुसार राजाने मुंजाल और अन्य मंत्रियोंकी ओर देखा। प्रत्येकके मुखपर कठोरता थी। जो बात जयदेवको रुचिकर मालूम हुई थी, उसे सब बिना बोले नापसन्द कर रहे थे।

"सेनापतिजी," मुंजालने कहा, "आप दो-तीन दिन तो रहेंगे ही न ? महाराज विचार कर उत्तर देंगे। ऐसे विषयोंमें क्या जल्दीमें आम पक जाते हैं ? पूर्णिमाके दिन राज-सभा है, उस समय महाराज उत्तर देंगे। महाराज, अब सेनापतिजीको आज्ञा दीजिए। मध्याह्नमें अब थोड़ी ही देर रह गई है।"

"हाँ, सन्ध्या समयतक तो आप पाटणहीमें रहेंगे न ?"

"जी हाँ। जिन सुभटोंको मैं अपने साथ लाया हूँ, वे सरस्वतीके उस पार पड़ाव डाले पड़े हैं। रातको मैं वहीं जाऊँगा।" उबकने गर्वसे कहा।

स्वतन्त्र राजा पर-राज्यमें जानेपर गाँवके बाहर ही अपना पड़ाव डाला करते थे। एक सेनापतिके द्वारा इस प्रथाका अनुकरण जयदेवको भला न लगा। फिर भी इस समय वह उबकसे क्या कहता? "जो इच्छा।" कहकर वह उठा और उसके साथ सभी उठ खड़े हुए। जयदेव होठ चबाता हुआ इस उलझनको सुलझाता चला गया कि अवन्तिनाथका जामाता बननेसे प्रसन्न होना चाहिए या नहीं।

आये हुए समस्त नागरिक इधर उधर हो गये। कुछ लोग उबकके स्वागत-सत्कारमें लगे, कुछ लोग अपने घर होली खेलने चले गये, त्रिभुवनपाल अपने महलमें गया; परन्तु काककी किसीने याद नहीं की। उसकी अनुपस्थितिकी किसीने गिनती ही न की। भोजन करते समय त्रिभुवनको उसकी याद आई; परन्तु यह सोचकर उसने अधिक विचार नहीं किया कि कदाचित् वह अपने किसी मित्रके यहाँ गया होगा।

मुंजाल मेहता राजमहलमें बैठे विचार कर रहे थे। उबकने जो दो सन्देश कहे थे, उनसे उन्हें आश्चर्य हुआ था। वे यह जाननेका प्रयत्न कर रहे थे कि इन सन्देशोंमें अवन्तिनाथका हेतु क्या है? उन्हें उबक केवल योद्धा मालूम हुआ और इस रूपमें उसका कोई महत्त्व नहीं था। पर वह रूपवान् युवक कौन था? कीर्त्तिदेवका मुख मुंजालकी आँखोंके आगे आ खड़ा हुआ। काककी भाँति उन्हें भी वह परिचित-सा प्रतीत हुआ। मुंजालकी समझमें यह तो न आया कि किसकी भाँति इस लड़केका मुख है, परन्तु, उन्हें लगा कि इस लड़केकी आकर्षक मुद्रामें कुछ समाया हुआ है। "इसपर ध्यान रखना चाहिए," वह बड़बड़ाया, "पर कौन इसपर ध्यान रखेगा? ऐसे रूपवान् मुख तीनों लोकोंका सत्यानाश कर सकते हैं। हंसा* में क्या कमी थी? उसने क्या कम सत्यानाश किया? और सेठानी भी कहाँ रूपमें कम थी?" मुंजालके मुखपर ग्लानि छा गई। उसकी पत्नी सज्जन मेहताकी बहन थी, मुंजालने उसके प्रति इतनी अन्यमनस्कता और क्रूरता दिखलाई थी कि उसने घुट घुट कर प्राण त्याग दिये थे। अमात्य इस बातका पश्चात्ताप सदा ही किया करता था। इस समय उसका मन उस दिशाकी ओर गया। उसने एक निःश्वास छोड़ा और वह बड़बड़ाया, "इस समय फूलकुमारी कैसे याद आ गई? वह तो गई ही,

* मुंजालकी बहन और त्रिभुवनकी माता।

और बेचारा लड़का भी मर गया। वह आज होता, तो बीस वर्षोंका हो जाता। बुढ़ापेमें मेरी रक्षा तो करता। अब मुंजाल निःसन्तान ही मरेगा!" मुंजाल बड़े कठोर भावसे हँसा और उसने अपने कपालपर हाथ फेरा।

"गया, सो तो गया, अब क्या है?" कहकर वह ज़रा सतर हो गया और अधिकारसे बाहर जाती हुई मनोवृत्तिको संयत किया। "मुंजालकी सन्तान कैसी? मेरी सन्तान पाटण है। परन्तु इस कीर्तिदेवके पीछे किसे लगाया जाय?—हाँ, वह त्रिभुवनका मित्र कहाँ गया? सबेरे दिखलाई पड़ा था। यहाँ बाहर कोई है क्या?" मुंजालने गहरा निःश्वास छोड़कर पूछा।

एक पार्श्वक आ खड़ा हुआ। "जाओ, त्रिभुवनपालके यहाँ जाकर काक भटको तुरन्त बुला लाओ।" मुंजालने कहा।

आधी घड़ीमें पार्श्वक उत्तर ले आया कि काक भट वहाँ नहीं हैं और सबेरेसे कहाँ गये हैं इसकी किसीको खबर नहीं है।

मुंजाल उठा और पीछेकी ओर, जहाँ मीनलदेवी बैठी हुई थीं, गया।

जयदेव और मुंजाल नवघण रा'को मात करनेके लिए गये थे, उस बीच राजमाता पाटण लौट आई थीं।

मुंजाल ज्यों ही रानीके कमरेमें गया त्यों ही वहाँ बैठी हुई युवतियोंकी भगदड़से झाँझर झंकार कर उठे। उसने उनकी घबराहटको जरा हँसकर देखा और क्षणभर रुककर उन्हें भाग जानेका अवसर दिया; परन्तु महाअमात्यकी तीक्ष्ण दृष्टिने एक नया मुख देखा। उस मुखका अलौकिक सौन्दर्य उसे अपरिचित-सा लगा। "मात्रा!" उसने कहा।

एक युवती लौटी। वाचस्पति गजानन पंडितकी स्त्री और स्वर्गीय वैद्य लीलानन्दकी पुत्रीसे "पाटणके प्रभुत्व"में पाठक परिचित हो चुके हैं। "जी" कहकर उसने उत्तर दिया।

"यह तुम्हारे साथ कौन है?" उस लजाती हुई बालाकी ओर अँगुलीसे संकेत करते हुए मुंजालने पूछा।

"मुंजाल," कोनेमें चौकी पर बैठकर जप करती हुई मीनलदेवी बोल उठी, "यह हमारे कविकुलशिरोमणि रुद्रदत्तकी लड़की है।"

सबेरे जब काश्मीरादेवी और मंजरी आई, तब राजमातासे मिलकर सारी बातें कह गई थीं।

" यह तो अपने नानाके यहाँ जूनागढ़में थी ? " मुंजालने स्मरण करके पूछा।

मीनलदेवीने कहा, " नहीं, इसकी माता श्रावक है। वह इसे किसी श्रावक सेठके साथ ब्याह रही थी। इसकी कहानी बड़ी रसमयी है।"

" वह क्या ? "

" त्रिभुवनका कोई भट है, वह इसे भगा लाया। आज सबेरे प्रसन्नने वह कहानी सुनाई और हँसाहँसा कर थका डाला।" मीनलदेवीने हँसते हुए कहा।

" कौन ? काकभट ? " मुंजालने मंजरीकी ओर देखकर पूछा। मंजरी लजा रही थी; परन्तु उसके प्रफुल्लित नयन महा अमात्यको निर्भयतासे निरख रहे थे। वह धीमे-से सम्मान-पूर्वक बोली, " जी हाँ।"

मीनलदेवीने पूछा, " वह कौन है ? मैं उसे देखना चाहती हूँ।"

" मुझे भी उससे काम है; परन्तु न जाने सबेरेसे वह कहाँ चला गया है।—लड़कियो, अब जाओ।" कहकर मुंजालने मात्रा और मंजरीको आज्ञा दी और वह रानीकी ओर गया।

इन चार वर्षोंमें मीनलदेवीमें बड़ा परिवर्तन हो गया था। उसका शरीर पहलेकी अपेक्षा ज़रा स्थूल हो गया था। जवानीमें भी उसके मुखपर गौरव था, पर अब वह और पुख़्त हो गया था। अधिकार तथा अटलताकी रेखाओंने कोमलता और सरलताको उसपरसे दूर कर दिया था। उसकी आँखोंका तेज पहलेके ही समान था; केवल वह स्थिर हो गया था। उनमेंसे प्रताप सतत बहता रहता,—पहलेकी भाँति न्यूनाधिक या भयंकर शायद ही होता।

गुजरातके राज्यकी वह अधिष्ठात्री देवी थी। उसने बाहरसे शासनसम्बन्धी कार्योंमें भाग लेना बन्द कर दिया था, परन्तु उसकी दृष्टि चारों ओर घूमती थी। उसकी बुद्धि सब कुछ समझती थी। वह मुंजालको पहचान गई थी। उसके आशयोंको समझ गई थी। उसकी राजनीतिमें उसे विश्वास था और इससे वह किसी भी काममें हाथ डालते न देखी जाती थी। परन्तु जो राजमहलकी आन्तरिक बातोंको जाननेवाले थे, वे जानते थे कि जैसा भयंकर मुंजालका प्रभाव था, वैसा ही रानीका भी था। और चूँकि अन्तरमें दोनों एक थे, इससे दोनोंके प्रभावोंमें विरोध न होता था।

रानीने मंजरीसे त्रिभुवन और काकके पराक्रमकी जो बातें सुनी थीं वे मुंजालको कह सुनाईं और मुंजालने भी सबेरेकी घटित घटना सुना दी।

" मुझे प्रतीत होता है, यह उबक केवल यहाँ शोभा पाने ही नहीं आया है,—इसका हेतु कोई और ही है। मैं कुछ समयमें उसे खोज निकालूँगा; परन्तु जयदेवको कोई शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। " मुंजालने अन्तमें कहा।

" वह करने ही वाला क्या था ? "

" बहुत कुछ। वह अधीर हो गया है। लक्ष्मवर्माकी कन्यासे ब्याहका सन्देश सुनकर उसके मुँहमें पानी आ गया है। उसका वश हो, तो उबकके साथ अवन्ति चला जाए। "

" वह बड़ा जल्दबाज़ है; परन्तु मालवाकी कन्या आए, तो बुरा नहीं है। "

" बहुत बुरा है। " मुंजालने सिर हिलाकर कहा।

" क्यों ? "

" पहले तो यह कि लक्ष्मवर्माके कोई सन्तान ही नहीं है। यह तो उसके भाई यशोवर्माकी लड़की होगी। "

" ऐसा ! " रानीने चौंककर कहा।

" हाँ, और मालवाकी लड़की यहाँ आई नहीं कि बिना शत्रुके ही यहाँ शत्रु उत्पन्न हो जायँगे ! "

" यह ठीक है। इसलिए हमारे यहाँ तो अभी एकतन्त्र ही चाहिए। अभी लाट और सोरठका तो ठिकाना ही नहीं फिर इस मालवाके उपद्रवको कैसे निमन्त्रण दे दें ? यदि भाग्यमें होगा तो क्या मालवेकी कन्या न मिलेगी ? "

" हाँ हाँ, अभी पूरे गुजरातपर तो अधिकार कर लें, फिर सब कुछ हो रहेगा। यह नवघण खत्म हो गया, यह अच्छा ही हुआ। "

" हाँ, साथ ही उदाको भी सीधा करना पड़ेगा। यह काककी बात भी तुमने अच्छी कही। उदामें और जयदेवमें इस समय खूब मेल है। इसमें उदाकी ही कोई उस्तादी है। "

" अरे उसकी क्या बिसात है ? " रानीने कहा।

" देखो, भ्रममें न रहना। वह है तो मधुरभाषी परन्तु जितना बाहर है उतना ही भूमिमें धँसा हुआ है। अच्छा, तब मैं जयदेवसे मिलता हूँ। यदि न माने तो फिर दो शब्द तुम कहना। "

" अवश्य। " कहकर मीनलदेवी जरा हँस पड़ी। उत्तरमें मुंजालकी

आँखोंने भी स्मित किया। उनका भस्म हुआ प्रेम इतना ही व्यवहार शेष रख रहा था। मुंजाल जानेके लिए पलटा।

" मुंजाल ! "

" क्यों ? "

" आज काश्मीराने एक बात कही थी। उसने एक व्रत लिया है। "

" क्या ? " मुंजालने पूछा।

" तुम्हारा विवाह फिरसे करानेका। " रानीने ज़रा बनावटी गाम्भीर्यके साथ कहा।

" मेरा ? " एकदम चौंककर महाअमात्यने खेदयुक्त स्वरमें पूछा। मीनलदेवीने भी कोमल भावपूर्ण स्वरमें उत्तर दिया, " मैं भी यह सोचती हूँ कि तुम इस प्रकार कब तक रहोगे ? " रानीके स्वरमें पूर्वावस्थाकी कुछ प्रतिध्वनि थी।

" मुझे कमी किस बातकी है ? "

" छिपा रहे हो किस लिए ? तुम्हारे हृदयमें निर्जनता नहीं छाती जा रही है ? सच कहना ? "

" देवी, इस प्रकारकी बातें किस कामकीं ? मेरे हृदय ही नहीं है। किसी समय..." मुंजालने दयनीयतासे कहा, " हृदय सजीवन होता है, जलता है। बुढ़ापा आता है, और निर्बलता बढ़ती है। "

" इसीसे काश्मीराकी सलाह विचारने योग्य है। "

" मुझे इसपर विचार नहीं करना है। "

" परन्तु, मुझे भी तुम्हें दुखी होता नहीं देखना है। मैं गई, फिर तुम्हारा कौन है ? "

हृदयमें उमड़ते हुए अकेलेपनके दुःसह भारसे मुंजालने आखें मींच लीं और कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देरमें ऊपर देख उसने कहा, " निराधारके आधार ! " पीठ फेरी और फिर वह वहाँसे चला गया।

अवस्थाके साथ हृदयकी यह व्यथा भी अमात्यके हृदयमें बढ़ती जा रही थी। उसे ऐसा मालूम होता था कि उसका बुद्धि-प्रभाव फूल रहा है, परन्तु हृदयका प्रभाव मुरझा रहा है। उसमें स्नेह-सिंचन करनेके लिए कोई अन्तरका साथी नहीं है। सामान्य जनोंमेंसे अलग बने हुए

महापुरुष एकस्तंभी महलके निवासी बन जाते हैं। वे सबसे उच्च अवश्य होते हैं, परन्तु यह उच्चता ही उनका कारागृह होती है।

४—विधि और उसके साधन

नगरकी स्त्रियोंमें पंडित गजानन वाचस्पति पाटणकी नाक समझे जाते थे। कहा जाता था कि उनके प्रभावसे वेद-पारंगत विद्वान् काशीपुरीमें रहते हुए भी भली भाँति वेदोच्चार नहीं कर सकते। अनेक बार इन्द्रका इन्द्रासन डावाँडोल हो जाता है। दानव-गण नरकमें पड़े हुए सड़ना भूलकर काँपने लगते हैं। नक्षत्र-तारे और धूमकेतु तक, वे कहें उसी घरमें, जैसी वे आज्ञा करें वैसी ही, दृष्टि डालकर देखा करते हैं। उनके पास पढ़नेके लिए अनेक देशोंके शिष्य आते थे और उनसे पराजित होनेके लिए दसों दिशाओंके पंडित आया करते थे। उनसे शास्त्र श्रवण करनेके लिए नगरवासियोंकी भीड़का पार न रहता था। उनसे मुहूर्त माँगनेके लिए महाजन-लोग उनके द्वार तोड़ डाला करते थे। समधिनोंका सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए तरसती हुई स्त्रियाँ उनके पास व्यतिपात, वैधृत और षडाष्टकोंकी अटपटी कठिनाइयोंका अचूक फैसला करानेके लिए आती थीं।

कर्णदेवके सम्मानित वैद्य लीलाकी कन्या मात्रासे उनका विवाह हुआ था। वे मीनलदेवीके सम्मानित पंडित और ज्योतिषी थे। पाटणकी पाठशालाके महामहोपाध्याय थे। वे थे तो जवान, परन्तु समझे जाते थे वृद्धोंसे भी वृद्ध।

विघ्नेश शंकर-तनयका मंगल-दायक नाम उन्होंने धारण कर रखा था; परन्तु गणपतिमें जो गुण विश्वविख्यात हैं, वे उनमें गैरहाजिर थे। गजानन तो बड़ी तोंदवाले हैं पर ये गजानन केवल हाड़-चाम थे। देव गजानन तो सुख और चैनकी मूर्त्ति हैं पर ये सतत अध्ययनसे शुष्क और चिन्तातुर। एकका शरीर सिरसे बड़ा था, दूसरेका सिर शरीरसे बहुत बोझिल। एक गजाननकी दो दो स्त्रियाँ सेवा करती थीं, दूसरे गजानन लोगोंकी कुण्डलियाँ देखनेमें अपनी एक स्त्रीको भी अनेक बार भूल जाया करते थे।

राज्य और संसारकी उथल-पुथलके बादल चारों ओर मूसलधार वर्षा कर रहे थे, फिर भी विद्यादेवीकी छत्रछायामें पंडित गजानन स्थिर और

अस्पर्श्य रहकर अपना काम करते रहते थे। आज पाटणमें वसन्तोत्सव आरम्भ हुआ था। परदेशी सेनापति पाटणमें पधारे थे। घरमें स्वर्गीय मित्रकी पुत्री आई थी, फिर भी पंडितजी पत्रा लिये हुए चौकीपर निश्चल मनसे विराज रहे थे। दाहिने कानमें उन्होंने कलम खोंस रखी थी और अँगूठेसे अँगुलियोंकी रेखाओंपर गणना कर रहे थे। उनके सामने एक मोटी-सी जन्मपत्री पड़ी हुई थी। एक कोनेमें तीन शिष्य बिल्कुल सटे बैठे शपथ खानेके लिए हाथमें पुस्तक लिये धीरे-धीरे कानाफूसी कर रहे थे और पंडितजीके डरके मारे जब-तब पुस्तक पढ़नेका ढोंग कर लेते थे। एक शिष्यने गुरुकी ओर केवल आँखके एक कोनेसे दृष्टि डाली और अन्य शिष्योंके शरीरमें अँगुली गड़ाकर उनका ध्यान गुरुकी ओर आकर्षित किया। कौन-सा ग्रह कौनसे स्थानसे चलकर कौन स्थानपर पहुँचनेवाला था, एकाग्रतासे विचार करते हुए पंडितराजका अँगूठा न सीधा रहा, न टेढ़ा; बल्कि स्तब्ध होकर ठहर गया। एक क्षण बीता, दो क्षण बीते, परन्तु वह अटल रहा। इस आकस्मिक परिस्थितिसे शिष्य घबरा गये। उन्होंने गुरुदेवके मुखपर दृष्टि डाली। पंडितजीकी शान्त और सूक्ष्म आँखें अँगुलीकी रेखापर ठहर गई थीं और कुछ बाहर उभर आई थीं। शिष्योंका श्वास रुद्ध होने लगा। क्या गुरुदेव समाधिस्थ होनेकी तैयारी कर रहे हैं? धीरे धीरे दस पल बीत गये, परन्तु न तो अँगूठा हिला और न पलकें ही हिलीं। शिष्य एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। अब क्या करना चाहिए?

निर्मल आकाशमें जैसे अचानक बिजली कड़क पड़ी हो, इस प्रकार उस वेदोच्चारसे पुनीत किये हुए शान्त और निःशब्द कमरेमें खिलखिलाकर हँसनेकी ध्वनि गूँज उठी। तीनों शिष्य घबराकर खड़े हो गये। गुरुका हास्य पेटमें न समा रहा था। उन्होंने किसी दिन गुरुको मन्द हास्यसे अधिक इस प्रकार गौरव-हीन कार्य करते नहीं देखा था और इससे उन्हें शंका हुई कि वे होशमें हैं या नहीं।

कुछ देरमें गुरुदेवने हँसी रोकी, आँखोंमें आये हुए आँसू पोंछे, फिर अँगुलीपर तीन बार गणना की—एक, दो, तीन, चार और पाँच—और फिर प्रसन्न होने लगे। आखिर बोले "अहाहा! कैसा वैचित्र्य है!" तीनों शिष्य भी यह निर्णय करनेके लिए निकट आये कि कौन-से वैचित्र्यने गुरुदेवको

ऐसा अस्वाभाविक बना दिया है ! पंडितजीने आँखें उठाईं । क्रोध-पूर्ण मुखसे इधर-उधर देखा और शिष्योंको वहाँसे चले जानेके लिए सूचित किया । हास्यका भेद जाननेमें निराश हुए शिष्य चले गये ।

गजानन फिर कुछ हँसे, जन्मपत्रिकाको हाथमें लिया, देखा, और फिर हँसे। उसमें कोई अद्भुत हास्य-जनक बात थी । परन्तु अधिक समय उस बातपर विचार न कर सके । एक शिष्य दौड़ता हुआ आया, " गुरुदेव, काश्मीरा-देवी आ रही हैं । "

" ऐं ! " इस प्रकार अचानक आगमनसे चौंककर उन्होंने कहा ।

" कुछ बात करनेके लिए, घर जाते-जाते आई हूँ । बैठिए, बैठिए, उठते क्यों हैं ? " सम्मानके लिए उठते हुए पंडितसे काश्मीरादेवीने कहा ।

" कहो, प्रसन्नदेवी—हाँ—हाँ—का—"

पंडितजी विगलित हो गये । " देवीजी, भूल......"

" छोड़ो, इस बातको। मैं जल्दीमें हूँ। मैं विवाहकी बात करने आई हूँ।" काश्मीरादेवीने जरा आँखें नचाईं; और कहा, " चार-चार वर्ष हो गये, परन्तु तुम्हारी जीभपर प्रसन्न काश्मीरा नहीं बनी । न जाने किसने तुम्हें पंडित बना दिया । "

पंडितकी गम्भीर मुख-मुद्रा विचार-मग्न हो गई । उनकी दृष्टि सामने पड़ी हुई जन्मपत्रीपर पड़ी और वे एकदम हँस पड़े । काश्मीरादेवी पहले कुछ न समझी, फिर पंडितजीको इस विचित्र प्रकारसे हँसते देख, स्वयं भी हँसने लगी; " क्यों हँस रहे हो ? "

हँसते-हँसते पंडितजीके मुखसे आधे शब्द निकले, " मैं भी विवाहकी ही बात करना चाहता हूँ । "

शुष्क और वेदाभ्याससे जड़ बने हुए पंडितकी इस बातपर काश्मीरादेवी विचार करने लगी कि यह सुधमें है या नहीं ।

" किसका विवाह ? "

" मुंजाल मेहताका । " कहकर फिर खिलखिलाकर हँसते हुए पंडितने जन्मपत्रीको अँगुलीसे दिखलाया ।

" यह जन्मपत्री मामाजीकी है । "

" हाँ, इस वर्ष उन्हें स्त्री-योग है । "

" क्या सच कहते हो ? " काश्मीराने पूछा।

" देवीजी, मैने अनेक बार गणना की है। यदि इस वर्ष मुंजाल मेहता ब्याह न करें, तो मैं जलाञ्जलि दे दूँ, फिर किसीकी जन्मपत्रीको हाथ न लगाऊँ। योग ऐसा है कि वह चाहे लाख इनकार करें, परन्तु ब्याह अवश्य होगा। इसीपर मुझे हँसी आ रही है। मुंजाल मेहता ब्याह करेंगे! हाः-हाः-हाः " पंडितजी फिर हँसने लगे। काश्मीरा अब इस हँसनेका कारण समझी। पंडितजीके खयालसे मुंजालका ब्याह एक बड़ी बिचित्र बात थी।

" तब तुम्हारे मुखमें घी-शकर ! "

" क्यों, कोई बात चल रही है ? " पंडितजीने पूछा।

" नहीं। परन्तु मैंने निश्चय किया है, अतएव होगा ही। " काश्मीराने कहा, " इस योगके कारण ही मुझे प्रेरणा हुई होगी। परन्तु कठिनाईकी बात एक है। "

" क्या ? "

" मामाजीके योग्य कन्या कहाँसे लाई जाय ? "

पंडितजीने एकदम भौहें चढ़ाईं, सिर खुजलाया और एक आँख मींचकर उत्तर दिया, " मैं बताऊँ ? ईश्वरने कन्या पैदा न की हो, तो ग्रह-योग ही कैसे आये ? "

" कोई है ? दृष्टिमें उतरी है ? " काश्मीराने पूछा।

" हाँ, है। "

" कौन ? "

पंडितजीने नीचे झुक कर और धीरेसे कन्याका परिचय दिया। काश्मीरा चौंककर अलग हट गई।

" मामाजी उसे कैसे ब्याहेंगे ? "

" ग्रहयोग ही ऐसा है। उसकी कुंडली मैंने देखी है। ऐसा जोड़ा ब्रह्माण्डमें नहीं मिल सकता। "

काश्मीरा दैवीने सिर हिलाया, " उँ हुँ, वे त्रिकालमें भी उससे ब्याह नहीं करेंगे। परन्तु वह है कैसी ? मैंने नहीं देखी। अब मैं देखूँगी।"

" देखकर क्या करोगी ? दोनोंके ग्रह कैसे पड़े हैं ? अहाहाहा ! " कहकर पंडितजीने मुंजाल मेहताकी जन्मपत्री हाथमें ले ली।

" अच्छा, परन्तु अब मैं जा रही हूँ। एक बात तुमसे कहना है।"

" खुशीसे कहो।"

" काक भट नामक मंडलेश्वर महाराजका एक मित्र है।"

" हाँ, जो मंजरीको ले आया है।"

" उस बेचारेके आगे-पीछे कोई नहीं है। इस लिए मैं उसकी मँगनीके लिए आई हूँ।"

" किसकी मँगनी ?"

" मंजरीकी। देखो, मंजरीका कन्या-काल बीत गया है, और पिता हैं नहीं। माता श्रावक है, नाना अपंग हैं और जूनागढ़में पड़े हैं। मंडलेश्वर महाराजका यह विचार है कि इनका विवाह हो जाय, तो दोनों सुखी हो जायँ।"

" देवी, काककी कुंडली है ?"

" कुंडली गई..." काश्मीरा बोल उठी।

" हाः हाः हाः।" पंडितजी बोले, " वह कैसा ब्राह्मण है ?"

" लाटका योद्धा है, बड़ी आनवाला, शूरवीर और कुलीन। मुझपर विश्वास नहीं है क्या ?"

" देवी, मेरे मित्रके कुलको लांछन नहीं लगना चाहिए।"

" पंडितजी, पाँच वर्षोंमें वह पाटणका सेनापति बन जाएगा।"

" उससे क्या लाभ ? यदि ब्राह्मण होकर भी वेदोच्चार भली भाँति न आता हो तो ?"

" पंडितजी, तुम उसे देख लेना, फिर विचार करना। उससे अधिक अच्छा पति मंजरीको तीन लोकमें नहीं मिलेगा।"

" अच्छा, मैं कल मिलूँगा। आशीर्वाद देवीजी, कुमार प्रसन्न हैं ? और महाराज ? मैं महाराजसे मिलने आऊँगा, पर वे तो इस गरीब ब्राह्मणको पहचानते भी न होंगे।"

" तुम्हें भूलकर कोई मनुष्य जायगा कहाँ," कहकर, नत-मस्तक प्रणाम करके काश्मीरा वहाँसे रवाना हुई। पंडितजीने फिर जन्मपत्री हाथमें ले ली।

कुछ देरमें घरके अगले भागमें किवाड़ोंकी खड़खड़ाहट हुई और मंजरी बड़ी तेज़ीसे हाफ़ती-हाँफ़ती आई। पीछे-पीछे चकित हुई काश्मीरादेवी भी इस घबराहटका कारण जाननेको आई।

" देवी, क्या है ? " पंडितजीने मात्रासे पूछा ।

" जरा ठहरो, कहती हूँ । " कहकर उसने मंजरीको बैठाया । मंजरीके होश हवास उड़े हुए थे । उसकी कमलकी-सी आँखें फट गई थीं । रमणीय अपूर्वताको प्राप्त उसकी छाती ज़ोर-ज़ोरसे धड़क रही थी । इस घबराहटमें उसके सौन्दर्यने, उसके लालित्यने अद्भुत मनोहरता धारण कर ली थी । यह प्रश्न पंडितजीके शुष्क हृदयमें भी खड़ा हो गया कि शुकदेवजीने रम्भाको लौटा दिया था; परन्तु अगर वे इसे देखते तो क्या सोचते ? वे खड़े हुए और फिर लौट आये ।

मात्राने कहा, " काश्मीरा बहन, पंडितजी, हम राजमहलसे लौट रही थीं कि मंजरी एकदम चिल्ला पड़ी और मेरा हाथ पकड़कर यहाँ तक दौड़ा लाई । "

" क्यों ? "

मंजरीने होठ दबाकर ज़रा स्वस्थ होनेकी चेष्टा की । और कहा," स्वयं मैंने जाते हुए देखा ! "

" किसे ? " काश्मीरादेवीने पूछा ।

मंजरी अपना सिर हाथोंसे ढँक कर सिसकियाँ लेने लगी ।

" जो खंभातमें तुम्हारे साथ ब्याह करना चाहता था, वह ? " काश्मीरा-देवीने पूछा ।

झुके हुए सिरको हिलाकर मंजरीने कहा " हाँ । "

" क्या उदा मेहताके साथ खंभातसे कोई सेठ आया है ? "

मंजरीने फिर कहा, " हाँ । "

" अच्छा ! उसे मार्गमें जाते देखा होगा, इससे यह घबड़ा गई । " कहकर काश्मीराने पंडितजीकी ओर देखा । पंडित उस दृष्टिका अर्थ समझ गए ।

मंजरीका विवाह कर देना चाहिए, इसका एक और सबल कारण मिल गया ।

" बहनजी, बहनजी, " मंजरीने काश्मीरा देवीसे दयनीय स्वरमें कहा, " उसने मुझे देख भी लिया । अब मैं कहाँ जाऊँ ? वह मुझे अवश्य ले जायगा । "

" घबरा क्यों गई पगली ? यह खंभात नहीं है, पाटण है ? "

" बहनजी, आप उसे पहचानती नहीं हैं ।"

" घबराओ मत । पंडितजी, मंजरीको मुझे अपने यहाँ ले जाने दो। यहाँ यह घबड़ाएगी ।"

" हाँ, ठीक है ।" मात्राने कहा । पर पंडित गजाननजी कोई निश्चयपर न आ सके ।

" चलो मंजरी, मेरे साथ चलो । किसमें साहस है कि मंडलेश्वरके यहाँ कोई तुम्हारा बाल भी बाँका कर सके ।" कहकर काश्मीरादेवी मंजरीको अपने साथ ले गई । उनके जानेपर पंडितजी बोले—कैसा विधि-वैचित्र्य है !"

" क्यों ?" उनकी अर्धांगिनीने पूछा ।

" बिना कुंडली देखे ही कहता हूँ, मंजरीका विवाह-योग आ पहुँचा ।"

" क्योंजी, तुम विवाह-योग देखते देखते क्या पागल हो गये हो ?"

" देवी, तुम प्रसन्न बहनको तो पहचानती हो न ?"

" खूब । जब हम बचपनमें एक साथ बैठकर गुड़ियोंसे खेला करती थीं तबसे । परन्तु उसमें यह मंजरीके विवाहकी बात कहाँसे निकल आई ?"

" प्रसन्न देवीने निश्चय किया है कि मंजरीका विवाह किया जाय ।"

" किसके साथ ?"

"कोई काक भट है, उसके साथ ।"

" ऐं ! उसकी कीर्त्ति तो बहुत लोग गाते हैं । तो इसमें कौन बुरी बात है ? हम लोग मंजरीको कबतक रखेंगे ? इससे अच्छा और क्या होगा ?"

पंडितजी अपना अधिकार नक्षत्रोंपर चलाते; परन्तु उनपर मात्रा अधिकार चलाया करती थी । वह भी इस मतके हो गये कि इससे अच्छा और क्या होगा ?

... .

५—मालिक कौन ?

जयदेवकी मानसिक स्थिति विचित्र हो रही थी । सोरठके स्वामीको हराया था, इस कारण उसका मन प्रफुल्लित था । त्रिभुवनने पहल की थी, इस कारण उससे ईर्ष्या हो गई थी । उबकके आनेसे वह खिन्न हो गया था और मालव-

पतिकी कन्याकी मँगनीके संदेशसे वह परितृप्त हुआ था। वह काकसे चिढ़ गया था, त्रिभुवनपालपर क्रोधित था, मुंजालसे असन्तुष्ट था और अपने आपपर उसे तिरस्कार हो गया था। उसे स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि वह पाटणके चक्रकी केवल नामकी ही धुरी है। यथार्थ धुरी दूसरे हैं। उसे यह भी भान होता गया था कि अभी वह कच्चा है, उसमें राज-नीतिज्ञता कम है। उसके पास अधिकार प्राप्त करनेका मन्त्र ही नहीं है। उसे अपने राज्यमें बढ़ रहे उपद्रवोंकी लहरों परसे तैरकर समुद्रके पार जाना था; परन्तु ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसके हाथोंमें जोर नहीं है। वह विचार कर रहा था कि इस निर्बलताके भानसे उत्पन्न हुए असन्तोषको किसपर निकाला जाय।

उसकी विचार-माला भंग हो गई। पैरोंकी एक भारी आवाज़ आई। उसने अपने मुख परसे चिन्ता और निराशाके चिह्न जैसे बने वैसे दूर करनेका प्रयत्न किया।

" महाराज हैं क्या ? "

" कौन, त्रिभुवन ? आओ न। बहुत दिनोंमें मिले। तुम तो बड़े महारथी हो गये हो, इसलिए महँगे हो जाओ, इसमें आश्चर्य ही क्या है ? " असन्तोषसे जयदेवने पूछा।

" मैं महारथी बना हूँ सो महाराजके ही लिए तो ! "

" या मैं राजा हूँ तुम्हारे लिए। " ज़रा तिरस्कारसे जयदेवने कहा।

त्रिभुवनके उग्र स्वभावपर ज़रा आघात हुआ। वह होठ चबाकर, आँखें फैलाकर कुछ देर जयदेवकी ओर देखता रहा।

त्रिभुवनके ऊँचे और सुदृढ़ शरीर, उसकी हाथीकी सूँड़के समान विशाल भुजाएँ, उसकी बड़ी बड़ी शुद्ध हृदयका अकलंक भाव दरसानेवाली तेजस्वी आँखें; उनसे ऐसा आभास हो रहा था कि जैसे वह शौर्यकी प्रतिमा हो। यह देखकर जयदेव अधिक चिढ़ गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इन सिंहोंके समूहमें केवल एक वही निर्बल बकरेके समान है। वह होठ दबाये मंडलेश्वरकी ओर देखता रहा।

" काकाजी " यथासंभव शान्ति धारण करके त्रिभुवनने कहा, " आप क्रोधित हो गये हों, तो क्षमा कीजिएगा। इस बातको छोड़ दीजिए। मैं एक विशेष कामसे आया हूँ। "

" क्या ? "

" मेरा सुभट नहीं मिल रहा है । आख़िरमें वह डूँगरके साथ राजमहलमें आया था, और डूँगर कहता है कि मुझे कुछ मालूम नहीं । मुझे इसमें कोई रहस्य दिखलाई पड़ता है । "

जयदेवके जलते हुए मस्तिष्कमें घी पड़ गया । उसने दाँत पीसकर कहा, " कौन, काक ? "

" हाँ, वही । जिसे मैंने लाटसे भेजा था वह । "

" वह क़ैदमें है । "

" क़ैदमें ? " लाल-पीले होते हुए मंडलेश्वरने पूछा, " किसकी आज्ञासे ? "

" मेरी आज्ञासे । " जयदेवने अधिकार-पूर्वक उत्तर दिया ।

" मुझसे क्यों नहीं पूछा ? क्यों क़ैद किया उसे ? "

" मेरी इच्छा । "

" मामाजी और माताजीको खबर है ? "

" किसीसे पूछनेकी मुझे क्या जरूरत ? "

" क्या जरूरत ? क्या जरूरत ? हम आपके लिए प्राण देकर मरें, और हमें पूछनेकी क्या जरूरत ? " त्रिभुवनका संयम भंग होने लगा। उसका शरीर क्रोधसे काँपने लगा ।

" त्रिभुवन, तुम मुझे बालक समझ रहे हो, क्यों ? यह मैं नहीं सहूँगा । "

" सहना पड़ेगा । महाराज, मेरे सुभटको छोड़ दीजिए । उस उदाकी सलाहसे काकको कैद करते हुए विचार नहीं किया ? पहले मैं हूँ, या उदा ?"

" पहले मेरी आज्ञा । कल सबेरे तुम्हारा काक हाथीके पैरोंतले होगा, समझे ? एक हलकेसे नौकरके पीछे इतना बखेड़ा ? " तिरस्कारसे राजाने कहा ।

" मैं आपकी तरह अपने सेवकोंको पैरोंकी धूल नहीं मानता । "

" नहीं, नहीं, तुम तो मुझे अपने पैरोंकी धूल समझ रहे हो, क्यों न ? जाओ, नहीं छोड़ूँगा उसे, तुमसे हो, सो कर लो ! " कहकर जयदेव जहाँ बैठा था वहीं खड़ा हो गया और अन्दरके कमरेकी ओर जाने लगा। त्रिभुवन एक छलाँग मारकर निकट जा पहुँचा और उसने अपना भयंकर पंजा जयदेवके कन्धेपर रख दिया । जयदेवने आवाज़ दी—डूँगर, डूँगर ! "

" आपको देखना है कि मुझसे क्या हो सकता है ? "

जयदेवने त्रिभुवनकी भयंकर बन रही मुखमुद्राको देखा और वह घबड़ाकर खड़ा हो गया। " तुम्हें खबर नहीं कि मैं कौन हूँ ? "

" मुझे खबर है, कि तुम्हारे पिता जैसे उपद्रवी थे, वैसे ही तुम भी बनने लगे हो। " साहस रखकर राजाने कहा।

इतनेमें डूँगर आया और इन दोनोंका ताण्डव-नृत्य देखकर अलग खड़ा हो गया।

" मैं जब पिताजीकी भाँति बन जाऊँगा; " अभिमानसे मस्तकको पीछेकी ओर कर उसने कहा, " तभी तो मेरा जीवन वास्तवमें कृतार्थ होगा। मैंने और मेरे पूर्वजोंने क्या किया है, इसका तुम्हें भान है ? सिंहासनपर बैठ तो गये, परन्तु यह सिंहासन किसके बलपर है, इसका कुछ ध्यान है ? स्वयं सिंहासनपर आरूढ़ हो सकते थे; फिर भी मेरे *दादाने उसे तुम्हारे बापको सौंप दिया। वे इस सिंहासनको धूलमें मिला सकते थे, फिर भी मेरे पिताजीने हजारों समरांगण खेलकर इसका प्रताप बढ़ाया; मैं स्वयं इस सिंहासनपर बैठ सकता था, फिर भी तुम्हारे लिए उसको सँभाल रखा। आज लाट और सोरठपर उसकी सत्ता स्थापित की और अब भी तुम मुझे पहचानते नहीं कि मैं कौन हूँ ? "

जयदेव कुछ न बोल सका। उसकी दृष्टिमें त्रिभुवन अधिक उच्च, अधिक प्रचंड होता प्रतीत हुआ। जयदेवको अपने दादा भीमदेव बाणावलीके पराक्रमोंकी याद आई; परन्तु ज्यों ज्यों त्रिभुवन अधिक प्रतापी प्रतीत होने लगा त्यों त्यों उसके स्वाभिमानको अधिक कठोर आघात लगा और अपनी निर्बलताका उसने अधिक अनुभव किया। उसका बाल-स्वभाव, बुद्धिमानी भूलकर त्रिभुवनको कुचल डालनेके लिए तत्पर हो गया।

" और तुम जानते हो कि मैं कौन हूँ ? " उसने कहा, " डूँगर तुम त्रिभुवनको पकड़ लो। पकड़ो, मैं कहता हूँ ! "

त्रिभुवनपाल क्रोधमें भी खिलखिलाकर हँस पड़ा। डूंगर इस बखेड़ेसे भयभीत होकर जहाँका तहाँ अलग खड़ा रहा।

---

* क्षेमराज—कर्णदेवका बड़ा भाई; जिसने वाणप्रस्थ लेकर सिंहासन अपने छोटे भाईको सौंप दिया था।

" मुझे पकड़ना है ? " अभिमान-पूर्ण उच्चारणसे त्रिभुवन बोला, " अभी बालक हो, अतएव ज्ञात नहीं कि त्रिभुवनपाल मंडलेश्वरको पकड़ना कितना कठिन है । डूँगर, तुम जानते हो कि काक कहाँ है ? चलो, मुझे रास्ता दिखाओ । "

डूँगरने अनेक उपद्रवोंके झटके सहे थे, परन्तु यह कुछ भिन्न ही प्रतीत हुआ । वह साहसी था । वह मल्लोंके सिर नित्य तोड़ा करता था, परन्तु इस समय घबड़ाई हुई गायकी भाँति एकसे दूसरेकी ओर देखता रहा ।

" डूँगर तू नहीं मानता ? तू अपने महाराजकी आज्ञा नहीं मानता ? अच्छा, खड़ा रह ! " जयदेवने कहा और त्रिभुवनको जानेसे रोकनेके लिए उसका हाथ पकड़ लिया । जैसे छोटे-से बालकका हाथ जरा-सा झटका देकर अलग कर दिया जाता है, उसी प्रकार त्रिभुवनने जयदेवका हाथ अलग कर दिया और गौरवसे डूँगरको आगे होनेके लिए संकेत किया ।

" महाराज, आप अन्नदाता हैं, परन्तु मंडलेश्वर महाराज भी तो मेरे मालिक हैं । " कहकर डूँगर आगे हो गया । जयदेवकी ओर एक तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि डालकर, त्रिभुवन उसके पीछे पीछे गया ।

जयदेव अचेत-सा होकर देखता रहा । अपनी निराधारताका भान होनेसे उसका हृदय विदीर्ण हो गया । उसका हृदय कहता था कि डूँगरने जो कहा और किया वह सारा पाटण और सारा गुजरात कहेगा और करेगा । वह राजा नहीं है, किंतु नामका एक पुतला है । स्वाभिमान भंग होनेसे टप-टप करके उसकी आँखोंसे आँसू बहने लगे ।

उन आँसुओंके साथ उसका क्रोध भी बह गया । वह महत्त्वाकांक्षी था, विचारशील था और कार्य-साधकताका उसमें विकास हो रहा था । वह बालक था, परन्तु प्रौढ़ विचारों और राजनीतिज्ञताके बीज उसके स्वभावमें कभीसे अंकुरित होने लगे थे । एक क्षण उसने अनेक विचार किये; अनेक डौल रचे; त्रिभुवनके पीछे दौड़ा और खुले हुए द्वारसे आवाज़ लगाई " त्रिभुवन, त्रिभुवन ! "

बड़े-बड़ोंको अल्पताका अनुभव करानेवाले गौरवसे त्रिभुवन लौटा और जयदेवकी ओर देखने लगा । उसने जयदेवकी आँखोंमें आँसू देखे । उसे अपने द्वारा जयदेवके स्वाभिमानपर किये गये आघातका ध्यान आया और उसके हृदयमें अपने बाल-राजाकी ओर राज-भक्तिके अंकुर प्रस्फुटित हुए ।

" क्यों ? " उसने कठोर स्वरमें पूछा ।

" मैं काकको मुक्त करता हूँ, तुम इधर आओ । डूँगर, जाओ, जाकर काक भटको यहाँ ले आओ । "

त्रिभुवनके आश्चर्यका पार न रहा । उसने यह ज़रा भी नहीं सोचा था कि जयदेव इस प्रकार बिल्कुल नत हो जाएगा ।

" सबके बिना तो मेरा काम चल जाएगा; परन्तु तुम्हारे बिना कैसे चलेगा ? " जयदेवने हाथ बढ़ाकर कहा ।

स्नेह-पूर्ण और सरल–हृदय मंडलेश्वर इन स्नेह-भरे वाक्योंको सुनकर हँसा और निकट आकर उसने जयदेवके दोनों हाथ अपने हाथोंमें ले लिये ।

वह बोला, " महाराज, मैंने जो कुछ कहा, उसके लिए क्षमा कीजिएगा; परन्तु आप अनेक बार मेरी कोई गणना ही नहीं करते । तब क्या किया जाय ? "

" क्या किया जाय ? मुझपर उपकार करके मुझे लज्जित किया करो । मैं तुम्हारा उपकार कैसे भूल सकता हूँ ? तुम मेरे दाहिने हाथ, मेरे समस्त सामन्तोंके शिरोमणि हो । "

" तब मुझे अपना समझकर, मेरे पराक्रमोंसे प्रसन्न क्यों नहीं होते ? ऐसा करेंगे, तो आप राजा कैसे बनेंगे ? "

" राजा—राजा, त्रिभुवन, मैं कब राजा बनूँगा ? मालूम होता है, मैं ईर्ष्या करता हूँ, मैं चिढ़ जाता हूँ, और इसका कारण मेरी महत्त्वाकांक्षा है । इस समय मैं कितना अधम हूँ ? मुंजाल हैं, तुम हो, शान्तु हैं, तो मेरा राज चल रहा है । मैं तो केवल इसकी एक शोभा हूँ । "

" ऐसा क्यों कह रहे हैं ? "

" ऐसा ? त्रिभुवन, यह मैं किससे कहूँ ? रात-दिन मुझे स्वप्न दिखा करते हैं; किसे सुनाऊँ ? मुझे सच्चा राजा बनना है, सच्चा शासन करना है; मैं अपने पूर्वजोंकी कीर्त्तिको भी मन्द कर देना चाहता हूँ, मैं भरतखंडकी भूमिको कँपाना चाहता हूँ, अपनी बनाना चाहता हूँ । इस अभिलाषाकी अग्निसे मेरा अंग अंग जला जा रहा है । यह अग्नि कब शान्त होगी ? उसके शान्त न होनेसे ही तो मैं बेचैन रहा करता हूँ, ईर्ष्यासे जला करता हूँ और तुम जैसे आत्मीयको शत्रु समझता हूँ भाई ! " कहकर जयदेवने दोनों हाथ दोनों कनपटियोंसे लगा लिये, " मुझे मार्ग नहीं सूझता । "

" महाराज, " जरा स्तब्ध होकर मंडलेश्वरने धीरे-से उत्तर दिया " इस अग्निको शान्त करनेका मार्ग लीजिए। "

" रास्ता नहीं सूझता। "

" रास्ता सुझानेवाला मैंने आपके पास भेजा था। "

" कौन, काक, ? " चौंककर जयदेवने पूछा।

" हाँ। "

" क्या उसे इतना काबिल समझते हो ? "

" हाँ काकाजी, जब हममें बुद्धि न हो, तो किसी बुद्धिशालीको अपने निकट रखना चाहिए। मुझमें अधिक सूझ बूझ नहीं है, परन्तु काककी ही सूझ बूझसे मैंने जितने विजय प्राप्त किये हैं, उतने अपने बाहुबलसे नहीं किये हैं, रा'को किसने हराया ? "

" तुमने। "

" यह भ्रम है, उसे काकने हराया है। विचार कर देखो, उदा मेहता किसीके चक्करमें न आते थे, उन्हें किसने चक्करमें डाला ? काकने। "

" क्या कह रहे हो ? खंभातमें तो उसने बड़ा उपद्रव मचाया था और इससे मैंने उसे क़ैद किया है। " जयदेवने कहा।

" सब झूठ है। "

" कैसे ? मुझसे तो उदा मेहताने कहा है। "

" इसीसे सब झूठ है। उदा बड़ा उस्ताद है। उसने पहले पहुँचकर काकको क़ैद करवा दिया। " यह कहकर त्रिभुवनपालने खंभातमें काकपर बीता हुआ सब हाल कह सुनाया। इतनेमें ही डूँगर काकको लेकर आया।

६—काकका मूल्य कैसे बढ़ा ?

तहख़ानेकी धूलसे लथपथ काक होठ चबाकर, मनको रोककर, लापरवाहीसे खड़ा हो गया। उसने महाराजको प्रणाम करनेका भी कष्ट न उठाया। त्रिभुवनने डूँगरको हाथके संकेतसे बाहर जानेके लिए कहा। वह चला गया।

त्रिभुवनपालने कहा, " काक, जयदेव महाराज तुम्हारी सलाह चाहते हैं। "

"उन्हें मेरी सलाहकी दरकार नही है।" काकने कुछ रुष्ट भावसे कहा।

"नहीं, नहीं, मुझे दरकार है।" जयदेवने कहा।

काकने कोई उत्तर नहीं दिया।

"काक, महाराज तुम्हें क्षमा करते हैं।"

"मैंने कोई अपराध नहीं किया कि मुझे क्षमाकी दरकार हो।"

"काक," जयदेवने कहा "जो चाहे समझो। मैंने भूल की। अब न होगी, बस?"

"काक, अब बहुत हो गया। महाराज कह रहे हैं, तुम उनकी बातको उड़ा रहे हो?" त्रिभुवनने कहा।

"जिस स्वामीकी दृष्टिमें मेरी क़दर नहीं, उसकी मुझे क्यों कर होगी?"

"अब शान्त हो जाओ, बहुत हो गया।" जयदेवने कहा, "काक, गुस्सा कर करके अब इतना अधिक मान क्यों चाह रहे हो? तुमने इस बार जो सलाह दी थी, वह सब सच निकली। त्रिभुवनपालने मुझे खंभातका सारा हाल सुनाया है। तुम्हारे साथ मैंने अच्छा व्यवहार नहीं किया; परन्तु अब आगे देखना। तुम यह ज़रा भी नहीं विचारते, तुम्हारा महाराजा इस समय अकेला है और सहायककी खोजमें है। उसकी सहायता करके सत्ताके शिखर-पर ले जानेका काम मैं तुम्हें सौंपना चाहता हूँ। इससे अधिक बड़ा काम तुम जैसेको शोभा दे सकता है? तुम्हें कुछ चाहिए? जो आवश्यकता हो, माँगो। माँगते हो वह माँगो, तुम्हें दूँगा।"

"मुझे आपकी और अपने मंडलेश्वरकी सेवाके सिवा और कुछ नहीं चाहिए।" काक राजाके शब्दोंसे पसीज गया।

"तो अब बीती हुई बातोंको जाने दो। उस बार हमने तीन कठिनाइ-योंकी बात की थी—सोरठका रा', उदा और उबक।"

"जी।"

"तुम्हारे प्रतापसे दो तो दूर हो गईं।"

"प्रताप मेरे महाराजका और आपका।"

जयदेवने 'मेरे महाराज'को दिया हुआ अग्रस्थान किसी प्रकार गलेसे नीचे उतारा।

"अब उबककी ही कठिनाई रह गई है।"

" उसने क्या किया है ? उसके साथ तो सन्धि हो गई । "

जयदेवने सब हाल कह सुनाया ।

" मुझे जरा अधिक खोज-ख़बर लगा लेने दीजिए, तब मैं बताऊँगा । "

" काक, अब बातको जल्दी समाप्त करो । " त्रिभुवनपालने कहा, " आजसे तुम्हें जयदेव महाराजके कथनानुसार ही सब कुछ पार लगाना है । "

" महाराजको यह पसन्द हो, तो सेवक तैयार है । उस बार भी मैंने यही कहा था । "

" उस बारकी बात छोड़ दो । " जयदेवने अधीरतासे कहा ।

" महाराजकी जो इच्छा । परन्तु मुझे किसी भी समय आपके पास आनेकी आज्ञा मिलनी चाहिए । "

" अच्छा, मैं डूँगरसे कह दूँगा । "

" महाराज, आज्ञा हो, तो मैं स्नान-सन्ध्या करने जाऊँ ? मध्याह्न कभीका बीत चुका है । "

" हाँ, सबेरेसे तुमने कुछ खाया भी न होगा ? " त्रिभुवनपालने " चलो, चलो । " कहकर आज्ञा ली ।

" क्यों, क्या काकको अपने यहाँ ले जा रहे हो ? "

" महाराज, " काकने ज़रा झुककर कहा " आज्ञा हो, तो मैं वहीं रहूँ । यदि लोग यह जान जायँगे कि आप मुझे अपना आन्तरिक व्यक्ति समझते हैं, तो मेरी सारी युक्तियाँ निष्फल हो जायँगी । मेहरबानी करके मुझे छोड़ देनेकी बात भी किसीसे न कहिएगा; नहीं तो उदा मेहताको खाना-पीना नहीं रुचेगा । " कहकर वह और त्रिभुवनपाल वहाँसे निकल पड़े ।

उन लोगोंके जाते ही जयदेव महाराज बोले " यह ब्राह्मण पहुँचा हुआ मालूम होता है । जो हो, सो सही । देखूँ तो कि इसकी सहायतासे कितना होता है ? गाजरकी सीटी जब तक बजती रहे, ठीक है, नहीं तो उसे चबाते क्या देर लगती है ? "

जयदेवके स्वभावमें अनेक कोण थे । जिस कोणसे उसे अनुभव प्राप्त होता, उस कोणसे वैसा ही तेज वह प्रकाशित करता । इस समयका कोण धूर्तताका था और इससे वह गहरे, अगाध और अस्पष्ट प्रकाशसे चमक रहा था ।

त्रिभुवन और काक इधर महलसे निकले और उधर मुंजाल मेहता उन्हें आते हुए मिले ।

" इस समय कहाँसे ? जयदेव महाराजके पाससे आ रहे हो ? "

" हाँ । " त्रिभुवनपालने कहा ।

" तुम्हारे काक कहाँ जा छिपे थे ? मैं न जाने कबसे खोज रहा हूँ । "

" महाराज, मैं हाज़िर हूँ । " काक फूल उठा कि अब मेरा मूल्य बढ़ा है।

" त्रिभुवन, तुम राजमातासे मिले ? ज़रा मिल आओ। तब तक मैं काकसे कुछ बातें कर लूँ । "

" अच्छा " कहकर त्रिभुवनपाल चला गया और मुंजाल मौनमुख महलकी ओर जाने लगा । काक उसके पीछे हो लिया ।

वे लोग अन्दर जाकर पासके ही एक कमरेमें गये और मुंजालने अन्दरसे जंजीर चढ़ा ली । पूछा, " आज तुम कहाँ धूलमें लोट आये ? "

अचानक इस प्रश्नसे काक कुछ उलझनमें पड़ गया । कुछ सँभलकर उत्तर दिया, " नहीं तो महाराज । "

" तब ? " पूछकर मन्त्रीने उसके पैर, घुटने और हाथोंपर लगी हुई धूलकी ओर नजर डाली, " जयदेव महाराज और तुममें फिर सुलह हो गई न ? क्यों ? चलो, अच्छा हुआ । "

काक यह जानकर चकित हो गया कि मुंजाल मेहताका मस्तिष्क कितने वेगसे, कितनी स्पष्टतासे कड़ियाँ जोड़कर अज्ञात बातको भी जान लेता है ।

" जी हाँ, महाराजकी मुझपर कृपा है । " काकने कहा ।

" होनी ही चाहिए । सोरठका रा' पकड़ा गया सो तुम्हारी ही सलाहसे । "

" महाराज, यदि त्रिभुवनपाल न पहुँचते, तो आपके भेजे हुए भटराज परशुराम उन्हें अवश्य दबोच लेते । "

मुंजाल हँस पड़ा, " किसी औरको न लेकर राजाने तुम्हें सलाहकारकी भाँति लिया है, यह मुझे बहुत भला लगा । " कहकर मन्त्री ज़रा रुक गया। काक कुछ न बोला । " कारण, कुछ ही समयमें तुम्हारे प्रति मुझे श्रद्धा हो गई है । "

काकका भाव इतना कैसे बढ़ गया, इसे वह न समझ सका । अतएव उसने उत्तर दिया " बड़ा अनुग्रह हुआ महाराज ! "

" इसलिए तुम्हें एक काम सौंपना है । "

" क्या ? "

" आज हमारे यहाँ दो शूर-वीर अतिथिके रूपमें आये हैं । "

" एक उबक सेनापति और दूसरा कीर्तिदेव । "

" हाँ, वही । वे क्यों आये हैं, कुछ खबर है ? "

" पाटणका आतिथ्य स्वीकार करनेके लिए । "

" मैंने समझा था कि, तुममें बुद्धि अधिक होगी । राजनीतिज्ञ, निरर्थक आतिथ्य कभी स्वीकार करते हैं ? "

" क्षमा कीजिए महाराज, मैंने समझा कि कदाचित् आप ही बतायेंगे कि वे कैसे आये । इससे मैंने नहीं कहा । "

मुंजाल ज़रा हँसा " अच्छा, अब सच बोलो, तुम्हारी क्या धारणा है ? "

" मेरी धारणा यह है कि वे लोग पाटणमें मालवेका पक्ष सबल करनेके लिए आये हैं । "

" इसका कोई कारण मालूम है ? "

" कारण यही कि अवन्ति और पाटणके बीच सदाके लिए सन्धि रहे । "

" काक, " मुंजालने खुले दिलसे कहा " तुम अच्छे-अच्छे मंत्रियोंके भी कान काट सकते हो । "

" क्यों महाराज ? "

" जो बात किसीको ज्ञात नहीं, सिर्फ मुझे ही जिसके विषयमें केवल कुछ सन्देह है, उसीका तुम्हें विश्वास है । "

काक कुछ हँस पड़ा ।

" इसीलिए तुम्हें बुलवाया है । उबक तो केवल योद्धा है, उसकी तो कोई गणना नहीं; परन्तु साथमें जो गोरा-सा युवक आया है, वह भयंकर है । "

" जी । उसने त्रिभुवनपाल महाराजके साथ जो वार्तालाप किया, उस परसे मुझे भी ऐसा ही प्रतीत हुआ । " काकने कहा ।

" तो अब देखना केवल यही है कि कीर्त्तिदेव अपनी धारणाके अनुसार काम कर लेता है, या तुम नहीं करने देते । "

" जैसी आज्ञा । "

" मैं महाराजसे कहकर तुम्हें आज्ञा दिला दूँगा । कदाचित् मुझे कहनेके लिए आनेको समय न मिले, तो हर्ज नहीं; परन्तु अन्तमें हिसाब सब ठीक दे देना । "

" जी । "

" तो मैं निश्चिन्त रहूँ ? "

" जी हाँ । " उसपर मुंजालने इतना विश्वास और श्रद्धा प्रकट की, इससे प्रसन्न होते हुए काकने कहा ।

" अच्छा, जाओ । "

काक चला गया । उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मुंजालने उसपर विश्वास करके बहुत गुप्त बात उससे कह दी है; परन्तु मुंजाल मेहताकी चाणक्य नीतिसे वह परिचित नहीं था ।

वह गया और उसके जाते ही मुंजालने तुरन्त गुमाश्ते-जैसे प्रतीत होनेवाले मनुष्यको बुलाया । कहा, " बिहारी, अभी जो गया, उस भटको तुमने देखा ? वह त्रिभुवनपालका सुभट है । "

" जी । "

" उसका नाम काक भट है । वह कहाँ जाता है और क्या करता है, इस-पर तुम्हें दृष्टि रखना है । "

" जो आज्ञा, अन्नदाता । "

" देखना, बड़ा जबर्दस्त आदमी है । दिनमें दो-तीन बार मुझे ख़बर देना । "

" जी । " कहकर बिहारी चला गया ।

७—मंजरीके स्वामी

त्रिभुवन काकको लेकर फिर अपने महलमें आ पहुँचा । काक भोजनकी तैयारीमें लगा और मंडलेश्वर विश्रामके लिए गये । काकने भी नित्यकर्म और भोजन आदिसे निबटकर यात्रा और तहख़ानेकी थकावट उतारनेके लिए ज़रा देर सोनेका विचार किया । अन्दरके खण्डमें जहाँ ख़ास घरके लोग रहते थे; एक खाली कोना खोजकर वह सो गया । परन्तु निश्चिन्त होकर सोना उसके भाग्यमें न बदा था । वह एकदम चौंककर जाग पड़ा । कारण, कि एक सुसंस्कृत और परिचित स्वर उसके कानोंमें पड़ा । उसका हृदय उछल पड़ा । वह कान लगाकर सुनने लगा । सुनते ही वह बिलकुल एकचित्त

और स्तब्ध हो गया और सुनता ही रहा। वह सब कुछ भूल गया—राजनीतिक चालें, युद्ध-प्रसंग, महत्त्वाकांक्षा, केवल दो स्त्रियोंकी स्वरलहरीमें लीन होकर उनकी बातोंको हृदयमें उतारते हुए, वह रस-तरंगोंमें झूलता रहा।

जहाँ वह सोया था, उसके पीछेवाले कमरेमें काश्मीरा और मंजरी झूलेपर झूल रही थीं। झूला ज़ोरसे चल रहा था और कभी धीमे, कभी ज़ोरसे दोनों बातें कर रही थीं। दोनों ललनाएँ पूर्ण यौवनमें थीं। दोनोंका रूप, ठस्सा और छटा अपूर्व भिन्न-भिन्न लक्षणोंवाली, फिर भी मोहक थीं। काश्मीरा, सुगठित शरीरवाली शक्तिकी प्रतिमा थी; मंजरी, विकासोन्मुख अंगोंवाली मानो परिपूर्ण लक्ष्मी-पदको पहुँचनेकी तैयारीमें थी। काश्मीरा, चपल, उत्साहप्रेरिका और सत्ताधारिणी मालूम होती थी; मंजरी अपूर्व उन्मादक और कल्पना-शक्तिको भी बन्दी बना लेनेवाली थी। मालूम होता था कि पुरुष, एकको देखकर तो उसका शासन स्वीकार करनेके लिए दौड़ पड़ेंगे और दूसरीको देखकर ऐसा लगता, मानों वे सारे शासनोंको तोड़कर उसे पूजने लगेंगे। जब काकका ध्यान आकृष्ट हुआ, तब मंजरी बोल रही थी। उसके कण्ठमें गर्व और तिरस्कारके साथ निराशाकी भी झनकारें सुनाई पड़ रही थीं।

" बहनजी, मेरा सम्बन्ध किससे हो सकता है ? पिताजीके स्वर्गवासके बाद संसारमें मुझे समझनेवाला, मुझे रुचनेवाला कोई नहीं दीख पड़ता। कहाँ मेरे मनोराज्यके महार्घ वीर और कहाँ ये निस्तेज निराधार तुच्छ प्राणी। किसीमें न तो बुद्धि है, न बल है और न आदर्श है। अगर सबका लक्षण देखा जाय, तो वह है तुच्छता। "

उत्तरमें काश्मीरादेवी हँसी, " अरी मूर्खा, तुझे कुछ ज्ञान है ? जैसे वीर पाटनमें हैं वैसे क्या और भी कहीं हैं ? "

मंजरीने तिरस्कारसे कहा " हूँ, आपके पाटणके वीर और पंडित सब "—

" तेरे निकट उनकी कोई गिनती नहीं ? "

" बहनजी, मेरे साथ बात करते करते आपका सिर पक जायगा, जाने दो, इसे। मैं आपके जमानेकी नहीं हूँ, त्रिलोकोंको गुँजा देनेवाले महाकवियोंके जमानेकी हूँ। मैं पाटणकी ब्राह्मणी नहीं, वरन् ब्रह्मा, विष्णु, और रुद्रको अपनी गोदीमें खिलानेकी हवस रखनेवाली दूसरी अनुसूया हूँ। "

" यह तो कौन जानता है, पर तू है पगली। "

" पर मेरा यह पागलपन ही मेरे खयालमें बुद्धिमानी है । "

" परन्तु तू ऐसीकी ऐसी कबतक बनी रहेगी ? न पिता हैं, न भाई; इस उम्रमें इस प्रकार अकेला कैसे रहा जायगा ? अनुसूया तभी न बनेगी, जब कोई अत्रि होगा ? " काश्मीराने हँसते-हँसते कहा ।

" बहनजी, सो मैं जानती हूँ । वह काक भट न होता, तो मुझे प्राण गँवाना पड़ता । मोहिनीके रूपने जैसे देव और दानवोंको अस्थिर कर दिया था, वैसे ही मेरे रूपमें भी भयंकर शक्ति है । अतएव लालसाके सेवक दुःख देने आयेंगे; दुःख देंगे, सताएँगे, परन्तु मैं किससे विवाह करूँ ? किसके साथ सम्बन्ध करूँ ? मैंने अभी आपसे क्या कहा है ? मैं जहाँ देखती हूँ, मुझे वहाँ तुच्छ जीव नजर आते हैं । इनमेंसे मैं किसकी दासी बनूँ ? "—भयंकर कटाक्षसे मंजरीने पूछा । उसके शब्दोंकी अपेक्षा उसके बोलनेका ढंग गर्वपूर्ण और हृदय-भेदक था । काकका हृदय रो पड़ा । मंजरीकी बातें सच थीं; फिर भी वे उसकी आशाओंका खून कर रही थीं ।

" किसीका छुटकारा हुआ है कि तेरा होगा ? तू बड़ी पंडिता है न, फिर भी इस प्रकार धर्मको क्यों किनारे छोड़ रही है ? तू अभी घबड़ा रही थी कि खंभातका सेठ तुझे पकड़के न ले जाय । तब फिर तेरा धर्म कैसे बचेगा ? किसीके साथ विवाह क्यों नहीं कर लेती ? फिर किसकी ताब है कि तेरा बाल भी बाँका कर सके ? "—काश्मीराने मंजरीके कन्धेपर हाथ रखकर कहा ।

" श्रावक बनना अथवा किसी तुच्छ प्राणीसे विवाह करना, मेरे लिए दोनों बातें अधमताकी चरम सीमा हैं । "

" खबरदार ! मेरे पीहरवाले श्रावक हैं और मेरी सास भी श्रावक थीं । और तेरे खयालमें जब सभी क्षुद्र जीव हैं, तब मेरे पति मंडलेश्वर भी वैसे ही हुए ! " कहकर काश्मीरा फिर हँसने लगी । वह मंजरीको धीरे धीरे विवाहकी बातपर ले आ रही थी । बाहर सोता हुआ काक यह समझ गया और उसको मन ही मन सच्चे हृदयसे उसने धन्यवाद दिया ।

" तो फिर मुझसे आप ऐसी बातें कहलवाती ही क्यों हैं ? मैं कैसे विवाह कर सकती हूँ ? " मंजरीने ऐसे गौरवसे कहा, जैसे वह स्वयं महारानी हो और मंडलेश्वरकी पत्नी दासी ।

"सो तो अपने आप ही समझमें आ जाएगा। बहुत-सी तो अन्धे और लँगड़े पतियोंतक की सेवा करतीं हैं। वे कैसे करती होंगी?"

"मैं भी करती हूँ, जो मेरे दिलमें बैठ गये हैं, उनकी। दूसरोंके लिए वे भले ही बिल्कुल निकम्मे हों।"

काश्मीरा चौंक पड़ी। "ऐं!"

"हाँ।"

"यह क्या?"

"सच कह रही हूँ। मैंने एक बार आपसे कहा था, मेरा स्वभाव विचित्र है।"

"परन्तु तूने अपने हृदयमें किसे बिठा लिया है, सो तो बता। बातको क्यों उड़ाये दे रही है?"

"मैं कहाँ बात उड़ा रही हूँ? आप कहती हैं कि मैं अकेली हूँ; परन्तु वास्तवमें देखा जाय तो मेरा संसार भरा-पूरा है। आप कहती हैं कि मुझे विवाह करना चाहिए, परन्तु सच पूछो तो मेरा विवाह हो चुका है।"

"क्या बक रही है?"

"बिल्कुल सच्ची बात है। विवाहसे आपको जो सुख मिलता है, उससे कहीं अधिक सुख मेरे पति मुझे दे रहे हैं।"

"पति! तुझे कुछ होश भी है या नहीं? कुछ भान है?" कहकर काश्मीरा एकदम झूलेको खड़ा कर उसपरसे उतर पड़ी और मंजरीको पगली समझकर उसकी ओर आँखें फाड़कर देखने लगी।

"मेरे होश-हवास दुरुस्त हैं। घबड़ाइए मत। मेरे पति बहुतसे हैं। पांचालीसे भी अधिक।"

काश्मीराकी समझमें ही न आया कि वह मंजरीकी बातपर हँसे यां क्रोध करे। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि मंजरी उसके साथ मज़ाक़ कर रही है। परन्तु वह गंभीर और शान्त थी। अपने प्राणनाथकी बात करते हुए उसके प्रफुल्लित नयन वैसे ही चमक रहे थे जैसे एक नवोढ़ाके चमकते हैं। उसके मुखपर एक उमंग-भरी लज्जावती नववधूके मुखपर जो रेखाएँ प्रदीप्त हो उठती हैं वे ही रेखाएँ दीख रही थीं। अभीतक वह जिस गर्वपूर्ण शान्तिके साथ बात कर रही थी, वह अब न रहा था। उमंगसे भरकर वह रसभरी बातें करने लगी।

" उनमेंसे किसी एकका नाम तो बतला। तेरी बात तो कुछ समझमें ही नहीं आती। "

काकने नाम सुननेके लिए एकाग्र होकर कान लगा दिये और उन सबका संहार करनेका उसने मन ही मन संकल्प कर लिया।

" मेरे पहले प्राणनाथ, मेरे पिताद्वारा समर्पित पहले मुकुटमणि कौन हैं, जानती हो? कालिदास। "

" कालिदास कौन? "

बड़ी उमंगसे मंजरीने कहा, " कालिदास मेरे हृदयके हार। अहर्निशि वे मेरे साथ रहते हैं। खाते-पीते उठते-बैठते हमारे दोनोंके हृदय एक ही तान छेड़ते रहते हैं। हम साथ ही साथ गगनमें विचरण करते हुए मेघोंको देखा करते हैं,—निकट होते हुए भी दूर बनकर मेघदूतोंसे संदेश भेजा करते हैं। हृदयमें रस उँड़ेलकर एक दूसरेको खोजा करते हैं। जीवनके विलासोंको भोगते हुए अपने बाल-बच्चोंका लालन-पालन किया करते हैं। "

काककी समझमें ही नहीं आया कि मंजरी किसके विषयमें बातें कर रही है। काश्मीरा भी चकित होकर देखती रह गई।

" बच्चे? "

" हाँ, हमारे बच्चे हैं—शकुन्तला, पुरुरवा, मालविका;—बहुतसे। यह सब मेरे बच्चे हैं,—क्योंकि मेरे प्राणनाथने इन्हें जन्म दिया है। "

" परन्तु हैं कौन वे? "

" नहीं पहचानतीं समस्त कवि-मंडलके तिलक मेरे कालिदासको? विक्रमादित्यके प्रिय सखाको? " काश्मीराकी ओर तिरस्कारपूर्ण दृष्टिसे देखते हुए उसने पूछा।

" वह विक्रमादित्यकी सभाका कालिदास? " अन्तमें समझनेपर काश्मीराने पूछा।

" वही। " मंजरीने हँसकर कहा, जैसे कोई विजय प्राप्त की हो।

काश्मीरा समझ गई और इस विचित्र बालाका मनोराज्य देख खिल-खिलाकर हँस पड़ी।

" हाय, हाय, मुझे व्यर्थ ही घबड़ाकर मार डाला। " काश्मीराने कहा। वह बड़ी पक्की थी और मंजरीके स्वभाव और उसकी लहरोंको जान गई थी।

और अपनी मीनल काकीकी कलासे वह मंजरीको अपनी इच्छानुसार चलानेकी कोशिश करने लगी। "और कौन कौन हैं? सब ऐसे ही ऐसे हैं या उनमें कोई शूर वीर योद्धा भी है?"

"यह न सोचिएगा कि केवल आप ही योद्धाओंको पूजनेवाली हैं। मैंने भी बहुत-से योद्धाओंको वरमाला पहना रखी है।"

"किस किसको? ज़रा कहो तो सही।"

"किस किसको? मेरे वीर, मेरे योद्धा, आपके योद्धाओंकी भाँति अपदार्थ नहीं हैं। मेरे महाप्रतापी स्वामी, वीरोंमें भी वीर, सकल शास्त्रविद्याके पिता परशुराम हैं।"

"कौन, सज्जन मंत्रीका लड़का?"

"कह क्या रही हो?" मंजरीकी आँखोंसे गर्व और उत्साहकी चिनगारियाँ निकल रही थीं। उसका तेजस्वी मुख अनिवार्य भावोंसे तमतमा रहा था।

"मेरे परशुराम? मेरे परशुराम तो त्रिपुरारिके अवतार हैं। अनेक भीष्म और कर्णोंको शस्त्र-विद्या सिखानेवाले महागुरु, इक्कीस बार निःक्षत्रिय करके भूमंडलको कँपा देनेवाले समर्थ महारथी, सर्वशास्त्रविशारद महर्षि, पलभरमें सारी पृथ्वीको दानमें देनेवाले जमदग्निके पुत्र। बहनजी, आप मज़ाक़ कर रही हैं? कीजिए, भले ही कीजिए। आपके खयालसे वे किताबोंके बैंगन है, पर मेरे लिए तो वे प्राणोंके आधार हैं। आप मंडलेश्वरकी पटराणी बनकर गर्वसे झूम रही हैं। मैं ब्राह्मण-श्रेष्ठ भगवानकी अर्धांगिनी हूँ, इसीमें खुश हूँ। बहनजी, उनके शब्दोंसे शास्त्र रचे जाते थे, उनकी गर्जनासे शेषनाग डोलने लगता था, उनके फरसेकी चमकसे महाराज्य नष्ट-विनष्ट हो जाते थे, उनके तपसे देव-देवेन्द्र भी थर्रा उठते थे। अगर प्राण अर्पित करना हो, तो ऐसेको ही करना चाहिए।"

"परन्तु ऐसी बातें किस कामकी? उनसे क्या सदेह विवाह हो जाता है?"

"क्यों नहीं? आप मंडलेश्वरको निरखती हो, उससे भी अधिक स्पष्टतासे मैं उन्हें निरखती हूँ—उनके शब्दोंको सुनती हूँ—उनके जीवनके आदेशोंको समझती हूँ। तुम्हें वे नहीं दीखते होंगे, परन्तु मैं उन्हें देखती हूँ, जैसे उन्हें

महाराज दशरथने देखा था वैसे ही।" कहकर भावों और तरंगोंसे उछलते काँपते हुए स्वरमें वह बोली—

ददर्श भीमसंकाशं जटामंडलधारिणम्।
भार्गवं जामदग्न्येयं राजा राजविमर्दनम्॥
कैलाशमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम्।
ज्वलन्तमिव तेजोभिर्दुर्निरीक्ष्यं पृथग्जनैः॥
स्कन्धे चासज्जपरशुं धनुर्विद्युद्गणोपमम्।
प्रगृह्य शरमुग्रं च त्रिपुरघ्नं यथा शिवम्॥*

काकको प्रतीत हुआ, जैसे अंतिम शब्द सुमधुर संगीतमय नृत्य करते हुए किसी झरनेके द्वारा नीचे गिरते हुए उच्चरित हुए हों। काश्मीरा देर तक उत्साहकी तरंगोंके तेजसे प्रदीप्त मंजरीको देखती रही और फिर बोली, "भाड़में गई तेरी कहानी। छोड़ इसे। जो समझमें आएँ ऐसी बातें कर। ये तो ऐसी बातें हैं कि तू ही बोले और तू ही समझे।" काश्मीरा मंजरीकी बातोंका अर्थ उसके शब्दोंकी अपेक्षा मुख और स्वरके भावसे अधिक समझ रही थी। मंजरीकी कल्पना-शक्तिकी बढ़ती हुई बाढ़ रुक गई। उसने काश्मीराको श्लोकोंका अर्थ समझाया। "बहनजी, आप वीर-वीर कर रही हैं, सो वीर तो इनका नाम है। मानोगी? मैं तो इनके साथ रहती हूँ, इनके पैरों पर पैर रखकर चलती हूँ, इनकी विजयसे विजय प्राप्त करती हूँ, इनका त्र्यंबक लेकर जनकके दरबारमें जाती हूँ, इनका परशु लेकर अपने हाथों क्षत्रियोंका शिरच्छेद करती हूँ।" उसने अपनी छोटी-सी मुट्ठी बाँधकर आगे कहा "हम दोनों पृथ्वीको निःक्षत्रिय करते हैं, त्रिभुवनको कँपाते हैं, इन्द्रासनको डोलाते हैं। बहन, बहन, आपको मैं पगली मालूम होती होऊँगी, परन्तु मेरे विचारसे तो आपका संसार मायाजाल है, मेरा संसार ही सत्य

---

* राजाने (दशरथने) भयंकर जटामंडलधारी, राजाओंके विनाशक, कैलासके समान अजेय, कालाग्निके समान असह्य, तेजसे चमकते हुए, सामान्य जनोंको न दीखनेवाले, कन्धेपर फरसा रखे हुए और विद्युत्समूहके समान धनुष और उग्र शर लेकर (आते हुए) त्रिपुरका विनाश करनेवाले शंकरके समान, भृगुवंशोत्पन्न जमदग्निके पुत्र परशुरामको देखा।—रामायण बालकाण्ड, सर्ग ७४

है,—प्रत्यक्ष है । अब आपके इस ज़मानेके तुच्छ वीरोंकी मेरे आगे क्या बिसात है ? किस वीरतापर अपने उन जामदग्नेयकी वरमाला दूसरेके गलेमें अर्पित करूँ ? " उसने नाक सिकोड़कर ज़रा अधिक शान्त होकर पूछा ।

" तुझे जामदग्नेय ही चाहिए तो हमारा काक भट है । " काश्मीराने इस प्रकार कहा, जैसे यों ही ठिठोली कर रही हो । " उसका गोत्र भी कुछ ऐसा ही है । उस दिन तू माथापच्ची कर रही थी न ? "

बाहर काकका प्राण तालूसे जा चिपका ।

" कौन काक ? " मंजरी फिर पहले जैसी थी वैसी ही गर्विष्ठ और शांत हो गई, " बहिनजी, ऐसी बात न कहो । क्या यही महान् योद्धा और यही महान् ब्राह्मण है ? न संस्कृतका ही ज्ञान है, न पूर्ण संस्कार ही हैं और न बड़ा योद्धा ही है । आप तो उसीके पीछे पागल हो गई हैं । "

काकको ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उसके हृदयकी धड़कन रुक गई है । मंजरीकी तिरस्कारभरी बातें उसे अल्पताके विषके घूँट पिला रही थीं । उसके हृदयमें उत्पन्न हुई व्यथासे उसकी आँखोंमें पानी भर आया । मंजरीके भयंकर शब्दोंकी प्रतिध्वनि उसके कानोंमें गूँजने लगी । वह एक अधम सेवक है,—न ब्राह्मण, न योद्धा ।

" वह क्या बुरा है ? अच्छे अच्छे भूपतियोंको भी पानी पिला सकता है । तुम कहाँ नहीं जानतीं ? उसीके कारण तुम बचीं और जीवित आईं, उसीके कारण रा' पराजित हुआ और पकड़ा गया । उसे मेरे मंडलेश्वर अपना दाहिना हाथ समझते हैं । आगे शीघ्र ही बढ़कर वह भटराज हो जायगा । जागीर मिलेगी, दौलत मिलेगी, और संभव है, सेनापति भी हो जाय । "

" बहनजी, मैं-मैं-मैं और काकसे विवाह करूँ ? कहाँ मैं और कहाँ वह लाटका भटकनेवाला भट ? "

" परन्तु वह तो यों नहीं कहता है कि कहाँ मैं मंडलेश्वरका प्रियपात्र सुभट और कहाँ तू बेघर-बारकी एक भटकती छोकरी ? " काश्मीराने एकके पश्चात् दूसरी युक्तियाँ आजमानी शुरू कीं ।

" भले ही न कहे । न देखी कभी रवि-किरणें न जाना उसका प्रताप, तो क्या इसीसे उल्लू दूरदर्शी हो गया ? "

काश्मीरा क्षणभर इस अभिमानको देखती रह गई। उसे मंजरीकी ओर आकर्षण होता था। उसका सौन्दर्य, सरलता और गर्व भी काश्मीराको अलौकिक और प्रिय लगते। उसे स्नेहकी एक उमंग आई और वह मंजरीसे लिपट गई। बोली "मंजरी, तू तो अद्भुत है।"

मंजरी, इस प्रकार स्वस्थतासे आलिंगनसे छूट गई, जैसे उसे इस बातमें कोई नवीनता ही न मालूम हुई हो, और बोली "बहन, संसारमें पदवी, पैसा या बहादुरीसे ही श्रेष्ठता नहीं मिल जाती।"

"तब ?"

"पहले संस्कार और शुद्धता चाहिए। यदि ब्राह्मण ही संस्कार और शुद्धतासे भ्रष्ट हो जायँ, तो पृथ्वी रसातलको चली जाय।" मंजरीने गर्वसे कहा।

"यानी तुम्हारे विचारसे काक न संस्कारी है और न शुद्ध ही, क्यों ? अच्छा, कहने दे उससे।"

"भले ही कहिए।"

काक हृदय-शून्य बनकर कुछ देर पड़ा रहा। जो कुछ थोड़ी-बहुत संस्कृत उसे आती थी, उसकी सहायतासे वह मंजरीके बोले हुए श्लोकको याद कर रहा था—"कैलासमिव दुर्धर्षं" उसने कपाल ठोक लिया। "कहाँ मैं जमदग्नि गोत्रज और कहाँ जामदग्नेय भगवान परशुराम ? मंजरीने सच कहा। मैं निर्बल निराधार हूँ। कहाँ मेरे वीर पूर्वज और कहाँ मैं बौना वीर ? "कालाग्निमिव दुःसहम्" मंजरीके योग्य मैं पति हूँ ? नहीं, नहीं।" कुछ क्षण वह मौन पड़ा रहा। "पर मैं बुद्धिशाली हूँ, बहादुर हूँ, मण्डलेश्वरका सम्मानित हूँ, मंजरीके योग्य क्यों नहीं हूँ ? हाँ, मैं अल्प हूँ, मुझमें विशालता नहीं है। "त्रिपुरघ्नं यथा शिवम्" मंजरी, तुम्हारी बात सत्य है...मंजरी, ठीक है। तुम भी देखोगी।" कहकर वह उठ बैठा। "कलियुग आ गया है, परन्तु मेरी रगोंमें शुद्ध सनातन रक्त बह रहा है। तुम भी देखोगी कि काक निर्बल है कि "राजविमर्दन" है ?" कहकर काक खड़ा हो गया।

८—दो पुराने मित्र

उबक सेनापति महाराजाके पाससे उठकर, सज्जनके साथ राजमहलके दूसरे खंडमें गया। उबकका आतिथ्य सज्जन मेहताको सौंपा गया था।

वे दोनों शान्तिसे बैठे और विनयशील सेवक जल और पान रखकर चले गये। कीर्त्तिदेव अभी बाहर ही खड़ा हुआ कुछ योद्धाओंसे वार्त्तालाप कर रहा था। इन दो वृद्ध योद्धाओंने इस एकान्त अवस्थामें पहली बार एक दूसरेके सामने स्मितपूर्ण और स्नेहसिक्त दृष्टिसे देखा।

"कितने वर्षोंमें मिले?" उबकने कहा, "परन्तु तुम तो ज्योंके त्यों हो।"

"हाँ भाई, परन्तु तुम ज़रा दुर्बल दिखलाई पड़ते हो। शरीरपर घावोंके निशान भी बढ़ गये है, क्यों?" तकियेके सहारे टिककर सज्जन मेहताने कहा।

"मित्र, मेरी वयस घावोंसे गिनी जाती है, वर्षोंसे नहीं।" मूछपर ताव देते हुए उबक बोला, "याद है, अपनी पहली चोट?"

"क्यों नहीं? भीमदेव महाराजने जब तुम्हारे भोजराजको समाप्त किया, तब मैंने की थी, वह कैसे भूली जा सकती है?" कहकर सज्जन खिलखिला उठा।

"अहा! वह भी क्या अवसर था!" उबककी एक आधी आँख बाल्य-कालके आनन्दका स्मरण करके हँस उठी, "वह अवसर तो गया।"

"हाँजी," सज्जनने ज़ोरसे कहा, "कहाँ हम लोगोंकी वह भयंकर भिड़न्त, और कहाँ आज-कलके लड़कोंका यह खेल? परन्तु परमार!"—चारों ओर सावधानीसे देखकर वह बोला, "उसका क्या हाल है?"

"किसका?"

"अरे वही!"

"मंत्रिवर्य, तुमने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। कैसा अच्छा लड़का है!"

"कुलको लजानेवाला तो नहीं है?"

"नहीं जी, वह तो दोनों कुलोंको तारनेवाला है। तुमने पहचाना नहीं? मेरे साथ—"

"वह जो लड़का है, वही?"

"हाँ।"

"उसका नाम?"

" कीर्त्तिदेव । "

" कितना रूपवान् है ? कितना बढ़ गया है ? " साश्चर्य बोलते हुए सज्जन ज़रा सतर हो गया ।

" कैसे पागल हो ! सोलह वर्षोंका समय भी तो बीत गया ! "

" ऐं ? "

" और क्या ? मैं जब देवपट्टणकी यात्राको गया था, तबकी बात है । "

" समय भी कैसे बीत जाता है ! परन्तु युद्धमें कैसा है ? "

" मंत्रीजी, युद्धमें हम लोगोंको भी लज्जित कर सकता है । चातुर्यमें बड़े-बड़े कविवर उसकी प्रतिष्ठा करते हैं । " सेनापतिने संक्षेपमें कहा ।

" हमने इसे खो दिया; अन्यथा इसके पिताकी और हमारी शोभा बढ़ाता।"

" इसका पिता कौन है, यह तो तुमने कहा ही नहीं ? "

सज्जनके सिरपर बल पड़ गये । उसकी आँखोंमें ग्लानिका भाव आ गया। वह बोला—सेनापतिराज, इस कर्म-कथाको जाने दो; परन्तु लड़केने अपने कुलका पता नहीं लगाया ?

" लगाया था । यह जाननेके लिए तो वह बहुत उत्सुक है; परन्तु मैंने कहा कि मुझे खबर नहीं । अतएव बेचारा अधिक नहीं पूछता । उसके हृदयमें यह जाननेकी बड़ी अभिलाषा है । बतला दो न भाई ! "

" अभी नहीं । "

" कुल कलंकित तो नहीं है ? "

" ऐसा कुल सारी पृथ्वीपर मिलना कठिन है । " खेदयुक्त गर्वसे सज्जनने कहा, " परन्तु भाई उबकजी, इस विषयमें अधिक बातें करना व्यर्थ है । "

" बेचारा यह तो जानता है कि गुजरातका हूँ और इसी लिए पाटण आनेके लिए तरस रहा था । "

" तब कुछ दिनों यहाँ रहने दो । "

" पूर्णिमा तक तो है ही । आगेके लिए विचार किया जायगा । "

" रहने दो । आज कई दिनोंसे उससे मिलनेकी इच्छा थी । " सज्जनने कहा, " उसे मेरे घर भेजना । "

" अच्छी बात है । " उबकने आवाज दी " कीर्त्ति ! "

" जी " कहकर कीर्तिदेव सम्मान-सहित आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया ।

" इन्हें पहचानते हो ? " सज्जनकी ओर अँगुलीसे संकेत करके सेनापतिने कहा।

" चाँपानेर गढ़के दुर्जय पतिको कौन नहीं पहचानेगा ? " अपने सुन्दर नयनोंको सविनय ऊँचा करके कीर्तिदेव बोला।

सज्जन अवर्णनीय स्नेहसे उसकी ओर देखने लगा।

" परन्तु मेरे मित्रके रूपमें कहाँ पहचानते हो " उबकने कहा।

" परमार और मैं बाल्यकालके मित्र हैं। जिस युद्धमें सबसे पहले इन्होंने पैर बढ़ाया था, उसीमें मैंने भी मंगलाचरण किया था। "

" जी। "

" और तबसे एक दूसरेकी चोटें सहते और संधि होनेपर एक साथ मिलते सारा जीवन बिताया है। " सज्जनने कहा, " सेनापति, हमारी मैत्रीको कितने वर्ष हुए होंगे ? "

" तुम्हारे पुत्रकी वयससे भी दो वर्ष अधिक। "

" हाँ, परशुरामकी वयस चालीसके लगभग होगी। "

" तो बस, समझ लो। कीर्तिदेव, " उबकने कहा, " सज्जन मेहताकी जोड़ सारी पृथ्वीपर नहीं है। "

" हाँ, जोड़ नहीं है, परन्तु एक योद्धा बढ़-चढ़ कर हैं; और वह हैं सेनापति उबक। "

" अच्छा, कीर्त्तिदेव, तुम इनके यहाँ जाओ। "

" जो आज्ञा। " कीर्त्तिदेवने कहा।

" तुम भी वणिक हो, इसलिए कोई आपत्ति नहीं होगी। "

" जी। "

" अच्छा, चलो तब। " कहकर सज्जन मेहताने आज्ञा ली।

सज्जन मेहता कीर्त्तिदेवको साथ लेकर हाथीपर चढ़े और अपने घरकी ओर चले। मार्गमें वृद्ध योद्धाके मुखपर अनेक भाव दिखलाई पड़ रहे थे। वे कीर्त्तिदेवकी ओर इस प्रकार देख रहे थे, मानों बहुत वर्षोंके बाद खोया हुआ रत्न मिल गया हो। कभी वह निःश्वास लेते और कभी स्मित करने लगते थे।

कीर्त्तिदेवकी अस्पर्श्यता अटल रही। इन सब भावोंको उसने नहीं देखा। वह केवल पाटणके लोगोंकी ओर देखकर गहन विचार कर रहा था।

९—कीर्तिदेव क्यों आया ?

मंजरीकी बातोंको रटता हुआ काक घरसे बाहर निकला। उसकी महत्त्वाकांक्षा प्रदीप्त हो उठी थी; उसकी इच्छा-शक्ति निश्चल बन गई थी। 'मंजरीसे विवाह !' ये दो शब्द उसके मस्तिष्कमें अंगारोंके समान दहक रहे थे।

जिस स्त्रीको देवीके समान पूजता हो, उससे अपनी स्वामित्व स्वीकार कराना; यह पुरुषके हृदयकी बड़ीसे बड़ी अभिलाषा है। यह कायरको नर बनाती है और नरको देव या पिशाच बना छोड़ती है। सामान्य अवसरोंको भी ऐतिहासिक गौरवसे अनोखा बना देती है और मनुष्य-जीवनको सफल कर देती है। वह अभिलाषा इस समय काकके रोम-रोममें व्याप्त हो गई और उसने अपनी कल्पना-शक्तिका उद्दीपन करके, जमदग्नि-सुत परशुरामका रूप धारण कर लिया। काक मार्गमें चलते चलते बड़बड़ाने लगा—"कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम्।"

वह बड़े वेगसे पैर उठाता हुआ सज्जन मेहताके घरकी ओर चला। जबसे उसने पाटणमें पैर रखा था, तबसे उसे अपने पुराने मित्र कृष्णदेवसे मिलनेकी बड़ी इच्छा हो रही थी। कृष्णदेवके विषयमें उसने अनेक संकल्प-विकल्प किये थे और यह जानना उसे बहुत आवश्यक प्रतीत हो रहा था कि वास्तवमें कृष्णदेव कौन है। उसने सज्जन मेहताके यहाँ जाकर कृष्णदेवकी खोज की और जानकर बहुत प्रसन्न हुआ कि अभी वह यहीं है। वह पूछता हुआ अन्दर गया। पत्थरसे पटे शीतल-चौकमें उसने कीर्तिदेव, कृष्णदेव, सज्जनके छोटे लड़के लक्ष्मण और अन्य दो-एक जवान योद्धाओंको बैठे देखा।

कीर्तिदेव औंधे पैरों बैठा था। छलाँग भरनेसे पहले सिंहका-सा उसका सारा शरीर चपल, संकुचित और आवेशके वेगसे काँपता हुआ दिख रहा था। स्वभावजन्य निश्चिन्ततासे तकियेपर पड़े हुए, पैर लम्बे करके कृष्णदेव आरामसे सुन रहा था। पूज्यभाव प्रदर्शित करता हुआ मुख कीर्तिदेवकी ओर फेरकर लक्ष्मण उसे एकटक देख रहा था।

मंजरीके कोड़ेसे काकका स्वाभिमान तिलमिला रहा था। अपनी अभिलाषाको परितृप्त करनेका दिन दूर होनेसे वह अल्पताका अनुभव कर रहा था। ऐसे समय कार्तिकेयके समान भास होते हुए कीर्तिदेवकी भव्यता तथा

तेजस्विता और कृष्णदेवकी सृष्टिका शासन करनेके लिए अवतरित राज-राजेन्द्रकी-सी लापरवाही और गौरवपूर्ण मनोहरता देखकर काक मन ही मन बहुत संकुचित हुआ। वह अपने तथा इन दोनोंके बीचका अन्तर समझकर जलने लगा। दूसरे ही क्षण हृदय-दौर्बल्यका त्याग कर परंतपकी भाँति उसने गर्वसे विचार किया। भले ही ये दोनों रूपवान् हों,—दोनों गौरवशाली प्रतीत होते हों, तो भी, वह स्वयं, जैसा मंजरीने कहा था, शुद्धता और संस्कारोंमें श्रेष्ठ है, उसकी रगोंमें अनन्त कालसे भूदेवोंका विशुद्ध रक्त बह रहा है, यह विचार आते ही कि सारी धरणी उसके पूर्वजोंके प्रतापसे टिकी हुई है, उसके शरीरमें विद्युत् प्रकट हो गई। उसके मुखपर गौरव छा गया।

" नमस्कार कीर्तिदेव ! नमस्कार कृष्णदेव ! कहिए, कुशल तो है ? "

कीर्तिदेवने एकदम सिर उठाकर ऊपर देखा। कृष्णदेवने धीमेसे तिरस्कारभरी दृष्टि डाली।

" आपका ही नाम काक भट है ? " कीर्तिदेवने बहुत ही मधुर और मनोहर हास्यसे कहा।

काकका हृदय एकदम इस अद्भुत व्यक्तिकी ओर आकृष्ट हो गया। " मुझे सबेरे मालूम न था कि आपहीका नाम काक भट है, " कीर्तिदेवने कहा, " मैंने आपकी बहुत कीर्ति सुनी है। लोग कहते हैं कि वास्तवमें रा' को आपने ही पराजित किया। "

काक अचानक प्राप्त इस प्रशंसाको सुनकर चकित हो गया। कृष्णदेवने तिरस्कारसे अपना मुख मरोड़ा।

कीर्तिदेवके स्वरमें, बोलनेकी रीतिमें, उच्चकुल-तिलकोंको शोभा देनेवाली संस्कारिता थी। इसके उपरान्त थी उसमें देव-वाणीकी झंकार और एक अज्ञेय तटस्थताके साथ उत्साह। उसके प्रभावशाली नेत्रोंने स्नेह और मैत्रीको आकृष्ट करनेवालीं किरणें डालीं। उन सूर्यकी-सी किरणोंने काकके हृदयको विकसित और आकृष्ट कर लिया।

" हाँ जी, काक भट, " ज़रा विनोदसे कृष्णदेवने कहा, " तुमने भी बड़ा भारी शिकार मारा, क्यों ? "

कृष्णदेव ज्योंका त्यों शान्त, संयत और तिरस्कार-पूर्ण था। काककी धारणाके अनुसार तो वह इस समय शोक-ग्रस्त होना चाहिए था; परन्तु

वह धारणा असत्य हो गई। काकको प्रतीत हुआ कि कृष्णदेव कौन है, यह समस्या अब भी वह भली भाँति हल नहीं कर सका है।

परन्तु कीर्तिदेवकी बातोंने उसे अधिक देर विचार करनेका अवसर न दिया। " काकभटजी, आप आये, बहुत अच्छा हुआ। आपकी ख्याति सुनकर आपसे मिलनेकी मुझे बहुत इच्छा थी। मुझे पाटणके समस्त वीरोंसे मैत्री करना है। पाटण तो एक स्थूल शरीर है, पर इसकी आत्मा तो आप सब लोग ही हैं।" कोई दूसरा यह बात कहता, तो काकको बड़ी प्रशंसा प्रतीत होती; परन्तु कीर्तिदेव इन शब्दोंको ऐसे बोल रहा था, जैसे एक एक अक्षर सार्थक हो; और उच्चारण इस प्रकार कर रहा था जैसे कोई साधारण बात हो। इससे सुननेवालेको खुशामद न मालूम होती, फिर भी शब्दोंका जादू रग-रगमें प्रविष्ट हो जाता।

" मेरा भी अहोभाग्य कि मैं यहाँ आ पहुँचा। कहिए, पाटण कैसा मालूम हो रहा है ?" कहकर काक सामने बैठ गया।

" जब आप आये, तब मैं यही बात कर रहा था।" कीर्तिदेवने कहा। " पाटण और अवन्ति मुझे तो आर्यावर्त्तकी दो आँखें मालूम हो रही हैं।"

" कमी केवल यही है कि ये दोनों आँखें एक सिधाईमें नहीं देख सकतीं।" कृष्णदेवने कहा।

" क्यों नहीं देख सकतीं," कीर्तिदेवने कहा, " अब तो सन्धि हो गई है, और महाकालेश्वर प्रभुकी इच्छा होगी, तो सदा रहेगी। आपका क्या खयाल है काकभटजी ?"

" मुझे इसमें सन्देह है। पाटणको युद्धसे विश्राम लेना अच्छा नहीं लगता।"

" मैं कब यह कहता हूँ ? मेरा कहना तो यह है कि युद्ध किया जाय; परन्तु अवन्तिके विरुद्ध नहीं, उसके साथ रहकर।"

" इस युगमें तो यह नहीं होगा।" कृष्णदेवने तिरस्कारसे कहा।

" क्यों नहीं होगा कृष्णदेवजी ? यह समय विरोधका नहीं, परन्तु सन्धि रखनेका है।"

" रखी जा सके तो बहुत शुभ; परन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता कि सन्धि अधिक समय रखी जा सकेगी।"

" कारण, तुम्हें भान नहीं कि हमारे सिरपर क्या मँड़रा रहा है।"

कीर्तिदेवके स्वरमें पहली बार सत्ताकी ध्वनि प्रतीत हुई । काक कुछ देर उसकी तेजस्वी कान्तिकी ओर देखता रहा । " मैं केवल अवन्तिमें ही नहीं रहा हूँ, सारे आर्यावर्त्तमें फिरा हूँ । अनेक देशोंका पर्यटन करते हुए मुझे स्पष्ट भास हुआ है कि यदि हम सब केवल एक दूसरेसे ही लड़ते रहेंगे, तो हमारे राज्य छिन जायेंगे, हमारा धर्म नष्ट हो जायेगा, हम लुट जायेंगे और पृथ्वीपरसे हमारा नाम-निशान मिट जायेगा । "

काकको संदेह हुआ कि कहीं कीर्तिदेवको सन्निपात तो नहीं हो गया; परन्तु उसकी गंभीर मुख-मुद्रा, उसकी तेजस्वी आँखों और उसके स्वरसे प्रकट होती हुई सत्यता और समवेदनासे स्पष्ट ज्ञात हो रहा था कि वह बहुत ही सचेत और शुद्ध अन्तःकरणसे इन शब्दोंका उच्चारण कर रहा है ।

" परन्तु यह सब क्योंकर हो जाएगा ? " कोहनियोंके बल ज़रा सतर होकर कृष्णदेवने कहा ।

" क्योंकर हो जाएगा ? सिरपर घन-गर्जना हो रही है और आपको सुनाई नहीं पड़ती ? जयदेव महाराज अवन्तिनाथके साथ लड़ रहे हैं, जूनागढ़के रा'पाटणके साथ लड़ रहे हैं, सपादलक्ष (अजमेरके आसपासका प्रदेश) के राजा चित्तौड़के रावलके साथ लड़ रहे हैं; कोई भी कुछ नहीं समझता । अकेले एक काश्मीराधिप समझते हैं । जब आपके भीमदेव महाराज थे, तब जिन यवनोंने पाटणको ध्वस्त करके परमधाम देवपट्टणका विनाश किया था, उनकी बात याद है ? दानवोंके समान विकराल निर्दय यवनोंकी महासेनाको रोकते रोकते काश्मीर-पतिका भी साहस समाप्त हो गया है ! "

" क्या कह रहे हैं ? " लक्ष्मणने पूछा ।

" हाँ, ठीक कह रहा हूँ । आप सब लोग तो बैठे हैं आत्मबलके गर्वमें सन्तोष मानकर; परन्तु प्रतिवर्ष वह महाविनाशक यवन-सागर आगे ही बढ़ता आ रहा है । कन्नौज और सपादलक्षने उसकी लहरोंका स्पर्श किया है । हमारी अवन्तिमें उसकी भयंकर गर्जनाकी प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ी हैं । समयपर सावधान न हो जाइएगा, तो काश्मीर डूब जाएगा, सपादलक्षका भी विनाश हो जाएगा, महाकालेश्वरकी ध्वजा धूलमें मिल जाएगी और पाटणका नाम और निशान भी हाथ न लगेगा । " अपनी बातपर भार देनेके लिए हाथको बहुत ही अच्छे ढंगसे हिलाकर कीर्तिदेवने अपनी भविष्यवाणी

समाप्त की। उसके शब्दोंमें आवेश था। उसका स्वर शोक-ग्रस्त प्रतीत होता था। उसकी अनासक्ति ज़रा अदृश्य होती मालूम हो रही थी।

काकके मस्तिष्कपर एक नया प्रकाश आ पड़ा। उसने आतुरतासे पूछा, " इसीलिए तुम सन्धि करना चाहते हो ? "

" हाँ, मैं यही चाहता हूँ। जब अवन्ति और पाटण; कन्नौज, चित्तोड़ और सपादलक्ष; ये सब एकत्र होकर मद्रदेश (काश्मीर) की सहायता करें, तभी आर्यावर्त्त सही-सलामत रह सकेगा। "

" क्या यवन-सेना इतनी बलवान् है ? " कृष्णदेवने पूछा।

" बलवान् ? प्रलयकालके झंझावातकी भी उसके आगे कोई गिनती नहीं है। काक भट, क्या विचार कर रहे हो ? "

" कीर्तिदेवजी, आप जो कह रहे हैं, यदि वह सब सत्य हो, तो कुछ करना चाहिए। "

" इस समय एक एक पल युगके समान बीत रहा है। इसीलिए जयदेव महाराजके निकट सन्धि याचना करनेके निमित्त हमारे सेनापति आये हैं और आप सबसे भी मेरी यही अभ्यर्थना है। परस्पर मार-काट करनेकी अपेक्षा अपनी वीरताका उन असुरोंपर व्यवहार करना चाहिए। " कीर्तिदेवने कहा। इसी समय सज्जन मंत्री आ पहुँचे। अतएव सब उठ खड़े हुए। " और इन महारथियोंसे मेरा यही निवेदन है कि पाटण और अवन्तिको एक होने दें। तभी भला होगा। " खेदसे सिर हिलाते हुए कीर्तिदेवने कहा।

" होगा, सब होगा। " सज्जन मंत्रीने ज़रा स्नेहसे हँसते हुए कहा।

" मैं मुंजाल मेहतासे सब बातें करूँगा। उनसे मेरी भेंट करा दीजिए। "

सज्जनके मुखपर ज़रा खेद छा गया, " मैं उनसे पूछ देखूँगा, अभी कुछ कहा नहीं जा सकता। जल्दबाजीसे आम नहीं पका करते। "

" मंत्रिवर, तो फिर शायद आम जड़-मूलसे ही उखड़ जाएँ ! "

" कीर्तिदेव, आर्यावर्त्तके योद्धा अभी इतने निर्बल, निस्तेज नहीं हो गये हैं। अब चलो, परमार प्रतीक्षा कर रहे होंगे। " कहकर सज्जन कीर्तिदेवको लेकर राजमहलकी ओर रवाना हुआ।

१०—मध्यरात्रिकी मैत्री

काक कृष्णदेवके साथ कुछ देर वार्त्तालाप करके सज्जन मेहताके घरसे बाहर निकला। उसने अनेक कार्य अपने सिरपर ले रखे थे। जयदेव महाराजको सत्ता प्राप्त करनी थी, मुंजाल मेहताको कीर्तिदेवका परिचय प्राप्त करना था और स्वयं उसे कृष्णदेवको पहचानना और मंजरीसे विवाह करना था। इन सब कार्योंको साधनेकी युक्तियाँ रचता हुआ वह जगह जगह जाने लगा।

वह पहले महाराजके मित्र शोभसे मिला। उसके साथ कुछ वार्त्तालाप किया और फिर उसे साथ लेकर कई ब्राह्मण युवकोंसे भेंट की।

इसके पश्चात् वह राजमहलमें गया। उसने वहाँ सुना कि सेनापति उबक उस पार अपनी छावनीमें चले गये हैं और केवल कीर्तिदेव ही सज्जन मेहताके यहाँ रहेंगे। वह जयदेव महाराजसे भेंट करनेको गया, परन्तु, वे मीनलदेवीके पास थे, अतएव भेंट न हो सकी। राजमहलके एक ओर एक वृद्ध और प्रतिष्ठित भाट रहते थे। काक पूछता हुआ उनके पास पहुँचा। "भाटजी, जय भगवान् सोमनाथकी!"

"कौन है भाई?" वीरा भाटने पूछा।

"मैं मंडलेश्वर महाराजका भट हूँ।"

"कैसे आये भाई?"

"परसों राज-सभा है।"

"हाँ, मुझे ख़बर मिल गई है।" भाटने ज़रा तेजीसे कहा।

"जयदेव महाराजने रा'को पराजित कर दिया, यदि उसका कुछ हाल जानना हो, तो मैं कहनेके लिए आया हूँ।" भाट अपनेको सब हालका जानकार समझता था; अतएव यह धृष्टता देखकर हँस पड़ा। बोला, "किसीने भेजा है कि तुम अपने आप आये हो?"

"मैं अपने आप ही आया हूँ। जयदेव महाराजने इस युद्धमें इतना शौर्य दिखलाया है कि उनका यशोगान भली भाँति होना चाहिए।"

"लड़के, साठ वर्ष बिताकर भी मुझे यह सीखना पड़ेगा?"

"तो ठीक है, परन्तु जयदेव महाराज यदि अप्रसन्न हों, तो मुझे दोष न दीजिएगा।"

" क्यों ? " ज़रा घबड़ाकर भाट कुछ नरम पड़ गया।

" कारण कि इस युद्धके विषयमें बहुत गप्पें उड़ रही हैं। सच्च बात बहुत थोड़े ही लोग जानते हैं।"

" तुमने कहाँसे जानी ? "

" मैं आरंभहीसे महाराजके साथ था और अन्त तक युद्धमें भाग लेता रहा।"

" तुम्हारा नाम क्या है ? "

" काक भट।"

वीरा भाट एकदम आँखें फाड़कर देखने लगा। उसने काक भटकी थोड़ी-बहुत ख्याति सुनी थी।

" ओह भटजी ! ज़रा बैठ जाओ, " बूढ़ेने कहा, " और युद्धका हाल बताओ।"

" जी नहीं, जब आपको मालूम है, तब बतानेकी क्या आवश्यकता ? मैं जाता हूँ।"

" नहीं जी, ज़रा बैठो, तुम जैसे शूरवीरोंसे भेंट बड़ी कठिनाईसे होती है।" काक बैठ गया, युद्धका हाल-चाल बतलाने लगा और सत्य-असत्यका विचार दूर रखकर उसने जयदेव महाराजकी महिमाको बढ़ा दिया। अन्तमें भाटने काकके प्रति आभार प्रकट किया; कारण कि महाराजने जिस युद्ध-कुशलताका व्यवहार किया था, यदि काक कहनेके लिए न आया होता तो उसके विषयमें उसे कुछ भी खबर न लगती और परिणाम-स्वरूप जयदेव महाराज भाट-पर बहुत ही अप्रसन्न हो जाते।

काक वहाँसे निकलकर त्रिभुवनपालके घरकी ओर चला। इन सब झंझटोंसे छूटनेपर उसे कीर्तिदेवका स्मरण हो आया। उसके व्यक्तित्वका प्रभाव काकको अद्भुत प्रतीत हुआ। उसका ज्ञान और अनुभव विशाल दिखलाई पड़े और ऐसा अभास हुआ कि उसके विचार नवीन, गूढ़ और विश्वव्यापी हैं। मंजरीकी उत्पन्न की हुई भावनाके उत्साहमें काककी दृष्टिमें उन विचा-रोंके कारण उसके समान साहसी और बुद्धिमान् वीरके लिए अनेक अज्ञात महाक्षेत्र दिखलाई पड़े और पाटणमें ही पड़े रहकर प्रताप प्राप्त करनेकी महत्त्वाकांक्षा तनिक भी गणनाके योग्य न रह गई। काश्मीर और सपाद-

लक्ष काकके लिए कोरे नाम थे। वहाँकी राजनीति कीर्तिदेवके तो मुखपर थी। यवनोंका उत्पात उसके विचारमें वर्षों पहले आये हुए स्वप्नके समान था। परन्तु कीर्तिदेवके लिए वह ताज़ा, सचेतन और भयंकर त्रास था। सम्भव है, कीर्तिदेवने उन यवनोंको देखा भी हो और अपनी असिधाराको असुरोंके रक्तसे पवित्र भी किया हो। त्रयोदशीकी मध्यरात्रिकी चाँदनीमें, पाटणकी सूनी पड़ी हुई एकान्त गलियोंमें, काक इस प्रकारके अनेक विचार करता हुआ चला जा रहा था।

मध्यरात्रि व्यतीत हो रही थी। चिल्लाकर पहरा देते हुए चौकीदारोंकी आवाज़के सिवा निःशब्दताका भंग और कोई नहीं कर रहा था। दादा क्षेम-राजके बाड़ेकी ओर, जहाँ त्रिभुवनपालकी हवेली थी, अधिक शान्ति थी और इस विचारसे कि दस ही कदम दूर मंजरी होगी, काकका चपल मस्तिष्क अधिक तीव्र हो रहा था। ज्यों ही वह हवेलीके पिछले द्वारकी ओर गया, त्यों ही उसे धीरे धीरे बोलते हुए कुछ मनुष्योंकी आवाज़ सुनाई पड़ी और तुरन्त ही बहुत धीमी निःश्वासकी भाँति एक चीख़ भी उसके कानोंमें आ पड़ी। वह निर्णय ही न कर सका कि यह सब सत्य है या भ्रम। दूसरा कोई मनुष्य होता, तो उसका ध्यान ही नहीं जाता, परन्तु काककी कर्णेन्द्रिय विलक्षण थी और इस चीख़का स्वर उसके मस्तिष्कमें घूम रहा था। "क्या यह मंजरीकी आवाज़ है? सत्य है, या भ्रम?"

सिंहकी-सी चपलतासे उसने छलाँग मारी और उस ओर वह जा कूदा जहाँसे आवाज़ आई थी। हवेलीकी आड़के अन्धकारमें दो-तीन मनुष्योंकी परछाईं उसे दीख पड़ी। "कौन है?" कहकर उसने आवाज़ लगाई कि वे परछाईंसे प्रतीत होनेवाले मनुष्य दौड़ने लगे। काक चौंक उठा। अवश्य ही ये लोग मंजरीको ले जानेके लिए आये होंगे। मन ही मन उसने यह भी विचार किया कि पुकारकर मंडलेश्वरके पहरेदारोंको बुलाया जाय; परन्तु इससे विलम्ब होनेकी सम्भावना थी और इतनी देरमें चोर अँधेरी गलियोंमें लोप हो जा सकते थे। उसने अधिक विचार न किया और उन परछाईंयोंके पीछे लग गया। वे लोग हवेलीकी आड़ छोड़कर, चाँदनीकी शुभ्र सरिता पार करके, दूसरी ओर दौड़े। काकने देखा कि जो दो मनुष्य पहले

दौड़कर गये हैं, उनमेंसे एकके हाथमें मनुष्यके आकार-सी कोई लम्बी वस्तु थी। पीछेसे एक दूसरा मनुष्य दौड़ा। काकको विश्वास हो गया कि ये खंभातके उसी सेठके मनुष्य हैं जिसके भयसे मंजरी भयभीत हो गई थी और उसीकी आज्ञासे मंजरीको उठाये लिये जा रहे हैं। दाँत पीसता हुआ काक उनके पीछे दौड़ा। उसके सद्भाग्यसे रात चाँदनी थी, अतएव वह मंजरीको ले जानेवालोंका पीछा सरलतासे कर सका।

अगले दिनोंकी सफ़र और आज सारे दिनकी थकावटसे काकका वज्रके समान शरीर भी यथोचित काम न कर सका और धीरे धीरे आगे दौड़नेवाले मनुष्यों और उसके बीच अन्तर बढ़ने लगा। गलियोंपर गलियाँ और मुहल्लोंपर मुहल्ले उन्होंने पार कर डाले। धीमे धीमे वे नगरके दूसरे ही भागकी ओर जाने लगे। काकने दाँत पीसकर अधिक दौड़नेका प्रयत्न किया। उसका श्वास भर आया था। प्रति पल उसे भय हो रहा था और हृदय काँप रहा था कि क्या मंजरीको ले जानेवाले उसके हाथसे निकल जायेंगे ? एक महान् साहस करके उसने आगे बढ़नेका प्रयत्न किया।

काकको ज्ञान नहीं था कि वे शहरके किस भागमें आ गये हैं; परन्तु वे एक बड़ी-सी हवेलीके पीछेकी ओर आ पहुँचे थे। मंजरीको उठाकर ले जानेवाले हवेलीकी दीवारसे पचास कदम दूर थे कि एक दीवारकी आड़मेंसे एक मनुष्य निकला।

"पकड़ो, इन चारोंको पकड़ो!" काकने हाँफते हुए चिल्लाकर कहा।

दीवारकी आड़से निकले हुए मनुष्यने मंजरीको ले जानेवालोंको रोकनेके बदले हवेलीके पासकी गलीकी ओरका रास्ता बता दिया।

काक उलझनमें पड़ गया। मित्रके बदले यह तो कोई शत्रु है! काक उसकी ओर बढ़ा परन्तु अचानक मंजरीको उठाकर ले जानेवालोंने आवाज लगाई, "महाराज!" उस नये मनुष्यके उस ओर बढ़नेके पहले ही आगे दौड़ते हुए मनुष्योंको किसीने रोक दिया। अचानक आ पहुँचनेवाले इस मनुष्यके हाथमें तलवार चमक उठी। दूसरे ही क्षण उसकी तलवार मंजरीको उठानेवालेपर पड़ी। उन घबराये हुए लोगोंने मंजरीको नीचे फेंक दिया और वे प्राण लेकर भाग गये। काक नवआगन्तुक मित्रको देखनेके लिए ज्यों ही बढ़ा कि अवसरसे लाभ उठाकर वह दीवारकी आड़से निकलनेवाला व्यक्ति प्राण

लेकर भागा और पासकी ही एक गलीमें घुसकर लोप हो गया। नव आगन्तुक उस ओर गया जहाँ मंजरी पड़ी हुई थी और काक भी वहाँ पहुँच गया। दोनोंने एक दूसरेकी ओर देखा, और दोनों ही बोल उठे, " कौन, कीर्तिदेव महाराज ? "

" कौन, काकभट ? "

" कीर्तिदेवजी, बहुत ही शुभ हुआ कि आप यहाँ मिले, नहीं तो ये बदमाश मंजरीको ले जाते। "

मंजरीका परिचय पानेकी उत्कंठा दिखाये बिना बहुत ही संयत भावसे कीर्तिदेवने पूछा, " इसे क्या करोगे ? "

" महाराज, यह मंडलेश्वर त्रिभुवनपालजीके यहाँ रहती है और कविवर रुद्रदत्तकी कन्या है। मैं अब इसे मंडलेश्वर महाराजके यहाँ ले जाऊँगा। " कहकर काकने मंजरीको उठाकर कन्धेपर डाल लिया। मंजरी अचेत हो गई थी। वह खतरेसे बच गई, अतएव काकके हृदयको बड़ी शान्ति मिली। अब उसने यह जाननेका प्रयत्न किया कि कीर्तिदेव अचानक यहाँ कैसे आ पहुँचा। उसने कहा, " आपके आ जानेसे मेरी प्रतिष्ठा रह गई, " काकने बात निकलवानेके लिए दाना डाला, " इस समय आप कहाँ जा रहे हैं ? "

" काक भटजी, आप ब्राह्मण हैं न ? "

" जी हाँ। "

" इस समय यदि मुझपर वास्तविक अनुग्रह करना हो, तो एक वचन मुझे दो। वचनको भंग करोगे, तो ब्रह्म-हत्याका पाप होगा। "

काकको यह न सूझा कि वह क्या करे; परन्तु कीर्तिदेवके किये हुए उपकारका विचार करके उसने वचन दे दिया।

" तो यह किसीसे न कहना कि तुम मुझे इस समय मिले थे। " कीर्तिदेवने सत्तापूर्ण स्वरमें कहा।

" जो आज्ञा। आप पधारिए। "

" नहीं, तुम कहो तो मैं तुम्हें मण्डलेश्वरके महल तक पहुँचा आऊँ। "

" हाँ, यदि चलें, तो बहुत ही अच्छा। " कहकर काकने मंजरीकी ओर देखा। वह अचेत अवस्थामें थी। काकने उसे दूसरी बार इस प्रकार उठाया कि उसके हृदयकी धड़कन उसे अपने हृदयके पास सुन पड़ी। काककी

रग-रग उल्लाससे उन्मत्त हो गई; परन्तु यह उल्लास वह बाहर प्रकट न कर सका। कीर्तिदेव गंभीर मुख रखकर अमानुषीय निरपेक्षतासे इस प्रकार साथ साथ चल रहा था, जैसे कोई बहुत साधारण बात हुई है।

"काक भट, दोपहरमें मैंने जो बात कही थी, वह तुम्हें पसन्द आई या नहीं?"

"महाराज, सच पूछिए तो मेरी तो आँखें ही खुल गईं।"

"यदि मेरी बात वास्तवमें ठीक हो, तो मेरी सहायता करो। मैंने आज तुम्हारे विषयमें बहुत कुछ सुना है सज्जन मेहता और मण्डलेश्वर त्रिभुवनपालजीसे।" कीर्तिदेवने कहा।

"मैं क्या सहायता करूँ? आपको सहायता चाहिए बड़े लोगोंकी।"

"नहीं, मुझे सहायता चाहिए ऐसे व्यक्तियोंकी जिनकी बुद्धि और बलपर आर्यावर्त्तकी नींव पड़ी हो। तुम भी उन्हींमेंसे एक हो।"

"महाराज, मैं एक राजसेवक हूँ, स्वयं अपना स्वामी नहीं। आपकी दीर्घ दृष्टिने मुझे चकित कर दिया है। आप मुझे महाप्रतापी प्रतीत होते हैं, परन्तु जब तक आपके राजनीतिक विचारोंको मुंजाल मेहता स्वीकार न करें, तब तक मुझसे क्या हो सकता है?"

कीर्तिदेवने एकदम काककी ओर मुड़कर उसके कन्धेपर स्नेहसे हाथ रखा। काकके शरीरमें ज़रा कंपन उत्पन्न हो गया। कीर्तिदेवने श्रीकृष्णकी मुरलीकी भाँति मीठे स्वरमें कहा "तुम भूदेव हो, भरतखंडकी भूमिके अधिष्ठाता हो। तुम्हीं अपनी भूमिको न बचाओगे, तो कौन बचाएगा?"

प्रश्नमें मधुरता और दुर्जेय मोहकता थी। काकके कानोंमें और रग रगमें उसका नाद गूँज उठा। अचेत मंजरीका श्वासोश्वास मानों दोपहरके शब्दोंका उच्चारण कर रहा हो, इस प्रकार काकके हृदयमें "कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम्" गूँज उठा।

"कीर्तिदेवजी, क्षमा कीजिए। मुझे अधिक विचार करने दीजिए। प्राण देनेपर भी यदि आपका कार्य सधेगा, तो मैं प्रस्तुत हूँ।"

कुछ देर तक दोनों मौन-मुख चलते रहे। उसका हृदय कीर्तिदेवकी ओर आकर्षित हो गया। स्वीकार की हुई अपनी राज-सेवा उसे अखरने लगी।

"यह लीजिए, वह मंडलेश्वर महाराजका घर आ गया," काकने कहा, "आप मार्ग खोज लेंगे?"

" हाँ, खोज लूँगा। एक बार मार्ग देख लेनेपर मैं कभी नहीं भूलता; परन्तु तुम इस लड़कीको रखकर फिर लौटोगे ? "

" क्यों, कोई काम है ? "

" हाँ, मुझे तुम्हारे साथकी आवश्यकता है। "

" तब यहीं खड़े रहिए। महलके दीपक दिखलाई पड़ रहे हैं। लोग जाग गये होंगे। आप आयेंगे, तो कोई पहचान लेगा। "

" अच्छी बात है। मैं यहीं खड़ा हूँ। "

काक मंजरीको लेकर आगे बढ़ा। उसका एक कन्धा थक गया था; अतएव क्षणभर ठहरकर वह दूसरा बदलने लगा। मंजरीने निःश्वास छोड़ा। काकका हृदय, चन्द्रकी अपूर्वताको लज्जित करनेवाले सुमधुर मुखको इतना निकट पाकर, प्रेम-अर्चनासे उसका स्वागत करनेके लिए तरसने लगा; परन्तु उसने प्रयत्न करके उसे संयत किया। काक देख ही रहा था कि मंजरीको कुछ चेत हो आया और वह घबराकर देखने लगी। काकने धीरे-से कहा, " मंजरी, घबराना मत। "

" कौन, काक ? मुझे वे पकड़कर लिये जा रहे हैं ! " कहकर वह भयके कारण काकसे लिपट गई। अज्ञात रूपमें काकने उसे हृदयसे चिपटा लिया।

" क्यों घबरा रही हो ? मैंने उन बदमाशोंको मार भगाया है। अब निश्चिन्त हो जाओ। "

मंजरीको ये शब्द सुनकर कुछ साहस आया और बच जानेका विश्वास होनेपर वह तुरन्त काकके हाथसे छूटकर अलग खड़ी हो गई। चेत होते ही उसका अभिमान फिर जाग्रत हो गया। उसने अपनी गर्विष्ठ आँखोंसे काकको तिरस्कार-पूर्वक निहारा।

" मुझे कहाँ ले जा रहे थे ? "

" मैं ? " काकने ज़रा अपमानित हृदयसे कहा, " यह पूछो कि मैं कहाँसे ले आया ? तुम्हें वे बदमाश उठाकर लिये जा रहे थे। मैं आधा कोस दौड़कर तुम्हें फिर लौटा लाया। इसमें कोई अपराध हुआ हो, तो क्षमा करना। "

मंजरी नरम पड़ गई। उसने काकका हाथ थामकर कहा, " काक, मुझे क्षमा करो। तुमने मुझे दूसरी बार बचाया है। चलो, कहाँ चलना है ? "

" यह है मंडलेश्वर महाराजका घर। " कहकर दोनों वहाँ गये।

मंडलेश्वर और काश्मीरादेवी भी जग उठे थे और सारे घरमें खोज हो रही थी। काश्मीरा देवीको देखते ही मंजरी दौड़कर उनसे चिपट गई। काकने सारी घटना कह सुनाई।

" मंजरी, अब तो काकको सिरोपाव दिये बिना निस्तार नहीं ! "

अभी तक मंजरीकी कँपकँपी दूर नहीं हुई थी; अतएव वह समझ न सकी और उसने पूछा, " कैसा सिरोपाव ? "

" यह ! " कहकर काश्मीरादेवीने मंजरीका दाहिना हाथ पकड़कर दिखलाया। भयके कारण मंजरी काश्मीरा देवीसे लिपट गई।

मंडलेश्वरसे आज्ञा लेकर काक फिर बाहर निकला।

११—हिंगलाजका घाट

काक बड़े वेगसे कीर्तिदेवकी ओर चल पड़ा। मंजरीके स्पर्श और उसको बचानेकी सेवासे काकका हृदय प्रफुल्लित हो गया था और कीर्तिदेवके निष्कपट आदर्शमय जीवन तथा उसके सच्चे, शुद्ध, निःस्वार्थ विचारोंने काकके प्रौढ़ हृदयमें भी प्रतिष्ठा और स्नेहकी अनुभूतियाँ उत्पन्न कर दी थीं। कीर्तिदेवका दिव्य स्वरूप और व्यक्तित्व सात्विक और स्नेहमय वातावरण प्रसारित करता था। वह जितना ही दूसरोंसे निराला मालूम होता था, उतनी ही उसकी भावनामें असाधारणता थी। काकको प्रतीत होता था, जैसे वह युवावस्थामें भीष्मपितामह हों। वह बड़ी हौंससे उसकी ओर दौड़ा जैसे वह उसका परम मित्र हो। वह क्षणभरके सन्देह और अपने सिरपर लिये हुए '-महाविकट कार्यको भूलकर कीर्तिदेवकी मैत्री प्राप्त करनेको उत्सुक बन गया।

कीर्तिदेव इतमीनानके साथ खड़ा था। उसका रूपवान् मुख गहन विचारोंमें ग्रस्त था। उसकी आँखें इस प्रकार स्थिर हो गई थीं, जैसे चन्द्र-किरणोंमें छिपे हुए रहस्यको वह खोज रहा हो।

" कीर्तिदेवजी, कहिए, क्या काम है ? "

" मैं इस समय क्यों निकला हूँ, यह बताना है। "

काकको मुंजाल मेहताका आदेश याद आया और ऐसे मनुष्यके साथ धोखेबाज़ी करनेको उसके हृदयने इनकार कर दिया। वह क्षोभ-पूर्ण स्वरमें बोला, "महाराज, मुझसे ऐसा क्यों कहते हैं ? मैं राजसेवक हूँ और आप आजतक हमारे कट्टर शत्रु थे। इस समय आप परराज्यमें, शत्रुके नगरमें, अकेले चाहे जो करते हों, मुझे उसके जाननेकी क्या आवश्यकता ? आपको अधिक सावधान रहना चाहिए।"

लापरवाहीसे कीर्तिदेव हँस पड़ा, "भटजी, आपको ज्ञात है कि एक दिन मैं पिताहीन निराधार बालक था पर आज उबक परमार जैसे मेरे पिता हैं ? यदि ईश्वरको मुझे मारना ही होता, तो अब तक वह मुझे क्यों बचाता ?"

इस भावमें गर्व नहीं था, परन्तु भक्ति-भावकी कोमलता थी।

"परन्तु कीर्तिदेवजी, आप अभी मुंजाल मेहताके चक्करमें पहली बार ही आ रहे हैं!"

"क्या मुंजाल मेहता इतने अन्धे हैं ?"

"यह कैसे कहा जा सकता है ? परन्तु अवन्तिके साथ वे अधिक समय तक सन्धि न रहने देंगे। अतएव आपके लिए तो वे व्यर्थ—"

"काक भट, सभी यह कहते हैं। क्या मुंजाल मेहता ब्रह्मराक्षस हैं ?"

"नहीं, परन्तु राजनीतिज्ञोंके शिरोमणि हैं।"

"तब चिन्ता नहीं। मुझे विश्वास है, मैं उन्हें समझा सकूँगा। परन्तु मैं तुमसे दूसरी ही बात कह रहा था। पाटणमें रहनेका कारण मेरा एक विशेष स्वार्थ है।"

काकने कोई उत्तर न दिया।

"मुझे अपने पिताको खोज निकालना है।"

"आपके पिता ?"

"हाँ। मैं बालक था, तभीसे उबकराजने लालन-पालन करके मुझे बड़ा किया है; परन्तु वास्तवमें मेरा कुल गुजरातका,—बहुत करके पाटणका है।"

"आप कह क्या रहे हैं ?"

"हाँ, ठीक कह रहा हूँ," खेदयुक्त स्वरमें कीर्तिदेवने कहा, "जब मैं तीन-चार बर्षका था, तब किसी घोर संकटके अधीन होकर मेरे माता-पिताने मुझे देशसे निर्वासित कर दिया था। सेनापतिराज मेरे वंशको नहीं जानते। बस,

उसे परमात्मा जानता है, और दूसरा कोई जानता हो, तो सज्जन मंत्री ।" कीर्तिदेवके स्वरमें पहली बार मनुष्य-स्वभावकी निर्बलताकी प्रतिध्वनि हुई ।

" तब उनसे पूछते क्यों नहीं ? "

" वे कुछ नहीं बतलाते और इसीलिए तो मैं इस समय निकला हूँ । "

" किससे पूछनेको ? कहाँ जानेको ?

" किससे ? कालभैरवसे । "

काक काँप उठा, " ऐं ! "

" हाँ, इसके सिवा और मार्ग नहीं है । "

" कालभैरव कहाँ मिलेंगे ? "

" यहाँ हिंगलाजका घाट है, वहाँकी योगिनियोंसे पूछनेपर ज्ञात होगा । "

काकका हृदय घबरा उठा ।

हिंगलाजके घाटके पास पाटणका श्मशान था । उसके उस किनारे दस कोस तक एक बड़ा बीहड़ जंगल खड़ा हुआ था । यह बात सुप्रसिद्ध थी कि उस जंगलमें हिंगलाज चाचर देवीकी आराधना करनेवाली योगिनियाँ, पिशाच और पिशाचिनियाँ रहती थीं । केवल नदीतटपर बने हुए हिंगलाज देवीके मन्दिरमें ही कुछ लोग जाया करते थे; परन्तु जंगलमें जानेका साहस तान्त्रिक विद्याकी साधना करनेवालोंके सिवा और किसीको न होता था । माना जाता था कि उस जंगलमें कालभैरव भी रहते हैं ।

" क्या इस समय आप अकेले जा रहे थे ? "

" और कौन साथ जाता ? और कहा भी किससे जाय ? यह तो अवसर ही ऐसा आ गया, तब तुमसे पूछ रहा हूँ । तुम चलोगे ? "

काक अनिश्चित-सा खड़ा रह गया । उसे रोमाञ्च हो आया ।

" परन्तु आप कालभैरवकी साधना कैसे करेंगे ? "

" अवन्तिके निकट योगिनियोंका आवास है । मैंने वहाँ कुछ तान्त्रिक विद्या सीखी है । "

" कीर्तिदेवजी, आपने यह विद्या क्यों सीखी ? "

" क्यों सीखी ? भटजी, तुम मेरे हृदयकी व्यथाको नहीं जानते । जब तक मेरे माता-पिताका पता न लगे, तब तक मैं अपूर्ण हूँ, अनाथ हूँ । संसारमें मेरा कोई स्थान ही नहीं है । " कीर्तिदेवके स्वरमें खेदका कंपन था । उसकी

आँखोंमें स्पष्ट निराधारता दिख रही थी। काकको दया आ गई।—कैसा प्रतापी व्यक्ति और कैसी निर्बलता !

" किस लिए ऐसे मृगजलके पीछे दौड़ रहे हैं कीर्तिदेवजी ? मेरी बातको मानें, तो भैरवकी आराधनाको छोड़ दीजिए।"

" भटजी, तुम्हें भय होता हो, तो मैं आग्रह नहीं करता। मेरा तो निश्चय है, और मैं अवश्य जाऊँगा।"

काक कुछ देर देखता रहा और समझदारीको त्याग कर बोला, " कीर्तिदेवजी, तब चलिए मैं भी चलता हूँ। जीनेकी अपेक्षा देखना भला। "

जब कभी काकको इस प्रकार साहसयुक्त कार्य करनेका अवसर आ जाता, तब वह उससे चूकता नहीं। इस समय कीर्तिदेवके व्यक्तित्वने और उसके प्रभावशाली स्वभावमें दिखती हुई निराधारताने काकको जीत लिया।

दोनों बिना अधिक बोले हिंगलाजके घाटकी ओर चले।

जिस प्रकार उस समय आर्य-धर्मके शुद्ध विभागोंमें पौराणिक और जैन मत थे, उसी प्रकार तान्त्रिकोंका अशुद्ध मत भी था। तान्त्रिक लोग मर्यादा त्यागकर मांस खाते, मदिरा पीते, मृतक-विद्याका अध्ययन करते, अज्ञान और श्रद्धालु जनोंको घबराकर समाज और राजनीतिपर अपना प्रभाव डालते। उनकी विद्याके कारण स्वार्थी और द्वेषी लोग उनकी आराधना करते और भयके कारण बड़े बड़े लोग भी उनसे सावधान रहकर चलते। ज्यों ज्यों ब्राह्मण और जैन साधुओंका प्रताप बढ़ता गया, त्यों त्यों तान्त्रिक लोग जंगलोंमें और देवियोंके मंदिरोंमें ही घुसे रहने लगे और ज्यों ज्यों वे लोग अदृश्य होते गये, त्यों त्यों उनके प्रभावकी ख्याति बढ़ती गई और लोग अधिकाधिक डरते गये। सर्वसाधारणमें यह माना जाने लगा कि असाध्य वस्तु को साध्य करनेवाले तान्त्रिक ही हैं। तान्त्रिकोंके देवता अन्य मत-पंथोंके माने हुए देव और देवियोंकी भाँति अदृश्य नहीं थे। श्मशानोंमें, वीरान जंगलोंमें, मध्यरात्रिके समय दुर्गा या कालिकाके मन्दिरोंमें कभी कभी भयंकर बीभत्स स्वरूप दिखलाई पड़ते और यह बात सब लोग जानते थे कि शुद्ध और सात्त्विक लोग उन्हें खोजनेका प्रयत्न नहीं करते थे; परन्तु जो लोग सिद्ध कहे जाते थे वे योगिनियोंको वशीभूत करके उनकी सहायतासे साधारण लोगोंको चकित कर वहमी और अज्ञान स्त्री-पुरुषोंपर अपनी सत्ता जमाते थे।

लाटमें तान्त्रिकोंका ज़ोर अधिक न होनेके कारण काक इस पन्थसे परिचित नहीं था; परन्तु, ब्राह्मण-कुलमें जन्म लेकर, विशुद्ध संस्कारोंमें पला होनेके कारण भूत-प्रेतोंकी इस भयानक सृष्टिकी खोज करनेको जाते हुए उसका हृदय डगमगाने लगा। वह वारंवार कीर्तिदेवके मुखकी ओर देखता था। उस मालवी योद्धाका बालिकाके समान मुख उसे वैसा ही निर्दोष, तेजस्वी और बुद्धि-दर्शक प्रतीत हुआ। काकको आभास हुआ कि यह व्यक्ति जहाँ जाता है वहाँ पवित्रताका उच्च अस्पर्श्य वातावरण साथ ही ले जाता है और उसके साथ रहनेसे ऐसा साहस उसमें आ गया कि कालभैरवसे ही क्या, माता कालिकासे भी वह मिल सकता था।

कुछ देरमें वे दोनों हिंगलाज चाचरके घाटपर आ गये। परन्तु नगरकोटका द्वार बन्द था।

"काकभटजी, तुम्हें साथ क्यों लाया हूँ, अब समझ गये? इस समय इस कोटके बाहर कैसे निकला जाए? मैं जाऊँ, तो पहचान लिया जाऊँ।"

"मैं देखता हूँ। कोई परिचित होगा, तो खिड़की खुलवाता हूँ।"

कहकर काक द्वारपालके पास गया। द्वारपालने उठनेमें कुछ देर जरूर लगाई, परन्तु त्रिभुवनपालके नामसे वह उठ खड़ा हुआ। सबेरे मण्डलेश्वरके हाथीपर बैठकर सारे नगरमें घूमनेवाले भाग्यशाली लाटके योद्धाको उसने पहचान लिया और मन ही मन बड़बड़ाते हुए उसने खिड़की खोल दी। कीर्ति-देवने अपना मुख छिपा रक्खा था, अतएव द्वारपाल उसे न पहचान सका।

कोटके बाहर निकलकर कीर्तिदेवने धीरे-से पूछा, "काकभट, साथ चलोगे या इस मन्दिरमें बैठोगे?"

"जब आरंभ कर दिया है, तब कार्यको पूरा ही करूँगा।"

"तो चलो।"

बड़ी फुर्तीसे दोनों जनें घाटसे नीचे उतरे और दाहिनी ओर मुड़े। काकको फिरसे कँपकँपी आई। पाटणके श्मशानमें वे जा रहे थे।

चाँदनीकी झिलमिलाहटमें श्मशान-भूमि स्पष्ट नहीं दीख रही थी। केवल थोड़ी थोड़ी देरमें रुपहले पटपर लाल-पीली विचित्र रंगोंवाली लपटें अध-जली चिताओंके स्थान सूचित कर रही थीं; और चिताओंपर जलते हुए तथा जल चुके शवोंपर दृष्टिपात कर रही थीं। जगह जगहसे धुआँ निकल रहा था। हवाके झोंकोंसे दम घोंटनेवाली दुर्गन्ध आ रही थी। चिताओंपर पड़े

हुए शवोंसे थोड़ी थोड़ी देरमें चट चटकी आवाज़ आ रही थी और विविध अंग शरीरसे अलग हो होकर गिर रहे थे। कुछ कुत्ते दूर बैठे हुए, अलग गिरे हुए अंगोंको खींच ले जाकर, प्रीति-भोजका आनन्द ले रहे थे।

श्मशानमें निर्जनता दिखलाई पड़ रही थी; परन्तु फिर भी ऐसा लगता था जैसे बहुत साल पहलेके जले हुए स्त्री-पुरुष प्रेत-लोकसे लौट आकर वहाँ इकट्ठे हो गये हैं! जैसे ज़बर्दस्त भीड़में आदमीका दम घुटने लगता है, वैसे ही अकुलाकर, घबराकर काकका दम घुटा जा रहा था। अनेक शताब्दियोंकी मान्यता और विचित्र-अनुभवोंसे श्मशान एक भयानक स्थान समझा जाता है। हिंगलाजदेवीके त्रासदायक प्रभावसे तो पाटणका श्मशान बहुत ही भयानक समझा जाता था। सन्ध्याकाल हो जानेपर वहाँ जानेका किसीको साहस न होता था। उधरसे अचानक निकलते समय अथवा किसी सम्बन्धीको जलाकर लौटते समय यदि सूर्यास्त हो जाता, तो लोग डाकिनी या योगिनीके चिपट जानेके भयसे मुट्ठियाँ बाँधकर भाग खड़े होते और घर पहुँचकर अनेक जप करके शुद्ध और निर्भय होते थे। ऐसे स्थानपर, उस श्मशानकी अकल्प्य भयानकताके मूलरूप समझे जानेवाले कालभैरवके दर्शन करनेके लिए मध्य-रात्रिके समय आनेके कारण बहादुर काकका भी गात्र शिथिल हो गया। उसके पैर काँप रहे थे, उसके शरीरमें जूड़ी चढ़ आई थी; थरथराते होंठोंको बड़ी कठिनाईसे वह बन्द किये था। केवल उसके साथीका अटल आचरण और भयहीन सुन्दर मुख ही काकको लज्जाके मारे भागनेसे रोक रहा था।

ज्यों ही ये लोग चिताओंके पास आने लगे त्यों ही कीर्तिदेवका मुख भी कठोरतासे बन्द हो गया और उसकी आँखोंका तेज दृढ़ होते हुए भी घबराहट सूचित करने लगा।

काक एकदम घबरा उठा। एक तीखे भयंकर स्वरकी चीख़ सुनाई दी। वह कहाँसे आई, यह समझमें न आया। उसकी प्रतिध्वनि चारों ओर आकाशमें और सरस्वतीके जलमें भी सुनाई पड़ी। कुत्ते गुर्राने लगे। काकने आँख बन्द करके पीठ फेर ली, मुट्ठियाँ बन्द कर लीं और भाग जानेका विचार किया।

"काक भटजी, साहस रखना।" कीर्तिदेवने कहा। उसके स्वरमें भी भयका कुछ कंपन था। उसने काकका हाथ पकड़ लिया। दोनोंके हाथ पसीनेसे भीगे थे, दोनोंकी अँगुलियाँ थर-थर काँप रही थीं। कीर्तिदेव घूमा और उच्च स्वरमें उसने एक मन्त्र पढ़ा। काक भी विवश होकर घूमा।

चिताओंके आसपास कुछ ऐसे प्रकाशयुक्त आकार दिखलाई पड़ने लगे, जैसे उनके सिरपर धधकते हुए अंगारे रखे हों। काक अधिक न देख सका। वह आँखें मींचकर गायत्रीका पाठ करने लगा। तुरन्त उनपर हड्डियों और कोयलोंकी वर्षा हुई। "कीर्तिदेव!" काकने कहा और अपना हाथ छुड़ानेका प्रयत्न किया; परन्तु कीर्तिदेवने उसका हाथ बड़ी कठोरतासे पकड़ रखा था।

उसने आँखें खोलीं। वे आकार निकट आते हुए, बढ़ते हुए मालूम हुए। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके हाथमें जो कीर्तिदेवका हाथ था, उसकी नसें ज़ोरसे खिंचने लगीं हैं। कीर्तिदेव अपनेको संयत करनेका प्रयत्न कर रहा था। उसने उच्च स्वरमें दूसरा मन्त्र पढ़ा। घबराया हुआ काक केवल इतना ही समझ सका कि उसमें कालभैरवका आवाहन था।

आगे बढ़कर आते हुए वे आकार तुरन्त वहीं रुक गये। सबने एक साथ ज़ोरकी चीख़ मारी। दसों दिशाएँ काँपती हुई मालूम हुई। कानके परदे फट गये-से प्रतीत हुए। कीर्तिदेव मंत्र पढ़ता ही रहा।

कीर्तिदेव दो क़दम आगे बढ़ा और उसके पीछे काक भी घिसट गया। उनके पैरोंके नीचे हड्डियाँ और मांस मालूम होता था। वे सब आकार दूर जा खड़े हुए। केवल एक काला-सा आकार निकट खड़ा रहा। काकने ध्यानसे देखा, वह स्त्रीका-सा मालूम होता था। सिरके बड़े बड़े बाल उसके वस्त्रहीन शरीरके आसपास लिपटकर पैरोंतक पहुँच रहे थे। उसके मुखपर लाल रक्तके-से दाग़ थे। उसके हाथमें पैरकी हड्डीका दण्ड था। वह योगिनी केवल "ह्रीं" का उच्चारण कर रही थी। काक मन ही मन गायत्रीका पाठ करता रहा। कीर्तिदेवने मंत्र बदल दिया। उस मंत्रको सुनकर वह योगिनी मौन हो गई। कीर्तिदेवने फिरसे मंत्र पढ़ा।

"क्या, क्या, क्या?" योगिनीने अपभ्रंश संस्कृतमें पूछा।

"मैं जानना चाहता हूँ।" कीर्तिदेवने संस्कृतमें कहा।

"क्या?"

"अपने पिताका नाम, अपने कुलका पता" कहकर कीर्तिदेवने फिर मंत्र पढ़ा।

"कृष्णपक्ष और चतुर्दशीकी मध्यरात्रिमें।"

" इससे पहले नहीं ? "

" नहीं । " योगिनीने कहा ।

" कालभैरवाय नमः " कीर्तिदेवने उत्तरमें केवल मंत्रका ही पाठ किया।

" कौन है ? रक्त लाओ । " योगिनीने कहा ।

होठपर होठ दबाकर कीर्तिदेवने बायाँ हाथ बढ़ा दिया। योगिनीने विद्युत्की गतिसे अपना दण्ड घुमाया और कीर्तिदेवने एक चीत्कार किया। काकने देखा कि दण्डके प्रहारसे योगिनीने कीर्तिदेवके बायें हाथपर घाव कर दिया है ।

वह योगिनी तुरन्त अंतर्धान हो गई । एकदम खिलखिलाकर हँसनेकी आवाज़ चारों ओर गूँज गई; और चारों ओरसे हड्डियों और मांसकी वर्षा होने लगी ।

कीर्ति देवने एकदम पीठ फेरी और अपने साथ काकको खींचकर वह भागने लगा। काकको यही चाहिए था। वे अपने प्राण लेकर भागे और कुछ देरमें कोटके द्वारके बाहर घाटपर आकर दम लेनेको खड़े रहे ।

" काक, तुम ज़रा ठहर जाओ। मैं अपने घावपर पट्टी बाँध लूँ। " कीर्तिदेवने कहा ।

काकने देखा कि कीर्तिदेवके बायें हाथसे खून टपक रहा है।

काकने आँखोंके संकेतसे ही पूछा कि इस घावका अर्थ क्या है ?

" मैं कौन हूँ, यह परखनेके लिए मेरा खून लिया है । "

" आप नदीपर हाथ धोने जा रहे हैं ? "

" हाँ । "

" ठहरिए, मुझे भी नहाना है ।—कीर्तिदेवजी, आपका साहस भी गजबका है । "

" यह श्मशान भयंकर है; परन्तु माँ-बापका न जानना इससे भी भयंकर है । "

" भगवान् सोमनाथ मुझे फिर यहाँ न लाएँ । " काक काँपता हुआ बोला ।

" अभी एक बार और आना पड़ेगा । "

" किसलिए ? "

" मेरे साथ उत्तर प्राप्त करनेको आगामी कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन।"

" नहीं, क्षमा करो, अब मुझमें साहस नहीं है।" कहकर काकने पवित्रता प्राप्त करनेवाले अनेक मंत्र पढ़कर नदीमें डुबकी लगाई।

कीर्तिदेवने भी घावको धोया, पट्टी बाँधी और नहाना शुरू किया।

"काक भटजी, आरम्भ करके अन्त करना, यह बुद्धिमानीका दूसरा लक्षण है। मैं पाटणमें पन्द्रह दिनों तक रहना चाहता हूँ। रह गया, तो ठीक ही है; परन्तु यदि, भगवान् महाकालेश्वर न करें, मुझे जाना पड़ा, तो तुम आकर उत्तर न ले जाओगे ?"

काक मौनमुख देखता रहा। कीर्तिदेव अत्यन्त दुखी हो गया। उसके मुखपर खिन्नता छा गई। उसकी आँखें अवर्णनीय चातुर्यसे काकको समझा रही थीं। काक अधिक देर इनकार न कर सका।

" परन्तु मुझे तान्त्रिक विद्या नहीं आती।"

" मैं अभी सिखा देता हूँ। हाथमें जल लो और वचन दो कि इतना काम करोगे। यह उपकार मैं कभी न भूलूँगा।"

काक मात हो गया। उसने मौन-मुख जल छोड़ा। कीर्तिदेव विजयी हुआ। विवश होकर काँपते काँपते काकने मैली विद्याका मंत्र सीखा।

स्नान-ध्यानसे निबटकर दोनों जने शहरमें गये और कीर्तिदेवसे अलग होकर काक मंडलेश्वरके घर जाकर सो गया।

१२—मंजरीने विवाह कैसे स्वीकार किया ?

काक बहुत ही थक गया था, अतएव उसे तुरन्त नींद आ गई। नींदमें उसे अनेक स्वप्न आये। मंजरीके हरण और योगिनीके दृश्य उसने बार बार देखे। आखिर प्रातःकाल हुआ। इससे भी कुछ देर पश्चात् उसकी नींद खुली। उसके शरीरमें थकावट सहनेकी अद्भुत शक्ति थी। अतएव वह इतनी थोड़ी नींद लेकर भी ज्यों का त्यों स्वस्थ हो गया।

वह देरसे उठा था, अतएव घरमें सब अपने अपने कामसे लग गये थे। उसने मंडलेश्वरके बारेमें पूछा; परन्तु वे काकको सोता छोड़कर नदीपर नहाने चले गये थे।

ज्यों ही वह काश्मीरादेवीसे मिलनेको गया, त्यों ही उसने एक नई मूर्त्ति चौकीपर बैठी देखी। उसने उसे नमस्कार किया। इस नई मूर्त्तिके पैरोंमें खड़ाऊँ, कन्धेपर शाल, कपालपर त्रिपुण्ड्र, हाथमें पञ्चपात्र और आचमनी और गलेमें रुद्राक्षकी माला थी। काकने पूछा, "काश्मीरादेवी कहाँ हैं ?"

यह नई मूर्त्ति अँगुलीके पोरुवोंपर कुछ गिन रही थी। उसने बिना ऊपर देखे कहा, "अन्दर गई हैं। अभी आयेंगीं।"

"महाराज, क्षमा कीजिएगा, मुझे आपसे एक काम है।" कहकर काक उसके निकट पहुँचा।

यह नई मूर्त्ति पण्डित गजानन थे। उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने काककी ओर देखा। धीरे धीरे सारे शरीरपर दृष्टि डाली और मौन मुख देखते रहे। पण्डितजीने न मालूम हो ऐसा एक तिरस्कारका निःश्वास छोड़ा।

"मैं राज-ज्योतिषी हूँ।"

"महाराज, मुझे प्रायश्चित्त करना है।"

"कैसा प्रायश्चित्त ?"

"तान्त्रिक विद्या सीखने और कालभैरवकी आराधना करनेका।"

पंडितजीने घबराकर तिरस्कार और क्रोधसे काककी ओर देखा।

"कौन वर्ण हो ?"

"ब्राह्मण।"

"कहाँके ?"

"लाटका।"

"लाटके ?" कहकर पंडित गजाननने अधिक ध्यानसे देखा और ज़रा मुसकराकर देखते हुए कहा "क्या काम करते हो ?"

"भट हूँ।"

"अच्छा, तुम्हारा वेद ?"

"महाराज, इतनी अधिक पूछताछका कारण ?" काकने कुछ ऊबकर पूछा।

पंडितजीने प्रश्नकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। "तुम्हारा वेद कौन-सा है ?" यह पूछकर पंडितजी ज़रा मुसकराने लगे।

"ऋग्वेद।"

"तुम्हारा राशि-नाम ?"

" आपको इन सबसे मतलब ? " काकने क्रोधसे कहा।

" मुझे मतलब नहीं, तो और किसे होगा ? "

क्षणभर काक क्रोधसे देखता रहा। अचानक उसे कुछ स्मरण हो आया। उसका क्रोध शान्त हो गया। मुखपर मधुरता लाकर उसने नम्रतासे कहा, " मेरा नाम है काक। "

" अच्छा, ठहरो। मिथुन, कर्क, सिंह—"

काकके मुखपर हँसी छा गई। उसने पूछा, "आप ही पंडित गजानन हैं ?"

पंडितजीने केवल सिरके संकेतसे 'हाँ' में उत्तर दिया। " सिंह, कन्या, तुला—"

" क्या गणना कर रहे हैं, पंडितजी ? "

पंडितजीने एक आँख मूँद कर शीघ्रतासे कुछ गणना की और फिर वे विचित्र प्रकारसे हँसने लगे। " तुम्हारा नाम काक है ? तुम्हारी राशि मिथुन है। मैं क्या गणना कर रहा हूँ, कहूँ ? विधाताके लेखसे इस समय तुम्हारे लिए संपूर्ण स्त्रीयोग उपस्थित हुआ है। "

काकके मुखमें पानी भर आया।

" कब है ? "

" जब मैं कहूँ। " पीछेकी ओरसे ठिठोली करता हुआ काश्मीरादेवीका स्वर सुनाई पड़ा।

" आप क्या कहेंगीं थीं ? " पंडित गजानन तीखे स्वरमें बोल उठे " ग्रह कहते हैं, राशि कहती है, नक्षत्र कहते हैं। आप विवाह करना चाहती हैं ? "

" हाँ, जितनी जल्दी हो सके। "

एक आँख मूँद कर, खुली आँखसे काश्मीरा देवी और काककी ओर देखते हुए पंडितजीने इस प्रकार कहा, जैसे बहुत बड़ी हँसी की हो, " धुलहरीके दिनका मुहूर्त निकालूँ ? "

काकको ऐसा प्रतीत हुआ कि संसारमें अच्छे-से अच्छा और हँसमुखसे हँसमुख यदि कोई मनुष्य है, तो वह गजानन पंडित है।

" क्यों ज्योतिषीजी महाराज, क्या बुद्धिका दिवाला निकल गया है ? "

" हाँ देवीजी, द्वितीया अच्छी है, पंचमी भी अच्छी है, त्रयोदशी..."

" वह तो अभी बहुत दूर है । "

काक लज्जाके कारण कुछ न कह सका। उसके मस्तिष्कमें आनन्दके नगाड़े बज रहे थे।

" तब पंचमी ? "

" हाँ, यह ठीक है । मुझे शीघ्र ही यह सब करना है । द्वितीयाकी भी तैयारी रखिएगा । "

" जो आपकी आज्ञा। " कहकर पंडितजी उठे और बिदा ली।

" काक, अब तुम भी तैयार हो जाओ । "

काक मन ही मन विचार करने लगा कि वह तो इसी क्षण मंजरीका पाणिग्रहण करनेको तैयार है ।

" बहनजी, आप कहाँ, बाहर हैं ? " अन्दरसे मंजरीका स्वर सुनाई पड़ा।

काश्मीरादेवीने काककी ओर आँखें नचाईं; " हाँ मंजरी, ज़रा यहाँ तो आओ। "

" यह आई । "

काक मुख लज्जासे लाल करके इस प्रकार नीचे देखने लगा, जैसे बारह बरसका नन्हाँ-सा उमंग-भरा दूल्हा हो। मंजरी आई और उसने काकको देखा। उसका मुख भी लाल हो गया। पर यह समझमें न आया कि गर्वसे या क्षोभसे।

" मंजरी," काश्मीराने मंजरीको अन्दर खींचते हुए मज़ाकमें कहा, " यह काक भट हैं, लाटके दण्डनायक, महाराजके परम मित्र। "

इस मज़ाककी ओर ध्यान न देते हुए मंजरीने पूछा,"कौन, पंडितजी थे ?"

" हाँ, तुम्हारे विवाहका मुहूर्त्त निकलवाया है। "

मंजरी जरा उलझनमें पड़ गई ।

" इसी आगामी द्वितीयाको । "

" परन्तु—"

" देखो, फिर तुम अपनी बुद्धिमानी बघारने लगीं ? क्या उस खंभातवाले सेठको भूल गई ? चलो, अब बुद्धिमान बन जाओ," कहकर काश्मीराने मंजरीको एक चपत लगाई और वह दूसरे कमरेमें चली गई; जाते जाते द्वार भी बन्द कर गई। जिस द्वारके पास काक खड़ा था उसके अतिरिक्त जानेका

दूसरा मार्ग नहीं था। मंजरीका मुँह उतरा हुआ था, परन्तु उसके होठ गर्वसे बन्द थे, उसकी आँखें अभिमानसे परिपूर्ण थीं। वह काककी ओर तिरस्कारसे देखने लगी; "किस लिए मुझे दग्ध कर रहे हो ?"

"मैं दग्ध कर रहा हूँ ?"

"हाँ।" और मंजरीके अभिमान-पूर्ण स्वरमें भी दयनीयता आ गई। "तुम, काश्मीरा बहन और पंडितजी सभी मुझे दग्ध कर रहे हैं। मैं असहाया हूँ; पितृ-हीना हूँ; मेरे नाना बहुत दूर देशमें रहते हैं; हज़ार हाथोंवाला रावण मेरे पीछे लगा है; यह कहकर तुम मुझे घबराये डाल रहे हो। मुझे कुछ सूझता नहीं है; इसीसे मुझे अपनी स्त्री बनाना चाहते हो। तुम सबको यह अत्याचार करते लज्जा नहीं आती ?"

"अत्याचार कर रहे हैं ? तुम्हें यही प्रतीत होता है ? तो मैं विवाह ही नहीं करूँगा।"

"नहीं, तुम क्यों इनकार करोगे ?" तिरस्कार और कटाक्षसे मंजरीने पूछा, "तुमने दो दो बार मुझे मरते हुए बचाया है और काश्मीरा बहन कहती हैं कि तुम मेरा पाणिग्रहण करनेके अधिकारी हो गये हो !"

"परन्तु मैं कब यह कह रहा हूँ ?"

"तुम चाहे मुखसे न कहते हो,—हृदयमें कहते होगे।"

"मैं क्यों झूठ बोलूँ ? मैं जानता हूँ कि तुम्हारा पति बननेकी योग्यता मुझमें नहीं है। तुम विदुषी हो, मैं अपढ़ हूँ। तुम संस्कार-शीला हो, मैं ग्रामीण हूँ। मैं अधिकारी नहीं, केवल दास हूँ।"

"जब यह बात है, तब किस लिए मुझसे विवाह करनेके लिए तैयार हुए हो ?" मंजरीने अपने विशाल नेत्र काकपर स्थिर करके पूछा।

"तुम्हारे लिए।"

मंजरीने कोई उत्तर नहीं दिया।

काकने फिर कहा, "तुम्हारे सिरपर चक्र घूम रहा है, यह तुम्हें ख़बर नहीं ?"

"मैंने कल रातको ही इसका अनुभव किया है।" सिरपर ज़रा बल डाल कर मंजरीने कहा।

"तो अब अधिक क्या कहूँ ? मंडलेश्वरके महलसे तुम्हें उठा ले जाना

कोई सरल बात समझती हो ? जिस मनुष्यने यह किया, वह और क्या नहीं कर सकता ? वह बलवान् होना चाहिए। यदि तुम जूनागढ़, अपने नानाके पास, जाओगी, तो भी उसके हाथ तुम्हें पकड़ लेंगे। वह कौन है, यह तुम जानती हो।"

"हाँ, काश्मीरा बहन भी यही कह रही हैं।"

"क्या ?"

"कि वह मनुष्य रावणके समान समर्थ है। परन्तु तुमसे विवाह करके भी कैसे बच सकूँगी ?" मंजरी अपने विवाहकी बात बिल्कुल लापरवाहीसे कर रही थी।

काकने कुछ देर विचार किया, "काश्मीरादेवी क्या कहती हैं ?"

"वे कहती हैं कि मैं किसी दूसरेसे विवाह कर लूँगी, तो वह तुरन्त मेरा पीछा छोड़ देगा।"

"कारण ?"

"मेरी अपेक्षा उसे अपनी प्रतिष्ठा अधिक प्रिय है।" मंजरीने तिरस्कारसे कहा और फिर निराशासे, एक हाथसे दूसरे हाथको मोड़ते हुए, उसने कुछ क्रोध, कुछ अकुलाहट और कुछ कटाक्षसे कहा, "इसलिए तुमसे विवाह किये बिना मुझे और कोई रास्ता ही नहीं मिलता।"

काक विचारमें पड़ गया, "मंजरी, मुझसे विवाह करते हुए तुम्हें इतना दुःख हो रहा है ?"

"तुमने मेरी प्राण-रक्षा की है, इसलिए मैं जन्मभर तुमसे स्नेह रखूँगी।" कहकर मंजरी सतर हो गई और गौरवसे काककी ओर देखकर बोली, "परन्तु मुझसे अपनी इच्छाके विरुद्ध विवाह करोगे, तो—"

"तो ?"

"जीवनभर धिक्कार देती रहूँगी।"

काकके हृदयपर कोड़ा-सा लगा। वह मौन हो गया। उसकी आशाका सूर्य अस्त होने लगा। कुछ देरमें वह बोला, "मंजरी, मैं तुम्हें इतना असह्य हो जाऊँगा, यह मैंने नहीं जाना था !" काकने निःश्वास छोड़ा।

मंजरीने उत्तर नहीं दिया। वह केवल अभिमानसे देखती रही।

काकने कुछ देरमें फिर कहा, "तुम्हें निर्भय करनेका एक दूसरा मार्ग है।"

" क्या ? " मंजरीके कठोर बने हुए सुन्दर मुखपर कोमलता आ गई ।

" वह पापी कौन है, यह मुझे बतला दो । कल प्रातःकाल होनेसे पहले ही मैं उसे परमधाम पहुँचा दूँगा ! " दाँत पीसकर काकने कहा और फिर अकुलाकर बोला, " इससे तुम्हें निश्चिन्तता प्राप्त होगी और विवाह करनेका दुख भी दूर हो जाएगा । " काकका स्वाभिमान भी चोट खा गया था ।

मंजरीने खिन्नतासे सिर हिलाया ।

" क्यों ? " काकने पूछा ।

" यों कि तुम उस पापीका नाम नहीं जानते । "

" क्या ऐसा दुर्जेय है ? "

" दुर्जेय नहीं, पर ऐसा अस्पर्श्य है । "

" कौन ? " कहकर काक ज़रा निकट आया । मंजरीने धीरे-से एक शब्द कहा। काक उछलकर ऐसे दूर जा खड़ा हुआ, जैसे उसे साँपने डस लिया हो।

मंजरीने नाकपर अँगुली रखकर चुप रहनेके लिए संकेत किया । काकने निराशासे सिर हिलाया, " मंजरी, तुम्हारी बात सच है । इस मनुष्यको नहीं मारा जा सकता । "

" और दूसरी बात, वह भी सत्य है ? "

" हाँ, वह केवल अप्रतिष्ठासे डरता है । तुम किसी दूसरेसे विवाह कर लो, तो फिर वह स्वप्नमें भी तुम्हारा विचार न करेगा । "

" तब बिना विवाह किये छुटकारा ही नहीं है ।" मंजरीने तिरस्कारसे कहा ।

काक मंजरीसे विवाह करना चाहता था; उसके पैर पूजता था; फिर भी ऐसी बातोंसे उसे क्रोध आ रहा था । जिस तिरस्कारका व्यवहार मंजरी उसके साथ कर रही थी, वह उसे अखरता था । ज्यों ज्यों मंजरी उसका अधिक तिरस्कार करती जाती थी, त्यों त्यों काक उसे अपनी पत्नी बनानेकी इच्छा बढ़ाता जा रहा था और उससे स्वामित्व स्वीकार करानेको तरस रहा था । अपने गौरवकी रक्षाके लिए उसने भी शान्तिसे उत्तर दिया, " हाँ, या तो मेरे साथ, या जैन मन्त्रीके साथ । "

मंजरीने होठ चबा लिये, " यह बात कल मैंने पचास बार सुनी है । "

" सच्ची बात इक्कावनवीं बार सुननी पड़े तो भी अच्छा । "

मंजरी काककी ओर अवर्णनीय अभिमान और तिरस्कारसे देखने लगी ।

" मुझसे विवाह करके क्या करोगे ? " मंजरीकी छोटी-सी रसाल ठोढ़ी हठसे दृढ़ हो गई । उसके नेत्रोंसे स्थिर और प्रभावशाली प्रकाश निकल रहा था । काकने देखा कि मंजरी और उसके बीच युद्ध आरम्भ हो गया है और तब उसने उसमें विजयी होनेका निश्चय कर लिया । उसके कानोंमें मंजरीके शब्द टकरा रहा रहे थे " कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम् । " काककी गरुड़-सी गहरी तीक्ष्ण आँखें ज़रा बढ़ीं और स्थिर हो गईं । उनमेंसे निश्चल असिधाराके समान चमकता हुआ तेज निकलने लगा । तेजके दो खड्ग एक दूसरेसे टकराये और उनमेंसे अदृश्य चिनगारियाँ निकलीं ।

" यह विवाहके पश्चात् कहूँगा । "

" तुम जानते हो, मैं गर्विष्ठा हूँ, मेरे आचार-विचार विचित्र हैं, तुम्हें वे कैसे रुचेंगे ? "

" यह मेरे समझनेकी बात है । " कहकर काक ज़रा हँस पड़ा । मंजरीकी तिरस्कारपूर्ण दृष्टि काकको अल्पसे अल्प बनाकर उसे उस अल्पताका अनुभव करानेका प्रयत्न करने लगी । एक सम्राज्ञीकी शानसे, गौरवसे, वह बाहर जानेके लिए सतर हो गई । द्वारके आगे संयत होकर प्रतापकी मूर्तिके समान काक नतमस्तक खड़ा था । मंजरीको ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वहाँ उसके भविष्यका विनाशक यमराज खड़ा है । यह विचार आते ही उसका साहस, गौरव और दृढ़ता पलायन कर गई । आँखोंपर हाथ रखकर वह रो पड़ी ।

काक आर्द्र हो गया । वह मंजरीको रोती हुई न देख सका, " मंजरी, क्यों रो रही हो ? "

" अनाथके भाग्यमें आँसुओंके अतिरिक्त और क्या होगा ? "

" तो मैं नाथ बनकर इन आँसुओंको सुखाऊँगा । "

मंजरीने अश्रुपूर्ण आँखोंसे काककी ओर देखा । उसके होठ ज़रा काँपे और वह तुरन्त बोली, " काक, तुमने मुझपर असीम उपकार किया है । " कुछ देर वह देखती रही और अश्रु-सरमें तैरते हुए दो अपूर्व कमलोंको काक देखता रहा ।

" एक उपकार और करोगे ? " मंजरीके मुखपर, आँखोंमें, स्वरमें दयनीयता व्याप्त हो गई थी । उसके होठ काँप रहे थे । उसका हृदय विचार

और उर्मियोंकी तरंगोंमें उछल रहा था। मंजरीका भव्य मोहिनी-रूप, अंग-अंगका लालित्य, वाक्-चातुर्यसे याचना कर रहा था। उस चातुर्यके सामने काक निर्बल हो गया।

"हाँ, जो कहोगी, वही करूँगा।" काकने कहा।

"मुझसे विवाह करनेके पश्चात् मुझे मेरे नानाके यहाँ छोड़ आना।"

मंजरीने इतना कहा और चली गई। उसके अदृश्य होते हुए शरीरकी ओर काक अचेत-सा होकर देखता रहा। यदि पृथ्वी रसातलमें चली गई होती, तो वह ऐसा न घबड़ाता, उसे ऐसे चक्कर न आते। उसने पिछले हाथों दीवालका सहारा ले लिया।

बहुत देर तक मुख नीचा किये हुए, विचार-हीन, केवल निराशाका ही अनुभव करता हुआ वह खड़ा रहा। भारी हृदयसे अन्तमें उसने निःश्वास छोड़ा और वह बाहर निकला। उसके हृदयमें सुखका सूर्य अस्त हो गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके जीवनका उद्यान सूख गया है और अब अरण्य-मात्र ही रह गया है।

जब वह बाहर निकला, तब जयदेव महाराजका एक सेवक महाराजका सन्देश लेकर आया था। महाराजने काकको दोपहरके पश्चात् बुलाया था।

१३—काकको अपने वाक्-चातुर्यपर श्रद्धा न रही

अपनेको संयत करनेमें काकको कुछ विलम्ब लगा। उसके स्वभावमें उछलती हुई उमंगों और शान्त दूरदर्शी बुद्धिका अनोखा मिश्रण हो गया था। पहले उसने कोमल बालककी-सी मूर्खतासे उसने मंजरीको वचन दे दिया; और पाषण-हृदय राजनीतिज्ञकी बुद्धिसे उसमेंसे मार्ग खोज निकालनेका वह प्रयत्न करने लगा।

पहले उसने मंजरीसे विवाह करने और फिर अपने वचनको भंग कर डालनेका विचार किया; परन्तु यह विचार उसने तुरन्त दूर कर दिया। यदि वह ऐसा करे, तो मंजरीने उसकी असंस्कारितापर जो आक्षेप किये थे, वे सच हो जायँ, मंजरीके हृदयमें वह अब्राह्मण सिद्ध हो जाय और सदाके लिए अपनी पत्नीकी दृष्टिमें अधम बन जाय।

और कौन मार्ग है ? उसने बहुत विचार किया, परन्तु एक भी मार्ग न दिखलाई पड़ा। यदि उदा मेहताका भय न हो, तो मंजरी उससे कभी विवाह न करे और यदि कर ले, तो काकको अपने वचनका पालन करना पड़े। दोनों मार्ग निराशा-जनक थे। दोनों मार्गोंमें काकको अपनी भलाई नहीं मालूम होती थी। तब क्या करना चाहिए ? काकको अचानक एक विचार सूझा। उदा मेहता मंजरीका पीछा क्यों न छोड़ेगा ? यदि वह पीछा छोड़ दे, तो चाहे मंजरी उससे विवाह न करे, परन्तु सुखी तो हो जायगी। काककी कल्पनामें मंजरीका सुमधुर मुख निराशा और दुखसे मुरझाया हुआ दिखलाई पड़ने लगा। क्या अपने स्वार्थके लिए उस मुखको सदाके लिए मुरझा जाने दिया जाय ? नहीं, नहीं, कभी नहीं। काकने निश्चय किया; परन्तु दूसरी कठिनाई और भी भारी थी। उदा मेहता अपनी हठ कैसे छोड़ेगा ? किसीके कहनेसे ? काकका हृदय कह रहा था कि उदा मेहताकी दृढ़ता कोई साधारण नहीं है। तब फिर किसकी सहायता ली जाय ? उसने अनेक व्यक्तियोंका विचार किया; परन्तु ऐसा कोई व्यक्ति दिखलाई न पड़ा जिससे सहायता मिल सके। अन्तमें काकने अपने साहससे ही उदा मेहताका हठ छुड़ानेका निश्चय किया।

इस समय उसे अवकाश था; अतएव तुरन्त ही उसने उदा मेहतासे मिलनेका विचार किया।

शस्त्रोंसे सजकर काक बाहर निकला। उदा मेहता अपने ससुर शान्तु मेहताके यहाँ ठहरा था। अतएव पूछता पूछता, जिस जगह रातको कीर्तिदेवने उन बदमाशोंको रोका था, काक वहाँ जा पहुँचा। उसकी बगलमें शान्तु मेहताका बाड़ा था। काकको अब विश्वास हो गया कि रातको जो अपरिचित मनुष्य दीवारकी आड़से निकल कर फिर अदृश्य हो गया था, वह उदा मेहता ही होना चाहिए।

काकने शान्तु मेहताके यहाँ पूछताछ की, तो मालूम हुआ कि उदा मेहता पूजा कर रहे हैं। काक ऊबता-अकुलाता हुआ प्रतीक्षा करने लगा और दो-तीन घड़ीके पश्चात् एक नौकर उसे उदा मेहताके पास बुला ले गया।

काकने ज्यों ही अन्दर प्रवेश किया त्यों ही उदा मेहता मुखपर मधुरसे मधुर हास्य लाकर बड़ी उमंग-भरे प्रेमसे उसका स्वागत करनेको आगे बढ़ आया।

" आइए, आइए, काक भटजी, कहिए, कैसे ? आप हमारे खंभातको त्याग कर गये सो ख़बर भी न दी ? वाह ! वाह ! " ऐसे स्वागतका काकने कभी विचार भी न किया था। उदा मेहताने हँसते हुए निकट बैठे एक मनुष्यसे कहा, " धर्मपाल, यही काक भटजी हमारे यहाँ अतिथि हुए थे और पूरा आतिथ्य स्वीकार किये बिना ही चले दिये थे। हाँ जी, उसी रोज़ तो तुम गये थे, जिस रोज़ बेचारा हमारा वह तिलक मर गया। " उदा मेहताके मुखसे यह स्पष्ट प्रकट हुआ कि तिलकका घातक काक ही था; परन्तु इस प्रश्नके उत्तरमें पकड़ा जाना उसे उचित नहीं मालूम हुआ।

" ओह ! तिलकचन्द्र मर गये ? " काकने शोक प्रदर्शित करनेके लिए गम्भीर मुख बनाकर कहा, " कैसी कची वयसमें भगवान् सोमनाथने उन्हें उठा लिया ! "

" भाग्यका लेख ! भटजी, आइए, बैठिए तो जरा। आज मैं वास्तवमें कृतार्थ हो गया कि आप मुझे खोजते हुए आये। "

इस मधुके सागरको तैरकर पार करना काकको बड़ा कठिन मालूम हुआ।

" मुझे आपसे जरा काम है। "

" ओह ! मेरा कैसा दुर्भाग्य कि मुझे इसी समय राजमहलको जाना है। "

" इसी समय ? "

" हाँ जी, यह कैसे हो सकता है कि तुम्हें मालूम न हो। इसी समय महाराजने सब मंत्रियोंको बुलाया है। और किसी समय न आइएगा ? "

" कलके दरबारके विषयमें बातचीत करनेके लिए ? "

" यह तो महाराज जानें। मैं अधिक झंझटोंमें नहीं पड़ता। "

" दो-चार क्षणके लिए भी मेरी बात नहीं सुनेंगे ? "

" दो-चार क्षण ? अवश्य। धर्मपाल, ज़रा शान्तु मेहतासे कहो कि पालकी तैयार होते ही मुझे बुला लें। "

" जो आज्ञा, " कहकर धर्मपाल चला गया।

" कहिए, मेरे योग्य जो काम-काज हो, उसे निश्चिन्ततापूर्वक कहिए। " कहकर उदा मेहता हँसते हुए, तकियेके सहारे बैठ गये। केवल उनकी आँखें ही काकके मुखके भावोंपर अचूक पहरा देती रहीं। काक घुटनोंके बल सामने बैठ गया। वह भी यह विचार कर रहा था कि इतनी देर किस प्रकार बात की जाय ?

"मंत्रिवर, एक बार आपने मुझे अपना मित्र बनानेके लिए कहा था।"

"अवश्य। मैं आपको अपने परम मित्रोंकी ही पंक्तिमें समझता हूँ।"

"आपको खबर है कि मेरी मैत्रीकी आवश्यकता आपको जैसी इस समय है, वैसी और कभी नहीं थी।"

"सच्चा मित्र सदा काम देता है।" कहकर उदा मेहताने केवल मुखके भावसे ही शीघ्रता प्रकट की।

"देखिए मेहताजी, समय थोड़ा है। अतएव मैं विनयकी रक्षा न कर सकूँ, तो क्षमा करिएगा। मैं आपकी भाँति बुद्धिमान् या राजनीतिज्ञ नहीं। आपने मेरी शक्ति और प्रभावको समझ लिया है।"

उत्तरमें उदा मेहताने मधुर-सा हँस दिया।

"आज आप सत्ता और प्रताप भोग रहे हैं। संभव है, इसी क्षण या कल वे न रहें।"

"सुख चंचल है, देह क्षणभंगुर है।" उदा मेहताने गाम्भीर्यसे इन सूत्रोंका उच्चारण किया।

"और राजाओंकी कृपा इनसे भी अधिक चंचल है।"

"यह विषय बहुत ही ज्ञान-पूर्ण है। हम इस विषयमें कभी निश्चिन्ततासे बैठकर बातचीत करें, तो कैसा रहे?"

काकने होठ चबा लिये। उदा उसका मजाक़ कर रहा था।

"नहीं, इसी समय यह बात करना है। मैं एक वचन माँगनेके लिए आया हूँ। वह वचन दे दीजिएगा, तो मैं सदाके लिए आपका सेवक बन जाऊँगा और न दीजिएगा तो कट्टर शत्रु।"

"क्या वचन चाहते हैं, कहिए तो?" बहुत ही मधुरतासे उदाने कहा और फिर ज़रा उद्धत स्वरमें कहा, "देखिए, राग और द्वेष दोनोंको त्यागना चाहिए। इनपर अधिक भार देनेकी आवश्यकता नहीं है।"

"कविकुलशिरोमणि रुद्रदत्तकी कन्याका पीछा छोड़ दो।" काकने उदापर आँखें गड़ाकर कहा।

उदाके मुखपर ज़रा-सा परिवर्त्तन हुआ न हुआ कि वह बिल्कुल अजान-सा बनकर देखने लगा और बोला, "क्या कहा? कविवर रुद्रदत्त तो स्वर्गवासी हो गये हैं न? उनकी कन्या कहाँ है?"

" खंभातमें थी और आप उससे विवाह करना चाहते हैं । "

कुछ देर उदा काककी ओर देखता रहा और बोला, " भटजी, यदि तुम शुद्ध ब्राह्मण न होते, तो मैं कहता कि आप किसी नशेकी धुनमें हैं । आप क्या कहते हैं ? मेरी समझमें ही नहीं आ रहा है । "

काक क्रोधसे देखने लगा; क्या उदा उसे बना रहा है या मंजरीकी बात झूठ है ?

" मेहताजी, क्या आप रुद्रदत्तकी स्त्रीको नहीं जानते ? क्या मंजरीको नहीं पहचानते ? " काकने कटाक्ष करते हुए पूछा ।

" उन्हें पहचाननेका अहोभाग्य प्राप्त होता, तो इनकार क्यों करता ? " उदाने बहुत ही सरलतासे उत्तर दिया ।

" तो ठीक है मंत्रिवर, नमस्कार । " कहकर काक उठ खड़ा हुआ । " अधिक बातें करनेकी अवश्यकता नहीं है । "

" भटजी, मेरी बात मानों, तो ऐसी धुनोंपर अधिक ध्यान ही न देना चाहिए । साहस करनेसे पहले दीर्घ विचार कर लेना चाहिए । " कहकर काकको बिदा करनेके लिए उदा उठ खड़ा हुआ ।

एकाग्र हुए क्रोधसे काकने उसकी ओर देखा । उसकी आँखें चमक उठीं और क्रोध-कंपित स्वरमें उसने कहा, " मेहताजी, अब सावधान रहिएगा । मेरा भविष्य भी पाटणके साथ निहित है । "

" अच्छी बात है । हम फिर मिलेंगे, इससे अच्छा और क्या होगा ? " बड़ी ही शान्तिसे उदाने उत्तर दिया । उसका संयम अटल था । केवल उसके होठोंसे उसकी विजय प्रकट हो रही थी ।

" 'इससे अच्छा और क्या' की ख़बर अब पड़ेगी । " कहकर काकने पीठ फेर ली ।

" फिर कभी दर्शन दीजिएगा । " बहुत ही नम्रतासे उदाने कहा ।

काक बिना उत्तर दिये चला गया । उसने देखा कि वाक्-चातुर्यमें वह पराजित हो गया है और मंजरीसे विवाह कर लेनेके अतिरिक्त अब दूसरा मार्ग ही नहीं है ।

१४–सत्ताके सूत्र

दोपहर होनेपर, यह विचार करता हुआ काक राजमहलमें पहुँचा कि महाराजको क्या उत्तर दिया जाय। उस समय मन्त्रियोंकी बैठक हो रही थी; अतएव समय बितानेके लिए वह वीरा भाटके पास जा बैठा। जब बिल्कुल सन्ध्या होनेको आ गई, तब उसे ख़बर मिली कि सभा समाप्त हो गई है। वह उठकर जयदेव महाराजके पास गया।

जिस खण्डमें महाराज थे, उसके द्वारके आगे डूँगर खड़ा हुआ था। उसने काकको रोका। महाराज किसीसे वार्तालाप कर रहे थे। कुछ देरमें एक साधारण-सा राजपूत बाहर निकला और अन्दरसे महाराज जयदेवकी आवाज़ सुनाई पड़ी, "डूँगर, वह काक अभी तक दिखलाई नहीं पड़ा ?" काकको शान्ति मिली। महाराजके स्वरमें आनन्दकी प्रतिध्वनि थी।

"महाराज, मैं तो कभीका हाज़िर हूँ। आपको अवकाश मिलनेकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।" कहकर काक अन्दर प्रविष्ट हुआ।

काककी धारणा ठीक थी। जयदेवके मुखसे हँसी फूटी पड़ रही थी, आँखें चमक रही थीं। उसके हाथमें एक पलाशका फूल था। काकको देख कर उसने फूलको मुट्ठीमें छिपा लिया।

"क्यों काक भट, कुछ किया ?"

"महाराज," हाथ जोड़कर काकने कहा, "सब तैयार है।"

"क्या ?"

"कल सबेरे बड़े बड़े लोग आपके प्रतापसे चकित हो जायँगे। बस, अब केवल एक ही बात रह गई है।"

"वह क्या ?"

"आपका निश्चय कि आपने मालव-राजकी कन्याकी मँगनी स्वीकार की या नहीं।"

"इसका निश्चय नहीं हुआ। यह निश्चय हो गया कि मालवाके साथ अधिक समय तक सन्धि न रखी जाय। केवल मँगनीकी बात ही रह गई है। मुंजाल मेहता और माताजी दोनों स्वीकार नहीं करते।"

"परन्तु आपकी क्या इच्छा है ?"

" मैं मँगनी स्वीकार करना चाहता हूँ; अतएव यह समय व्यर्थ ही बीत गया । "

काक उत्तर खा गया । जब तक जयदेवकी विचार-धारा मालूम न हो जाय, तब तक कुछ कहना उसे अनुचित प्रतीत हुआ ।

" मँगनी स्वीकार की जाय या नहीं, कुछ समझमें नहीं आ रहा है । " कहकर अज्ञात रूपसे जयदेवकी दृष्टि हाथमें छिपाये हुए फूलकी ओर गई । काकने इस दृष्टिको ध्यान-पूर्वक देखा । काकके उत्तर देनेसे पहले ही डूँगर अन्दर आकर बोला, " अन्नदाता, राजमाताजी आ रही हैं । "

" माताजी ? " जयदेवने आश्चर्यसे आँखें फाड़कर पूछा ।

" हाँ अन्नदाता । "

जयदेवने होठ चबा लिये । उसके मुखपर घबराहट छा गई । उसने शीघ्रतासे कहा, " काक, जरा तुम बाहर खड़े रहो । "

काक नतमस्तक होकर डूँगरके साथ बाहर चला गया ।

काक ज्यों ही बाहर गया त्यों ही जयदेवने मुट्ठीमें लिये हुए फूलको अंटीमें खोंस लिया और प्रसन्न मुखको गंभीर बनानेका प्रयत्न किया ।

कुछ ही क्षणोंमें मीनलदेवी आ पहुँचीं । मीनलदेवीके मुखपर अपूर्व भव्यता थी । उनकी चाल धीमी और गौरवपूर्ण थी । उन्होंने आते ही एक तीक्ष्ण दृष्टि जयदेवपर और सारे कमरेपर डाली । जयदेव मन ही मन घबड़ा गया । मीनलदेवीसे वह बहुत भयभीत रहता था ।

" जयदेव ! "

" हाँ, माताजी ! "

" डूँगरके साथ वह कौन खड़ा है ? "

" माताजी, वह तो लाटका भट है । "

" कौन, काक भट ? " मीनलदेवीने पूछा ।

जयदेव हँस पड़ा, " आपने कैसे जाना ? "

" यदि यह मैं न जानूँ कि तुम्हारे राज्यमें कहाँ क्या हो रहा है, तो वह चलेगा कैसे ? " ज़रा हँसकर राजमाताने कहा, " मनुष्य तो अच्छा है, क्यों ? "

" हाँ, अच्छा है । "

"हाँ जयदेव, फिर उस मालवेकी मँगनीके विषयमें क्या किया जाय ?"

"माताजी, बार बार पूछनेसे क्या लाभ? मैं स्वीकार करना चाहता हूँ।" जयदेवने कहा।

"पर जो मैंने कहा, वह अधिक अच्छा है।"

"माताजी," जयदेवने अधीरतासे कहा, "जब मुझे अपने विचारोंके अनुसार चलाना है, तब पूछती ही क्यों हैं? आप कहती हैं कि तुम राज्यका संचालन करो। मुंजाल मेहता भी यही कहते हैं और जब राज्यके संचालनका समय आता है, तब आप कहती हैं कि आपके विचारके अनुसार मैं चलूँ। ऐसी दशामें बतलाइए, मैं राज-कार्य कैसे कर सकता हूँ ?"

"आकुल न होओ बेटा, अभी तुम बालक हो।"

"मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मरने तक मैं बालक ही रहूँगा।" ऊबकर जयदेवने कहा।

"माताके लिए लड़का सदा ही बालक रहता है।" मीनलदेवीने कहा।

"आप कहें, तो मैं राज-कार्य करनेका परिश्रम ही न करूँ।"

"यह कौन कहता है ?"

"आप कहती हैं। मेरा विचार आप जानती हैं, मन्त्री भी जानते हैं और कुछ देरमें सारा नगर जान जाएगा। फिर उस विचारको छोड़कर, जो आप कहती हैं, वह करूँ? यह राजा होनेका तो बहुत अच्छा लक्षण है!" कहकर दृढ़तासे जयदेव देखने लगा।

"ऐसे गम्भीर अवसरपर हमारी बात न मानोगे," मीनलदेवीने धीरे-से समझाते हुए कहा, "तो परिणाम क्या होगा, जानते हो ?"

"यही गम्भीर अवसर है ?"

"हाँ, तुम्हें अभी कई बातोंकी ख़बर नहीं है।"

"किन बातोकी ?"

"उबक पाटणके साथ सन्धि करने आया है, और हम इनकार करेंगे, तो भी वह सन्धि करनेका प्रयत्न करेगा। ऐसे समय तुम बिना विचारे कुछ कर डालो, तो परिणाम क्या होगा ?"

"परन्तु सन्धिको तो हम स्वीकार नहीं करते ?"

"किन्तु वह लड़की जब ब्याहकर यहाँ आ जायगी, तब पाटणमें और राजमहलमें दो पक्ष हो जायँगे।"

" दो पक्ष ? "

" हाँ, एक मेरा और एक लक्ष्मवर्माकी लड़कीका। तुम्हारी दो रानियोंका पीहर तो अपनेसे नीचा है पर इस नई रानीका पीहर अपनेसे बढ़ जाएगा। हमारी स्त्रियोंकी यह कहावत तुम्हें मालूम है कि अपनेसे अधिक प्रतापी कुलकी कन्याको न लाना चाहिए ? वह आएगी, तो अपने कुछ मनुष्योंको साथ लाएगी। फिर यहाँ अपनी सत्ता स्थापित करना चाहेगी और अन्तमें पाटण अपनापन भूलकर अवन्तिका मंडल बन जाएगा।—यह तुम करना चाहते हो ? " राजमाताने कठोरतासे पूछा।

" अतएव मुझे किसी प्रतापी राज्यके साथ सम्बन्ध ही न करना चाहिए ? "

" नहीं, करना चाहिए; परन्तु तब जब कि उसे हरा कर अपने अधीन कर लिया जाय। "

जयदेव कुछ देर देखता रहा।

" हमें तो अपने यहाँ एक ही तन्त्र चाहिए, " मीनलदेवीने आगे कहा, " नहीं तो हमारी पनपती हुई सत्ता मुरझा जायगी। "

" एकतन्त्र ! एकतन्त्र ! इसका अर्थ यही कि आप और मुंजाल मेहता जो कहें वही मैं करूँ, क्यों ? "

" नहीं, इसका अर्थ यही है कि यदि कोई बहुत ही गंभीर बात हो, तो मैं और मुंजाल तुम्हारी इच्छाके विरुद्ध जायें। "

" अन्यथा नहीं ? " जयदेवकी आँखें कुछ चमकीं और मुखपर प्रसन्नता-सी आगई।

" कभी नहीं। "

" अच्छा, तो स्मरण रखिएगा कि अब और कहींसे मँगनी आए, तो यह न कहिएगा कि यह कुल तो बिल्कुल दरिद्र है। "

" क्यों, क्या कहींसे आई है ? " ज़रा हँसकर मीनलदेवीने पूछा।

" यह आप जानिए। बस, अपने वचनका पालन कीजिएगा। "

" हाँ, परन्तु और कोई कलंक न होना चाहिए। अब प्रसन्न हुआ ? तो उस मँगनीको अस्वीकार कर देना। "

" जब आप इतना कह रही हैं, तो ठीक है, इनकार कर दूँगा; परंतु माताजी, मैं अपनी निर्बलतासे थक गया हूँ। "

" इससे अच्छा और क्या होगा ? मैं केवल तुम्हें चक्रवर्त्ती बनानेके लिए ही तो जी रही हूँ। जब तुम चक्रवर्त्ती हो जाओगे, तब मैं सद्गति पा जाऊँगी।"

" मैं जानता हूँ माताजी, आपने ही राज्यको अब तक टिका रखा है; परन्तु अब मैं राज्यको वास्तवमें अपना बनाना चाहता हूँ।"

" तुम्हारा ही तो है।" मीनलदेवी हँस पड़ी।

" नहीं है।" गाम्भीर्यसे जयदेवने कहा। उसकी बड़ी बड़ी आँखें अधिक विशाल हो गईं और उसके नथुने फूल उठे; " माताजी, अबसे मैं उसे अपना बनाऊँगा। अभी तक मैं केवल स्वप्न देखा करता था, अब उन स्वप्नोंको सिद्ध करूँगा। जबसे हम यात्रा करके लौटे हैं, तभीसे यह बात मेरे हृदयमें घुटा करती है। अब मैंने निश्चय कर लिया है।"

" क्या ?" जयदेवकी गम्भीर बातोंसे मीनलदेवीके मुखपर हँसी आ गई।

" पाटणकी ध्वजा सारे भरतखण्डमें फहराई जाए।"

अपने हृदयकी महत्त्वाकांक्षाकी मूर्त्तिके समान अपने पुत्रकी ओर मीनलदेवी हर्ष-भरे नेत्रोंसे देखती रही।

" अच्छा बेटा, अपने पूर्वजोंकी कीर्त्तिकी रक्षा करना।"

" माताजी, मूलराजदेव महाराज्य स्थापित करनेसे पहले ही मर गये और महाराज भीमदेव भरतखण्डमें अपना डंका न बजवा सके; परन्तु मैं तो महाराज्य भी स्थापित करूँगा और दसों दिशाओंमें डंका भी बजवाऊँगा।"

वार्त्तालाप करते करते जयदेवके हृदयमें महत्त्वाकांक्षाकी अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठी। उसके ऊपर उठे हुए सिरपर, उसके ज्वलंत मुखपर, उसकी बड़ी बड़ी चमकती हुई आँखोंमें और पृथ्वीके महाविजेताओं जैसी अमर, निश्चल, भव्य मुखमुद्रापर चमकते हुए तेजकी वर्षा होने लगी। मीनलदेवीने निकट आकर जयदेवको हृदयसे लगा लिया। उसकी आँखोंसे आँसू टप टप टपक पड़े। उसका स्वर गद्गद हो गया। उसने जयदेवका माथा सूँघा और अञ्चलसे अपनी आँखें पोंछ लीं।

" बेटा, दूसरे विक्रम बनना और मेरी कोखको दीप्त करना।" गद्गद् कंठसे मीनलदेवीने कहा।

" माताजी," आँखोंको कुछ संकीर्ण करके, जयदेवने एकदम उमंगमें आकर कहा, " आपने मेरे अन्तरकी सच बात कह दी। मेरे हृदयमें

भी वह परदुःख-भंजन ही रमा करता है। रात और दिन मुझे उसके पराक्रमके स्वप्न आया करते हैं। "

" तो ज़रूर तुम वैसे बनोगे। केवल एक कमी तुममें हैं। "

" वह क्या ? "

" तुम सत्ताशील नहीं हो। "

" ऐं ! " जयदेवका जैसे मान-भंग हो गया। उसकी गर्व-पूर्ण बातोंसे आए हुए आवेशपर ठंढा पानी पड़ गया।

" हाँ, मैं ठीक कहती हूँ। सच्चा प्रताप कौन डाल सकता है, ख़बर है ? " जयदेव देखने लगा। " जो सूर्यके समान हो। "

" अर्थात् प्रभावशाली ? "

" नहीं, प्रभाव तो बुद्धि या सत्ताका होता है; परन्तु वह किस कामका ? " मीनलदेवीने कहा।

" तब ? "

" सूर्यनारायणको देखा है ? दूरसे ही लोग जलने लगते हैं और सिर झुका कर अर्घ्य देते हैं। यदि वे घरके दीपकपर आ बैठें, तो लोग उन्हें फूँक मारकर ही बुझा दें। मुंजाल मेहताको तुम नहीं जानते ? उसकी बुद्धिका प्रभाव किसीने देखा है ? फिर भी सब लोग उसके भयसे काँप उठते हैं और उसकी बातोंको सिरपर उठा लेते हैं। अंतरके बिना सत्ता नहीं, समझे ? "

कुछ देर जयदेव मौन देखता रहा और फिर बोला, "सच बात है। कुछ लोग आते ही प्रताप डाल देते हैं। मुझमें ऐसी सिद्धि नहीं है। "

" सिद्धि न हो, तो उसे प्राप्त किये बिना निस्तार नहीं है। बेतालके बिना विक्रमको कौन पूछता ? घबराते क्यों हो ? तुम्हें भी ऐसी सिद्धि प्राप्त हो जाएगी। अभी बहुत समय है। चलो, मेरे साथ चल रहे हो ? " रानीने बातको समाप्त करनेकी इच्छासे कहा।

जयदेव विचारोंसे जाग पड़ा, " नहीं, मैं न जाऊँगा; मुझे ज़रा काम है। " कहकर वह द्वारतक अपनी माताको पहुँचाने गया और मीनलदेवी वहाँसे बिदा हो गई।

१५—प्रतापके बीज

मीनलदेवीने बहुत विचारके पश्चात् यह शिक्षा दी थी। उसे अपनी आँखोंसे जयदेवमें महान् होनेके सब गुण दीखते थे; परन्तु केवल एक ही बड़ा दुर्गुण उसमें था,—मिलनसारी। मीनलदेवीको भय था कि यही दुर्गुण कहीं और सब गुणोंको न धो डाले।

जयदेवका स्वभाव भावुक था। जब वह क्रोध या ईर्ष्याके बादलोंसे घिरा न होता, तब सबके प्रति स्नेह रखता, सबको अपना मानता, सबके साथ सद्भावसे बातें करता। उसके स्वभावकी चालाकी और राजनीतिज्ञता परिपक्व और सर्वग्राही नहीं थी; अतएव सत्ताशाली मनुष्य जिस प्रकार शान्ति और दृढ़तासे सबको अपनी सत्तामें रख सकते हैं, उस प्रकार वह नहीं रख सकता था।

मीनलदेवीके सूत्रकी चिनगारी समय साधकर अनुकूल वस्तुपर पड़ी। कभी कभी विकासमान स्वभावमें सब सामग्री होती है। अज्ञात रूपमें उसकी झनकार सुनाई पड़ती है, परन्तु समझमें नहीं आता कि वह कैसी है, काहेकी है। अचानक कोई शब्द सुनाई पड़ता है, किसीका चारित्र्य मालूम होता है, कोई प्रसंग आता है और तैयार सामग्री अचानक भड़क उठती है। ऐसा ही जयदेवमें हुआ।

स्वभावसे, माताकी प्रेरित भावनासे, चारों ओर रहनेवाले मन्त्रियोंके चारित्र्यसे उसे अधिकार या सत्ताके स्वप्न आया करते थे। उन स्वप्नोंको कैसे सच्चा किया जाय, इसके लिए वह ज्ञात या अज्ञात रूपसे अनेक विचार किया करता था। राजमाताके वचनसे उसके विचारोंपर पड़ा हुआ पट दूर हो गया। शौर्य्य और बुद्धि होते हुए भी उसके पिता अपना प्रताप क्यों न डाल सके, यह बात उसकी समझमें आ गई। घरके कोनेमें बैठे हुए भी, मीनलदेवीका प्रभाव सारे देशमें कैसे गूँजता रहा, यह भी उसकी समझमें आ गया। राजमहलमें रहकर मुंजाल मेहताने सत्ता और प्रतापको कैसे अपने हाथमें कर लिया, इसे भी वह समझ गया। अपनी निर्बलताको भी उसने समझा। वह दुर्गम नहीं था; उसके विचारोंको सब जानते थे; और उसकी शक्तिका माप भी सब कर लेते थे। उसके प्रभावका माप

उबकने, काकको कैद कराकर उदाने, त्रिभुवनने और काकने इन दो दिनोंमें कर लिया था; परन्तु इतने वर्ष हो गये, मुंजालके प्रभाव मापका कौन कर सका था?

परन्तु उसने सोचा कि मुंजालके इतनी राजनीतिज्ञता मुझमें नहीं है। साथ ही त्रिभुवनपालके शब्द भी उसे याद आये, "अगर हममें बुद्धि न हो, तो किसी बुद्धिशालीको अपने निकट रखना चाहिए।" मंत्रियोंकी बुद्धि, वीरोंकी वीरता,—इन सबका उपयोग करनेकी शक्ति क्या मुझमें नहीं है? इन सबका उपयोग कैसे हो? जिस प्रकार एकके बाद एक दीपक जलता जाता है, वैसे ही उसके हृदयमें प्रकाश बढ़ता गया। उसके और अन्य राजपुरुषोंके बीच अन्तर बढ़ना चाहिए। सबको दिखा देना चाहिए कि अन्य सब लोगोंसे वह अधिक प्रभाव रखता है और उनकी सहायताके बिना वह स्वयं राज-काज चला सकता है।

जब इस विचारमालाके समाप्त होनेपर उसने ऊपर देखा, तब काक सामने खड़ा हुआ था। विचारोंके कारण वह काकको भूल गया था। काकने भी जयदेवकी मुखमुद्रापरसे उसके विचारोंके गाम्भीर्यकी कल्पना कर ली थी और वह ससम्मान मौनमुख खड़ा था। इस समय उसने दृढ़, निश्चल नेत्रोंसे देखता हुआ प्रभावशाली नरेश देखा। ऐसे अज्ञेय परिवर्त्तन जयदेवमें उसने बहुत देखे थे। काकको कोई आश्चर्य नहीं हुआ।

धीरेसे, कठोरतासे, विचारके भारसे स्थिर हुई दृष्टिको जयदेवने काकपर डाला और पूछा, "काक, तुम किस तैयारीकी बात कर रहे थे?"

और किसी समय महाराजका ऐसा स्वरूप देखता, तो काक नत होकर उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता; परन्तु मंजरीको दिये वचनसे उसके स्वभावमें कटुता आ गई थी। निराशाके दुखसे वह लापरवाह बन गया था। निष्फलताके भानसे उत्पन्न हुई व्यथाको वह अभिमानसे दबाना चाहता था। प्रश्न करनेकी जिस रीतिको जयदेव जैसे नरेशके लिए वह साधारण समझता था, वह उसे इस समय अखर गई। उसने गौरवसे महाराजकी ओर देखा और शान्तिसे उत्तर दिया, "जिसके लिए महाराजने कहा था।"

जयदेव इस उत्तरमें की हुई सत्ताकी प्रतिध्वनिको समझ गया। उसे मीनलदेवीका वाक्य ठीक मालूम हुआ। इस मनुष्यने उसे परख लिया था और इसके हृदयमें उसकी कोई गणना नहीं थी। उसकी बुद्धिमानीने उसे

सूचित किया कि राजमाताका सूत्र भली भाँति व्यवहारमें नहीं लाया जा सकता। अतएव ज़रा धीरे और शान्तिसे उसने पूछा, " क्या क्या किया ?"

" मैंने जो किया, उसका बहुत कुछ आधार आपके निश्चयपर रहेगा। आपने मँगनी स्वीकार करनेका निर्णय कर लिया ?"

" नहीं, " राजाने संक्षेपमें कहा। काकने कोई उत्तर न दिया। " अतएव कल राजसभामें ज़रा खलबली मचेगी; परन्तु मुझे इसकी परवाह नहीं।"

जिस सत्ताशीलताका भाव राजा दिखलानेका प्रयत्न कर रहा था, उसे देखकर काकको मन ही मन हँसी आ गई; परन्तु उसके सिरपर हठ सवार हो गई थी और वह खुशामद नहीं करना चाहता था। उसने उत्तर दिया, " जी।"

" मुझे उबकको दिखाना है कि पाटणका राजा खिलौना नहीं, परन्तु सच्चा सत्ताधीश है।"

काक निश्चल था। वह केवल हाथ जोड़कर खड़ा रहा। उसने विचार किया कि यह क्या मीनलदेवीके सिखाये हुए पाठका उच्चारण किया जा रहा है?

" मुझे अपने मन्त्रियोंको भी विश्वास करा देना है कि पाटणका स्वामी मैं हूँ। " जयदेवने आगे कहा।

" जैसी अन्नदाताकी इच्छा। " काकने अपनी हँसी दबाकर कहा।

" इस इच्छाको पार लगाना कोई सरल नहीं है। अवन्तिका सेनापति ऐसा नहीं है कि यों ही प्रभावमें आ जाय। " राजाने विचार करते हुए कहा।

" मुझे खबर है महाराज, हमारी राज-सभा महाजनोंकी पंचायतके समान मालूम होती है।"

जयदेव काकके साहससे चकित हो गया। उसने अपने गौरवकी रक्षाके लिए कठोरतासे पूछा, " अर्थात् ?"

" अर्थात् " काकने शान्तिसे आगे कहा, " उबक जैसे दुर्जय सेनापतिको व्यापारियोंकी यह पंचायत नहीं डरा सकती। उसे तो योद्धाओंके तेजसे प्रभावित करना चाहिए।"

" ठीक कहते हो। " जयदेवसे कहे बिना न रहा गया।

" आप आज्ञा दें, बस इतनी ही देर है।"

" क्या आज्ञा ?"

" लाटके तीन सौ सुभट मण्डलेश्वर महाराजके साथ सभामें आनेको तैयार हैं । "

" परन्तु महासभामें भटराजके बिना दूसरे कैसे आ सकते हैं ? महाअमात्यकी भी तो आज्ञा चाहिए ? "

" जो दस युद्धोंमें लड़ा हो, वह भटराजका भी भटराज है और महाराजकी आज्ञा हो, तो महाअमात्यसे पूछनेकी क्या आवश्यकता ? "

जयदेव कठोरताको भूलकर हँस पड़ा । उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि काक उसके हृदयकी अभिलाषाओंको वास्तविक रूपमें सिद्ध कर सकता है, "परन्तु इससे क्या होगा ? तीन सौ योद्धाओंको देखकर क्या उबक घबरा जायगा ? "

" हम उसे घबराना कहाँ चाहते हैं ? हमें तो यही दिखलाना है कि पाटणका प्रताप अवन्तिसे कुछ कम नहीं है । "

" परन्तु इतनेसेहीसे यह कैसे हो जाएगा ? "

" और इतनेहीसे आप कहाँ रुक जाएँगे ? चौंसठ परमारोंके बिना अवन्तिनाथ बाहर नहीं निकलता । पाटणके नाथको भी सौ सुभटोंके बिना सभामें न आना चाहिए । "

" सौ सुभट ? " आँखें फाड़कर राजाने कहा, " तीन सौ तो तुमने अभी बतलाये थे; और यह सौ कैसे ? "

" वे तीन सौ योद्धा तो साधारण होंगे और यह सौ होंगे श्रेष्ठ वर्णवाले, देवके समान तेजस्वी, विशाल-बाहु वीर । उनका कर्तव्य होगा केवल आपके अंग और गौरवकी रक्षा । " प्रत्येक शब्दका पूरा प्रभाव डालनेके लिए काकने धीमे धीमे कहा ।

" क्या कह रहे हो ? ये सब लाओगे कहाँसे ? "

" सौ ब्राह्मण योद्धा आपके अंगरक्षक बननेको तैयार हैं । बस, आपकी आज्ञाकी देर है । आपका मित्र शोभ उनका नायक बननेको तैयार है । "

जयदेवने उत्तर न दिया । ऐसे योद्धाओंसे घिरा हुआ वह कैसा भव्य मालूम होगा, क्षणभर इसका विचार करते हुए वह चकित हो गया ।

" परन्तु ब्राह्मण अंगरक्षक—"

" जी हाँ, मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण, " काकने गौरवसे कहा, " न जैन और न राजपूत । "

राजा समझ गया। वह काककी बुद्धिपर मुग्ध हो गया। उसने पूछा, “ फिर ? ”

काकने देखा कि उसने विजय प्राप्त कर ली है।

“ फिर क्या ? आपके नये अन्तिम पराक्रमने तो हद्द कर दी है। आपके भाट उसका यशोगान करेंगे। ”

“ कौन-सा अन्तिम पराक्रम ? ” जयदेवने ज़रा विस्मयसे कहा।

“ उसे वीरा भाटने अपनी एक अमर कवितामें अंकित किया है। आपने जूनागढ़के रा'को पांचालमें पराजित किया, वह। ” काकने गंभीर मुखसे कहा। उसकी आँखोंमें ज़रा हास्य दिखलाई पड़ रहा था।

“ तुम क्या कह रहे हो ? ”

“ मैं नहीं कह रहा हूँ, वीरोंकी वीरताके प्रमाणमें कविता कह रही है। ”

“ तुमने सुनी ? ”

“ मैं उसे सुनकर ही आया हूँ। ”

“ तुम्हींने बनवाई होगी ? ” राजाने प्रसन्न होते हुए कहा।

“ मुझसे तो जो उसने पूछा, मैंने बतला दिया। ”

“ काक, तुम बड़े राजनीतिज्ञ हो। ” राजाने प्रसन्न होकर कहा।

“ आपकी सेवा मेरा धर्म है। ”

“ ठीक है। तो कल मैं और भी कुछ करना चाहता हूँ। ” राजाने कहा।

“ क्या ? ”

“ न्याय। उदाने मेरी खंभातकी प्रजाको बहुत सताया है। ”

“ जी। ” काक ज़रा दाँत पीसकर बोला।

“ मुझे अपने राज्यमें न्यायका प्रसार करना है और उसका आरंभ मैं कल ही करना चाहता हूँ। ”

काक समझ न सका कि किस विचारसे जयदेवका मुख फिर हँस उठा।

“ पहला दंड मैं भोगूँगा। पांचाल जाते समय मेरे सैनिकोंने दो गाँव उजाड़ दिये थे। उस गाँवके मालिकको पाँच गाँव देकर मैं बदला चुकाऊँगा। यह भी कल ही होगा। ”

“ इससे अच्छा और क्या हो सकता है ? ” काकने राजाकी चतुराई-पर रीझते हुए कहा, “ किसके गाँव उजाड़ दिये हैं ? ”

" कालड़ीके स्वामी देवड़ाके। बेचारा न्यायके लिए आज कई दिनोंसे आया हुआ है; परन्तु कोई दाद नहीं देता।" राजाने कहा और उसकी आँखोंमें एक जुदा ही तेज चमकने लगा। " अच्छा काक, तुम इस समय उसके पास जाओ। वह बड़े पाड़ेमें रूपसिंह जादवके यहाँ ठहरा है। उससे कहना कि महाराज कल तुम्हारी अर्ज़ीपर ध्यान देंगे।"

" जो आज्ञा," कहकर काक बिदा लेनेका विचार कर रहा था कि इसी समय जयदेवकी दृष्टिने उसे रोक दिया। वह दृष्टि स्नेह-परिपूरित और आनन्दसे प्रफुल्लित हो गई और उसने धीरे-से कहा, " काक," राजाका हाथ अज्ञात रूपसे उसकी अंटीमें खुँसे हुए फूलकी ओर गया, " देवड़ासे मिलकर तुम रूपसिंहके घरके पीछेवाली गलीमें जाना।"

" जी।"

" जब ज़रा अँधेरा हो जाय, तब वहाँ कबूतरखानेके पास खड़े होकर दो तालियाँ बजाना। इससे सामनेवाली खिड़कीमें एक लड़की आ जायगी। उसे एक रंग-गुलालकी पुड़िया देना और कहना—"

काक कठोर होकर गौरवसे सतर हो गया और मर्यादा त्यागकर बीच-ही में बोला, " महाराज, मैं योद्धा हूँ, ब्राह्मण हूँ। यह काम मेरा नहीं है। इस कामके लिए आपके महलमें हज़ारों दास हैं।"

राजाने होठ चबा लिये। साधारण लोगोंमें ऐसा कहनेका साहस उसने बहुत ही कम देखा था। फिर भी उसमें गर्वका मूल्य आँकने और उसकी विशेषता पहचाननेकी बुद्धि थी।

" काक भट," उसने कुछ नत होकर कहा, " बुरा न मानना। मैं तुम्हें साधारण दास नहीं, अपना मित्र समझता हूँ।"

" तो मित्रकी भाँति मैं सब कुछ करनेको तैयार हूँ; परन्तु दासका काम—"

" नहीं, यह मैं केवल होलीकी गुलाल नहीं भेज रहा हूँ, विवाह करनेका वचन दे रहा हूँ।"

" विवाह? कालड़ीके स्वामी देवड़ाकी—"

" लड़की। हाँ काक, इसीसे मैं तुम्हें उसके पास भेज रहा हूँ। राणक स्त्री नहीं, देवी है। उसमें दैवी अंश है। उसे मैं अपने राज्यकी राजलक्ष्मी बनाऊँगा। काक, तुम विश्वासपात्र हो, इसलिए तुमसे कहता हूँ। कुछ

दिनों पहले हम मिले थे और तबसे मेरी रगोंमें कुछ जुदा ही रक्त प्रवाहित हो रहा है। वह अभी बालिका है, परन्तु सच्ची क्षत्राणी है। अग्निकी चिंगारियाँ और प्रताप उसके क़दम क़दमसे निकलते हैं।"

काकको जयदेवके स्वभावका एक अज्ञात प्रान्त दिखलाई पड़ा। उसके स्वभावके विचित्र स्वरूप और उनके प्रभावशाली रूपान्तर काकको भी अद्भुत मालूम हुए।

काकने सन्देश ले जाना स्वीकार किया।

१६—कालड़ीका देवड़ा

काक ज्यों ही राजमहलसे बाहर निकला, त्यों ही उदा मेहता सामने पालकीमें बैठकर आता हुआ मिला। उदाने सिर झुकाकर नमस्कार किया। काकने आँख चुराई। उदाके अन्दर जानेपर, उसके आनेका हेतु जाननेके लिए काकने भी अन्दर प्रवेश किया।

उदा जयदेवके पास पहुँचा; परन्तु ऐसा मालूम हुआ कि जैसे उन्होंने मिलनेसे इनकार कर दिया; कारण कि थोड़ी ही देरमें मन्त्री लौट आया और पालकीमें बैठकर राजमहलसे बाहर हो गया। काक कुछ समझ न सका।

उदा मेहताको यह विश्वास था कि उसका प्रभाव दुर्जय है। जयदेवको वह खिलौना समझता था और उसकी धारणा थी कि शान्तुके जामाता तथा श्रावकोंकी आँखकी पुतलीका कुछ भी अपकार करनेका किसीमें साहस नहीं है। काक बच गया; परन्तु राजनीतिक कार्योंमें उदाके विचारसे वह एक मच्छरके समान था। अतएव, जयदेव महाराजने रनवासमें होनेके कारण मिलनेसे इनकार कर दिया, इससे वह घबराया नहीं और सन्ध्या हो जानेपर काककी ओरसे कोई भयकी बात उपस्थित हो जानेके डरसे, उसने जल्दी ही घर लौटना उचित समझा। अभी वह काकके प्रभावको भलीभाँति समझ न सका था।

उदा घरकी ओर लौटा, अतएव काक रूपसिंह जादवके घर गया और कालड़ीके देवड़ासे उसने महाराजका सन्देश कहा। सन्ध्या होनेमें कुछ देर थी। अतएव इधर उधर घूमकर उसने समय बितानेका निश्चय किया।

सन्ध्या होनेपर मौजी लोगोंकी टोलियाँ रंग उड़ातीं और पिचकारियाँ चलातीं गली गलीमें घूम रही थीं और होली खेलनेवाले चौराहेपर खिलवाड़ करते, तूफान मचाते, गाली-गलौज करते कलके लिए तैयारी कर रहे थे। लोगोंकी भीड़मेंसे निकलते समय हमेशाका चापल्य भूलकर काक अपने विचारोंमें मग्न रहा। आखिर सन्ध्या होनेको आई, अतएव वह फिर रूपसिंह जादवके घरकी ओर चला। अचानक एक व्यक्तिने आकर उसका हाथ पकड़कर हिलाया और कहा, "काक !" काक अपने विचारोंसे जाग पड़ा।

"कौन ? कृष्णदेवजी ?" काकका हाथ हिलानेवाला सज्जन मंत्रीका अतिथि कृष्णदेव था। "आप कहाँसे ?"

"इस समय यों कहाँ मरनेको जा रहे हो ?" कृष्णदेवने शान्त भावसे पूछा।

"अर्थात् ?"

"अर्थात् तुम बुद्धि-हीन हो। दस-बारह होली खेलनेवालोंकी टोली कभीसे तुम्हारे पीछे घूम रही है।" कृष्णदेवने धीरेसे कहा "देख नहीं रहे हो ? अभी ही तुम्हें छोड़कर वह उस गलीके पास खड़ी है।"

"मेरे पीछे क्यों घूमेगी ?"

"यह तुम जानो; परन्तु बुद्धिमान् हो, तो लौट जाओ।"

"मुझे इसी गलीमें काम है।"

"तब तुम जीवित नहीं लौटोगे।"

"यह तुमने कैसे जाना ?"

"तुम्हारे पीछे वे लोग थे और उनके पीछे मैं था। उनमेंसे पाँच-छहके पास तलवारें हैं और चारके पास लाठियाँ। एकने आकर तुम्हारा परिचय दिया 'यह काक है।' तुम्हारा नाम सुनकर मैंने भी ध्यान दिया। दूसरेने कहा 'इसे समाप्त ही कर डालना है।' पहले आदमीने स्वीकार कर लिया। 'मेहताजीकी आज्ञा है,' अतएव तुम्हें परमधाम पहुँचानेकी तैयारी हो रही है। अब जाना हो, तो जाओ।"

काकने विचार किया। उसे प्रतीत हुआ कि यह उदा मेहताका ही षड्यंत्र है। "परन्तु मुझे इस गलीमें ही काम है, तब क्या किया जाय ?"

" इन सब बातोंका विचार मैं करूँ?" कटाक्ष करते हुए कृष्णदेवने कहा।

" तुम मुझपर एक अनुग्रह करोगे ? "

" एक तो कर दिया, अब दूसरा बाकी है। बोलो, क्या कहते हो ? "

" इस गलीमें एक कबूतरखाना है। वहाँ जाकर दो तालियाँ बजाना, इससे सामनेकी खिड़कीमें एक लड़की आ जाएगी। "

" वाहजी काक भट! तुम ऐसी ऐसी कारस्तानियाँ भी किया करते हो, क्यों ? " कहकर कृष्णदेव खिलखिला पड़ा, " अच्छा फिर ? "

" उसे यह गुलालकी पुड़िया दे देना। "

कृष्णदेव रँगीला आदमी था। उसे बड़ा आनन्द मिला। बोला, " कैसी लड़की है ? आँखोंमें चकाचौंध पैदा करनेवाली ? "

" खबरदार! " कृष्णदेवको सन्देह न हो, अतएव काकने झूठा रोष दिखाकर उसे चेतावनी दी, " मैत्रीमें विश्वासघात नहीं किया जाता। बोलो, अवश्य दे दोगे ? "

" हाँ, वचन देता हूँ; परन्तु तुम यहाँसे चले जाओ। नहीं तो जीवनके सौ बरस आज ही पूरे हो जायँगे। मैंने क्या कहा था ? पाटणके मेहताओंसे ईश्वर बचाए। " तिरस्कारसे उसने भौंहें चढ़ाईं और गुलालकी पुड़िया काकसे ले ली।

काकके हृदयमें विचार हुआ कि कृष्ण झूठ तो नहीं बोल रहा है; परन्तु वह झूठ क्यों बोलेगा ? और चाहे जो हो, परन्तु इस समय लौटनेमें ही उसे बुद्धिमानी मालूम हुई। सम्भव है, वह घायल हो जाय या मर जाय, तो फिर मंजरीका कौन है ? उसके शत्रुकी इच्छा पूरी हो जाय और मंजरी सदाके लिए दुःख भोगे, इस विचारसे उसने कृष्णदेवकी सलाह मान ली; परन्तु उसे सब कुछ भली भाँति जाने बिना कल न पड़ी, अतएव कृष्णदेव ज्यों ही आगे बढ़ा, त्यों ही उसके पीछे, घरोंकी आड़में लुकता-छिपता वह भी आगे बढ़ा। एक चबूतरेपर आठ-दस होली खेलनेवाले छिपकर बैठे थे और जब तब ताक ताक कर किसीके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। काक यथा-संभव निकट पहुँच गया। जब कृष्णदेव गाता हुआ वहाँसे निकला, तब उन छिपकर बैठे हुए मनुष्योंमेंसे एक बोला, " यह चला। "

" नहीं जी, " दूसरेने धीमे-से कहा, " यह तो होली खेलनेवाला है, वह तो सादे वेशमें है। "

काकको विश्वास हो गया और वह वहाँसे वेग-पूर्वक घरकी ओर चल पड़ा।

कृष्णदेव आनन्दसे गाता हुआ आगे बढ़ा। वह पाटणमें आकर यहाँके रसिक जीवनका पूरा पूरा स्वाद ले रहा था और वसन्तोत्सव जैसे अवसरके सारे आनन्द लूट रहा था। जब वह पाटण आया था, तब इस आनन्दके उपरान्त और भी एक काम करनेका उसका विचार था। परन्तु वह उस कामको भूलता गया और आनन्द अधिक लेने लगा। उसका स्वभाव जैसा चिन्ता-विमुक्त था, वैसा ही अज्ञेय भी था। वह था खिलाड़ी; परन्तु यहाँ उसका कोई मित्र नहीं था। वह सबसे निराला, तटस्थ रहता था। इसी कारण इस समय वह अकेला मौज करनेको निकला था और ऐसी अवस्थामें काकका सौंपा हुआ काम उसे बहुत ही पसन्द आया।

वह कबूतरखानेके पास पहुँचा। सामने एक छोटी झरोखेवाली खिड़की थी। काकके कथनानुसार उसने तालियाँ बजाई। तुरन्त ही एक लड़की खिड़कीमें आ खड़ी हुई; जैसे प्रतीक्षा ही कर रही हो। सन्ध्याके बढ़ते हुए अन्धकारमें कृष्णदेव उसे भली भाँति न देख सका। साहससे वह निकट गया।

लड़कीका मुख स्पष्ट नहीं दिख रहा था। खिड़कीमेंसे केवल दो काली आँखें ही चमकती हुई उसे दिखीं।

“ जिसकी प्रतीक्षा कर रही हो, उसने सन्देश भेजा है। ” कृष्णदेवने मज़ाकमें कहा। लड़की चौंककर पीछे हट गई।

“ कौन है ? ” स्वरमें मधुरता थी।

“ जिसकी प्रतीक्षा कर रही हो, उसका मित्र। ”

“ मित्र ? ”

“ हाँ, यह रंग-गुलाल भेजा है। कल इस रंगसे रँगकर होली मनाना। ” कृष्णदेवने ज़रा हँसकर कहा। कृष्णदेवका मुरलीका-सा स्वर और उसके बोलनेकी शैलीका वर्णन आगे किया जा चुका है। उसने इस लड़कीका भी ध्यान आकृष्ट कर लिया।

“ ठीक, महाराजसे कहना—” लड़की बोली।

“ महाराज ! ” ज़रा विस्मयसे कृष्णदेवने पूछा। वह तो केवल उसे काककी ही प्रियतमा समझा था।

“ हाँ, तुम्हारे मित्र, ” ज़रा हँसकर लड़कीने कहा, “ उनसे कहना कि मुझसे कल मिलें। ”

" अच्छी बात है, महाराजसे और भी कुछ कहलाना है ? " महाराज कौन, यह जाननेके लिए कृष्णदेवने कहा ।

" और क्या कहलाना है ? हाँ, कहना कि कल सभामें कसौटी है। तुम महाराजा हो, और महाराजा ही होगे । " कहकर, लड़की खिड़की बन्द करके चली गई ।

कृष्णदेव चकित हो गया । महाराज—सभा—महाराजा—क्या यह लड़की जयदेवकी प्रियतमा है ? शीघ्रतासे वह निर्णयपर आया और जिस घरमेंसे वह लड़की निकली थी, उसके मुख्य द्वारपर जाकर बैठ गया ।

थोड़ी देरमें दो आदमी अन्दरसे निकले और उनमेंसे एकने घरकी ओर हाथ करके कहा, " देवड़ा हैं तो बड़े भाग्यवान् ! "

कृष्णदेवको यही चाहिए था । उसने आगे बढ़कर पूछा, " देवड़ा यहीं रहते हैं न ? "

" कौन, कालड़ीके ? " उन लोगोंमेंसे एकने कहा ।

" हाँ । "

" हाँ, यहीं रहते हैं । "

" परन्तु यह घर किसका है ? मैं तो नाम ही भूल गया । " कृष्णदेवने कहा ।

" रूपसिंह जादवका । "

" ओह, ठीक ! " कहकर कृष्णदेव नमस्कार करके घरमें प्रविष्ट हुआ ।

१७—राजसभा

पूर्णिमाके सबेरे राजमहलमें लोगोंकी भीड़ उमड़ रही थी और सभाभवन इन्द्रकी सभाके समान सुशोभित हो रहा था । सभा-भवनके चौथे भागमें ज़रा ऊँचा-सा स्वर्णमंडित चबूतरा बना हुआ था और उसके बीच महाराजके लिए जगमगाते हुए मख़मलके गद्दी-तकिये लगे हुए थे । उसके पीछे चार मनुष्य हाथमें चँवर लेकर पत्थरके पुतलोंकी भाँति खड़े थे और उनके बीच एक मनुष्य जरदोजीका बन्द किया हुआ छत्र लेकर खड़ा था ।

प्रातःकाल होते ही भटराज आयुधमल्ल लाटके हृष्ट-पुष्ट, शस्त्रोंसे सुसज्जित,

और व्रणोंसे विभूषित तीन सौ योद्धाओंको लेकर आ पहुँचा। वे सब इस सम्मानसे प्रसन्न हो रहे थे और मूछोंपर ताव दे रहे थे। आते ही काक आयुधमल्लको महाराजके पास ले गया। महाराजने एक सेवकको बुलाकर सब योद्धाओंको राजसभामें ले जानेकी आज्ञा दी।

बाहरके मैदानमें लोगोंकी भीड़ उमड़ने लगी। सभा-भवन भी धीरे धीरे भर गया। लाटके योद्धा सभा-भवनके चारों ओर बिल्कुल दीवारसे सटकर खड़े हो गये। तत्पश्चात् भटराज आये मूछोंपर बल देते हुए, रंगसे रंगे हुए। जागीरदार लोग भी कोई घोड़ेपर बैठकर और कोई पैरों चलकर धीरे धीरे आ पहुँचे और द्वारसे सिंहासन तक जानेका सीधा रास्ता छोड़कर नियमानुसार बाईं ओर जा बैठे। फिर पगड़ियों और शाल-दुशालोंकी चमकसे सुशोभित, चारों ओर हँसते और झुकझुककर नमस्कार करते हुए महाजन लोग आये और सभाभवनके दाहिनी ओर बैठ गये। जटा-जूट धारण किये हुए, रुद्राक्षकी मालाओंके भारसे झुके हुए, पंचपात्र और आचमनी हाथमें लिये हुए विप्रवर्य धीरे धीरे आये और महाजनोंके आगे जा बैठे। जैन साधु भी आये और वंश-परंपराका द्वेष भूलकर ब्राह्मणोंके साथ बैठ गये।

फिर चबूतरेपर बैठनेके अधिकारी सैनिक प्रबन्धमें आने लगे—कुछ घोड़ोंपर चढ़कर कुछ पालकियोंपर, कुछ रथोंपर या हाथियोंपर; और अपने अपने पदानुसार चबूतरेपर जा विराजे। चारों दिशाओंमें पाटणकी पताका फहरानेवाले सेनापति, गुजरातकी सत्ताके स्तम्भस्वरूप सामन्त, सरस्वतीके वरपुत्र महापंडित और पाटणके गौरवके स्रष्टा माने जानेवाले मंत्रिवर्य धीरे धीरे चबूतरेपर विराजने लगे। कई अग्रगण्य लोगोंके कुटुम्बी, अनेक देशोंके सन्धिविग्रहिक (एलची), और अतिथि भी चबूतरेपर बैठे। चबूतरेसे उतरते ही भाटोंके लिए स्थान था। वहाँ आठ प्रतिष्ठित भाट बैठे। नवघण रा'के पराजित होनेके कारण निराश और राज्यका प्रताप देखकर निरन्तर जलनेवाले मंडलेश्वर देसलदेव और उसके भाई बीसलदेव आये। अंगुलियोंपर ग्रहोंकी गणना करते हुए पंडित गजानन और भविष्यमें जयदेवकी सभाको सुशोभित करनेवाले राजगुरु आमशर्मा चारों ओरसे नमस्कार स्वीकार करते हुए आये। पंचासर पारसनाथकी पोषधशालाके अधिष्ठाता साधु-श्रेष्ठ मुनि विजयचन्द्रसूरि अपने दो शिष्योंके सहित आये।

वृद्ध मंत्री लूला और अपने पैरोंसे पृथ्वीको कँपाते हुए चाँपानेरके स्वामी सज्जन अपने पुत्र लक्ष्मणके साथ आये।

तुरन्त ही हाथीपर बैठकर उदा आया। उसका हृदय ज़रा उचाट हो रहा था। कल जयदेव महाराजसे भेंट न हो सकी, रातको काक हाथसे निकल गया और बहुत रात बीते सुना कि राजसभाके प्रबन्धके लिए महाराज स्वयं आदेश दे रहे हैं। इन सब घटनाओंके होनेपर भी उसे घबरानेकी आवश्यकता नहीं मालूम हुई। पाटणके जैनोंका वह सम्मान्य था, और खंभातका अधिष्ठाता। ख़तीब उसके विश्वसनीय मनुष्योंके संरक्षणमें खंभातमें था। और किसी दिशासे कोई भय था ही नहीं। सभा-भवनमें आते ही उसने लाटके योद्धाओंको देखा और उसके कपालपर बल पड़ गये। क्या इनकी उपस्थिति काकका प्रताप सूचित कर रही है? उसने इस विचारको हँसकर दूर कर दिया। काक सभामें दिखलाई नहीं पड़ रहा था। वह जाकर सज्जन मेहताके साथ बैठा और इधर उधरकी बातें करने लगा।

उस समय राजमहलके अन्दर जयदेव महाराज तैयार हो रहे थे, त्रिभुवनपाल वहाँ आ पहुँचे थे; और काक कुछ दूर सम्मानसे सिर झुकाये खड़ा था। जयदेव मन ही मन प्रसन्न हो रहा था और आजके अवसरका विचार कर कुछ क्षुभित भी था। गलेमें आभूषण धारण करते हुए उसके हाथ काँप रहे थे।

अचानक द्वारसे मुंजालका स्वर सुनाई पड़ा और तीनों जनें अपने अपने हृदयमें उससे भयभीत हो गये।

"कहिए महाराज, तैयार हो गये?" मुंजाल मेहता सफेद पगड़ी और सादे मूल्यवान् वस्त्रोंसे सुसज्जित होकर आये थे। उनकी भव्य मुखमुद्रा अद्भुत मालूम हो रही थी। एक तीक्ष्ण दृष्टिसे उन्होंने तीनों जनोंको देखा।

"हाँ, तैयार हो रहा हूँ।"

"मैंने विचारा कि नीचे जानेसे पहले ज़रा मिल आऊँ। देखना, आज आपकी परीक्षा है।"

इन ममतापूर्ण कृपा-पूर्ण शब्दोंको सुनकर जयदेवको ऐसा आभास हुआ जैसे वह बालक हो। उसे सूझा ही नहीं कि वह क्या कहे।

"आज राजसभामें तुमने लाटके योद्धाओंको बुला लिया, यह बहुत

अच्छा किया।" कहकर उन्होंने काककी ओर दृष्टि डाली। "जैसे अंकुशसे हाथी चलता है, उसी तरह सम्मान और आदरसे योद्धा शौर्य प्रदर्शित करता है। क्यों त्रिभुवन ?"

तीनों जनोंने एक दूसरेकी ओर देखा। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वे चोरी करते पकड़े गये हों।

"आपको यह बात पसन्द आई ?" आखिर जयदेवने पूछा।

"जिससे आपका गौरव बढ़े, वह बात मुझे पसन्द ही होगी; परन्तु जो कुछ करो, ऐसा करो जिससे तुम्हारे कुलकी शोभा बढ़े।"

"वह क्या ?"

"इन सबको एक एक गाँव भेंट देकर भट बना दो।"

जयदेवके प्राण तालूमें जा अटके। त्रिभुवनपाल आँखें फाड़कर देखने लगे। काकने निःश्वास छोड़ा। उन्हें प्रतीत हुआ कि मुंजाल मेहताकी समानता कभी नहीं की जा सकती। एक ही वाक्यमें उसने इनकी राजनीतिज्ञताको अल्प कर डाला।

"हाँ, यह भी अच्छा है।" जयदेवने कहा, "बेचारोंने लाट और सोरठ दो सर किये—"

"और राजसभामें ये आपके बुलानेपर आयें और फिर खाली हाथ लौट जायें ?" मुंजालने कहा।

"ठीक है।" त्रिभुवन बोला।

"अच्छा, तो मैं जाता हूँ। पर जल्दी आ जाना।" मुंजालने कहा, "परन्तु हाँ महाराज, यदि वह खंभातकी बात आज छेड़नेका विचार हो, तो अवश्य छेड़ना।"

"क्यों ?" अपनी सारी बुद्धिमानीपर पानी फिरता देखकर जयदेवमहाराजने पूछा।

"काककी बात सच है। उदाने उस यवनको क़ैद कर रखा था।"

"आपने कैसे जाना ?" आश्चर्यान्वित होकर राजाने पूछा।

"जब हम पांचालमें थे, तब त्रिभुवनने मुझसे कहा, और मैंने तुरन्त ख़तीबको बुलानेके लिए आदमी भेज दिया। वह म्लेच्छ आज ही आया है। बाहर खड़ा है। ठहरो, मैं उसे अन्दर भेज रहा हूँ। अच्छा, तो जल्दी आ

जाना।" कहकर काककी ओर एक विजय-सूचक दृष्टि डालकर राजनीतिज्ञ-शिरोमणि महाअमात्य वहाँसे चले गये। राजा, त्रिभुवनपाल और काक इस प्रकार अचेत-से खड़े रह गये, जैसे उनके पैरोंके नीचेसे भूमि निकल गई हो। सबको ऐसा प्रतीत हुआ कि मुंजाल मेहताने उन्हें बुरी तरह पराजित किया है और उनके आगे वे सब बालकके समान हैं।

"मामा गज़बके आदमी हैं!" त्रिभुवनने तीनोंके हृदयकी बात कह डाली। किसीके उत्तर देनेसे पूर्व ही द्वारमें खतीब आ खड़ा हुआ। वह हाथ जोड़े हुए काँप रहा था।

"यही खतीब है?" राजाने पूछा।

"जी हाँ।"

"अच्छा, जब मैं इसे बुलाऊँ, तब तुम लेकर आ जाना।" कहकर राजा और त्रिभुवनपाल सभा-भवनमें गये। मुंजाल और शान्तु वहाँ उबकको पहलेहीसे लेकर पहुँच गये थे।

काककी कल्पना-शक्ति बहुत सही थी। लाटके योद्धाओंकी पंक्ति सभाको एक न्यारा ही स्वरूप दे रही थी और जब शस्त्रोंसे सजे हुए पचास अंगरक्षक सभामें प्रविष्ट हुए, तब तो सभाजनोंके आश्चर्यका पार नहीं रहा। सब चकित हो गये और इस सत्ताके आडम्बरसे मात हो गये। इन अंगरक्षकोंके पीछे जयदेव महाराजने त्रिभुवनपालके साथ प्रवेश किया। उनके पीछे पचास अंगरक्षक और आये।

बाहर नगाड़े गड़गड़ाने लगे। अन्दर बैठा हुआ समूह उठ खड़ा हुआ। चारों दिशाएँ "जय सोमनाथ" और "जयदेव महाराजकी जय" के घोषसे गूँज उठीं।

राजाने सभामें उपस्थित छह-सात सौ मनुष्योंकी ओर एक दृष्टिपात किया। यह देखकर उसके मुखपर प्रसन्नता छा गई कि शूरवीर, बुद्धिवीर तथा धनवीरोंका ऐसा अप्रतिम समूह उसका आज्ञाकारी है। उसकी आँखोंमें प्रकाश आ गया। उसके पैरोंमें देवोंकी-सी निश्चलता दिखाई देने लगी। अभिमानपूर्ण हास्य और दुर्जेय दृष्टिपातसे उसने उबककी ओर देखा। मालवेका सेनापति निर्भय और स्वस्थ खड़ा था। यह सब ठाठ-बाट शोभा-शृंगार चाहे जैसा क्यों न हो, परन्तु पट्टणी आज उसीकी कृपासे जी

रहे हैं, यह विचार उसके मुखपर स्पष्ट दिखाई पड़ रहा था। राजा बैठ गये और वीरा भाटने अपनी कविता आरंभ की। उसने अपनी कवितामें असीम वीर-रस भर दिया। उसके एक एक शब्दसे शौर्य टपकने लगा। उसकी एक एक उपमासे जयदेवका मूल्य बढ़ता गया। जब कविता समाप्त हुई, तब सभाजनोंको विश्वास हो गया कि जयदेवके समान शूर-वीर योद्धा भूत और भविष्यमें न हुआ है न होगा। पांचालमें जैसा दारुण युद्ध हुआ, वैसा न किसीने आँखोंसे देखा और न कानोंसे सुना। और जयदेवने रा'पर जैसी विजय प्राप्त की, वैसी कभी इन्द्रने भी प्राप्त न की होगी। उबकने अपनी एक आँखको अधिक फाड़कर देखा। जयदेवके इस पराक्रमकी उसे खबर नहीं थी। उसके हृदयमें जयदेवके लिए सम्मान अंकुरित हो गया। जयदेव ज़रा लजाया। उसने क्या किया है! और उसका यह कैसा वर्णन है! उसने हृदयसे काकका उपकार माना।

कुछ और विधि और वार्त्तालापके पश्चात् जयदेवने उबकसे पूछा, " क्यों सेनापतिराज, पाटणमें अच्छा लगता है न? हमारे आतिथ्यमें तो कोई कमी नहीं रह गई?"

" नहीं, कमी कैसी? अब आप हमारी अभ्यर्थना स्वीकार करें, यही देर है।"

" क्यों, क्या हमसे अघा गये?"

" नहीं, यह बात नहीं है। परन्तु आज सन्ध्या-समय मैं मुकाम छोड़ना चाहता हूँ। कोई काम हो, तो हमारे कीर्तिदेव कुछ दिन यहाँ रहनेवाले हैं ही।"

" हाँ, प्रसन्नतासे रहें; परन्तु मेहताजी, मुझे अपने लाटके योद्धाओंको सिरोपाव देना है।"

" जो आपकी आज्ञा।" कहकर मुंजाल जरा हँसा। उदाने चौंककर चारों ओर देखा, परन्तु काक कहीं दिखलाई नहीं पड़ा, अतएव उसके चित्तको शान्ति हुई।

" मेरे बहादुर सैनिको, " जयदेवने ज़रा उच्च स्वरमें सैनिकोंको उद्देश करके कहा, " मैंने तथा मंडलेश्वरने जो कुछ किया है, वह सब तुम्हारे ही सहयोगसे। आज उस शौर्यके सिरोपाव-स्वरूप मैं तुम सबको एक एक गाँव देकर भट बनाता हूँ।"

यह औदार्य देखकर सभा-जन क्षणभरके लिए विस्मित हो गये और फिर एकदम आनन्दका निनाद कर उठे। भटराजसे निम्न पदके मनुष्योंके बिना काम सभामें आनेपर कई लोगोंको बुरा मालूम हुआ था। वे भी अब समझ गये और शूरवीरोंका आदर करनेके लिए उबक भी मन ही मन जयदेवकी प्रशंसा करने लगा।

" मेहताजी," सभाके नियमानुसार महाराजने फिर महाअमात्यसे कहा, " मैं अब न्याय करना चाहता हूँ। "

" जी। " मुंजालने कहा और केवल साधारण राजसभाका विचार कर आये हुए मनुष्य, असाधारणताकी झनकारें सुनकर, सिर ऊँचा कर करके, एक एक अक्षर सुननेको लालायित हो गये।

" कालड़ीके देवड़ाके साथ एक बड़ा अन्याय हुआ है। उनके दो गाँव हमारी सेनाके अत्याचारसे उजड़ गये।—देवड़ाजी!" कहकर राजाने चारों ओर देखा और तब चबूतरेपर पीछेकी ओर बैठा हुआ देवड़ा घबराता हुआ आगे आ गया। " मुझे अपने राज्यसे अन्यायका विनाश कर देना है। इन दो गाँवोंको फिरसे बसानेके लिए मैं तुम्हें पाँच गाँव भेंट करता हूँ। " लोग फिरसे हर्षनाद कर उठे। देवड़ा राजाके प्रति उपकार प्रकट करता हुआ, जहाँ खड़ा था, वहीं बैठ गया।

" दूसरा न्याय मुझे अपनी खम्भातकी प्रजाके प्रति करना है। " राजाने आगे कहा। उदा चौंक पड़ा। सभामें उसके जितने शिष्य और समर्थक थे, वे भी चौंक उठे। मन्त्री उदाका हृदय धड़क उठा। " क्या महाराज ? " उसने मधुरसे मधुर स्वरमें पूछा। राजाने उस ओर ध्यान ही न दिया।

" खम्भातकी म्लेच्छ परन्तु ग़रीब प्रजाको वहाँके लोगोंने पथका भिखारी बना दिया है और उनके घरबार जला दिये हैं। "

" महाराज, यह बात बिल्कुल झू—"

राजाने एक सत्तासूचक दृष्टिसे उदाको धमकाया। उसका मुख भव्यतासे तप्त हो रहा था। वह उच्च स्वरमें बोला, " जयदेव सत्यके सिवा कुछ सुनता ही नहीं। "

" परन्तु महाराजाधिराज, इसकी जाँच होनी चाहिए। " शान्तु मेहताने धीरेसे जामाताका पक्ष लिया।

" जाँच होनेकी आवश्यकता नहीं । मैंने स्वयं जाँच की है । " अधिक बढ़ते हुए गौरवसे जयदेवने कहा ।

" आपने ? " उदा बोला ।

" हाँ, मैंने । आप समझते हैं कि आपके शासनमें राम-राज्य हो रहा है, क्यों ? " महाजनोंमें खलबली मच गई । उदा लोकप्रिय व्यक्ति था और उसकी प्रतिष्ठापर होनेवाले आघात साधारण लोगोंको भले न लगे । " हाँ, मैंने ही जाँच की है । शोभ ! "

" जी । "

" काकको बुलाओ । " शोभ अभिवादन करके बाहर गया । उदाने काकका प्रभाव देखा और उस प्रभावका शमन करनेके लिए वह अपनी शक्ति इकट्ठी करने लगा । उसने सहायताके लिए श्रावक मंत्रियोंकी ओर देखा ।

काक तुरन्त ही खतीबको सभामें ले आया । बहुत लोगोंने यवनको पहली ही बार देखा था । सब विस्मयसे देखने लगे ।

" जिन म्लेच्छोंको मार डाला गया, जिनके घर फूँक दिये गये, उन्हींमेंसे यह एक बचा है । "

उदाने खतीबको देखा और उसके गात्र शिथिल हो गये । वह सिर ऊपर न उठा सका । काकने मूँछोंपर ताव दिया ।

" मेहताजी, खंभातका राज्य-कार्य इस प्रकार होता है, यह मैंने नहीं सोचा था । " राजाने फिर मुंजालसे कहा । " मुझे अपने राज्यमें इस प्रकार शासन करना चाहिए कि राज्यके सब लोग सुख और शान्तिसे रह सकें । खंभातके ब्राह्मणों और अन्य प्रत्येक जातिके मुखियाओंको मिलकर एक लाख टंक इसे देना चाहिए और इसकी जातिके लोगोंके जो घर-बार जल गये हैं, उन्हें फिरसे बनवा देना चाहिए । यह दण्ड है खंभातको ।— शोभ, वे वस्त्राभूषण ले आओ । "

शोभ वस्त्र और आभूषण ले आया और राजाने उन्हें खतीबको दिया । वह बेचारा गद्गद् होकर, पृथ्वीपर लोटकर, अपनी भाषामें अनेकानेक उपकार प्रकट करने लगा । काकने उसे संकेतसे समझा दिया कि अब उसे बिदा ले लेना चाहिए । उसने ऐसा ही किया । *

---

* जमी-उल-हिकायत ।

म्लेच्छको भी ऐसा न्याय प्राप्त होते देख, उबक विचारमें पड़ गया और सभा जयदेवपर मोहित हो गई। राजा उबककी ओर घूम ही रहा था कि इसी समय मुंजालने झुककर राजाके कानमें कहा, " सबका न्याय हो गया, परन्तु एकका रह गया है। "

" किसका ? "

" जिसने रा'को जीवित पकड़ा और खतीबके प्राण बचाये, उसका। "

" किसका, काकका ? " राजा इन तमाम झंझटोंमें यह बात भूल ही गया था कि परिश्रमका कुछ बदला काकको भी देना है। सत्तावान् लोग सर्वदा सम्मान प्राप्त करना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं, किसीको सम्मानित करनेका कर्त्तव्य याद नहीं रखते। मुंजाल इस सिद्धान्तका अपवाद था। बोला, " जी हाँ। "

" अवश्य। " कहकर जयदेव, खतीबको लेकर जानेकी तैयारी करते हुए काककी ओर देखकर बोला, " काक भट, पांचालके युद्धमें, और खतीबकी रक्षा करके तुमने जो सेवा की है, उसका बदला नहीं चुकाया जा सकता। फिर भी तुम भटराजका पद स्वीकार करके मेरी सभाकी शोभा बढ़ाओ। इस पदके योग्य तुम्हें आठ गाँव भी भेंटमें दिये जाते हैं। "

काकने नतमस्तक होकर राजाके दिये हुए वस्त्राभूषण ग्रहण किए और खतीबको एक अंगरक्षकके साथ भेजकर, वह चबूतरेपर जा बैठा।

" उबकराज, अब आपको भी उत्तर दे दूँ। आप जैसे वीर पुरुषके दर्शनसे हम पावन हो गये। अवन्ति आने और आपके और आपके राजाका आतिथ्य स्वीकार करनेकी इच्छा तो मुझे बहुत हो रही है; परन्तु अभी वह संभव नहीं है। मुझे क्षमा करना। " क्षणभर ठहरकर उसने फिर कहा, " ईश्वर चाहेगा, तो हम फिर मिलेंगे। "

" मैं जो मँगनीका सन्देश लाया हूँ, उसे तो आप स्वीकार करते हैं ? "

" उसे स्वीकार करना भी अशक्य है। " सभामें एकदम शान्ति छा गई। आज आकस्मिक घटनाओंका दिन था। यह उत्तर सुनकर उबकके होठ फड़क उठे, उसकी आँख सुर्ख हो गई। उसने होठ चबाकर अपनेको संयत किया।

" क्यों ? "

"सेनापतिराज, राजाओंकी परिस्थितिको आप कहाँ नहीं जानते ?" राजाने शान्तिसे आगे कहा, "भाग्यमें होगा तो अवन्तिराजकी कन्याका पाणिग्रहण करूँगा; परन्तु वह अवन्तिकी सीमामें पहुँचकर ही। जब आप पाटणकी सीमामें होंगे, तब नहीं।"

राजाकी मार्मिक बातसे पट्टणी लोग प्रसन्न हो गये। उसमें पुनः युद्ध करके अवन्तिको जीतनेका संकेत था। उबकने गर्वसे सिर ऊँचा किया और उच्च स्वरमें पूछा "क्या आप अपमान कर रहे हैं चालुक्यराज ?"

"अतिथिका अपमान किया जा सकता है ?" जयदेवने मधुरतासे उत्तर दिया, "परन्तु जैसे आप पाटण आये हैं, वैसे मुझे भी तो अवन्ति आना पड़ेगा ? मेरा सन्देश परम भट्टार्क लक्ष्मवर्मा तक पहुँचा दीजिएगा। अच्छा, जय सोमनाथ।"

राजाको उठते देखकर विप्रवर आशीर्वाद देने लगे और लोगोंकी हर्षगर्जनाके बीच जयदेव अंगरक्षकों-सहित सभा-भवनसे बाहर निकला।

बहुत लोग प्रसन्न हुए; कुछ असन्तुष्ट हुए, कुछ ईर्ष्यासे जल उठे और कुछ नाराज़ हुए। उदाकी व्याकुलताका पार नहीं था; उबकके क्रोधका पार नहीं था; कीर्तिदेवकी निराशाका पार नहीं था।

काकके हर्षका भी पार न रहता; परन्तु मंजरीको दिया हुआ वचन उसे साल रहा था।

मुंजाल मेहता उठे और स्नेहसे काकके कन्धेपर हाथ रखकर बोले, "काक, यह अपने बाप-दादोंसे भी महान् होगा।" मन्त्रीकी हृदय जीतनेकी कलाएँ कुछ अद्भुत ही थीं।

"जी हाँ।" काकने उत्तर दिया।

"और अच्छे अच्छे राजनीतिज्ञोंके भी छक्के छुड़ाएगा।"

तीसरा खण्ड

१—कीर्तिदेवका निश्चय

सज्जन मेहताके घरकी पीछेवाली वाटिकामें, फाल्गुण कृष्ण प्रतिपदाके सन्ध्या समय चार जनें एक वृक्षके थालेपर बैठे थे। चारोंकी मुखमुद्रा गम्भीर थी। चारों धीमी आवाजमें कुछ वार्त्तालाप कर रहे थे। ये चारों जने कीर्तिदेव, काकभट, कृष्णदेव और देसलदेव थे।

अगले दिन दरबार समाप्त होनेपर उबक अपनी सेना लेकर बिदा हो गया था और उसकी सेनामेंसे केवल कीर्तिदेव और दस योद्धा ही पाटणमें रह गये थे। इस समय ख़ास तौरपर निमन्त्रण देकर कीर्तिदेवने काक और देसलदेवको बुलाया था। कृष्णदेव घरमें ही था।

निराशासे म्लान हुए कीर्तिदेवके मुखपर इस समय दृढ़ता दिखाई पड़ रही थी।

"कल मैं अन्तिम पाँसा डालता हूँ।"

"किस प्रकार?" देसलदेवने सिर उठाकर पूछा।

"किस प्रकार? कल सबेरे मैं तुम्हारे मुंजाल मेहतासे मिलूँगा और उन्हें समझानेका अंतिम प्रयत्न करूँगा।"

काकने सिर हिलाया, "कीर्तिदेवजी, आपका प्रयत्न व्यर्थ होगा।"

"मुझे भी यही भय है," कीर्तिदेवने कहा, "कलकी सभा देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि मुंजाल मेहता गुजरात और सारे आर्यावर्त्तका गला घोंटनेको बैठे हैं।"

"यह कोई नई बात नहीं है," कृष्णदेव बोला, "पहलेहीसे पाटणकी प्रणाली स्वार्थ-पूर्ण रही है।"

"परन्तु मैंने इस मूर्खताकी कल्पना न की थी। अवन्तिका ऐसा तिरस्कार ! अब वैर बढ़ेगा और म्लेच्छोंके प्राणहारी आक्रमणके पहले ही हम पारस्परिक कलहसे कट मरेंगे। आपके मुंजाल मेहताने मेरा न जाने कितने दिनोंका परिश्रम धूलमें मिला दिया।" भूमिकी ओर एकाग्रतासे देखते हुए कीर्तिदेवने कहा।

"परन्तु अब कोई मार्ग नहीं रहा। अब शान्ति धारण करो।" कृष्णदेवने जरा ठिठोलीमें कहा।

"मार्ग ?" कीर्तिदेव इस प्रकार बोला, जैसे बहुत गहन विचार कर रहा हो, "मार्ग न मिलेगा, तो आर्यावर्त्तकी दशा क्या होगी ? आपके इस होशियार मंत्रीमें इतनी भी बुद्धि नहीं है ? इतना देखनेकी भी शक्ति नहीं है ? क्या सपादलक्ष और अवन्तिको म्लेच्छ जीत लेंगे, और पाटणको यों ही छोड़ देंगे ? यही है आपके मन्त्रीकी राजनीतिज्ञता ?"

"हमारे यहाँ तो यही राजनीतिज्ञता रहेगी, कीर्तिदेवजी !" कृष्णदेवने शान्तिसे कहा।

"देखिए, कल क्या होता है।" कीर्तिदेवने कहा।

"और कुछ न हुआ, तो ?" काकने पूछा।

"महाकालेश्वर करें और मुंजाल मेरी बातको मान जायँ। पर यदि न मानें, तो—" कहकर कीर्तिदेव दाँत पीसकर मौन हो गया।

"तो ?" देसलदेवने पूछा।

"तो ?" कीर्तिदेवकी आँखोंमें भयंकर तेज व्याप्त हो गया। उसने मुट्ठी बाँध ली, "तो एक पलड़ेमें होगा आर्यवर्त्तका भविष्य और दूसरेमें मुंजाल मेहता। भगवान् शंकर मुंजाल मेहताके पलड़ेको कैसे झुकाये रहेंगे ?"

"अर्थात् ?" बहुत ही आतुरतासे देसलदेवने पूछा।

"अर्थात्, हम कल निश्चय करेंगे। मैं स्वार्थके लिए नहीं लड़ता। अपने देशका दुःख मुझे प्रेरित कर रहा है। तो क्या मुंजाल जैसेको सीधा करनेकी शक्ति भगवान् शंकर नहीं देंगे ?"

देसल और काक चौंक पड़े। कीर्तिदेवकी बातका अर्थ स्पष्ट था; परन्तु उसे समझ कर वे दोनों काँप उठे। पाटण और मुंजाल एक हैं; यह विचार उनके हृदयमें इतना समा गया था कि इस बातको वे जरा भी हृदयमें न ला सके कि एकको रखकर दूसरेको अलग किया जा सकता है। इन

दोनोंको अश्रद्धावान् देखकर कीर्तिदेव बोला, " आप मुझे पहचानते नहीं। जीवित रहा, तो मैं जीते बिना न रहूँगा। आप लोग कल सबेरे मुझसे मिलेंगे ? "

" हाँ, अवश्य। " कृष्णदेव और देसलदेवने कहा।

" मैं कल सबेरे न मिल सकूँगा। " काकने कहा।

" क्यों ? "

" मुझे थोड़ा-सा काम है। " काकने अन्यमनस्कतासे कहा।

" तो कल रातको मुझसे ज़रूर मिलना ठीक मध्य रात्रिके समय, इस वाटिकाके बिल्कुल पीछेकी ओर। अपने सब मित्रोंको बुलाकर हम कोई निश्चय करेंगे। "

" अच्छा। "

" देखो, अवश्य मिलना और यदि मुझे कुछ हो जाय, तो अपने उस वचनकी रक्षा करना। "

" अवश्य। " कहकर काक बिदा हुआ।

" कृष्णदेवजी, आपके विश्वसनीय मित्र कितने हैं ? कारण कि अब अवसर बड़ा गंभीर है। अब ढुलमुल-यकीन आदमियोंकी आवश्यकता नहीं है। "

" कीर्तिदेवजी, आप ज़रा भी न घबड़ाइए। मैं, देसलदेव और लक्ष्मण, तीनों मिल जाएँगे तो आकाश-पाताल एक कर डालेंगे। तीस-चालीस सामन्त तो अवश्य सहायता करेंगे। "

२–काकका ' थोड़ा-सा काम '

यदि काश्मीरादेवी पुरुष होतीं, तो पाटणकी सेनाका नायक तो वे सहज ही बन जातीं। उनमें निश्चयात्मक बुद्धि बहुत थी। उन्होंने एक काम हाथमें ले रखा था काक और मंजरीके विवाहका, और उसके लिए कलेऊ बाँधकर जुट गई थीं। मंजरीको समझाने, अज्ञात रूपसे विवाहका सब प्रबन्ध करने और उसके लिए छोटीसे छोटी वस्तु एकत्र करनेका काम वे सारे दिन किया करती थीं।

महासेनानायकका एक दूसरा गुण भी उनमें था कि एक दुर्गको जीतते ही दूसरेपर आक्रमण कर देना। काक और मंजरीका विवाह हो जानेपर एक और अधिक कठिन काम उन्हें करना था। उस कामका आरंभ भी कर दिया गया था, अतः पंडित गजाननके यहाँसे लौटते हुए उन्होंने अपनी पालकी सज्जन मेहताके घरकी ओर घुमानेको कहा।

काश्मीरादेवी ज्यों ही सज्जन मेहताके अन्तःपुरमें पहुँचीं, त्यों ही सारे अन्तःपुरमें खलबली मच गई। मंत्रीकी स्त्रियाँ, बच्चे, दास-दासियाँ, मारे सम्मान, और क्षोभके ऊँचे-नीचे होने लगे।

मन्त्रीकी पटरानी पानकुँवरिदेवीके स्वागतको स्वीकार कर, काश्मीरादेवी खानगी वार्त्तालापके लिए उन्हें दूसरे कमरेमें ले गईं।

" मौसीजी, मैं एक बहुत ही आवश्यक कामसे आई हूँ। "

त्रिभुवनपालकी माता हंसा (मुंजालकी बहन) दूरके रिश्तेमें पानकुँवरिदेवीकी बहन होती थीं।

" मैं आपकी लड़की सोमको देखने आई हूँ। "

" अच्छी बात है, अभी बुलाती हूँ। सोम ! बेटी ! "

दूसरे ही क्षण सोमसुन्दरी, जिसे हम पहले खण्डमें सरोवरमें स्नान करते देख चुके हैं, आ पहुँची। उसका आकर्षक सौन्दर्य अधिकसे अधिक खिल गया था। काश्मीरादेवीने एक ही दृष्टिमें उसे नखसे शिखतक देख डाला।

" देखो बेटी, काश्मीरादेवीके लिए पानी तो ले आओ। " पानकुँवरिदेवीने कहा और सोमके जाते ही धीरे-से पूछा, " कहो, क्या बात है ? "

" मैं इसका विवाह-सम्बन्ध ठीक करना चाहती हूँ। "

" ऐं ? " प्रसन्न होकर पानकुँवरिदेवी बोलीं, " किसके साथ बहन ? जरा कहो तो। हमें तो दीपक लेकर देखनेपर भी कोई नहीं मिलता और यह दिन दूनी बढ़ती ही जा रही है। "

" एक व्यक्ति मेरी दृष्टिमें है। "

" कौन ? "

इसी समय सोम पानी ले आई और लोटा रखकर चली गई।

" कौन ! है एक। "

"कोई लायक व्यक्ति तो है न?" वृद्धा धीरे धीरे निश्चय करने लगी, "मैं अपनी लड़कीके द्वारपर ध्वजा फहराते देखना चाहती हूँ।"

पाटणमें केवल करोड़पतिके द्वारपर ध्वजा फहराती थी।

"बस, करोड़में ही सन्तुष्ट हो जाओगी? वह तो इससे भी अधिकका धनी है।"

सेठानी पानकुँवरिके मुँहमें पानी आ गया, "क्या कोई छप्पन करोड़वाला है?"

"ऊँह!" सेठानीकी जिज्ञासा बढ़ानेके लिए काश्मीराने तिरस्कारसे कहा, "उससे भी अधिक!"

वृद्धा विचारमें पड़ गई। पाटणमें जो गिने-चुने लोग थे, उनके नाम वह गिनने लगी। "कोई महाजन सेठ है? बताओ बहन, मुझ वृद्धासे क्या मसखरी कर रही हो?"

"नहीं मौसीजी, सच कहती हूँ। वह उससे भी अधिक है।"

"क्या कह रही हो? वह पाटणका ही है या कहीं बाहरका?"

"पाटणका, बिल्कुल पाटणका, सात पीढ़ियोंसे पाटणका।"

"तब तो कोई मंत्री होगा।"

"नहीं, उससे भी अधिक।" खिलाखिलाते हुए काश्मीराने कहा, "क्या बतलाऊँ? अभी किसीसे कहना मत।"

"हाय, हाय, तुम कहतीं क्यों नहीं?"

"आपका भाई।" काश्मीराने कहा।

"कौन, मुंजाल मेह—"

मुखसे सीत्कार करते हुए काश्मीराने नाकपर अँगुली रखकर कहा, "देखिए, चुप रहिए। कहीं बातको हवा न उड़ा ले जाय!"

वृद्धा पानी पानी हो गई, "नहीं बहन, परन्तु यह कैसे होगा?"

"जल्दीसे कोई फल होता है? इसके लिए तो बहुत कुछ उलटा-सीधा करना होगा।"

"तुम्हारे मुँहमें घी-शकर बहन, मैं सेठसे भी कहूँ कि नहीं?"

"मौसीजी, आप भी यों ही रहीं। उनसे कहोगी, तो दूसरे ही क्षण सारा नगर जान जाएगा।"

"नहीं बहन, तब न कहूँगी।" काश्मीरादेवी बिदा लेकर और पालकीमें बैठकर अपने घर आ पहुँचीं।

मंजरी गंभीर और कठोर मुख बनाकर बैठी थी। इन दिनों उसके होठ गर्व और तिरस्कारसे सिकुड़े रहा करते थे। वह धीमे स्वरमें कोई संस्कृत काव्य गुनगुना रही थी।

" मंजरी, अब सारा प्रबन्ध हो गया। अब तुम और तुम्हारा दूल्हा चौकीपर जा बैठो, बस यही देर है। "

मंजरीने निःश्वास छोड़ा और वह अभिमान-सूचक भ्रू-भंगीसे देखने लगी।

" क्यों, फिर पागलपन सवार हुआ ? "

" मैं कब पागल नहीं थी ? "

" आह ! तुम्हारी क्या गति होगी ? "

" जो भगवान् भोलानाथ करेंगे वह। "

" करेंगे क्या, तुम्हारा सिर। अन्तिम समय तक इस प्रकार बल क्या खाया करती हो ? " कठोरतासे काश्मीरा देवीने पूछा, " लज्जा नहीं आती ? इसी प्रकार मूर्खता कर करके उस बेचारे काकको दुखी करना चाहती हो ? इतना समझा रही हूँ, परन्तु तुम्हें परवाह ही नहीं है, क्यों ? "

मंजरी मौनमुख देखती रही।

" जानती हो, समझती हो, तो भी इतनी हठ ? काककी जगह मैं होऊँ, तो तुम्हारी ओर देखूँ तक नहीं। उसे भी दबाये जा रही होगी। वह बेचारा तो अपने सुखकी अपेक्षा तुम्हारा सुख अधिक देखा करता है और तुम्हें कुछ परवाह ही नहीं है ! "

काश्मीराका उलहना कठोर था पर उसकी उचितताको स्वीकार कर मंजरीने सिर झुका लिया।

" चलो, अब उठो, कल प्रातःकालकी तैयारी करो। "

मौनमुख मंजरी उठ खड़ी हुई। उसकी आँखोंमें आँसू नहीं थे। उसके चेहरेपर गर्व था। फिर भी कठोरता, संयम और एकाकीपनकी मूर्त्तिके समान वह आँसू बहाती हुई असहाय सुन्दरीकी अपेक्षा भी अधिक दयाजनक दिख रही थी।

सबेरे ब्राह्म मुहूर्त्तसे पहले त्रिभुवनपालके महलसे दो पालकियाँ, दो मसालें और बीस-पचीस घुड़सवारोंका जुलूस चुपचाप पंडित गजाननके घरकी ओर चला।

एक पालक़ीमें मंजरी होठपर होठ दबाये बैठी थी। सामने बैठीं काश्मीरा-देवी तरह तरहकी बातें कह रहीं थीं। घुड़सवारोंके पीछे दो जनें घोड़ोंपर मौन मुख आ रहे थे—एक काक और दूसरे त्रिभुवनपाल।

जुलूस पंडितजीके यहाँ जा ठहरा और सवार लौट गये। काक और मंजरीका विवाह यथासंभव गुप्त रीतिसे ही करनेका 'सबका निश्चय था। पंडितजीने दो-चार ब्राह्मणोंको बुला लिया था और मात्रा जामाताका आदर-सत्कार करनेको तैयार थी।

शीघ्रतासे सब विधियाँ पूर्ण होने लगीं और मुहूर्त्त निकट आने लगा। अतः सबको पंडितजीका स्मरण हुआ। कन्यादान देनेवाले वही थे, फिर भी यह कोई न समझ सका कि ऐसे अवसरपर वे कहाँ जा छिपे। एक शिष्यने कहा कि वे स्नान करने गये थे और अभी तक नहीं लौटे। एक ब्राह्मणने कहा कि गप उड़ रही थी कि नदीमें मगर आया है। मात्राने कहा कि मैंने उन्हें लौटकर आया हुआ देखा था। काश्मीराकी व्याकुलताका पार न रहा। काक और मंजरी दोनों इस प्रकार अधीर हो गये, जैसे वे विवाहकी फाँसी पर चढ़नेवाले हों और सोच रहे हों कि कब उसका अन्त आ जाय।

आख़िर मात्राने कहा, " ज़रा ठहरो, मैं घरमें देख आऊँ। नहीं मिलेंगे, तो फिर नदीपर किसीको भेजा जायगा। इस समय वे चले कहाँ गये?"

सब लोग सामग्री तैयार करके प्रतीक्षामें बैठे और मात्रा एक दीपक जलाकर पंडितजीकी खोजमें बड़बड़ाती हुई आगे बढ़ी।

वह एक कमरेसे दूसरे कमरेमें गई, परन्तु पंडितजी ग्रहणके वक्त साँपकी तरह न जाने कहाँ जाकर बैठे थे कि कोई पता ही न लगा; आखिर मात्रा निराश होकर लौट ही रही थी, कि आचमनीके बजनेकी झंकार सुनाई पड़ी। वह एकदम भंडार-घरकी ओर दौड़ी और वहाँ अँधेरेमें पंडितजी बड़े वेगसे कुछ गुनगुना रहे और सिर हिला रहे थे। आँखें ज़ोरसे मींच रखी थीं।

" अजी पंडितजी, कहाँ घुसे बैठे हो? वहाँ सब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

पंडितजी बिना बोले सिर हिलाते रहे और उनकी गुनगुनाहटका वेग बढ़ने लगा।

"क्यों, सुनते हो, या बहरे हो गये ?"

उत्तर नहीं मिला। सिर हिलानेका वेग बढ़ गया।

"क्यों, तुम्हें हो क्या गया है ?" कहकर मात्रा निकट गई और पंडितजीका कंधा पकड़ा।

पंडितजीका सिर हिलाना और गुनगुनाना रुक गया। भयसे आँखें खोलीं और बोले, "शान्तम् पापम् !"

"अजी, यह सब गया भाड़में। चलो उठो, मुहूर्त्त निकल जायगा। मंडलेश्वर महाराज और काश्मीरा बहनको विलम्ब हो रहा है।"

"उँहुँ !"

"उँहुँ कैसी ?" आँखें निकालकर पंडितानीजीने पूछा।

"असंभव।"

"क्या असंभव ?"

"मैं नहीं आ सकता।"

"क्यों ? अचानक यह क्या हो गया ? पागल क्यों हुए जा रहे हो ?"

"तुम नादान हो, तुममें बुद्धि नहीं है। मैं नहीं आ सकता।"

"परन्तु क्यों ? किस लिए ?"

"कन्या-दान मैं नहीं कर सकता। महापातक होगा।"

"ओ हो, यह नया शास्त्र कहाँसे खोज निकाला ? रात तक तो सब ठीक था, अब यह भूत कहाँसे चिपट गया ?"

"भूत नहीं है। मात्रा, मैं अधम हूँ, अशुद्ध हूँ, कन्या-दान करनेके योग्य नहीं हूँ।" गम्भीरतासे पंडितजीने कहा।

"क्या बक रहे हो ? कुछ समझहीमें नहीं आता।"

"मैं समझता हूँ देवी, मैं समझता हूँ। मैं मंजरीको कन्याके रूपमें दान नहीं कर सकता।"

"क्यों ? तब और कौन करेगा ? कविकुलशिरोमणिके मित्र, उसके पिताके समान।"

"यह बात नहीं है, यही तो संकट खड़ा हो गया है।" हास्यजनक रीतिसे दयनीयसे बनकर पंडितजीने कहा।

"हाय, हाय, यह क्या हो गया ?" खिलखिलाकर हँसते हुए मात्राने पूछा।

"मैं यही प्रायश्चित्त कर रहा था। पाप तीन प्रकारसे होता है : मनसा, वाचा, कर्मणा।"

"बात जल्दी समाप्त करो। मुहूर्त्त निकला जा रहा है।"

"देवी, मैं रातको सोया तो स्वप्न आया कि रुद्रदत्त जीवित हो गये हैं।"

"अच्छा।"

"और उन्होंने कहा कि मेरी कन्याको सिवा विद्वानके किसीको न देना। मैंने कहा कि विद्वान् कहाँ मिलेगा? तो उन्होंने कहा," कहते कहते पंडितजीका मुख खिल उठा, "कि यदि कोई न मिले, तो तुम खुद उससे विवाह कर देना। मैं तुरन्त चौंककर जाग पड़ा और मुझे विचार आया कि मैं ही उससे विवाह क्यों न कर लूँ? ठीक याज्ञवल्क्य और मैत्रेयीकी जोड़ी मिल जाए!"

"फिर?" हँसते हुए मात्राने पूछा।

"देवी, यह विचार आते ही मुझे अपने घोर मानसिक पापका ध्यान आ गया। ऐसा विचार हो जानेपर, मैं उसे कन्याके रूपमें दान कैसे कर सकता हूँ, तुम्हीं बताओ?"

"तो मुझपर सौत लाना चाहते थे, क्यों?" बड़े प्रयत्नसे हँसी रोकते हुए मात्रा बोली, "बड़े आये मैत्रेयीवाले! उठते हो कि नहीं?"

"कैसे उठा जा सकता है?"

"ठहरो, अभी बताती हूँ।" कहकर मात्राने हाथ पकड़ा, "उठते हो कि नहीं? नहीं तो हाथ पकड़कर बाहर घसीट ले जाऊँगी।"

"देवी, मेरे हाथों ऐसा पाप कराती हो! मैं नहीं जाऊँगा।"

किसी प्रकार हँसी दबाकर मात्राने उन ज्ञानके भंडार पंडितजीको घसीटना शुरू किया। इसी समय पीछेसे काश्मीरादेवी आ पहुँचीं।

"अजी वाह! वहाँ तो मुहूर्त्त निकला जा रहा है और यहाँ आप लोग धींगा-मस्ती कर रहे हैं? चलो जल्दी।"

दोनों लजा गये। मात्राको एक मार्ग सूझा।

"चलते हो, या नहीं? नहीं तो काश्मीरा बहनसे कह दूँगी।"

"नहीं, नहीं, कहना मत।"

"तब उठो।" मात्राने कहा।

"क्या बात है?" काश्मीराने पूछा, "यह खींचातानी कैसी हो रही है?"

" कह दूँ ? " मात्राने धमकी दी ।

" नहीं—नहीं—नहीं । "

" उठो, नहीं तो कह दूँगी । " मात्राने कहा ।

" क्या बात है ? " काश्मीराने पूछा ।

" नहीं, कुछ नहीं । " पंडितजीने कहा ।

" तब उठो । "

" हे शम्भो ! " कहकर पंडितजीने दयनीय मुखसे आकाशकी ओर देखा परन्तु यह समझमें न आनेसे कि भगवान शंकरके दरबारमें यह अर्जी स्वीकार हुई या नहीं, असहाय बलिके बकरेकी भाँति घसिटते हुए पंडित गजानन उठे और मात्राने साड़ीके अंचलसे मुँह ढाँककर हँसी छिपाई। कन्या-दान-दाताके आ जानेसे मुहूर्त सध गया, काक और मंजरीका विवाह हो गया और सबेरा होते ही अधिकांश लोग चले गये।

काक और मंजरी गंभीर, कठोर और संयत थे । विवाह-कार्य हो जानेपर दोनों तटस्थ-से उठ खड़े हुए । काकके मुखपर खेद मालूम होता था । मंजरीके मुखपर अभिमान दिख रहा था । दोनोंकी आँखोंमें चिन्ताकी रेखाएँ खिंची थीं ।

३—मुंजालसे कीर्तिदेवकी भेंट

जब काक मंजरीका पाणिग्रहण करनेमें व्यस्त था, तब कीर्तिदेव अपनें जीवनका महाकार्य आरम्भ करनेको तत्पर हुआ । वह महाकार्य था मुंजालसे भेंट करना ।

सज्जनने उसे अनेक बार रोका, परन्तु वह मालवी योद्धा अटल रहा । उसके जीवनके दो निश्चय थे: एक अपने पिताकी खोज और दूसरे अपने देशका ऐक्य-साधन । इन दो भावनाओंके लिए ही वह जी रहा था और इन्हें सिद्ध करनेके लिए अमानुषीय,—अचेतन सृष्टि महत्तत्व जैसा निश्चल बन जाता था । जिस प्रकार एक कार्यकी साधनाके लिए उसने कालभैरवकी आराधना की थी, उसी प्रकार दूसरे कार्यकी साधनाके लिए राजनीतिक कार्योंमें भैरवके समान भयानक मन्त्रीको मनानेके लिए वह जा रहा था ।

कीर्तिदेवकी बुद्धि-प्रधान दृष्टिमें मुंजाल कार्य-साधनाके मार्गमें एकमात्र आड़ी दीवार था; परन्तु पाटणके छोटे-से संसारकी दृष्टिमें वह सभी बातोंका कर्त्ता-धर्ता था। लोगोंसे पूछनेपर कीर्तिदेवको उसमें प्रभावके कोई बहुत असाधारण लक्षण नहीं दिखे थे और न परिणामकी ख्याति उसने सुनी थी। जवानीमें वह बड़ा उपद्रवी था, अधिक व्ययी था; लोगोंको पागल बना छोड़ता था। उसने अपने अतुल धनको और भी अधिक बढ़ा लिया था। चन्द्रपुर जाकर वर्त्तमान राजमाताकी मँगनी वही पाटण ले आया था। कुछ युद्धोंमें भी वह जूझा था। कुछ नगर भी उसने विजय किये थे; सीधे-सादे महाराज कर्णदेवके समय राज-सत्ता भी उसने अपने हाथोंमें ले ली थी। राजाके भतीजे और अपने बहनोई देवप्रसादको दुखी करके दुर्दशाग्रस्त कर दिया था। महारानीकी सेवा करते हुए अपनी स्त्री और पुत्रको त्यागकर दोनोंको मृत्युके मुँहमें डालनेमें भी वह न हिचका था। राजाके मर जानेपर विद्रोही पट्टणियोंको प्रसन्न करके मीनलदेवीकी सत्ता पाटणमें फिर स्थापित की थी। इस समय वह रानी और राजाकी कृपा और अन्य मंत्रियोंकी निर्बलतासे समस्त सत्ताका अधिकारी बन बैठा है।

कीर्तिदेवको इन सब बातोंमें कोई असाधारणता नहीं मालूम हुई। केवल उसके उत्पन्न किये हुए वातावरणमें ही उसे कुछ असाधारणता मालूम हुई। वातावरणमें जैसे उदासी रहती है, सुगन्ध रहती है, भय रहता है, वैसे ही गुजरातमें पैर रखते ही मुंजालके प्रभावसे परिपूर्ण वातावरण उसे स्पष्ट प्रतीत होने लगा था। अकल्पित भयसे, अज्ञेय सम्मानसे, अज्ञात ममतासे सब उसकी ओर देखा करते। कीर्तिदेव महापुरुष था, फिर भी उसकी वयस कम थी, इस कारण उसने मान लिया था कि यह प्रभाव पट्टणियोंकी निर्बलतासे उत्पन्न हुआ है।

वह अपनी भावनामयी दृष्टि तथा अघटित कल्पना-शक्ति, दोनोंसे मुंजालके प्रौढ़ व्यक्तित्वके वास्तविक प्रभावको परख नहीं सका। वह मुंजालसे अपरिचित था, अतएव उसके प्रभावमें जो प्रतापी सृजन-शक्ति थी, उसे भी वह नहीं देख सका था। वह उससे मिला नहीं था। उसके अद्भुत व्यक्तित्वका असह्य प्रताप भी उसने नहीं देखा था। उसे पता नहीं था कि जिसकी सत्ता किसी समय एक छोटेसे गाँवके स्वामित्वतक ही सीमित थी वही

पाटण आज बारह मंडलों और बावन नगरोंपर अपना शासन किसके कारण कर रहा है।

परन्तु जब सज्जन मेहताके साथ वह राजमहलमें आया, तब उसे क्षण-भरके लिए विचार हो आया कि वह लौट जाय,—भयसे नहीं, परन्तु केवल इसी विचारसे कि मुंजालसे मिलनेपर उसके उठाये हुए काममें कहीं कोई विघ्न न आ जाय। दूसरे ही क्षण वह विचार अदृश्य हो गया और वाणासुरके साथ द्वन्द्वयुद्धके लिए प्रस्तुत हुए अनिरुद्धके समान कीर्तिदेव मुंजालके पास गया।

मुंजालकी मानसिक स्थिति कुछ भिन्न ही थी। जबसे उसने कीर्तिदेवको देखा तबसे ही उसके प्रभावके भनकारे उसके कानोंसे टकरा रहे थे। उसकी बालि-काके समान मनोहर मुखमुद्रा न जाने क्यों उसके हृदयमें रम रही थी और उसकी भावनाओं और कर्त्तव्योंको सुनकर उसे आश्चर्य हुआ था। इन कार-णोंसे सज्जनने जब फ़ुरसतके समय कीर्तिदेवसे मिलनेके लिए मुंजालसे याचना की तो उसने उसे तुरन्त ही स्वीकार कर लिया। मुंजाल मनुष्य-रत्नोंका परखनेवाला था, इस लिए उसे अपनी शक्तिकी परीक्षा एक नये जगमगाते हुए रत्नपर करनेकी इच्छा हो आई।

जब कीतिदेव आया, तब मुंजाल तकियेके सहारे बैठा पान चबा रहा था। बड़ी मधुरतासे हँसते हुए मुंजालने कीर्तिदेवका स्वागत किया, "आओ, कीर्तिदेव, सज्जन मेहताको तो तुमने जीत लिया है। वे तुम्हारी ही प्रशंसा किया करते हैं।"

"मंत्रिवर, 'परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्तः'*,—ऐसे भी विरल मनुष्य संसारमें पड़े हैं।" कीर्तिदेवने नम्रतासे उत्तर दिया।

"मेहताजी, आप कीर्तिदेवको कैसे पहचानते हैं?" मुंजालने एकदम सज्जनकी ओर देखकर पूछा।

सज्जन मेहता घबरा गये। उनका मुख लाल हो गया। "मैं?" वे ज़रा उलझनमें पड़कर बोले, "मैं,—कीर्तिदेव, उबकके पुत्र,—दत्तक हैं, इसलिए पहचानता हूँ।"

"ऐसा!" मुंजालने सिर हिलाकर कहा।

---

* दूसरोंके गुणोंकी प्रशंसासे ही अपने गुणोंको प्रकट करनेवाले।

" तुम तो वणिक हो ? तुम्हारा सौभाग्य कि उबकराज जैसा शिरच्छत्र प्राप्त कर सके । "

" जी हाँ । मेरे माता-पिता चाहे जो हों, उन्होंने मुझे बचपनसे ही त्याग दिया है; परन्तु परमारने उनकी सब कमी पूरी कर दी है । " परन्तु यह बात सज्जन मेहताको न रुची । वे एकदम खड़े हो गये । ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उन्हें कोई मानसिक घबराहट हो रही है ।

" मेहताजी, मैं अब जाता हूँ । "

" क्यों ? बैठिए । "

" नहीं, मुझे महाराजसे मिलना है । फिर और भी काम है। मैं जाऊँगा।" कहकर शीघ्रतासे आज्ञा लेकर वे चलने लगे । मुंजालकी आँख ज़रा सिकुड़ी। वह इस व्यवहारको न समझ सका ।

" अच्छा मेहताजी, फिर कभी दर्शन दीजिएगा । " मुंजालने कहा और सज्जनके जाते ही कीर्तिदेवकी ओर घूमकर ज़रा हँसते हुए कहा, " कहो कीर्तिदेवजी, क्या काम है ? "

कीर्तिदेव क्षणभर मुंजालके विशाल भाल और अगम्य आँखोंको देखता रहा । उसे प्रतीत हुआ कि वह एक महारथीके साथ वाग्युद्धमें उतर रहा है ।

" मंत्रिवर्य, मैं दो कामोंसे आया हूँ । एक आपके दर्शन करके कृतार्थ होने, दूसरे एक याचना करके भिक्षा प्राप्त करने । " कीर्तिदेवने कहा । उसकी तेजस्वी आँखोंमें कपट नहीं था; गहराई नहीं थी; केवल सरलता और श्रद्धा थी । उसका स्वर कोमल था ।

उस स्वरने, उस दृष्टिने, मंत्रीके हृदयमें कोई अगम्य-सी झंकार उत्पन्न कर दी; परन्तु मुंजालने उसे सुनने या समझनेका कष्ट नहीं किया । उसने मधुरतासे उत्तर दिया, " बताओ, क्या काम है ? "

मन्त्रीकी मधुरतासे कीर्तिदेवको आशा हो गई । उसने कहा, " काम, आप जैसे व्यक्तिके लिए सरल है । आप कीजिएगा ? "

" भटराज, तुम्हें सरल मालूम हो सकता है; परन्तु मैं जैसा कुछ भी हूँ एक राजसेवक हूँ । " अपने शब्दोंको असत्य सिद्ध करनेवाले सत्ताप्रदर्शक हास्यसे मुंजालने कहा ।

" आप राज-सेवक नहीं, राज्यके भाग्य-विधाता हैं । "

" तुम्हारी धारणा असत्य है । "

" नहीं मंत्रिवर्य, इतना ही नहीं, समस्त भरतखण्डका भाग्य भी आपके हाथमें है । "

" मेरे हाथमें ? " ज़रा विस्मित होकर मुंजालने पूछा ।

" जी हाँ । जबसे मैंने गुर्जर भूमिपर पैर रखा है तभीसे मैं आपके प्रभावक। परिचय देखता और सुनता आ रहा हूँ और इसीसे एक याचना करता हूँ ।"

" क्या ? "

" जैसे गुजरातका राज्य-तंत्र एक अँगुलीपर आप लिये हुए हैं, वैसे ही आर्यावर्त्तका राज्य-तंत्र भी लीजिए । " कीर्तिदेवने कहा ।

" अर्थात् ? "

" महाराज, आप जैसे व्यक्तिको केवल एक राष्ट्रकी राजनीतिके पीछे ही जीवन समर्पित नहीं कर देना चाहिए। आप समस्त आर्यावर्त्तकी राजनीतिको अपने हाथमें लीजिए। छिन्न-भिन्न हो गये राष्ट्रों और परस्पर-विरोधी राज्योंको एक धागेमें पिरो दीजिए। आपकी जैसी शक्तिके बिना यह कोई नहीं कर सकता । "

कुछ देर मुंजाल देखता रहा। उसे कीर्तिदेवका मस्तिष्क भ्रमित-सा प्रतीत हुआ ।

" कीर्तिदेवजी, क्या अवन्ति और पाटणकी सन्धिके विषयमें कह रहे हो ? जरा स्पष्ट कहो । "

" मंत्रिवर्य, आप क्या यह विचार रहे हैं कि मैं पाटण और अवन्तिकी सन्धि-याचना करने आया हूँ ? महाराज, उबक परमार तलवारकी धारसे सन्धि कराते हैं, संधिकी याचना नहीं करते। कल उन्होंने गौरव त्यागकर जो इच्छा प्रकट की, वह केवल मेरे लिए। मैं ऐसा नहीं हूँ कि फिर उस इच्छाको प्रकट करके,—याचना करके, अवन्तिकी प्रतिष्ठा भंग करूँ,—उसे नीचा दिखानेकी कोशिश करूँ। पट्टणी यदि युद्ध ही चाहेंगे, तो क्या मालवी देंगे नहीं ? "

" तब तुम क्या चाहते हो ? "

" केवल पाटण और अवन्तिके बीच ही कलह हो, यह बात नहीं है

सपादलक्ष और मालवामें भी शत्रुता है। कान्यकुब्जाधिपति महाराज चन्द्रदेव मालवा और सपादलक्ष दोनोंसे लड़ रहे हैं। चेदिराज कीर्तिवर्मा (बुन्देलखण्डके राजा) वायुसे भिड़ रहे हैं। चित्तौड़के रावलकी महदिच्छा दिनप्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इन सबके ही वैर और कलहका शमन करना है। इन सबको एकत्र करके एक महा प्रबल सेना तैयार करनी है। यह सब कुछ करनेके लिए आर्यावर्त्तको एक महान् राजनीतिज्ञकी आवश्यकता है। इस पदको आप लीजिएगा ? ”

मुंजालके मुखपर एकाग्र हुई कीर्तिदेवकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। ज्यों ज्यों उसकी वाचाका प्रवाह बढ़ा, त्यों त्यों मुंजालके प्रभावका ख़याल भी कम होता गया। कीर्तिदेव देवदूतके समान मालूम होने लगा। उसकी निर्मल कान्ति चमक उठी। उसकी इकहरी सुकोमल देह अज्ञात रूपसे काँपने लगी।

“ इस सब परिश्रमका कारण ? ” मुंजालने शान्तिसे पूछा।

“ कारण ? आर्यावर्त्तके सिरपर भय झूम रहा है, मन्त्रिराज ! ”

“ कैसा भय ? ”

“महाराज, कल राजसभामें आपने एक अर्धनग्न म्लेच्छको देखा था ? यहाँ तो वह अकेला है; परन्तु काश्मीरके पास उसकी जातिके एक अरब योद्धा हैं। वे सारे आर्यावर्तको भस्मीभूत करनेके लिए मानों क़दम उठाए खड़े हैं। उनके भयंकर रणसिंगोंकी आवाज़, उनकी भयानक पुकार उत्तर प्रदेशोंमें गूँज रही है। मंत्रिवर, आप भी भूल गये गज़नीके सुलतानके द्वारा किये हुए पाटण और देवपट्टणके विनाशको ? कल जयदेव महाराजने जिस पापीको सिरोपाव भेंट किया उसीके पौत्र आपके और मेरे बच्चोंके तनपर कपड़ेका एक टुकड़ा भी न रहने देंगे। ”

“ इसलिए हमें अपने बीच सन्धि कराके उन शत्रु-दलोंका संहार करना है ? उन म्लेच्छोंको फिर निकाल भगाना है ? ”

“ हाँ, मेहताजी। और इस कामको आपके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। ”

मुंजाल विचार कर रहा था। उसकी प्रभावशाली आँखें कीर्तिदेवपर जमीं हुई थीं। वह मन ही मन इस बाल-योद्धाकी प्रशंसा कर रहा था। कुछ देरमें

वह बोला, "कीर्तिदेवजी, तुम्हारी बात सच है, परन्तु मुझसे या गुजरातसे यह कुछ नहीं हो सकता।"

"क्यों ?" कीर्तिदेवने चौंककर पूछा।

"तुम बालक हो। अभी नहीं समझ सकते। इस प्रकार स्पष्टतासे अभी-तक किसीने नहीं कहा था। परन्तु चार वर्ष पहले हमारे यहाँ एक यति थे। वे भी यही कहते थे।" मुंजालने कहा।

"क्या ?"

"मुझे उनके शब्द याद आ रहे हैं।" कहकर मुंजालने आँखोंको सिकोड़ा और शब्दोंको याद किया, "उन्होंने कहा था कि तुम मंत्रियोंका परिश्रम मिट्टी हो जायगा। तुम्हारे लड़के-बच्चे गजनीके बाज़ारमें बिकेंगे।* स्पष्ट याद आता है।"

"उनकी बात सच है। इसीलिए मैं निवेदन करता हूँ कि मेरी बातको मानिए।"

"कीर्तिदेव," सिर हिलाकर मुंजालने कहा, "तुम्हारी बात सच भले ही हो; परन्तु प्रत्येक सच बात सम्भव नहीं होती।"

"संभव न हो, तो होनी चाहिए।"

"तो दुनियाका अंत आ जाय।" मुंजालने कहा, "मेरा सूत्र है कि जो संभव न हो, उसे हाथहीमें न लेना चाहिए।"

"परन्तु आप संभव कर सकते हैं। इसके लिए समर्थ हैं। जब आपने महाअमात्यका पद ग्रहण किया, तब गुजरातकी क्या दशा थी और आज क्या है ?"

"परन्तु मैं अमात्य था, सो भी मालूम है ? अपने दुःखको मैं ही जानता हूँ कीर्तिदेवजी, आपने याचना करके मेरा गौरव बढ़ाया है। यदि मैं किसी महाराज्यका मन्त्री होता, मेरे अधीन दस हज़ार सामन्त होते, तो मैं स्वीकार कर लेता। परन्तु, अवस्था ऐसी नहीं है, इसलिए असमर्थ हूँ।" कहकर मुंजाल मौन हो गया। कीर्तिदेवने उसे अद्भुत रूपसे विगलित कर दिया था।

---

* पाटणका प्रभुत्व।

" आप सब कुछ कर सकेंगे। मैंने बहुतसे राजाओंको समझा-बुझा लिया है। वे सब आपकी बात मानेंगे।"

" तनिक भी नहीं मानेंगे। भय बिना प्रीति कभी सुनी है? अपने विचारोंके तेजसे तुम्हारी आँखोंमें अँधेरा छा गया है। कलहसे सुलह अधिक कठिन है।"

" सो तो मैंने कल ही देख लिया। आपके घर बैठे सन्धि आई, परन्तु आपने स्वीकार नहीं की; अन्यथा आपको आज पाटण और अवन्ति दोनोंका बल प्राप्त होता।"

" कीर्तिदेव, मैं शब्दोंके जालमें नहीं आ सकता। मैं और पाटण उबक परमारके गुलाम बन जाते। पाटणका उदयोन्मुख गौरव अस्त हो जाता।"

" यह बात यदि सब लोग मान लें, तो एकत्र होकर यवनोंका सामना ही न करें।"

" जिन्होंने तुम्हें साथ देनेका वचन दिया होगा, उनके हेतुको मैं जानता हूँ।"

" क्या?"

" यवनोंको हराकर प्रत्येक राजा चक्रवर्ती होनेकी आशा करता होगा।" मुंजालने कहा।

" तब इस आशासे आप भी क्यों नहीं जुट जाते?"

" गुजरात अभी छोटा है। वह अभी पैरोंके बल खड़ा होना सीख रहा है। यदि वह ऐसी आशा करे, तो मूर्ख समझा जायगा। यवन तो न जाने कब हारेंगे, परन्तु हमारा सत्यानाश आगामी वर्ष ही हो जायगा।" यह सुनकर निराशापूर्ण दृष्टिसे कीर्तिदेव देखने लगा। मुंजालने आगे कहा, " तुम्हारे जैसे निःस्वार्थ मनुष्यके आगे सत्य कहते मुझे क्या हानि हो सकती है? बड़े परिश्रमसे मैंने अपनी झोपड़ी खड़ी की है। यदि मैं आर्यावर्त्तका महल खड़ा करने जाऊँ, तो यह झोपड़ी उसके नीचे ढेर हो जायगी। समझे? तुम्हें जिस महलके बनानेकी लालसा है, उसे तुम भले ही बनाओ। मुंजाल तो अपनी झोपड़ी ही सम्हालेगा।"

" अर्थात् मेरे स्वप्न नष्ट हो जायँगे?" खेदयुक्त स्वरमें कीर्तिदेवने कहा।

" तो क्या तुम्हारे स्वप्नोंके लिए मैं अपने सिद्ध हुए सत्योंको नष्ट कर दूँ?"

" तो क्या एक छोटेसे राज्यकी महत्वाकांक्षाकी रक्षाके लिए आर्यावर्त्तका

सत्यानाश होने देनेमें ही आप अपनी राजनीतिज्ञता समझते हैं ?" निराशा-पीडित हृदयसे कीर्तिदेवने कहा,—उसके मुखसे निकल गया।

मुंजालने गौरवसे सिर उठाकर देखा। उसे प्रतीत हुआ कि कीर्तिदेवका निःस्वार्थ भाव देखकर उसने अकल्पित अयोग्य सौजन्य दिखलाया था। उसकी आँखें निश्चल हो गईं। शान्तिसे उसने कहा, "इसका उत्तर पानेका तुम्हें अधिकार नहीं है। जब तक मैं हूँ, तबतक मेरी राजनीतिज्ञता, वह कैसी भी हो, काम करती रहेगी।"

"और मैं अपने वशभर उसे काम न करने दूँगा।" कीर्तिदेवने बलपूर्वक कहा।

मुंजाल तिरस्कारसे हँस दिया। बोला, "ऐसा कहनेवाले मुझे बहुत मिले हैं और..."

"और आपने उन सबको पराजित किया है," कीर्तिदेवने कहा। निराशासे उसे क्रोध उत्पन्न हो गया था, "आप सोचते हैं कि आर्या-वर्त्तके भविष्यमें बाधक होनेमें आप सफल हो जायँगे ? मंत्रिवर, मैं आपको भय नहीं दिखाता; सच बात कह रहा हूँ। मैं कुछ दिनोंमें अवन्ति जाऊँगा और समय आनेपर अपनी इच्छाको सिद्ध करूँगा। देश-देशके राजाओंकी सेनासे म्लेच्छोंका संहार कराऊँगा और जीवित रहा, तो बताऊँगा कि 'सत्यमेव जयति', आपकी जैसी अल्पबुद्धिकी स्वार्थमय राजनीति नहीं जीतती; और विश्वास करा दूँगा कि गुजरात आर्यावर्त्तका अंग नहीं, वरन् स्वार्थी श्रावक धनिकोंके धनसंचय करनेका बाज़ार है। उबकराज जैसा कहते हैं, पाटण केवल अवन्तिका मंडल बननेके योग्य है।" कहते हुए कीर्तिदेव खड़ा हो गया। उसकी जाज्वल्यमान कान्ति देवके समान प्रदीप्त हो गई। यह उमंगका लहराता हुआ सागर मुंजालके शान्त गौरवसे टकराया और फैल गया।

"तुम्हारी आशाएँ सिद्ध न हुईं, तो ?"

"तो मैं जगत्से कहूँगा कि जब समस्त राज्य सन्धि करके एक होनेको तैयार थे, जब सबके ऐक्यसे यवनोंका संहार हो जाता और भरतखंडकी रक्षा होती, तब एक मंत्रीने यह नहीं होने दिया। जब आपके राज्योंका विनाश होगा, आपके पाटणका पतन होगा तब कहूँगा कि यह प्रताप एक

मंत्रीका है, एक स्वार्थपरायण राजनीतिज्ञका है। आपका वह यति जिस प्रकार कह गया है, उस प्रकार जब आपके लड़के-बच्चे ग़ज़नीके बाज़ारोंमें बिकेंगे, तब आपको अपने इस कृत्यका परिणाम समझमें आएगा।" आवेशसे कीर्तिदेवका अंग अंग काँप रहा था।

"कीर्तिदेव," एक क्षणभर रुककर मुंजालने कठोरतासे कहा, "तुम उत्तेजित हो गये हो, अतएव अब अधिक वार्तालाप करनेमें सार नहीं। तुम अवन्ति कब जा रहे हो?"

"आगामी अमावास्याको।"

"मेरी बात मानो तो आज ही बिदा हो जाओ।"

"क्यों?"

"कारण जाननेकी आवश्यकता नहीं।"

"क्या महाअमात्यके रूपमें आप मुझपर शासन कर रहे हैं? मैं अवन्तिका सन्धि-विग्रहिक हूँ, जानते हैं?" कीर्तिदेवने गौरवसे कहा।

"मैं शासन नहीं कर रहा हूँ, उपदेश दे रहा हूँ। अतएव जितना जल्दी पाटणको त्याग दो, उतना अच्छा।"

"मुझे डरा रहे हैं?" क्रोधित होकर कीर्तिदेवने पूछा।

"जिसके पास शक्ति या सत्ता न हो, वह डराये। मेरे पास तो दोनों हैं। जय सोमनाथ! फिर कभी आना।" मुंजालने शान्तिसे कहा और वह खड़ा हो गया।

कीर्तिदेव बाहर निकला। उसके मनमें निश्चयात्मक बुद्धिका प्रवेश हो गया था। उसका हृदय क्रोधसे जल रहा था।

उसके जानेपर मुंजाल उसके पीछे देखता रहा और अन्तमें बड़बड़ाया, "ओफ़! कैसा लड़का है! कैसा प्रभाव है! ऐसा पुत्र हो, तो इकहत्तर पीढ़ियोंको तार दे। बोलनेकी तर्ज कैसी भयंकर है! इसे यहाँ रहने न देना चाहिए। पर्वतको भी पिघलानेका इसकी जिह्वामें बल है। ऐ, बाहर कोई है?"

बाहरसे बिहारी आया, "क्या आज्ञा है, महाराज?"

"क्यों, क्या समाचार है?"

" रातको बारह बजे सज्जन मेहताकी वाटिकामें सब इकट्ठे होंगे।" बिहारीने कहा।

" कौन कौन ? "

" एक यह जो अभी गया—कीर्तिदेव। दूसरा काक, और तीसरा वह कृष्णदेव..."

" वह अभी यहीं है ? "

" जी हाँ, कीर्तिदेवका दाहिना हाथ है। "

" और ? "

" देसलदेव तथा और भी कई हैं। सबके नाम मैं फिर बतलाऊँगा।"

" क्यों इकट्ठे होंगे ? "

" आपने जो उत्तर दिया उसपर विचार करनेके लिए। "

" और वह काक कैसा है ? "

" महाराज, वह तो कुछ समझमें ही नहीं आता। वह सभीका परम मित्र दिखलाई पड़ता है,—कीर्तिदेवका, कृष्णदेवका, मंडलेश्वर महाराजका और महाराजका। "

मुंजाल हँस पड़ा, " हर्ज नहीं, यह सब समझनेकी तुम्हें आवश्यकता भी नहीं। अच्छा, और कुछ ? "

" महाराज, काकका विवाह हो गया। "

मुंजाल हँस पड़ा, " विवाह हो गया ! किसके साथ ? "

" कवि रुद्रदत्त थे न उनकी कन्यासे। विवाहमें मंडलेश्वर महाराज थे और काश्मीरादेवी भी। "

" विवाह कहाँ हुआ ? "

" पंडित गजाननके घरमें। "

" अच्छा, डूँगर नायकसे कह आओ कि मुझसे मिल जाए और दस मल्लोंको तैयार रखे। "

" जो आज्ञा। " कहकर बिहारी चला गया।

" देखता हूँ, अब रातको यह सब लोग क्या करते हैं। " कहकर मुंजाल मीनलदेवीके पास गया।

४—काश्मीरादेवी गुरु-पदपर

मुंजाल मेहताने राजमाताके पास जाकर कीर्तिदेवसे हुई बातचीतका सार कह सुनाया। आखिर मीनलदेवीने कहा, "तो मेहताजी, अब क्या करोगे?"

"रातको क्या होता है, यह देखनेके लिए मैं जाऊँगा।"

"तुम स्वयं जाओगे? और किसीको भेजो न। अपने प्राण क्यों संकटमें डालते हो?"

"बिना मरे कहीं स्वर्ग देखा जा सकता है? मुझे स्वयं देखना है कि ये षड्यन्त्रकारी क्या विचार कर रहे हैं। आप चिन्ता न कीजिए, मुझे कुछ न होगा।"

"यह कैसे जान लिया?" मीनलदेवीने हँसकर कहा।

"आपका आशीर्वाद जो है।" मुंजालके नेत्र ज़रा चमक उठे, "इन षड्यन्त्रकारियोंके नायकको अपने हाथमें रखूँगा।"

"किसे? कीर्तिदेवको?"

"हाँ, आज सन्ध्या समय ही उसे कैद करूँगा। यह मनुष्य बड़ा भयंकर है। देवी, आपने तो उसे देखा नहीं, परन्तु पर्वतको भी हिला देनेवाला मनुष्य है। उसके समान यदि कोई यहाँ हो, तो हमारे कितना काम आए!"

"अवन्तिमें न जाने कितने रत्न भरे पड़े हैं।" रानीने विचार करके कहा।

"इसीसे अवन्ति इतना प्रभावशाली है। हमारे यहाँ शूरवीर हैं और धनी भी हैं, परन्तु यथोचित उदार नहीं है।"

"अर्थात्?"

"देवी, हमारे यहाँ सब कुछ है; साथ ही स्वार्थपरता भी है। स्वार्थ और उदारता दोनों साथ कैसे रह सकते हैं?"

"क्या किया जाय? हमारे मंत्रियोंमें यदि देखने जाएँ तो उदा मेहता है और सामन्तोंमें वह देसलदेव।" रानीने कहा।

"ये ही नहीं है।" महाअमात्यने हँसकर कहा, "मन्त्रियोंमें मैं और सामन्तोंमें त्रिभुवन भी तो है। और अभी जो एक तीसरा आया है, वह भी आगे जाकर सबसे टक्कर लेगा।"

"कौन?"

" काक। वह भटराज तो अभी कल ही हुआ है; परन्तु सबसे पानी भराएगा। उसको भी मुझे आज रातको कसौटीपर कसना है।"

" वह भी षड्यन्त्रकारी है ?"

" कुछ समझमें नहीं आता। जयदेव, त्रिभुवन, कीर्त्तिदेव और कृष्णदेव,— सब उसे मित्र माने बैठे हैं।"

" कृष्णदेव कौन ? वह जूनागढ़वाला ?"

" हाँ।"

"वह भी अच्छा हाथोंमें आ गया है। नवघणसे कहना चाहिए कि तुम—"

" लीजिए, काश्मीरादेवी भी आ गईं।" मुंजालने हँसते हुए कहा। केवल शोभाके लिए लजाती हुई काश्मीरादेवी आ पहुँचीं।

" क्यों बेटी, क्या हालचाल हैं ?"

" अच्छे हैं।" कहकर काश्मीरा ज़रा दूर खड़ी हो गई; अतएव मुजाल उठ खड़ा हुआ।

" क्यों, तुम तो विवाहोत्सव मना आईं ?" मुंजालने पूछा।

काश्मीरा चौंक पड़ी। उसने सोचा था कि काकके विवाहकी बात कोई नहीं जानता। मुंजालने मीनलदेवीकी ओर घूमकर कहा, " आपको मालूम हुआ, ये दूल्हाकी माता हैं ?"

" मामाजी," काश्मीराने मार्मिक अर्थमें कहा, " विवाहका सच्चा अवसर तो अभी आनेवाला है।"

मुंजाल हँसता हुआ वहाँसे चला गया और मीनलदेवीने पूछा, " किसका विवाह हुआ ?"

" काक और मंजरीका; परन्तु यह बात किसीसे कहिएगा नहीं।"

" क्यों ?"

" कारण कि इस लड़कीसे उदा जबर्दस्ती विवाह करना चाहता था, इसलिए मैंने इन दोनोंका विवाह कर दिया।" काश्मीराने हँसकर कहा।

उत्तरमें मीनलदेवीने हँसकर कहा, " अब एकका विवाह और रह गया।"

" किसका ?"

" त्रिभुवनका। लाटकी मृणालकुमारीको जो लाना है।"

" ऊँह, परन्तु एक व्यक्ति अभी और रह गया है।"

" कौन ?" मीनलदेवीने पूछा।

" मामाजी।" हँसी त्यागकर एकदम गम्भीरतासे काश्मीराने कहा। मीनलदेवीका हँसता हुआ मुख उतर गया। तेजस्वितापूर्वक वह देखने लगी और होंठसे होंठ दबा लिया।

मार्मिकतासे काश्मीराने पूछा, " आप उनसे विवाह करनेके लिए क्यों नहीं कहतीं ?"

सारे राज्यमें जो अधिकार किसीको न थे, वे अधिकार काश्मीरा भोगती थी और उनसे वह राजमाता या महाअमात्य जैसे भयंकर गौरवशाली व्यक्तियोंको भी सीधे और सही रूपमें ठिकाने ले आती थी।

" मैं क्या कहूँ ?" कोई उत्तर न सूझनेसे मीनलदेवीने कहा।

" बुआजी, आप न कहेंगी तो कौन कहेगा ? आप राजमाता हैं। राज-सेवकके हितको आप न देखेंगीं, तो कौन देखेगा ?"

" मुंजाल माननेवाला नहीं है।"

" और किसीकी चाहे न मानें, आपकी मानेंगे।" दृढ़तासे रानीके सत्ताशील मुखपर सत्तापूर्ण आँखें जमाकर काश्मीराने कहा। क्षणभर ठहर कर वह फिर बोली, " आपकी जगह मैं होती, तो उनका विवाह कभीका हो गया होता।"

मीनलदेवीकी भौंहें चढ़ गईं। वह इस वाचाल भतीजीकी ओर देखने लगी। " काश्मीरा," रानीने बलपूर्वक कहा, " तुम छोटे मुखसे बड़ी बड़ी बातें करती हो ?"

" क्या करूँ, जब बड़े मुखवाले कुछ करते नहीं ? आप देखती हैं, पहलेके मामाजी अब कहाँ रह गये हैं ? उनके कन्धे लटक गये हैं, तलवारकी धारके समान तेज आँखोंपर जंग चढ़ गई है। राजकार्य करते हुए थक जाते हैं। कभी कभी अज्ञात रूपसे निःश्वास भी उनके मुखसे निकल जाते हैं। कभी आपने उन्हें 'प्रभुकी इच्छा' कहते सुना था ? मैंने अभी इधर थोड़े दिनोंमें चार-पाँच बार ये शब्द उनके मुखसे सुने हैं। बुआजी, उन्हें अज्ञात रूपसे कोई कष्ट हुआ करता है और आप उसे देखनेकी पर्वा भी नहीं करतीं।"

काश्मीरादेवीका प्रत्येक शब्द मीनलदेवीके हृदयमें आघात कर रहा था;

परन्तु उन्होंने हिम्मत रक्खी और स्वस्थ रहकर बातको उड़ानेका प्रयत्न किया, “ क्यों, तुझे त्रिभुवनने अपने मामाका पक्ष लेनेके लिए भेजा है क्या ? ”

“ वे क्यों मामाका पक्ष लेंगे ? आप जागती जोत तो बैठी हैं ! ”

“चाहे जैसा हो, वह भानजा है और मैं हूँ राजमाता।” मीनलदेवीने कहा।

काश्मीरा तिरस्कार-पूर्वक हँसी, “ बुआजी, आप जानती हैं, फिर भी इस प्रकार बातको उड़ानेका प्रयत्न क्यों कर रही हैं ? सारा संसार जानता है कि आपके और आपके पुत्रके लिए उन्होंने जो कुछ किया है, वह न किसीने किया है और न कर सकता है।” काश्मीरा अनुभवी योद्धाके वेगसे आघातपर आघात करने लगी। रानीने उनसे बचनेके लिए एक महान् प्रयत्न किया।

“ प्रसन्न, जो कुछ उसने किया, एक अमात्यके तौरपर किया है। ”

“ बुआजी, ये शब्द आपको शोभा नहीं देते। यह मैंने आज ही जाना कि वे किसी कृतघ्न सेठके केवल किरायेके कारिन्दे हैं। मामाजी यह बात जानते होते, तो मामीजीको कभी न मरने देते।” कहकर काश्मीरादेवीने ब्रह्मास्त्र छोड़ा। मीनलदेवीको इस वाग्बाणने छेद डाला। सूखे होठोंसे वह देखते रह गई।

“ क्या तू मेरे साथ लड़नेको आई है ? ”

“ नहीं बुआजी, परन्तु कभी कभी सच बात कहनेवाला मनुष्य भी चाहिए। ”

“ अच्छा, तो तू ही बतला, ” रानीने क्रोधको कंठसे नीचे उतारकर धीमेसे पूछा, “ मुंजाल, क्यों ऐसा करता है ? ”

“ उन्हें अपना एकाकीपन अखरता है। उन बेचारोंकी देख-भाल, सार-सँभाल करनेवाला कोई नहीं है। यही तो दुःख है। ”

“ इतने सेवक क्या कम हैं ? ”

“ सेवकोंसे काम चलता होता, तो लोग विवाह क्यों करते ? ”

रानीके मुखपरसे चिन्ताका बादल दूर हो गया, “ तू उसका विवाह कराना चाहती है ? ”

“ हाँ। ”

“ वह विवाह नहीं करेगा। ” रानीने कहा।

काश्मीरा मानों आघात करनेके लिए कुछ समय लेनेको ठहर गई और बोली, “ आप कहेंगीं तो अवश्य कर लेंगे। ”

" कैसे जान लिया ? "

" आपकी बातको उन्होंने कभी टाला है ? "

रानी कोई उत्तर न दे सकी ।

" उनके योग्य स्त्री भी मैंने देख रखी है । "

" कौन ? "

" सज्जन मेहताकी लड़की सोम । "

मीनलदेवी चौंक पड़ी । उसकी भौंहें चढ़ गईं ।

" पहली सेठानीकी भतीजी ? मुंजाल उसे कैसे स्वीकार करेगा ? "

" सब आपके हाथमें है । आज सन्ध्या-समय सोमको यहाँ भिजवाऊँगी । उसे देखिएगा और विचार करिएगा। इतनी इतनी सेवाओंके बाद मामाजीको यह बदला चुकाना चाहिए, नहीं तो उनका दुःख बढ़ जायगा । अच्छा, तो मैं जाती हूँ । " कहकर काश्मीरा उठी और आज्ञा लेकर बिदा हो गई ।

राजमाता स्थिर दृष्टिसे बहुत देर तक भूमिकी ओर देखती रही । आँखमेंसे एक आँसू धीरे-से टपक पड़ा । कुछ देरमें वह बुदबुदाई, " काश्मीराकी बात सच है । मुंजालके लिए कुछ करना चाहिए । "

५—सोहाग-रातका अनुभव

पाणिग्रहणसे निवृत्त होकर काक सज्जन मेहताके घर गया। यह जाननेके लिए वह उत्सुक था कि मुंजाल मेहताने कीर्तिदेवको क्या उत्तर दिया, परन्तु कीर्तिदेव तब तक आया नहीं था, इसलिए वह लौट आया ।

कीर्तिदेवने काकको चमत्कृत कर छोड़ा था और उसके दिव्य गुणोंका बखान काकने मंडलेश्वर और काश्मीरादेवीके आगे भी कर दिया था। उन दोनों गुण-ग्राहक पति-पत्नीमें ऐसे असाधारण योद्धाको देखनेकी जिज्ञासा बढ़ गई, और यह जानकर कि रातको सज्जन मेहताके यहाँ कीर्तिदेवके मित्रोंका गुप्त सम्मेलन होगा, दोनोंने वहाँ जाकर गुप्त रूपसे उसे देखनेकी इच्छा प्रकट की । काकने भी उन्हें वहाँ ले जाना स्वीकार किया ।

यह विचार कर कि नववधू कहीं घरमें अकेली न रह जाय, काश्मीराने हठ करके मंजरीको भी अपने साथ ले लेनेका निश्चय किया ।

सज्जन मेहताकी वाटिकामें तो आधी रातके बाद जाना था, अतएव, रात पड़नेपर काक अपनी अटारीमें पहुँचा। उसका हृदय काँप रहा था। जिस विवाहके लिए वह तरस रहा था, जिस विवाहको निर्वाण-प्राप्तिके समान आनन्दमय मानता था, उसी विवाहके हो जानेपर वह अधिक दुखी हो गया। मंजरीके प्रति उसके हृदयमें सम्मान और प्रेम था। उसे वह स्वर्ग-सुन्दरी समझता था; परन्तु उसके निश्चल हृदय, अस्पृश्य अभिमान, और माँगे हुए वचन,—इन सबसे काकका जीवन कड़ुआ हो गया था। उसके हृदयमें केवल आशाका एक बिन्दु था। काकको अब भटराजका पद मिल गया था। पाटणके महाराजाने नगरके सारे जन-समूहके सामने उसकी सेवाके प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी। यह सब देखकर भी मंजरी क्यों न पिघलेगी? अपने माँगे हुए वचनसे काकको क्यों न मुक्त करेगी?

डरते डरते वह अटारीपर आया। उमंग-भरी काश्मीरादेवीने काकको अपना देवर-मानकर, उसके और मंजरीके सहजीवनके समारंभको बड़ी हौंससे अधिकसे अधिक रसिक बनानेका प्रयत्न किया था, अतएव वह युद्धोंमें ही लालित-पालित योद्धा क्षण-भरके लिए उस सुसज्जित-अटारीकी सामग्रीकी ओर और उसमें बिराज रही अनुपम लावण्यमयी मंजरीकी ओर देखता ही रह गया। उसे प्रतीत हुआ, जैसे स्वर्गके अनोखे सुखोंका भंडार उसकी दृष्टिके आगे खुला पड़ा है। इस दृश्यसे उसपर नशा-सा चढ़ गया और वह मस्त होकर खड़ा रह गया।

परन्तु उसका यह मोह तुरन्त उतर गया। सामने हिंडोलेपर रंभाके समान मनोहर मंजरी बैठी थी। उस मानिनीके गर्वसे सिकुड़े हुए होठ और आँखोंकी तेजस्वी, शीतल, अभिमान-पूर्ण निश्चलता,—इन दोनोंने उसके चढ़े हुए नशेको उतार दिया। वह बैठी थी संसार-रूपी गिरिराजके गगन-चुंबी हिमशिखरपर और यह था पृथ्वीके एक निर्जीव स्थानपर खड़ा हुआ केवल एक असंस्कृत योद्धा।

क्षोभने इस महारथीको मात कर दिया। उसकी देह इस प्रकार काँप रही थी, जैसे वह स्वयं नववधू हो। उसके हृदयमें केवल एक मंत्रका जाप चल रहा था, "कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम्।" मंजरीका ध्यान आकर्षित करनेके लिए वह ज़रा खाँसा।

मंजरीने गर्वसे सिर ऊँचा किया और बड़े संयमसे उसकी ओर देखा। स्पष्ट प्रकट हो रही निस्तेजताके सिवा उसके मुखपर कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ था। काक धीरे धीरे पैर बढ़ाता हुआ निकट गया। होठ दबाकर वह भी हृदयको शान्त करनेका प्रयत्न कर रहा था। वह कुछ दूर बैठ गया और मंजरीकी ओर देखने लगा।

कुछ देरमें मंजरी बोली, "क्यों, विवाह हो गया? अब अपने वचनका पालन कब करते हो?" उसके स्वरमें तिरस्कार था।

काक चौंक पड़ा। उसके गलेमें गाँठ पड़ गई। उसने खखार कर बड़े प्रयत्नसे गला साफ़ किया। सम्राज्ञीके समान मंजरी कठोरताके साथ उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगी।

काकने धीरे-से कहा, "वचन?"

"हाँ, वचन! मुझे ज्ञात नहीं था कि लाटके ब्राह्मण इतनी जल्दी वचनको भूल जाते हैं।" शान्तिसे मंजरीने कहा। उसके शान्त तिरस्कारने काकपर बिच्छूके समान डंक मारा।

"मंजरी, मैं वचनको भूल नहीं गया हूँ।"

"तो उसका पालन करोगे?" प्रभावपूर्ण मुद्रासे मंजरीने पूछा। उसका प्रत्येक प्रश्न काकके गौरवको चूर चूर कर रहा था।

"मंजरी, तुम ऐसी पाषाण-हृदया हो? मैंने नहीं सोचा था कि तुम ऐसी होगी।" काकने निराशासे कहा।

"मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था।"

"हाँ, कह दिया था। परन्तु तुम उससे इस तरह चिपटी रहोगी, यह मैंने नहीं सोचा था।"

"तुमने मुझे अपने काँटेपर तौला होगा।" अवर्णनीय तिरस्कारसे मंजरीने कहा।

"हाँ," काक खड़ा हो गया और बोला। वह उत्तेजित हो गया था। उसका अपमानित हृदय क्रोधसे—निराशासे फटा जा रहा था। "मैंने मनुष्यके काँटेपर तुमको तौला था। मैंने सोचा था कि तुम्हारे हृदयमें अमृत होगा। मैंने आशा की थी कि विवाह हो जानेपर तुम पिघल जाओगी। मेरी सेवाओंसे रीझकर मेरे हृदयको शीतल करोगी।"

" काकभटजी, प्रत्येक सेवकको स्वामी बनाने लगूँ, तो विवाह करते करते पार ही न आए, " अभिमानसे खड़ी होकर काककी ओर कुछ पीठ फेरते हुए मंजरीने कहा।

इस अटल अभिमानके भयंकर आघातसे, क्षणभरके लिए काक तिलामिला उठा। वह स्तब्ध हो गया। उसकी समझमें नहीं आया कि वह क्या करे। उसके हृदयने एक मन्त्रका पाठ कर मार्ग सुझाया। उस मन्त्रको वह मन ही मन बुदबुदाया, " ठीक है, मैं कैलासके समान दुर्धर्ष होऊँगा और कालाग्निके समान असह्य बनूँगा।" उसने दाँत किटकिटाये। " मंजरी, मैं चाहे जैसा हूँ, परन्तु तुम्हारा स्वामी हूँ।" मंजरीने उत्तर नहीं दिया, और पूरी पीठ फेर ली। " ये हैं तुम्हारे संस्कार! ये हैं तुम्हारे भाव! कैसी पति-परायणा स्त्री हो!" काकने तिरस्कारसे कहा।

" पतिपरायणा!" धीरे-से पलट कर तिरस्कार-पूर्ण नयनोंका प्रकाश डालते हुए मंजरीने कहा और वह जरा हँस पड़ी, " तुम हो मेरे पति ?"

" हाँ, अग्निदेवकी साक्षी भूल गईं ?"

मंजरीने उत्तर नहीं दिया।

" मंजरी, तुम समझती हो कि मैं अधम हूँ ? तुम जो कहोगी उसे सह लूँगा। हाँ, यह भी करूँगा, पर तब तक जब तक कि तुम्हें हृदयेश्वरी मानता हूँ। परन्तु यदि तुम मुझे और अधिक दुःख दोगी, तो मैं नहीं सहूँगा। मैं योद्धा हूँ। मेरा हृदय भी वीर-भावोंसे उछलता है। मेरी रगोंमें भी भगवान् जमदग्निका शुद्ध सनातन रक्त बहता है।"

"तो तुम क्या करोगे ?" गर्वसे सिर ऊँचा करके निर्भयतासे मंजरीने पूछा।

" जो मेरा अधिकार है वह।" क्रोधमें होठसे होठ दबाकर काकने कहा। उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकल रही थीं।

" तुम्हारा अधिकार ? " ज़रा हँसकर मंजरीने पूछा।

" हाँ, तुम्हारे स्वामी, तुम्हारे पतिके रूपमें अधिकार!" विजय-नादसे गरजते हुए स्वरमें काकने कहा। उत्तरमें मंजरी फिर तिरस्कारसे हँस पड़ी। इस हास्यने काकका संयम भंग कर दिया, " मंजरी, तुम मेरी स्त्री हो, समझीं ? " कहकर उसने एक छलाँग मारी, मंजरीको अपनी भुजाओंमें कस लिया और प्रचण्ड उमंगोंके सत्त्वस्वरूप एक चुम्बन ले लिया।

परन्तु प्रत्युत्तर विचित्र और अकल्पित मिला। उसने चिल्लाने और घबरानेकी आशा की थी। परन्तु इसके बदले मंजरी खिल-खिलाकर हँस पड़ी; पर उसकी प्रत्येक हास्य-तरंगमें अवर्णनीय तिरस्कार था। इस हास्यसे काक चौंक पड़ा। उसका आवेग जाता रहा और मंजरीको छोड़कर वह अलग जा खड़ा हुआ।

"शाबाश!" प्रत्येक शब्दका भयंकर गर्वपूर्ण उच्चारण करते हुए मंजरीने कहा, "शाबाश भृगुपुत्र! शाबाश ब्राह्मणश्रेष्ठ! कैसा तुम्हारा संयम हैं! कैसे तुम्हारे संस्कार हैं! कैसा तुम्हारा प्रतिज्ञा-पालन है! कैसी तुम्हारी वीरता है! इसी शूद्रके समान अधम आचरणसे तुम मेरे स्वामी बनोगे? क्या मुझे लाटकी ब्राह्मणी समझ रखा था जो इस बहादुरीपर निछावर होकर तुम्हारी हृदयेश्वरी बन जाती? काक भटजी, तुममें और अनेक क्षुद्रताओंकी कल्पना मैंने की थी, परन्तु यह नहीं की थी।" उसके शब्द उसके बँधे हुए होठोंमेंसे साँपकी फुंकारकी भाँति निकल रहे थे। उसकी आँखोंकी चमक तलवारकी धारके समान काकका हृदय चीर रही थी।

कामदेवके अनेक आदेशोंके अधीन होना पड़ता है,—ज्ञात-अज्ञात रूपसे हम उनके अधीन हो जाते हैं और अधीन होते होते इसके लिए पश्चात्ताप करने लगते हैं। काकने दुःसह प्रबल आवेगके वशीभूत होकर मंजरीको भुजाओंमें कस लिया था; परन्तु उसे तुरन्त पश्चात्ताप होने लगा। उसे अपनी अधमताका विचार आया और इसके साथ ही मंजरीके हृदय-वेधक शब्द-कटाक्षोंने उसे वेध डाला। वह लज्जित रुआ-सा बनकर खड़ा हो गया। सत्ताके अवतारके समान दिखती हुई मंजरी अचूक विषैले वाग्बाण छोड़ रही थी। काक कायरकी भाँति उसके सामने सिर झुकाकर खड़ा था। उससे सिर उठाकर न देखा जा सका। यदि जीभको काटकर फेंक देनेसे सब बातें समाप्त हो जातीं, तो वह इसके लिए भी तैयार था। उसका क्रोध जाता रहा उसका आवेग और मोह उतर गया।

"काकभट," कुछ देर ठहरकर मंजरीने फिर कहा, "किस लिए लज्जित हो रहे हो? अपनी योग्यता तुमने अपने हाथों ही सिद्ध कर दी।" मंजरीके स्वरमें अब तिरस्कारकी जगह करुणा-पूर्ण गाम्भीर्य आ गया और उसने धीरेसे कहा, "मेरे पिताजी कहा करते थे कि यदि ब्राह्मण संयम त्याग दें, तो

पृथ्वी रसातलको चली जाय। मैंने नहीं सोचा था कि तुम ऐसे अब्राह्मण बन जाओगे। ”

“ मंजरी, ” बड़ी कठिनतासे काकने उत्तर दिया, “ मंजरी, तुमसे जो भी कहा जा सके, कह लो; परन्तु अब अधिक ताने मारनेसे क्या लाभ ? ”

“ हाँ, ठीक तो कहते हो, वह तो पत्थरपर पानी सींचनेके समान है। ”

काकने होठ दबा लिये और कहा, “ देखो, इसका परिणाम अच्छा न होगा और तुम पछताओगी। ” काकमें फिरसे एक भिन्न ही प्रकारका आवेग उबलने लगा।

“ इसका अर्थ यही है कि तुम अपना बल फिर दिखाओगे। पर यह तो मैं जानती हूँ। ” मंजरीने तिरस्कारसे कहा, “ महाराज भर्तृहरि कह गये हैं कि ‘ शुनीमन्वेति श्वा। ’* ब्रह्मदेव, तुम्हारा संयम नष्ट हो गया, तुम्हारा वचन भंग हो गया। अगर अब अपनी श्वानता सिद्ध करना चाहते हो तो आ जाओ, मैं यह खड़ी हूँ। ” कहकर गौरवसे केवल नेत्रोंके तेजसे ही काकको डराती हुई वह खड़ी रही।

भगवान् श्रीकृष्णकी भी सहिष्णुताको भंग कर देनेवाले इन अपमान-जनक वचनोंको सुनकर काकके क्रोधका पार न रहा। वह सतर होकर स्थिर दृष्टिसे मंजरीको देखने लगा। क्रोधसे उसकी कान्ति भव्य हो गई थी।

“ बहुत हो गया मंजरी, अपशब्दोंकी भी सीमा होती है। तुम अपनेको गर्वके मारे श्रेष्ठ मानती हो, क्यों ? अच्छा, तुम्हारे साथ ज़बान लड़ानेमें कोई सार नहीं। कहो, जूनागढ़ कब चलोगी ? ”

मंजरी एकदम उलझनमें पड़ गई। उसने नहीं सोचा था कि काक अचानक यह बात कह बैठेगा।

“ आगामी अमावास्याको हम लोग जूनागढ़ चलेंगे। ” काकने कठोरतासे कहा।

“ इतने अधिक दिनोंतक रुकनेकी क्या आवश्यकता ? ” मंजरीने जरा संयत होकर कहा।

“ मंजरी, मुझे श्वान न समझनेवाले भी बहुतसे लोग हैं और उन्हें दिये हुए वचनोंका पालन मुझे पहले करना चाहिए। ”

---

*कुत्ता, कुतियाके पीछे जाता है।—भर्तृहरिकृत वैराग्य-शतक

मंजरी तिरस्कारसे हँस पड़ी।

" अमावास्याको हम लोग प्रस्थान करेंगे; परन्तु ख़बरदार, तब तक हम दोनों बीचके इस झगड़ेको कोई जानने न पाए। इसमें न तुम्हारी शोभा है न मेरी।" कहकर काक बन्द किये हुए द्वारके पास गया और अपनी पगड़ी सिरके नीचे रखकर सोनेका ढोंग करके लेट गया। चकित हुई मंजरी एकदम कुछ न समझ सकी। आखिर ' शीतल जलसे ही खुजली चली गई ' समझकर, वह गर्व-ग्रस्त रमणी अपनी शय्यापर जाकर शान्तिसे सो गई।

६—षड्यन्त्रकारी

आधी रात होनेको एक पहर बाकी था। नगाड़ोंके बजते ही काक उठकर खड़ा हो गया और उसने त्रिभुवनपाल तथा काश्मीरादेवीसे तैयार होनेको कहा। काश्मीरादेवीने मंजरीको उठाया और दोनोंने पुरुष-वेश धारण किया। पिछले द्वारसे चारों जनें क्षेमराजके बाड़ेसे बाहर निकलकर सज्जन मेहताके घरकी ओर तेज़ीसे चल दिये।

जब चारों जनें सज्जन मेहताकी वाटिकाके पीछेकी ओर पहुँचे, तब काक तीनोंको वहीं खड़ा रखकर अन्दर जानेका रास्ता खोजने लगा।

वाटिका विशाल थी और उसके चारों ओर ऊँची दीवार थी। वह घूमता हुआ उसके पिछले द्वार तक गया। दीवारके एक छोटे-से द्वारके निकट दूर ही से उसने एक मनुष्यको खड़ा हुआ देखा, जिससे पूछ पूछ कर एक एक दो दो करके कुछ आदमी अन्दर जा रहे थे। काकने दूरहीसे समझ लिया कि दरबानके रूपमें खड़ा हुआ मनुष्य कृष्णदेव है। वह निराश होकर लौट आया। कृष्णदेवकी तीक्ष्ण दृष्टिसे बचाकर, इन तीन जनोंको,—जिनमेंसे दो पाटणमें सुविख्यात थे, किस प्रकार ले जाया जाय ?

वह वाटिकाकी प्रदक्षिणा करने लगा। आख़िर दीवारमें उसे एक छोटी-सी जीर्ण खिड़की दिखलाई पड़ी। उसके आगेसे किसीने रास्ता करनेके लिए काँटे खिसकाकर अलग कर दिये थे। काकने रास्ता करनेवालेको आशीर्वाद दिया और तेज़ीसे उन तीनों जनोंको लेकर वह वहाँ आ पहुँचा।

चारों जनोंके मनकी स्थिति इस समय भिन्न भिन्न थी। गंभीर दुःखग्रस्त

काक भट किसी भी प्रकार किसीपर भी अपना क्रोध उतारनेको तैयार था; बहादुर मंडलेश्वर, एक अप्रतिम योद्धाको देखनेके लिए, छोटे बच्चेकी भाँति उत्सुक हो रहे थे। काश्मीरादेवीकी हँसी पेटमें समाती न थी; कारण कि इस उपद्रवसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। मंजरी काकद्वारा वर्णित इस बाल-महारथीको अपनी आँखोंसे देखनेके लिए, कानोंसे सुननेके लिए एक रसिक कविकी भाँति उत्सुक हो रही थी।

काकने दीवारपर चढ़नेसे पहले द्वारको धकेल कर देखा। वह विस्मित हो गया। द्वार यों तो जीर्ण-सा मालूम होता था; परन्तु ऐसा लगा कि किसीने कुछ देर पहले ही उसे खोला है। चोरोंकी-सी चपलतासे वे सब अन्दर घुसे और काक उन्हें मार्ग दिखाकर बाहर आ गया। वह कीर्तिदेवके अनु-यायियोंमें अग्रगण्य था; अतएव उसने जिस द्वारपर कृष्णदेव खड़ा था, उसी द्वारसे जानेका विचार कर रखा था।

इन चारों जनोंने तो यही समझा कि वाटिकामें प्रवेश करते उन्हें किसीने नहीं देखा है; परन्तु यह उनकी भूल थी। काकके बाहर जाते ही दीवारकी आड़में खड़ा हुआ एक शस्त्र-सज्जित मनुष्य आगे आया। वह राजपूत वेशमें था, उसका क़द ऊँचा और शरीर सशक्त था, उसका सिर गौरवसे उठा हुआ था। धीरे परन्तु दृढ़ और सत्तापूर्ण चालसे वह द्वारके पास आया। उसने आसपास देखा और धीरेसे द्वारको धकेला। मंडलेश्वरने अन्दरसे द्वारको बन्द नहीं किया था, अतएव वह खुल गया और उस मनुष्यने भी वाटिकामें प्रवेश किया।

चाँपा मेहताके बाड़ेके पीछेवाली विशाल वाटिकाका वर्णन एक बार पहले किया जा चुका है। इस बाड़ेके एक अपरिचित कोनेमें ये सब इस समय इकट्ठे हो रहे थे। इसका पिछला मार्ग निर्जन था; अतएव इन लुकते-छिपते इक्के दुक्के मनुष्योंका आवागमन कोई जान नहीं सकता था। बाड़ेके मालिक शान्तिसे अपने घरमें सो रहे थे। उस सीधे-सादे भोले मन्त्रीको ध्यान भी नहीं था कि उसकी वाटिकाका इस समय ऐसा उपयोग किया जा रहा है।

जिस द्वारपर कृष्णदेव खड़ा था, काक उस ओर गया। इस समय कृष्ण-देव वहाँ अकेला ही था।

" कहिए कृष्णदेवजी, सब आ गये ? "

" बरात तो आ गई; दूल्हेका ही पता नहीं है । " कृष्णदेवने कहा ।

" अर्थात् ? "

" अभी कीर्तिदेव नहीं आये । मुंजालने मालवी योद्धाको डराकर कहीं भगा तो नहीं दिया ? क्या बात है ? "

" क्या कह रहे हो ? " आश्चर्यसे काकने कहा ।

" हाँ, ठीक कह रहा हूँ । "

" तब, जिन सब लोगोंको इकट्ठा किया है, उनका क्या होगा ? जैसे आये हैं, वैसे ही लौट जायें ? "

" क्यों ? " कृष्णदेवने कहा, " बेचारे कीर्तिदेवका सब किया-कराया मिट्टी हो जायगा । "

" तब ? " काकने पूछा ।

" छोटी-सी बात है । हमें मालवेके साथ सन्धि करनेवाला एक सबल पक्ष खड़ा करना है । इतना ही तो चाहिए है ? जब कीर्तिदेव लौटेगा, तब यह पक्ष बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा । "

" मुझे यह बात असम्भव मालूम होती है । " काकने सिर हिलाया ।

" आओ, ज़रा देखो तो, " कहकर कृष्णदेव पलटा और उसने अन्दरसे किवाड़ बन्द कर लिये । दोनोंने मुख ढँक लिये और जहाँ और सब मनुष्य खड़े थे, वहीं जा पहुँचे । वहाँ सशस्त्र तीस-चालीस मनुष्य मुख छिपा कर एक दूसरेसे दूर इस भयसे मौन खड़े थे कि कहीं एक दूसरेको कोई पहचान न ले । उनमेंसे काकने एक वृक्षकी छायामें खड़े तीन मनुष्योंको पहचान लिया । चन्द्रमाके प्रकाशमें सबके सब प्रेत-लोकमें घूम रहे योद्धाओंके समान प्रतीत हो रहे थे ।

कृष्णदेवने आकर देसलदेवके साथ कुछ देर सलाह की, और फिर हाथके संकेतसे सबको पास बुलाया । सब निकट आ गये और थोड़ी थोड़ी दूरीपर भूमिपर बैठ गये । सबके बैठ जानेपर कृष्णदेवने धीरेसे कहा, " मित्रो, अभी कीर्तिदेवजी नहीं आये हैं । "

एक व्यक्तिने भारी आवाज़में पूछा, " क्यों ? "

" सबेरे मुंजालने उनकी याचना स्वीकार नहीं की । " देसलदेवने कहा, " मुझे मालूम होता है कि उन्हें ठिकाने लगा दिया गया है । "

कुछ देर सब लोग मौन रहे। अधिकांश लोग निराशसे हो गये।

" किसने लगाया ? " किसीने पूछा।

" अपने महाअमात्यसे पूछ आओ। वे बतलावेंगे। " कृष्णदेवने शान्तिसे कहा।

" मालवा तो नहीं लौट गये ? " एक व्यक्तिने कहा। काकको उसका स्वर बीसलदेवकी भाँति प्रतीत हुआ।

" नहीं, " काकने कहा, " इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ। कीर्तिदेव ऐसे कायर नहीं हैं। "

" तब क्या किया जाय ? चलो, लौट चलें। " सज्जनके पुत्र लक्ष्मणने निराशा-पूर्ण स्वरमें कहा। ये सब कीर्तिदेवके गुरुत्वाकर्षणसे खिंचे चले आये थे और उसके न होनेसे उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या किया जाय।

" क्यों, किसलिए ? कीर्तिदेव नहीं हैं, तो क्या हम लोग मर गये हैं ? जो काम कीर्तिदेव कर सकते हैं, क्या वह हम नहीं कर सकते ? " देसलदेवने कहा।

" हम क्या कर सकते हैं ? " किसी सीधे स्वभावके मनुष्यने पूछा।

" मालवाके साथ सन्धि करा सकते हैं। " कृष्णदेवने कहा। कुछ लोग तिरस्कारसे हँस पड़े। काकने पूछा, " किस प्रकार कराओगे ? हम जानते हैं कि मुंजाल मेहताको यह सन्धि पसन्द नहीं है। तब ? "

" अर्थात् ? " सत्तापूर्ण स्वरसे कृष्णदेवने पूछा " क्या एक ही मनुष्य पाटणमें एकचक्र राज्य करेगा ? "

" अभी तो कर ही रहा है, क्या कीजिएगा ? " एक व्यक्ति दूरसे बोला।

" आप लोगोंमें जीवन नहीं है, इसलिए। " देसलदेवने कहा।

" आप सब कीर्तिदेवके मित्र हैं। उनके उद्देश्योंको जानते हैं। " लक्ष्मणने कहा, " आर्यावर्त्तको यवनोंसे बचानेके लिए एकताकी आवश्यकता है। किसी भी प्रकार यह सन्धि होना चाहिए। "

" मुंजाल स्वीकार करें, या न करें; परन्तु हमें ऐक्य-साधनके लिए प्रयत्न क्यों नहीं करना चाहिए ? " एक व्यक्तिने खोकले स्वरमें कहा। काक चौंक पड़ा। उसे स्वर कृत्रिम मालूम हुआ, परन्तु उसने पहचान लिया कि वह उदा मेहताका है।

काकने क्षणभर विचार किया। कीर्तिदेवके बिना ये सब लोग तन्त्रहीन थे। किसीका एक दूसरेपर विश्वास नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति अपनेको छिपाने और दूसरेको पहचाननेका प्रयत्न कर रहा था। काकको प्रतीत हुआ कि इस अविश्वासके कारण कोई महत्त्वका कार्य इस समय न हो सकेगा। ऐसे पँचमेल समूहमें कौन किसके साथ दगा करेगा, इसका क्या विश्वास? उसने उच्च स्वरसे कहा, "मित्रो, हम सब कीर्तिदेवजीके मित्र हैं। हमें उनपर श्रद्धा थी, उन्हें हमपर विश्वास था। उनके विना यों मुख छिपाकर षड्यन्त्र-कारियोंकी भाँति क्या हमसे कोई राजनीतिक कार्य हो सकता है? चलिए, हम लोग लौट चलें।"

"किस लिए?" उत्तरमें कृष्णदेवका सुसंस्कृत शान्त स्वर गूँज उठा। "क्या हम लोग कीर्तिदेवके तो विश्वासपात्र हो सकते हैं, और एक दूसरेके नहीं? पट्टणी तो आप लोग भी हैं। पाटणका गौरव जितना मुंजालको प्रिय है, उतना ही आपको है। कीर्तिदेव चले जायँ तो क्या हमें पाटणकी परवाह न करनी चाहिए? वाह! हम मनुष्य हैं या पशु?"

"तब करना क्या चाहिए?" किसी व्यक्तिने पूछा।

"क्या करना चाहिए?" कृष्णदेवने कहा, "क्या आप सब लोग बुद्धिहीन हैं? मालवाके साथ सन्धि करना चाहिए। अपने सब राज्योंको मिलाकर यवनोंको मार भगाना चाहिए। यह काम सरल नहीं है। इसको करनेमें बहुत-सी बाधाएँ आयेंगीं और उन बाधाओंको दूर करनेके लिए हमें एक सबल पक्ष तैयार करना चाहिए।—यह करना होगा। यहाँ इस समय मंडलेश्वर हैं, सामन्त हैं, कुछ मन्त्री भी होंगे। ऐसा पक्ष खड़ा करना तो आपके लिए बहुत साधारण बात है। और फिर किसकी शक्ति है कि आपके आदेशका अनादर कर सके?" कृष्णदेवने कहा।

कृष्णदेवकी बातें ध्यान-पूर्वक सुननेके लिए सब निकट खिसक आये और एक छोटा-सा गोल चक्कर बनाकर बैठ गये।

"इसका अर्थ यह है कि पाटणका राज-कार्य हमें अपने हाथमें ले लेना चाहिए?" कोई एक व्यक्ति बोला।

"यदि यह नहीं किया जायगा, तो सारा देश नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा।" देसलने उत्तर दिया।

" तो हमें राज्यका विरोधी होना पड़ेगा।" दूसरेने कहा।

" यह कौन कहता है ?" लक्ष्मणने पूछा, " हमें तो किसी न किसी प्रकार अपना निश्चय पूरा करना है। सारा आर्यावर्त्त तो यवनोंके साथ लड़े और हम बैठे रहें ?"

" मुंजाल मेहताका क्या कीजिएगा ?" एक व्यक्तिने पीछेकी ओरसे कहा। काकने स्वर पहचान लिया। ये त्रिभुवनपाल थे। काकको भय हुआ कि कहीं त्रिभुवनपाल अधिक बोले, तो पहचान लिये जायँगे; परन्तु अन्य सब उत्तेजित हो रहे थे, अतएव उनका स्वर पहचाननेका किसीको अवकाश ही नहीं था।

" मुंजाल मेहतासे ही हम अपना इच्छित कार्य करा लेंगे।" निर्दोष ओर उत्साही लक्ष्मणने कहा। एक व्यक्ति खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने कहा, " उन्होंने किसी दिन किसी दूसरेका इच्छित कार्य किया है ?

" वह नहीं करेगा," कृष्णदेवने कहा, " तो उसे मन्त्रिपदसे अलग करना होगा।" कृष्णदेवके शान्त मार्मिक वाक्यने गगन-गर्जनाकी भाँति सबके हृदयको त्रस्त कर दिया। सब मौन हो गये।

" यह बात सरल नहीं है।" काकने कहा, " और सरल हो, तो भी न करना चाहिए। वह आज पट्टणियोंमें श्रेष्ठ है और एकाग्रतासे पाटणकी गौरव-रक्षा कर रहा है। वह अलग होगा, तो उसके पदपर कौन आरूढ़ हो सकता है ?"

"इसी प्रकारके भयोंसे ही तो हम कुछ नहीं कर सकते।" देसलदेवने कहा।

" ऐसी छोटी छोटी बातें क्यों कर रहे हैं ?" कृष्णदेवने प्रभावशाली स्वरमें पूछा, " सारा आर्यावर्त्त रसातलको जा रहा है और आप विचार करते हैं कि एक मन्त्रीको अलग कर दिया जाय, तो राज्य चलेगा या नहीं ?"

" परन्तु इसका क्या विश्वास कि मुंजालको अलग करनेसे हम लोग अपना मनोवांछित कार्य कर लेंगे ?" एक व्यक्तिने कहा।

" क्यों नहीं कर सकेंगे ?" एक दूसरा व्यक्ति बोला, " मालवाकी मँगनीको उसने अस्वीकार किया, उबकको उसने लौटाया और कीर्तिदेवको भी उसीने निराश किया। मुंजालकी धारणा है कि मालवेके साथ सन्धि होते ही महाराज उसे अलग कर देंगे।"

" तो आप भूल कर रहे हैं," काकने कहा, " मुंजालको पाटणकी परवाह नहीं, पाटणको मुंजालकी है । "

" मेरे मुंजालके मित्र, " कृष्णदेवने मजाक़में कहा और बहुत-से लोग हँस पड़े, " यदि आपसे नहीं होता है तो न करो, पर मुंजालको आसमान-पर चढ़ाकर पाटणको नीचा क्यों दिखाते हो ? "

मोड़े हुए पैरोंके बल ज़रा ऊँचे उठकर काकने दृढ़तासे उत्तर दिया, "आप चिन्ता न करें। जो मुझसे न होगा, उसके लिए मैं अवश्य इनकार कर दूँगा। इस समय हम किस लिए इकट्ठे हुए हैं ? ऐसे उपायकी योजनाके लिए जिससे मालवाके साथ सन्धि की जा सके, मुंजाल मेहताके प्रति षड्यन्त्र रच-नेको नहीं। मुझे मुंजालका भक्त कहो, या चाहे जो कहो। पर मैं उनका गुलाम नहीं हूँ। मुझे उनकी लेशमात्र परवाह नहीं है। आप सब लोगोंने तो उनसे कृपा-याचना की होगी और याचनाके फल भी चखे होंगे, पर मैंने दोनोंमेंसे कुछ भी नहीं किया। यदि मुझे विश्वास हो जाय कि मुंजालके हटनेसे अवश्य आर्यावर्त्त बच सकता है, तो कल सबेरे ही मैं हाथ पकड़कर उन्हें अलग कर दूँ। मैं किसीसे सहायता माँगनेवाला नहीं हूँ। राज्योंमें परस्पर एकता हो जाय, यह अच्छी बात है; परन्तु मुंजालके अलग होनेसे एकता होगी ही, इसका क्या विश्वास ? "

" हमें तो विश्वास है। " कुछ व्यक्तियोंने कहा।

" मुझे ज़रा भी सन्देह नहीं है। " छाती ठोककर देसलने कहा।

कृष्णदेवने देखा कि काकके शब्दोंका बहुत लोगोंपर प्रभाव पड़ गया है। अतएव उस प्रभावको मिटानेका उसने प्रयत्न किया, " विश्वास न हो, तो भी क्या है ? तुम पाटणको हाथमें लो, पाटणकी राज-सत्ताको हाथमें लो, और जो कीर्तिदेव कहते हैं, वही लक्ष्य-बिन्दु रखो। फिर हमारा प्रयत्न क्यों नहीं सफल होगा ? एक कीर्तिदेव इतना कर सकता है, तो सारा पाटण क्या नहीं कर सकता ? "

" अजी, फिर तो चाहो सो हो सकता है, " एक योद्धाने कहा, " पाटण क्या नहीं कर सकता ? "

दूसरेने पूछा, " यवनोंको निकाल भगानेका क्या कोई दूसरा मार्ग नहीं है ? मुंजाल भी रहे और काम भी हो जाय, यह अधिक अच्छा है। "

"मुझे ऐसा मार्ग नहीं दिखलाई पड़ता।" उदाके-से स्वरवाले व्यक्तिने कहा।

"यदि ऐसा कोई मार्ग मिल जाय, तो उसीपर चला जाय।" लक्ष्मणने कहा।

"परन्तु मुंजाल किसलिए इनकार करता है, इसपर भी किसीने विचार किया?" एक व्यक्तिने पूछा।

पीछेसे एक कोमल स्वर सुनाई पड़ा, "अपना सिर फोड़नेको।" सबका ध्यान उस ओर गया। काकने होठ चबा लिये। काश्मीरादेवीसे चुप न बैठा गया, इसलिए उन्होंने यह कह दिया। जिस मनुष्यको काकने उदा समझा था, उसके पीछे काश्मीरा, मंजरी और मंडलेश्वर बैठे थे। उन तीनोंको कोई पहचान न ले, इस विचारसे काकने ज़रा उच्च स्वरसे यह कह कर सबका ध्यान फिर आकर्षित कर लिया, "मुंजाल मेहताका अभिप्राय तो यही है कि जब तक गुजरात सबल न हो, जब तक उसका कार्य एकतन्त्रसे न होने लगे, तब तक मालवाके साथ सन्धि न करनी चाहिए।"

"कारण?"

"शान्तिसे हमारे देशमें विरोध उठ खड़ा होगा, इसलिए।"

कुछ व्यक्ति हँस पड़े। और "युद्धसे विरोधको शान्त होते कभी सुना है?" एक व्यक्तिने पूछा।

"हाँ।" काकने कहा, "हममें विरोध न हो, तभी विजय मिल सकती है। भले ही यह विचार असत्य हो, भले ही मुझे अपने शब्दोंपर विश्वास न हो; परन्तु मुंजालको अलग करके हम क्या कर सकेंगे? इसकी अपेक्षा तो अच्छा है कि यदि आपमें साहस है, आपको अपना पक्ष खड़ा करना है, तो उसे कीजिए। मुंजाल भी रहेंगे, हमारा पक्ष भी रहेगा। कीर्तिदेवके निश्चयकी रक्षा भी होगी और यवनोंकी शक्ति नहीं कि वे आर्यावर्त्तमें पैर भी रख सकें।"

"ऐसी कौन-सी बात है?" कुछ व्यक्ति बोल उठे।

"कौन-सी बात?" उत्तेजनासे काकका स्वर काँप रहा था। उसमें प्रभाव था, गौरव था, सचाई थी। "कीर्तिदेवने जबसे यवनोंके भयकी बात कही थी, तभीसे मुझे यह विचार हो रहा है। आप सब लोग एक प्रतिज्ञा करें तो शीघ्र ही इस विचारके अनुसार काम कर सकते हैं।"

" कौन प्रतिज्ञा ? " लक्ष्मणने अधीरतासे पूछा ।

" कीर्तिदेवजी जैसी एकताका प्रयत्न कर रहे हैं वैसी कभी हुई है कि अब होगी ? क्या अब तक किसी राज्यने स्वार्थ त्यागकर परमार्थी एकता स्वीकार की है ? महीने-भर पहले दो दो शत्रु आपपर आक्रमण करने आ रहे थे, क्या भूल गये ? आप नाममात्रकी एकता या सन्धि करेंगे, तो दूसरे राज्य आपको खा जायँगे । उन्हें तो यही चाहिए । आर्यावर्त्तमें एकता कब होगी, यह ज्ञात है ? जब कोई राजा एकचक्र राज्य करेगा, तब । समझे ? आपमें साहस हो तो मुंजाल मेहतासे जाकर कहिए कि इस प्रकार कलह और युद्धसे गुजरात सबल नहीं होगा, न हो सकता है,—जिन राजाओंको पराजित करो, उनका देश गुजरातके अधीन कर दो और उनपर अपने दण्डनायक नियुक्त कर दो । आपमें शक्ति हो तो कीर्तिदेवसे कहिए कि जब जूनागढ़, अवन्ति और शाकम्भरीमें गुजरातके दण्डनायक नियुक्त होंगे, तभी सच्ची सन्धि,—सच्ची एकता होगी और यवन लोग दुम दबाकर भागेंगे । इसी तरह जयदेव महाराजसे जाकर कहिए कि हमें दण्डनायकोंकी आवश्यकता है, सामन्तोंकी नहीं और न आवश्यकता है करद राजाओंकी । "

काकके शब्दोंमें कल्पनातीत प्रताप था । उसके प्रकट किये हुए विचारोंमें नवीनता थी । उस समयकी राजनीतिके अनुसार दूसरे राजाओंको पराजित करना, उनसे कर लेना और गाँव आदि लेना ठीक समझा जाता था परन्तु उन्हें पद-भ्रष्ट करके, दण्डनायक नियुक्त करके, राज्य चलानेका तनिक भी विचार नहीं किया जाता था । यद्यपि सोरठ और लाटमें पाटणके नियुक्त किये हुए दण्डनायक थे; फिर भी वहाँके राजा चैनसे राज करते, दण्डनायकोंके साथ सतत युद्ध किया करते और, जैसा कि हम पहले भागमें देख आये हैं, समय आनेपर पाटणको भी हानि पहुँचानेसे नहीं चूकते थे । अनेक लोगोंकी कल्पना-शक्ति स्तम्भित हो गई, कई विचारवान् मनुष्योंके मस्तिष्कके आगेसे परदा-सा खिसक गया । उन्हें नई राज-पद्धतिकी प्रकट होती हुई किरणें दिखलाई पड़ीं । त्रिभुवनपाल और काश्मीरादेवी, जो काकको बुद्धिमान्, वीर और स्वामिभक्त समझते थे, बड़े सम्मानसे उसे देखने लगे । मंजरी भी देखने लगी । उसने काकको ऐसा कभी न समझा था । उसके होठोंके अशुद्ध स्पर्शके स्मरणसे मंजरीका जी अभीतक

अकुला रहा था। काकके प्रति उसका तिरस्कार भी अभीतक ज्योंका त्यों था। इस सारी कटुतामें अज्ञात रूपसे मानों अमृतकी एक बूँद पड़ गई।

त्रिभुवनपाल जिस द्वारसे आये थे, उसी द्वारसे ऊँचे क़दका जो एक मनुष्य आया था, वह अब तक सबके पीछे मौन बैठा हुआ था। केवल उसकी आँखें ही दिखलाई पड़ रही थीं। उसके विशाल, तेजस्वी और प्रभुत्वशाली चक्षु चमक उठे। कृष्णदेवके क्रोधका पार न रहा। उसने क्या करना चाहा था और क्या हो गया। उसके सब उपाय नष्ट हो गये। केवल इतना ही नहीं, काकने जो विचार प्रकट किये थे, उनसे तो उसके प्राण ही उड़ गये। उसका संयम जाता रहा, उसके होठ काँप उठे, उसकी आँखें लाल हो गईं, वह उत्तेजित हो गया। उसने निकट बैठे हुए देसलके हाथमें अज्ञात रूपसे नख गड़ा दिये। उसने क्रोध शान्त करनेका बड़ा प्रयत्न किया परन्तु आख़िर कह डाला, " शाबाश आर्यावर्त्तके राजाओंके काल, शाबाश ! परन्तु अपनी इन युक्तियोंको सफल कैसे करोगे ? "

" इससे सरल और क्या है ? हमारे सद्भाग्यसे पाटणमें राजनीतिज्ञोंके मुकुटमणि मन्त्री मौजूद हैं, और वीरोंमें श्रेष्ठ उत्साही युवक राजा भी हैं; ये दोनों ही इस बातको मान लेंगे। "

" परन्तु क्षत्रिय-पुत्र यह कैसे सहन करेंगे ? क्या हमारे भुजदण्ड कट गये हैं कि ईश्वरके साक्षात् अवतार राजाओंको पदभ्रष्ट होने देंगे ? " देसलने कहा।

" मंडलेश्वरोंको तो मुंजालने नाममात्रका बना ही छोड़ा है, अब राजाओंकी पारी है। " एक व्यक्तिने कहा। इन शब्दोंसे देसलके अंगमें नखसे शिख तक विष व्याप्त हो गया।

" चाहे जिसकी पारी आवे, हमें अब इसकी परवाह नहीं। कीर्तिदेवने हमें समयपर सचेत कर दिया है। राज्य थे और नहीं हैं, इससे क्या ? इसके लिए क्या हम अपना सनातन गौरव हाथसे गँवा देंगे ? "

श्रोताओंमेंसे बहुतसे लोग अनिश्चित भावसे देखने लगे। वे समझ नहीं सके कि इन दो पक्षोंमें कौन-सा वास्तविक है। कृष्णदेव उस्ताद खिलाड़ीकी तरह उनके मस्तिष्कपरसे काकके शब्दोंका प्रभाव दूर होनेकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने अभिमानपूर्ण स्वरसे मज़ाक़में कहा, " तुम ब्राह्मण हो, इस लिए सारा दुःख तुम्हींको तो है ! "

" हाँ, मैं ब्राह्मण हूँ । " कहकर काकने मुखका आवरण दूर कर दिया, " कहिए, क्या कहते हैं ? "

" इसीलिए आर्यावर्त्तको निःक्षत्रिय करनेकी धुन समाई दिखती है । " एक व्यक्तिने कहा । काक पलभर इस बोलनेवालेकी ओर देखता रहा । उसकी आँखें चन्द्रमाके शीतल प्रकाशमें भी अग्नि उगल रही थीं । उसकी उत्तेजनामें घीकी आवश्यकता थी और वह परशुरामकी यादने पूरी कर दी ।

" निःक्षत्रिय करनेकी आवश्यकता होगी, तो वह भी करना होगा । "

यमराजकी गर्जनाके समान धीमें परन्तु भयंकर स्वरमें कृष्णदेवने कहा, " यह खबर है कि इसके पहले पाटण और तुम दोनों भूमिपरसे उठ जाओगे, ? " उसकी आँखें चमक रही थीं ।

" अर्थात् मुझे भयभीत करना चाहते हो ? "

" भयभीत नहीं करता, सचेत करता हूँ । "

" पर आपकी चेतावनीकी परवाह किसे है ? "

" परन्तु हमारी असल बात तो छूट ही गई, " भोले लक्ष्मणने कहा, " काकभटकी बात सबको ठीक मालूम होती है । "

" तो ज्ञात है, भारत यादवस्थली बन जायगा ? " कृष्णदेवने कहा ।

" यादवस्थली कहाँ नहीं बन जाती ? " काकसे प्रभावित हुए एक व्यक्तिने कहा ।

" बताओ, अब क्या करना है ? " कुछ व्यक्तियोंने कहा ।

" क्या करना है ? " काकने खड़े होकर कहा, " यदि नया पक्ष बनाना है, तो मुखके आवरण दूर कर दीजिए और चलिए, निकट ही शिवालय है । वहाँ चलकर प्रतिज्ञा कीजिए कि जबतक आर्यावर्त्तपर पाटणका एकचक्र राज्य नहीं होगा, तबतक हम शान्त होकर न बैठेंगे । है साहस ? " काक प्रभावपूर्ण नेत्रोंसे चारों ओर देखने लगा । कोई कुछ न बोला । कुछ लोग खड़े होने लगे, " नहीं तो चलिए, अपने अपने घरका मार्ग लीजिए । "

कृष्णदेव खड़ा हो गया । वह वैसे ही गौरवसे काककी ओर देखने लगा और वैसी ही तीक्ष्णतासे बोला, " और मैं कहता हूँ कि यदि आप लोगोंमें कोई मर्द हो, तो मुंजाल मेहता और उसके खुशामदी लोगोंको राज-

कार्यसे अलग कर दे। नहीं तो पाटण नष्ट हो जाएगा और अपने साथ आर्यावर्त्तको भी नष्ट कर डालेगा।"

"पाटणके नष्ट होनेसे क्या आप प्रसन्न न होंगे?" काकने कृष्णदेवको सुनाते हुए कहा।

कृष्णदेव अधिक सतर हो गया। उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं, उसकी भौंहोंपर रौद्ररस छा गया, "और मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि—"

कहीं झगड़ा खड़ा न हो जाय, इस भयसे कुछ लोग खड़े होकर बीच-बचावके लिए तैयार हो गये। उनमेंसे एक व्यक्ति यह अभिमानकी बात सुनकर बोला, "क्या कहते हैं?"

बहुत लोग कृष्णदेवको सज्जन मेहताके घर पड़ा रहनेवाला एक जागीरदार समझते थे। जवाबमें उसने अपूर्व ढँगसे अपने सिरका साफा अलग कर दिया। उसके सुन्दर मुखपर चन्द्रमाके प्रकाशमें अवर्णनीय गौरव और दिव्यताका आभास होने लगा। उसकी मनोहर आँखोंसे जैसे दावानल प्रकट हो गया। "मेरी प्रतिज्ञा," उसके काँपते हुए प्रभावशाली स्वरकी भयंकर प्रतिध्वनि हुई, "देवाधिदेव भगवान् श्रीकृष्ण मुरारिके वंशजकी प्रतिज्ञा है," कहकर उसने म्यानसे तलवार निकालकर ऊँची की, "कि जबतक इस हाथमें यह खड्ग है, तबतक यदि पाटण किन्हीं राजाओंको सिंहासनसे अलग करेगा, तो पाटणका नाम-निशान तक न रहने दूँगा।"

कृष्णदेवका वाक्य पूर्ण होते न होते सबमें एकदम खलबली मच गई। सबको प्रतीत हुआ कि कृष्णदेव पट्टणी नहीं है और उसने पाटणका अपमान किया है। तुरन्त ही अनेक तलवारें म्यानोंसे निकल पड़ीं। सभी लोग जिस ओर कृष्णदेव और काक खड़े थे उस ओर झपटे। कृष्णदेव और कुछ कहना चाहता था, परन्तु काकने उसे रोक दिया, "खेंगारजी," यह नाम सुनकर कृष्णदेव चौंक पड़ा और उसने अपने स्वभावको कुछ संयत किया, "यह पाटण है, जूनागढ़ नहीं।" कहकर काकने कृष्णदेवका हाथ पकड़ा और बड़ी कठिनतासे देसल और लक्ष्मणकी सहायतासे उसे दूर ले जाकर छोड़ दिया।

७—कल्पना-सृष्टिका अनुभव

षड्यन्त्रकारियोंमें फूट पड़ गई। अधिकांश लोग उत्तेजित हो गये और अब छिपे रहनेकी आवश्यकता न देख एक दूसरेके साथ बातचीत करने लगे।

आखिर सब बाहर निकलने लगे। सँकरे द्वारसे बाहर निकलनेमें द्वारपर बड़ी भीड़ हो गई और उस भीड़में पलभरमें ही मंडलेश्वर और काश्मीरा-देवीसे मंजरी कहीं अलग पड़ गई। काक सबसे पीछे आ रहा था। द्वारसे बाहर निकलकर मंडलेश्वर एक ओर खड़े हो गये। काश्मीरादेवी भी आ पहुँची, परंतु मंजरी निकलती हुई दिखलाई न पड़ी। दोनोंका हृदय धक-धक करने लगा। उन्हें पहले तो खयाल हुआ कि मंजरी पीछे रह गई होगी; परन्तु यह खयाल असत्य निकला। काक भी अब बाहर आ गया; परन्तु उसके साथ मंजरी नहीं थी।

" काक, " त्रिभुवनपालने कहा, " मंजरी कहाँ है ? "

" आपहीके साथ तो थी न ? "

" वह तो बाहर निकली ही नहीं। " काश्मीरादेवीने कहा। वे घबड़ा गई थीं।

काकने होठ चबा लिये, " आप बाहर देखिए, मैं भीतर देख आता हूँ। " कहकर वह फिर अन्दर गया। अन्दर बहुत खोज की; परन्तु मंजरीका पता न लगा। वह घबराया-सा बाहर आया।

" महाराज, अन्दर तो वह कहीं भी नहीं है। "

" तब ? "

" उदा उठा ले गया। " काकने कहा।

" क्या कहते हो ? "

" हाँ, मैंने उसका स्वर पहचान लिया था। काश्मीरादेवी जब बीचमें बोली थीं तब मैंने देखा था कि उसका ध्यान आपकी ओर आकर्षित हुआ है। "

मंडलेश्वरने दाँत किटकिटाये, " तो चलो, उस दुष्टको समाप्त किया जाय। "

" नहीं महाराज, मुझे ही जाने दीजिए। आपके जानेमें शोभा नहीं है और अब मंजरी—" काकने कटुतासे कहा, " निर्भय है। जब उदा उसके

गलेमें मंगल-सूत्र देखेगा, तो एक क्षण भी न रखेगा। आप अकेले जायँगे?"

"हाँ, परन्तु तुम तुरन्त खबर देना।" म्लान मुखसे काश्मीरादेवीने कहा। उनकी मूर्खतासे मंजरीके प्राण संकटमें पड़ गये, इसका उन्हें पश्चात्ताप हो रहा था।

"अच्छा।" कहकर काक आगे जाते हुए मनुष्योंकी ओर वेगसे बढ़ा। कुछ मनुष्योंके निकट होकर वह निकला, परन्तु उनमें उदा नहीं था। अचानक वह खड़ा हो गया। उसे एक विचार आया। वह अपरिचित खिड़की उनके आनेसे पहले किसीने खोली थी। उदा मेहता ही तो उस मार्गसे न घुसा हो। यदि ऐसा है, तो संभव है, उसी मार्गसे वह गया होगा। यह विचार आते ही काक दौड़कर उस खिड़कीके पास जा पहुँचा। एक ऊँचे क़दका राजपूत दीवारसे टिककर विचारमग्न खड़ा था। वही यह पुरुष था जो त्रिभुवनपालके पश्चात् इस खिड़कीसे घुसा था।

"राजपूतराज," घबरायेसे हाँफते हुए काकने पूछा, "इस खिड़कीसे होकर या इधरसे किसीको आपने जाते हुए देखा है?"

राजपूतने धीरे-से मस्तक उठाया और अपनी तीक्ष्ण दृष्टि काकपर स्थिर कर दी। वह धीरे और स्वर बदलकर बोला, "हाँ, एक व्यक्ति किसी दूसरेको उठाकर ले गया है।"

"कितनी देर हुई?"

"अभी, थोड़ी देर।"

काक एकदम वहाँसे जा रहा था, परन्तु उस राजपूतने हाथ ऊँचा करके उसे रोक लिया।

काकको यह हाथ ऊँचा करनेका ढँग कुछ परिचित-सा प्रतीत हुआ। उसने पूछा, "क्यों?"

"वह मनुष्य जहाँ तुम सोचते हो, वहाँ नहीं मिलेगा।" स्वाभाविक स्वरमें उस व्यक्तिने कहा। काकने स्वर पहचान लिया। चकित होकर वह दो पैर पीछे हट गया और बोला, "मेहताजी?"

"हाँ," मुँजाल मेहताने कहा, "तुम्हें उस मनुष्यसे काम है?"

"महाराज, वह मेरी स्त्रीको अभी उठा ले गया। वह कहाँ गया है, कुछ ख़बर है?"

"तुम्हारी स्त्री ? जिसके साथ आज तुम्हारा विवाह हुआ ?"

काकके आश्चर्यका पार न रहा। "आह !"

"तो मोढ़ेरा दरवाजेसे जाओ। उदा उसी मार्गसे खंभात जा रहा है।"

"ऐं !"

"हाँ, हो सके, तो उदा मेहताको भी लौटा लाना। उसके बिना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

काक नमस्कार करके इस विलक्षण महापुरुषके प्रभावसे स्तब्ध होकर यथासंभव शीघ्रतासे मोढ़ेरा दरवाजेकी ओर रवाना हुआ।

मुंजाल जिस प्रकार खड़ा था, उसी प्रकार दीवारसे टिका हुआ खड़ा रहा। बहुत समय बाद निर्जन स्थानमें, चाँदनी रातके रसीले वातावरणमें उसे शान्तिसे विचार करनेका अवसर मिला। उसने बहुत देर तक काकके विषयमें विचार किया। उसकी राजनीतिज्ञता, उसका शौर्य, उसकी स्वामिभक्ति, उसका विवाह, उसके कार्य-कलाप आदि सभीका अवलोकन किया। इसी अवस्थामें उसे कीर्तिदेवका भी स्मरण हो आया। कुछ ही दिनोंमें इस बाल-योद्धाने कैसा वातावरण उत्पन्न कर दिया है ! कैसे विचारोंकी सृष्टि कर दी है ! उसमें कैसी महत्ता है ! उसे कैद न कर लिया होता, तो वह न जाने क्या कर डालता ! विचार करते करते सुन्दरियोंका मद मर्दन करनेवाले उसके मुखका भी उसे स्मरण हो आया। छातीपर सिर लटकाकर अधमुँदी आँखोंसे वह राजनीतिज्ञ महाअमात्य कल्पनापर सवार हुआ। क्षणोंमें भुवनोंके अन्तरको पार करनेवाली उस अश्विनीके पर आ गये और एकदम अकथ्य रूपमें, अज्ञेय रूपमें कीर्तिदेवका वह मुख किसी स्त्रीके रूपमें बदल गया। वह मुख परिचित मालूम हुआ—पहचान लिया गया। वह तो सेठानी फूलकुँवरिका * था !

मुंजालने सिर ऊँचा किया। कल्पनाके परोंका प्रभाव देखकर वह हँस पड़ा। उसने चारों ओर दृष्टि डाली। कल्पनाकी घोड़ी अधिक वेगसे उड़ने लगी।

फूलकुँवरिका मुख कैसा मधुर, भला और निर्दोष था। उसमें कैसा पूज्यभाव था। "कितने वर्ष हो गये ?" मुंजाल बुदबुदाया, "अठारह वर्ष

* मुंजालकी मृत स्त्री, सज्जनकी बहन।

हुए, वह बेचारी स्वर्गवासिनी हो गई। समय जाते देर लगती है ? चालीस तो मेरे कभीके पूरे हो गये। ”

घोड़ीने अपने पर फड़फड़ाये। भूत-व्योममें वह बिहार करने लगी। अमाप अन्तरको उसने क्षणोंमें पार कर डाला।

मुंजालकी आँखोंके आगे दृश्य-परम्परा आने लगी।

वह छोटा बालक था और इस वाटिकामें चोरीसे फूल तोड़ने आया करता था। सज्जनका छोटा भाई और वह साथी थे। वह देवके समान दैदीप्यमान था और फूलकुँवरि थी स्वप्नसृष्ट अप्सराके समान। दोनों खेलते, ऊधम मचाते और अनेक बार इस दीवारपर चढ़ा करते। इस द्वारसे कई बार आया-जाया करते। उसका विवाह हुआ,—अग्निकुंड,—दूल्हा-दुल्हिन,—स्त्री-पुरुषोंका समूह,—बरातका जुलूस,—भोजनार्थ आये हुए समस्त नगर-जनोंकी अनन्त पंक्ति,—कैसा ठाठ था! और ज़रा लजाती, जरा हँसती, ज़रा घबराती, वह उमंगभरी नववधू!

उसके पिता मर गये, उसको नगरसेठका पद प्राप्त हुआ। उसने धनको फूँका, फूलकुँवरि-सहित और उसके बिना भी भोग भोगे, देश और परदेशके सैर-सपाटे किये, कमाया और गँवाया।

उसके एक बालक हुआ। तब उसे और फूलकुँवरिको कितना हर्ष हुआ! वह इसी द्वारसे छिपकर उससे मिलने आया करता। वह स्नेह-उन्मत्त सुन्दरी कैसी उमंगसे पत्नी-व्रतसे चलित हुए पतिको अपना बनानेके लिए हाथोंमें दुलारे पुत्रको लेकर आती थी! उसके पिताकी वाटिकामें एक छोटा-सा सरोवर था। उसके तटपर वे बैठा करते थे। उस आनन्दका अमृत-रस-चखनेके लिए मुंजालने अपनी कल्पनाकी घोड़ीको एक क्षणके लिए रोका और आँखें मूँदकर उस रसको चखा।

इसके पश्चात् वह चन्द्रपुर गया। मीनलदेवीसे मिला और उसका गुलाम बन गया। वहाँसे लौटा। मीनलदेवी पाटण आई। साम्राज्यके स्वप्न सिद्ध करनेको वह महा अमात्य बना। राजतंत्र हाथमें लिया। आकाशस्थ चन्द्रमासे प्रेम करनेवालेकी भाँति वह मीनलदेवीको दूरसे पूजने लगा और अपने घरकी छोटी-सी परन्तु सुन्दर दीपिकाको वह भूल गया।

कल्पनाकी घोड़ी अन्धकारमय प्रदेशमें उड़ती गई। मुंजालने कपालपरसे पसीना पोंछ डाला।

उसने फूलकुँवरिकी परवाह नहीं की और वह कोमल वल्लरी मुरझा गई। मुरझाते हुए उसने क्षणभरके लिए ईर्ष्या प्रकट की। वह क्रोधसे उन्मत्त हो गया,—क्रूरतासे उस असहाय अबलाको उसने दूर ढकेल दिया और असहाय पुत्रको घरसे बाहर कर दिया। तब माता-पुत्र वन्थली गये और उन्होंने सज्जन मेहताका आश्रय लिया। वह खूनी बन गया, सज्जनका शत्रु हो गया। परिणामस्वरूप पुत्र मर गया और स्त्री तड़प तड़प कर स्वर्गवासिनी हो गई। फूल गई, सुगन्ध भी साथ ले गई।

मुंजालके हृदयमें आघात हुआ। उसने चन्द्रमाकी ओर देखा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह उसकी हँसी उड़ा रहा है।

वह बुदबुदाया, "मीनलदेवी न होतीं, तो मैं एक क्षुद्र-सा सेठ ही बना रहता। धन और परिवार दोनोंके बीच जीवन समाप्त कर डालता।" वह कुछ देर दाँतोंसे अँगूठेको दबाये खड़ा रहा, "सेठानी फूलकुँवरि नहीं है..." वाक्य पूर्ण करनेका उसमें साहस नहीं रहा, "जीवन...श्मशान हो गया। मैं अमात्य—राजाओंका राज्य बढ़ानेका शस्त्र—लोभियोंकी इच्छा-पूर्तिका साधन...जब तक जियूँगा, तब तक इसी प्रकार...अग्निदेवकी भभकती हुई ज्वालाएँ जब शान्ति देंगीं, तब तक—वह एक लड़का भी जीता न रहा कि उसे देखकर जीवन बिता देता।"

हजारोंको रुलानेवाली उसकी निष्ठुर आँखमेंसे एक आँसू टपक पड़ा। वह सतर हो गया। उसने चारों ओर देखा और खाँसकर गला साफ़ किया।

"प्रभात होने वाला है। चलो, चला जाय।" परन्तु उसके पैर नहीं उठे। बीस बरसके पश्चात् वह इस जगह खड़ा हुआ था। स्थानके संस्मरण सचेत हो गये थे और वे उसके हृदयको भूत-जीवनकी याद दिला दिला कर आर्द्र बना रहे थे। इस समय मुंजाल पाटणका अमात्य नहीं था, फूलकुँवरिका प्यारा पति था। उसकी गर्दनकी मरोड़मेंसे गर्व निकल गया। उसके मुखपरसे दृढ़ता जाती रही। उसके कंधे ज़रा लटक गये। वह वहाँसे द्वारकी ओर फिरा। द्वार खोला और वाटिकाके अन्दर घुसा और तब बीस वर्ष पहले इस वाटिकामें किये विविध विहारोंके विस्मृत स्मरणोंका आकर्षण दुर्जय हो गया।

ईश्वरके कोपसे नष्ट हुए नगरका जीता बचा हुआ कोई नागरिक जैसे खण्ड-हरोंमें घूम रहा हो और राखके ढेरसे ही पहचाने जानेवाले प्रासादका स्थान

खोजकर मन ही मन उसकी विनष्ट शोभाको सचमुच प्रस्तुत समझकर, मृत मनुष्योंसे,—उनके विस्मृत वार्तालापसे, उनके अदृष्ट हास्य और चुंबनोंसे उस शोभा और सुन्दरताको सजीव कर रहा हो,—ठीक उसी तरह मुंजाल उस वाटिकामें घूमने लगा, कई वृक्षोंको पहचानने लगा, कई परिचित सीढ़ियोंको चुम्बनसे चर्चित किये पैरोंकी काल्पनिक झंकारसे गुँजाने लगा, कई प्रिय वृक्षोंकी छायाद्वारा सुनें न सुनें प्रणय-वाक्य सशब्द बनाने लगा। प्रणय-योगसे भ्रष्ट वह संस्मरण-पूजक मन्त्री बुद्धिमानी त्यागकर, राजनीतिज्ञोंका विवेक छोड़कर, उर्वशीपर अनुरक्त पुरुरवाकी भाँति बन गया।

दुनियाके व्यवहारमें दृष्टि पड़नेवाले अनेक दुर्गोंके समान कार्यदक्ष पुरुष केवल बुद्धिमान बन जाते हैं। उनका हृदय स्वार्थ-साधनेका साधन ही हो जाता है। ऐसे हृदयपर एक तह चढ़ जाती है; परन्तु किसी जगह किसी समय पैर रखनेसे वह तह टूट भी जाती है और तब नीचे बहता हुआ, प्रयत्न-पूर्वक ढाँका हुआ रस-स्रोत,—अन्दर उबलती हुई लहरोंका सागर उमड़ पड़ता है,—टूटी हुई तहमेंसे ऊपर आ जाता है। इस समय मुंजालको भी ऐसा ही हुआ। संस्मरणोंके आनन्दका अनुभव करता हुआ वह धीरे धीरे इस प्रकार लौटने लगा, जैसे कंजूस बहुधा प्राप्त धनको त्यागते हुए विलम्ब करता है। इसी समय उसे जल-कुण्डका स्मरण हो आया। उसको बिना देखे लौटनेकी उसे इच्छा न हुई और वह उस ओर जानेके लिए पलटा।

८—जल-कुण्डकी ओर

कुण्डके निकट जाते ही मुंजालको किसीकी बातचीत सुनाई पड़ी। वह चौंककर खड़ा हो गया और सुनने लगा। बातचीत करनेवाले धीरे धीरे परन्तु उत्तेजित होकर बोल रहे थे। मुंजालने उनके स्वरसे उन्हें पहचाननेका प्रयत्न किया। एक स्वर कृष्णदेवका था और दूसरा भी कुछ परिचित मालूम हुआ।

"अच्छा, ठीक है," वह परिचित स्वरवाला कह रहा था, "तुम कौन हो, यह नहीं बताओगे? मैं कल पिताजीसे कहूँगा।" मुंजालको ध्यान

आया कि यह स्वर सज्जनके लड़के लक्ष्मणका है। "तुम्हारा हमने मित्रकी भाँति आदर-सत्कार किया। हमें क्या खबर थी कि तुम शत्रु हो?"

"भैया, यह क्या कह रहे हो?" एक स्त्रीका स्वर सुनाई पड़ा। मुंजाल धीमे पैरों जरा आगे बढ़ा और वृक्षकी आड़में खड़े रहकर ध्यानपूर्वक देखने लगा।

लक्ष्मण खड़ा था, उसके निकट पुरुष-वेशमें यह अंतिम वाक्य उच्चारण करनेवाली लड़की खड़ी थी। कृष्णदेव कुण्डकी पालपर नीचे पैर लटकाये बैठा था।

मुंजाल उस लड़कीको देखकर चौंक पड़ा। लड़कीका स्वरूप उस चाँदनी रातमें मनोहर मालूम हो रहा था। जिस स्मरण-पटपर चित्रित मुखका वह इस समय कल्पनाद्वारा साक्षात् कर रहा था, उसकी कुछ कुछ अपूर्व रेखाएँ उसमें दिखलाई पड़ रही थीं। मुंजालको ठीक ठीक मालूम नहीं था कि सज्जनके कितनी लड़कियाँ हैं; परन्तु उसकी बुआके मुखके स्मरणसे वह इस भतीजीको भी सरलतासे पहचान गया।

"मित्र," शान्तिसे कृष्णदेवने कहा, "मुझे किसीका भय नहीं है, क्या मैं सज्जन मेहतासे डरूँगा। तुम्हारे पिता तो बड़े भले आदमी हैं। मैं कौन हूँ और कौन नहीं, इससे तुम्हें क्या मतलब?"

लक्ष्मणने क्रोधसे पृथ्वीपर पैर पटक कर कहा, "ठीक है। अब देखोगे कि क्या मतलब है।"

"बहुत अच्छा।" निर्लज्जतासे हँसते हुए कृष्णदेवने कहा।

"भैया, लक्ष्मण भैया," सोमसुन्दरीने अपने भाईका हाथ पकड़कर कहा, "अब घर चलो। सबेरे सब हो जायेगा। कितनी देर हो गई है, कुछ खबर है?"

"हाँ, चलो।" कहकर लक्ष्मण क्रोधसे सोमका हाथ पकड़कर वहाँसे चला गया। जाते जाते सोमने पीछे दो-चार बार कृष्णदेवकी ओर दृष्टि फेंककर आश्वासन दिया। कृष्णदेवने संकेतसे सोमसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। सोमने भी संकेतसे ही उसे ठहरनेको सूचित किया। क्रोधमें भरा हुआ लक्ष्मण आगे बढ़ता गया।

मुंजालने इन संकेतोंको देखा। उसे हँसी आ गई। वह मन ही मन

बुदबुदाया, " दुनिया ज्योंकी त्यों है ! " उसने इस नाटकको अन्ततक देखनेका निश्चय किया और जहाँ था, वहीं खड़ा रहा।

इस प्रकार कुछ समय बीत गया और सोमसुन्दरी जल्दीसे लौट आई। उसने पुरुष-वेश त्याग दिया था।

" कहो, क्या कहते हो ? "

" क्यों, बड़ी जल्दी है ? " कृष्णदेवने कहा।

" हाँ, प्रभात होनेवाला है। "

" सोमसुन्दरी, " कृष्णदेवने गाम्भीर्यसे पूछा, " तुममें साहस है ? "

लड़की समझ न सकी और आश्चर्यसे देखती रही। उसकी बड़ी बड़ी तेजोमय आँखोंके अवर्णनीय भावोंने मुंजालका भी ध्यान आकर्षित कर लिया।

" क्यों ? " उसने पूछा।

" तुमने जो वचन दिया था, उसका पालन करोगी या नहीं ? "

" क्या, विवाहका ? उसकी चर्चा इस समय ? " अधीरतासे घरकी ओर देखते हुए सोमने पूछा।

" हाँ, इस समय। तुम्हारे घरमें अब मैं नहीं रह सकूँगा। " अपने मनोहर स्वरमें कृष्णदेवने बातचीत आरम्भ की। सोमकी आँखोंमें प्रीति और प्रशंसा स्पष्ट रूपसे चमक रही थी। " इस समय वे चालीस मनुष्य जानते हैं कि मैं कौन हूँ, कल सबेरे मुंजाल और जयदेव भी जान जायँगे। इसलिए अब इस प्रकार मुझसे न रहा जा सकेगा। बोलो, वचनका पालन करोगी ? " उसने सोमपर अपनी दृष्टि स्थिर करके सत्ता-पूर्वक पूछा।

" पिताजीसे पूछे बिना ? "

" वचनका पालन पिताजीको करना है, या तुम्हें ? तुम्हें उनका भय हो, तो घबराओ मत। मुझे भय नहीं है। "

" क्यों ? "

" मैं तुम्हारा हरण करूँगा। जब मेरे पूर्वज रुक्मिणीका हरण करके लाये थे, तब मुझे कौन-सी बाधा हो सकती है ? यह तो परापूर्वसे चला आ रहा है। " कृष्णदेवने हँसकर कहा। कृष्णदेवका हास्य उसके पूर्वज गोपीजनवल्लभकी वेणुके समान मनोहर और सर्वसंशयोंका नाशक था। श्रद्धालु स्नेहसिक्त बालाके हृदयमें शब्दोंकी अपेक्षा उस हास्यसे अधिक विश्वास हुआ। वह भी हँस पड़ी।

" क्या तुम यदुवंशी हो ? " उसने आशापूर्ण भावसे पूछा ।

मुंजालको प्रतीत हुआ कि लड़कीपर कृष्णदेवका जादू पूरा पूरा चल गया है।

" यदुवंश ! हाँ, यदुवंशका गौरव आज मेरे कारण है ! " उसने अभिमानसे कहा, " तुमने कहा था कि मेरा वंश उच्च होगा, तो तुम विवाह कर लोगी । बोलो, अब क्या कहती हो ? " कह कर कृष्णदेव उठ खड़ा हुआ ।

लड़की कुछ देर देखती रही । उसने निःश्वास छोड़कर कहा, " मेरे पिताजी वंथलीमें ही दंडनायक हैं और मैं तुमसे विवाह करके वहाँ चलूँ, तो क्या हाल हो ? "

" क्यों ? "

" दंडनायककी पुत्री साधारण यादवके घर ? मेरे माता-पिता लज्जासे न गड़ जायेंगे ? "

कृष्णदेव खिलखिलाकर हँस पड़ा । वह निकट आया और उसने अपनी आँखोंके तेजसे सोमको अभिमन्त्रित कर दिया । वह वशीभूत हो गई ।

" सोमसुन्दरी, मुझसे विवाह करके तुम्हें लज्जा मालूम होगी ? " उसने कहा, " पगली, तुम्हारी सतहत्तर पीढ़ियोंका गौरव बढ़ जायगा । "

" किस प्रकार ? "

कृष्णदेवने प्रेमावेशसे उसका हाथ पकड़ लिया । " तुम रानी बनोगी । जयदेवकी रानियाँ तुम्हारा पद देखकर ईर्ष्या करेंगीं । बोलो, चलोगी ? " कहकर कृष्णदेवने स्वामिभावसे एक हाथ सोमकी कमरमें डाल लिया । " यह रात अभी बीत जायेगी । " मोहान्ध हुई विश्रब्ध बाला आवेशसे कृष्णदेवकी भुजाओंमें छिप गई । मुंजाल विचारने लगा कि बीचमें पड़ा जाय, या नहीं । और उसके किसी निश्चयपर आनेके पहले ही कृष्णदेव सोमको पिछले द्वारकी ओर जानेवाली सीढ़ियोंकी ओर खींचने लगा । मुंजाल भी पीछे पीछे छिपता हुआ चलने लगा । सोमने कुछ देरमें ऊपर देखा और स्नेहसे पूछा, " तुम कहाँके राजा हो ? "

" भोली, तू अभीतक नहीं समझी ? "

" नहीं । "

" मैं जूनागढ़के रा' का खेंगार हूँ । " हँसते हुए कृष्णदेवने कहा । उसके मुखसे यह वाक्य पूरा निकला भी न था कि सोम उसकी भुजाओंसे छूटकर अलग जा खड़ी हुई ।

" नवघण रा'के खेंगार ? " उसकी आँखें शुष्क और भयपूर्ण हो गईं। उसका मुख फीका पड़ गया।

" हाँ, घबरा क्यों रही हो ? चलो। "

सोम एक पैर पीछे हट गई। " वही नवघण रा', जो पाटणका कट्टर शत्रु है ? और जिसने मेरे पिताजीको मार डालनेकी प्रतिज्ञा की है ? " प्रत्येक वाक्यके साथ वह एक एक पैर पीछे हट रही थी।

" हाँ, वही। " निकट आते हुए खेंगारने, जिसने कृष्णदेव नाम रखकर अपना असल नाम छिपा लिया था, कहा, " इस शत्रुताकी गाँठको इस समय और मज़बूत कर दिया जाय। चलो, समय बीता जा रहा है। "

" अब मैं तुम्हारी प्रतिज्ञाका अर्थ भी समझ गई। " काककी बातके उत्तरमें कृष्णदेवने जो कहा था, उसका अर्थ समझते हुए सोमने कहा।

" चलो। " सत्तापूर्वक खेंगारने कहा।

" नहीं। " सोमने दृढ़तासे कहा।

" क्यों ? "

" सज्जन मेहताकी पुत्री रा'के लड़केसे कैसे विवाह कर सकती है ? " सोमने सिर हिला दिया।

" चलो, दिखलाऊँ कैसे। "

" नहीं। " कहकर सोम लौटने लगी।

" क्या इस प्रकार वचन-भंग करोगी ? " कहकर खेंगार एक छलाँग मारकर उसके पास पहुँच गया।

सोम कहना ही चाहती थी कि " नहीं नहीं " परन्तु खेंगारने एक हाथसे उसका मुँह दबा दिया और दूसरे हाथसे उसे उठाकर द्वारकी ओर जानेके लिए छलाँग भरी।

मुंजालने खेंगारकी गर्दन पकड़ ली। इस अचानक स्पर्शसे खेंगार चौंक पड़ा। घूमकर तलवार खींचने लगा। मुंजालके सबल बाहुके ज़ोरसे खेंगारका हाथ मुड़ गया। सोम भूमिपर आ गिरी और खेंगार दूर हट गया।

दूर हटे बिना निस्तार नहीं था। सिंहके समान विकराल बना हुआ उसका वदन क्रोधसे भयानक हो गया। मंत्री मुंजाल, शक्तिके शान्त गौरवसे देखने लगा। पलक मारते ही खेंगारने तलवार खींची और आक्रमण कर दिया।

मुंजालकी लम्बी प्रचण्ड तलवारने उसके वारको झेला, तलवारोंसे चिनगारियाँ निकल पड़ीं। खेंगार भी तलवार चलानेवाला था। मुंजालकी खड्गविद्या और उसका बाहुबल अप्रतिम था। केवल चार-छही क्षण इन महारथियोंका भयंकर युद्ध हुआ। मंत्रीके प्राबल्यसे खेंगारकी तलवार दूर जा गिरी, उसके पैर मुड़ गये। यमराजके समान महाअमात्य तलवारकी नोक खेंगारके गलेपर रखकर खड़ा हो गया।

चन्द्रमाके प्रकाशमें खेंगारने मन्त्रीको पहचान लिया। उसका अंग अंग काँप उठा और वह बोला, "मुंजाल या ब्रह्मराक्षस?" तलवारके बलकी अपेक्षा मन्त्रीके अचानक आगमनसे खेंगारका शरीर शिथिल हो गया।

"दोनों।" ज़रा हँसकर मुँजालने कहा, "पाटण विजयी हुआ, जूनागढ़ पराजित।" खेंगारने आशा त्याग कर आँखें मूँद लीं। "उठो, खेंगारजी, पृथ्वीपर पड़े हुए शत्रुको मैं नहीं मारता। अब मेरे घरमें रहनेके योग्य तुम नहीं हो। सिधारो।" कहकर वह सत्तापूर्वक द्वारकी ओर अंगुलीसे दिखलाता हुआ खड़ा हो गया।

अपमानित खेंगार उठा। उसने नीचे पड़ा हुआ साफ़ा और तलवार उठाई और दाँत किटकिटाता हुआ द्वारसे बाहर निकल गया। मुंजालने अंदरसे द्वार बन्द कर दिया।

घबराई हुई सोम इस युद्ध और इस वार्तालापको दिङ्मूढ़ होकर देख और सुन रही थी। वह इस नव-आगन्तुकको पहचान न सकी। खेंगारने जब इसका नाम लिया था, तब वह भली भाँति सुन नहीं सकी थी। मुंजाल जब द्वार बन्द करके लौटा, तब वह उठकर खड़ी हो गई।

"लड़की," उसने कठोर स्वरमें कहा "अच्छे घरमें जन्म लेकर भी ऐसा कर रही है? जा, भाग जा। फिर किसी अपरिचितके साथ ऐसा व्यवहार न रखना।"

लज्जित हुई सोम नीचा सिर किये वेगपूर्वक चली गई। मुंजाल बुदबुदाया, "पाटणमें जब तक ऐसी ऐसी लड़कियाँ हैं, तभी तक उसका जय-जयकार है।"

लड़कीके अदृश्य होनेपर मुंजाल जिस द्वारसे आया था, उसीसे निकल गया।

९—उदाकी खोजमें

काक दौड़ता हुआ त्रिभुवनपालके महलमें पहुँचा। उसने दो शब्दोंमें सब बातें कह सुनाईं और उनके अस्तबलमेंसे एक तेज़ घोड़ी लेकर वह शीघ्रतासे मोढ़ेरा दरवाज़ेकी ओर रवाना हुआ।

मंजरीने काकका जो तिरस्कार किया था, वह अभी तक उसे अखर रहा था और इसी कारण जिस उमंगसे वह पहले मंजरीकी सहायताको दौड़ता था, वह उमंग इस समय उसके हृदयमें नहीं थी। यह विचार भी उसे आया कि ऐसी अभिमानिनी भार्याको किसलिए दुखसे बचानेका प्रयत्न किया जाय ? परन्तु उसकी स्त्रीको उदा ले जाय, यह भी उसे असह्य प्रतीत हुआ और उसकी वीरताके विषयमें वह निकृष्ट विचार कर ले, यह भी उसे भला न लगा। इसके सिवा उसकी कल्पनाने उसकी आँखोंके आगे उदाका विजयसे हँसता हुआ उल्लसित मुख और कैद हुई निर्दोष रमणीका दयनीय मुख, दोनों लाकर खड़े कर दिये। इस मुख-दर्शनसे उसका आवेश अत्यन्त बढ़ गया और चपल अश्वराजके अप्रतिम आवेगसे वह स्पर्द्धामें उतर पड़ा।

वह मोढेरा दरवाज़ेपर पहुँचा। द्वारपाल जाग गया था।

" ज़रा द्वार तो खोलो। "

" इस समय नहीं खुल सकता। ज़रा देर है। "

" मूर्ख, अभी तो खोला था, भूल गया ? " द्वारपाल चौंक पड़ा। " मन्त्री महाराज कह नहीं गये कि मैं आ रहा हूँ ? "

" नहीं, मुझसे कुछ नहीं कहा। क्या आप उन्हीं लोगोंमेंके आदमी हैं जो अभी गये हैं ? "

" हाँ, नहीं तो मैं जानता कैसे ? पाँच-छह आदमी गये हैं, क्यों ? " काकने पूछा।

" चार-पाँच आदमी थे। " कहकर द्वारपाल द्वार खोलने लगा।

काक विचारमें पड़ गया। तब क्या दो ही आदमी साथ लेकर उदा मेहताने खंभात जानेका साहस किया है ? परन्तु अधिक विचार न करके दरवाज़ा खुलते ही तुरन्त उसने घोड़ीको एड़ लगाई और वह पवन-वेगसे चल दिया।

कुछ दूर आगे जानेपर दो रास्ते मिले। अतएव काक विचारमें पड़ गया। उसके सद्भाग्यसे प्रातःकाल होनेकी तैयारी हो रही थी, अतएव कुछ-कुछ दिखलाई पड़ने लगा था। उसने प्रयत्न करके घोड़ेके पैरोंके चिह्न पहचाने और जिस रास्ते वे लोग गये थे, वही रास्ता उसने पकड़ा।

कुछ देरमें सवेरा हो गया और यथासंभव शीघ्रतासे काकने अपनी घोड़ी आगे बढ़ा दी। आगेके घोड़े बड़े वेगसे बढ़े जा रहे थे। अतएव वे सरलतासे नहीं पकड़े जा सकते थे।

घोड़ी अपना काम किये जा रही थी। अतएव काकको विचार करनेका अवसर मिला। आगेवाले घोड़े इतने वेगसे जा रहे थे कि उनमेंसे किसीपर भी मंजरी नहीं मालूम हुई। तब क्या उदाने उसे अपने घोड़ेपर बैठा लिया होगा? मंजरीको अपने हाथोंमें थामकर उदा घोड़ेपर बैठा होगा? यह विचार आते ही काकको रोमाञ्च हो आया। उसने घोड़ीको ज़ोरसे एड़ लगाई। मार्गमें एक किसान मिला। उससे पूछनेपर उसे विश्वास हो गया कि आगे जानेवाले चार ही घुड़सवार थे। वह ऐसी युक्ति खोजने लगा जिससे ऐसी संभावना न रहे कि उन्हें मात करने जाकर वह स्वयं मात हो जाय।

इतनेहीमें एक गाँव आ गया और काक घोड़ीको पानी पिलानेके लिए तालाबपर गया। इसी समय उसने उन चारों सवारोंको एक वृक्षके नीचे बैठे देखा। उसके आश्चर्यका पार न रहा। उन चारोंमेंसे एक भी उदाकी भाँति नहीं मालूम हो रहा था। निराशासे काककी आँखोंमें अँधेरा छा गया। वह तालाबके घाटपर बैठकर विचार करने लगा कि अब क्या किया जाय।

पहला विचार तो उसे यह हुआ कि वह सवारोंका पीछा छोड़कर लौट जाय; परन्तु फिर उनसे कुछ जाननेके लिए अपनी घोड़ीको बढ़ाकर उनकी ओर गया।

"भटजी," काकने नम्रतासे पूछा, "आप पाटनसे आ रहे हैं?"

"क्यों?" एकने पूछा।

"नहीं, हम दधिस्थलीसे आ रहे है।" दूसरेने उत्तर दिया। यह बात स्पष्ट रूपसे झूठ मालूम हुई; कारण कि दधिस्थली त्रिभुवनपालका गाँव था और वहाँके सवार इस प्रकार व्यर्थ ही मारे मारे फिरें, यह असम्भव था।

"आप लोगोंने रास्तेमें कुछ घुड़सवारोंको देखा है?"

"घुड़सवार!" वयसमें सबसे बड़े सवारने कहा, "मैं सोचता हूँ कि हमारे

आगे घुड़सवार थे अवश्य। क्यों जी?" कहकर उसने दूसरेसे साक्षी दिलवाई।

"वे किस ओर गये हैं?"

ऐसा मालूम होता है कि मोढ़ेराकी ओर।"

क्या ये लोग सच बोल रहे थे? चार ही आदमी दरवाज़ेसे निकले और उसकी धारणाके अनुसार वे यही थे। तब उदा मेहता कहाँ गये?

"आप लोग कहाँ जा रहे हैं?"

"भाई, आप तो जैसे सारे गाँवकी पीड़ा अपने ही सिर लिये हैं!"

काक जरा हँस पड़ा। "इसीलिए तो पूछ रहा हूँ। मैं भी आप लोगोंके साथ चलना चाहता हूँ।"

"हम तो मालपुर जा रहे हैं।"

काक उलझनमें पड़ गया। यदि इन लोगोंकी बात सच हो, तो कहाँ मालपुर और कहाँ कर्णावती।

"नहीं, तब मैं न चलूँगा। मुझे तो कर्णावती जाना है।" इन लोगोंके साथ जाना निरर्थक समझकर काकने कहा।

उस बूढ़े सिपाहीने दूसरेकी ओर आँख मारकर कहा, "बैठो, जरा बैठो, हम लोग जरा जल-पान कर लें।"

"नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए।" काकने कहा, "मैं आगे जाकर कर लूँगा।"

"तुम ब्राह्मण हो?" उन सवारोंमेंसे एक युवकने तिरस्कारपूर्वक पूछा।

"हाँ," कहकर काक घोड़ीपर चढ़ा और रवाना हो गया।

वह कुछ आगे बढ़ा कि उसे उस युवकका मुख परिचित-सा मालूम हुआ। वह स्मरण करने लगा कि यह कौन है? इसी समय वे सवार उसकी ओर आते हुए दीख पड़े। वह युवक सबसे आगे था। उसने देखा, तो उसे स्मरण हो आया कि उसका मुख किसके समान है। उसने जिस तिलक-चन्द्रको खंभातमें मार डाला था, क्या यह उसका भाई है? यदि ऐसा है, तो अवश्य ये सब उदा मेहताके ही मनुष्य हैं। काकने एकदम घोड़ीको घुमा कर उसके सामने कर दिया और पूछा, "क्यों भाइयो, यह एकदम कहाँकी यात्रा आरम्भ कर दी?"

"हमने विचार किया कि चलो कुछ दूर आपहीके साथ चलें।" बूढ़े सवारने कहा और सब घोड़े साथ साथ चलने लगे।

काकको ऐसा प्रतीत हुआ कि इनकी भलमनसाहतके भीतर कोई घात छिपा हुआ है। उस घातको जाननेके लिए उसने पूछा, " चलिए, रास्तेमें मेरी भी तबीयत बहलेगी और ये भाई तो परिचित मालूम होते हैं ? "

" मैं ? " जरा चौंककर उस युवकने कहा।

" तुम तो खम्भातके रहनेवाले हो ? " " नहीं। "

" तुम्हारे ही बड़े भाईके समान खंभातमें मेरा एक मित्र था। "

उस युवकके मुखपर जरा आवेशका भाव झलक आया। काकने उस भावको देखा और आगे कहा, " तिलकचन्द्र ऐसा होशियार और विद्वान् था कि क्या कहूँ। परन्तु एक रातको उसे किसीने मार डाला। "

उस युवकका मुख लाल हो गया; परन्तु वृद्ध सैनिकने पूछा, " कैसे ? "

" यह तो मालूम नहीं। अपने उदा मेहताजीसे मैंने कारण पूछा था; परन्तु उन्होंने कुछ नहीं बतलाया। "

" अच्छा ! " उस वृद्धने कहा।

" तुम उदा मेहताको पहचानते हो ? " कहकर काकने एकदम उस युवककी ओर देखा।

" हाँ—नहीं—नहीं—नहीं—" वह घबरा गया।

" अजी, नहीं क्या, हाँ। " कहकर उस वृद्ध सैनिकने पीछेसे काककी घोड़ीकी पीठपर बहुत जोरसे तलवारका वार किया। काकके जानने और म्यानसे तलवार निकालनेसे पहले ही घोड़ी उछली, लड़-खड़ाई और गिर पड़ी। साथ ही काक भी गिर पड़ा। उसका पैर घोड़ीके नीचे दब गया। तुरन्त ही रक्तकी प्यासी चार नंगी तलवारोंसहित वे चारों सवार अपने घोड़ोंपरसे कूद पड़े और काककी ओर बढ़े।

" तिलकचन्द्रके मित्र ! " उस युवक ने चिल्लाकर कहा और वह तलवारकी नोक काककी गर्दनकी ओर करके झपटा।

वृद्धने उसे धक्का देकर अलग हटा दिया और आगे जाकर अपने साथियोंकी सहायतासे घोड़ीके नीचेसे पैर निकालनेमें शक्तिमान हुए काकको पकड़ लिया, खींचा और वेग-पूर्वक चारों ओरसे बाँध लिया। काकने छूटनेके लिए बहुत प्रयत्न किया; परन्तु कुछ न हुआ। उसने तलवारको हाथमें लेना चाहा, परन्तु न ले सका। वह हाँफता हुआ, बाँधने-

वालोंको अपने बलसे चारों ओर ढकेलने लगा। परन्तु फिर भी अन्तमें उन लोगोंने उसे एक वृक्षसे बाँध दिया।

"ठहरो, इस नीचको समाप्त कर डालने दो।" उस युवकने कहा, "मुझे अपने भाईका बदला लेना है।"

"भाई धर्मचन्द्र, मैं अपने देखते ब्रह्महत्या न होने दूँगा।" उस वृद्धने दृढ़तासे कहा, "हम इसे मेहताजीके पास ले चलेंगे।"

"अच्छी बात है।" कहकर धर्मचन्द्र मौन हो गया।

काक अपनी मूर्खतापर पछताता हुआ चुप हो गया। उसे प्रयत्न करनेपर भी छूटना असम्भव मालूम हुआ। परन्तु मंजरीका क्या हाल होगा? उसे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि उदा पाटनमें ही रह गया है और उसे फँसानेके लिए, इन सवारोंको पीछे लगा दिया है। उदाकी उस्तादीको शाप देता हुआ, वह कोई युक्ति खोजने लगा।

उन सैनिकोंने कुछ देर विश्राम किया और फिर वे रवाना हो गये। जकड़कर बाँधे हुए काककी रस्सी वह वृद्ध नायक अपने हाथमें लेकर उसे अपने घोड़ेके साथ चलाने लगा।

सवार उससे मज़ाक़ करने लगे और काक उसका ठीक-ठीक उत्तर देने लगा। उसकी शान्ति, उसके धैर्य, उसकी हँसीकी बातों, उसकी पराक्रमकी कहानियों, इन सबसे उस युवकके सिवा तीनों सैनिक काकपर प्रसन्न हो गये। काकको भी यही चाहिए था। वह भी उनका हृदय जीतनेका प्रयत्न करने लगा।

सूर्य ज्यों ज्यों बढ़ने लगा, त्यों त्यों गर्मी बढ़ने लगी और यात्रा जरा कठिन होने लगी। इतनेहीमें एक गाँव आ गया और वहाँ ठहरकर उन सवारोंने भोजनका प्रबंध करनेके लिए विचार किया। उनमेंसे एकने जाकर गाँवके मुखियाको ढूँढ़ निकाला और ठहरनेके लिए एक मकान ठीक किया। मुखियाने उसके खाने-पीनेका सब प्रबंध कर दिया।

काक ब्राह्मण था, अतएव उसने बन्धन छुड़वाकर स्नान किया और वह पिछले बाड़ेमें एक अलग चूल्हा बनवाकर अपने लिए अलग भोजन तैयार करने लगा और भागनेकी युक्तियाँ भी खोजने लगा। बाड़ेके तीन ओर ऊँची दीवार थी और चौथी ओर मकान। वह बूढ़ा मकानके पिछले

द्वारके पास चूल्हा बनाकर एक सिपाहीके साथ भोजन बना रहा था और धर्मचन्द्र तथा चौथा सिपाही बरामदेमें लेटे हुए थे। कुछ देरमें धर्मचन्द्र और बूढ़ा सवार घास-दानेका प्रबन्ध करने चले गये।

काकने देखा कि यह अवसर बहुत ही अच्छा है। उसने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। बाड़ेकी दीवारोंकी ऊँचाई भी नाप ली और पानी लानेके बहाने वह दो-एक बार चूल्हेके पाससे उठकर दीवार तक हो आया। वे दोनों सवार बिना सन्देह किये निश्चिन्ततासे अपना अपना काम कर रहे थे।

काक धीरे-से उठा। जहाँ मकानकी छत और दीवार मिलती थी, उस ओर जाकर काकने अपने हाथ उठाये और मकानके एक शहतीरको हाथसे पकड़कर देखा। हाथसे छूते ही उसमें साहस आ गया। "जय सोमनाथ" मन ही मन बुदबुदाकर उस लकड़ीके सहारे उसने अपने शरीरको ऊपर उठाया। स्नायविक शरीरके प्रयत्नसे वह दीवारपर कूदा और देखते देखते बाहरकी ओर जा गिरा। बाहर गिरते ही मुट्ठियाँ बाँधकर वह दौड़ पड़ा; उसकी समस्त इच्छा-शक्ति, समस्त बल उसके पैरोंमें आ गया और धनुष्यसे छूटे हुए बाणकी तेजीसे वह दौड़ने लगा।

कुछ ही क्षणोंमें उसने वह छोटा-सा गाँव पार कर डाला और खेतोंको लाँघता हुआ, बड़े मार्गोंको छोड़ता हुआ, यथासंभव खेतोंमें घूमते हुए किसानोंकी नज़र बचाता हुआ दौड़ने लगा।

इस प्रकार वह बहुत देरतक दौड़ा और एक बड़की छायामें श्वास लेनेको खड़ा हो गया। सबेरेकी और इस समयकी दौड़से वह थक गया था। इस लिए दो पहर यहीं बितानेकी उसकी इच्छा हुई। पर अचानक ही उसे घोड़ेकी टापें सुनाई पड़ीं। बड़के निकटवाले मार्गपर कोई घुड़सवार आ रहा था। काक तुरन्त वृक्षपर चढ़ गया और उसकी घटामें छिपकर देखने लगा। कुछ देरमें धर्मचन्द्र घोड़ा दौड़ाता हुआ, चारों ओर ध्यानसे देखता हुआ आ पहुँचा। यह सुनते ही कि काक भाग गया है वह घोड़ेपर बैठकर उसका पीछा करने चल दिया था। काक किस ओर गया है, यह उसने देख लिया था और इसीसे उसके पीछे उसने घोड़ा छोड़ दिया था; किन्तु जल्दीमें उसने अपने साथी सवारोंसे कुछ भी नहीं कहा था। अतएव वे समझे कि जिस ओर धर्मचन्द्र गया है, उससे भिन्न दिशामें खोजने जाना अधिक अच्छा है। इस कारण वे तीनों दूसरी तीन दिशाओंमें बँट गये थे।

बहुत दूरतक तो धर्मचन्द्र काकको दौड़ता हुआ देखता रहा; परन्तु खेतमें घोड़ेको वह बिल्कुल सीधा नहीं ले जा सका, अतएव उसके और काकके बीचका अन्तर ज्योंका त्यों बना रहा। आखिर काक जब अदृश्य हो गया, तो वह बड़ी उलझनमें पड़ा। परन्तु काक जब उस ओर गया है, तब इधर ही आकर निकलेगा यह अनुमान करके उसने बगलका रास्ता लिया और बड़के पास आ पहुँचा।

काकके हाथसे निकल जानेके कारण धर्मचन्द्र उन्मत्त-सा हो गया। उसने चारों ओर ध्यानसे देखा; परन्तु कोई दिखलाई न पड़ा। आखिर उसने ऊपरकी ओर देखा।

और कोई व्यक्ति इस स्थितिमें होता, तो घबरा जाता; परन्तु काककी तीक्ष्ण बुद्धिने इस करारे अवसर पर उसे अकल्प्य मार्ग दिखला दिया। टहनियोंकी आड़में छिपनेके बदले उसने मुख बाहर निकालकर हँसते हुए कहा, " धर्मचन्द्रजी, जय सोमनाथ ! "

" ओह पापी, तू ऊपर है ? नीचे उतर, नहीं तो मार डालूँगा। "

" अजी, यह क्या कर रहे हो ? ज़रा शान्त तो हो लो। "

" उतर नीचे, " धर्मचन्द्रने अधीरतासे कहा, " नहीं तो अभी नीचे मार गिराऊँगा। " परन्तु उसे नीचे कैसे मार गिराया जाय ? वह अपना तीर-कमान तो वहीं, उस गाँववाले मकानमें ही, भूल आया था।

" हाँ, भाई, जल्दीसे मार गिराओ। " काकने खिलखिलाकर हँसते हुए कहा। उसका हेतु केवल धर्मचन्द्रको चिढ़ाना ही था और उसे पूर्ण करनेमें वह सफल हुआ। धर्मचन्द्र घोड़े परसे नीचे उतर पड़ा और एक ढेला लेकर उसने काककी ओर फेंका। काक दूसरी डालीपर कूदकर ढेलेका वार बचा गया। निष्फल प्रयत्नसे गुस्सेमें भरकर अपने बड़े भाईके खूनका बदला लेनेको तरस रहा धर्मचन्द्र तलवार निकालकर वृक्षपर चढ़ने लगा। काक मन ही मन हँसा। उसे यही चाहिए था। इधरसे धर्मचन्द्र काकको पकड़नेके लिए वृक्षपर चढ़ा और उधरसे काक धीरे-धीरे डालियोंपर कूदता-फाँदता उस डाली पर आगया जिसके नीचे घोड़ा खड़ा था। धर्मचन्द्र बड़े वेगसे हाँफता हुआ उस डालीपर पहुँचा, जिसपर काक था।

' जय सोमनाथ,' ज़ोरसे कहकर काक डाली परसे नीचे कूद पड़ा और घोड़ेकी गर्दनपर आ गिरा। घोड़ा भयसे उछल पड़ा; किन्तु क्षण ही भरमें

उसकी अयाल पकड़कर सतर होकर वह उसकी पीठपर जा बैठा। इसके बाद उसने ज़रा घूम कर डाली परसे भूमिपर गिरे हुए धर्मचन्द्रसे कहा, "अच्छा भाई धर्मचन्द्र, आना।" और उसने घोड़ेको एड़ लगाकर दौड़ा दिया।

काककी एड़ीके प्रभावसे घोड़ेको पर आगये।

१०—पाताल-निवास

अब हमें देखना चाहिए कि हमारे राजनीतिज्ञ मंत्री उदयन कहाँ हैं। उस चालाक मारवाड़ीकी नज़र चारों ओर थी और उसका हाथ सबकी गर्दनोंपर था। वह कीर्त्तिदेवका मित्र बन गया था और निमन्त्रण स्वीकार करके सज्जन मेहताकी वाटिकामें गुप्त वेश धारण करके आया था। वहाँ उसने मंजरीको पहचाना और बाहर जाते समय षड्यन्त्रकारियोंकी धका-पेलसे लाभ उठाकर वह उसे उठा ले गया। जिस निराले द्वारसे त्रिभुवनपाल और मुंजाल आये थे, उसीसे वह भी आया था। अतएव वहींसे वह फिर बाहर निकला। उसे ध्यान नहीं था कि मुंजालने उसे देख लिया है।

मंजरीने छूटनेका प्रयत्न तो बहुत किया, परन्तु उसका कोई फल न हुआ। आखिर वह थक गई और अचेत होकर पड़ रही।

उदाने उस रात पाटन छोड़कर चुपचाप खंभात जानेका विचार कर रखा था। परन्तु मंजरी हाथ लग जानेसे उसने अपना विचार बदल डाला। उसे विचार हुआ कि मंजरीको खोजनेके लिए काक अवश्य निकलेगा और मेरे नगरसे बाहर जानेकी खबर लगते ही वह मेरा पीछा भी करेगा। तब इस अवसरसे लाभ उठाकर दिनों दिन बलवान् बनते हुए शत्रुको क्यों नहीं समाप्त कर दिया जाय? इस कार्यको सिद्ध करनेके लिए उसकी रची हुई युक्ति वास्तवमें उसकी होशियारीको शोभा देनेवाली थी। जो घुड़सवार साथ जानेवाले थे, वह उनसे मिला और उन्हें समझा दिया कि वे मोढ़ेरा दरवाज़ेसे खंभातकी ओर जायँ और यदि काक पीछा करे, तो उसे फँसाएँ, पकड़ें; आक्रमण करे, तो उसे समाप्त कर दें और पकड़ा जाय, तो चन्द्रावती ले जाकर क़ैद रखें। यह हम देख चुके हैं कि धर्मचन्द्र और अन्य घुड़सवार इस आदेशका पालन करनेके लिए पाटनसे चल दिये थे।

सवारोंके चले जानेपर उदा शीघ्रतासे अचेत मंजरीको कन्धेपर डालकर निकट वाले एक चैत्य (जैन-मंदिर) के बाड़ेमें घुसा। क्षणभरके लिए

दरबानने उसे रोका, परन्तु उदा मेहताके समान जैन-शासनके धुरन्धरको पहचानकर तुरन्त सम्मानसे पीछे हटकर खिड़की खोल दी। उदा, घोर दरिद्रतासे बड़े पदपर पहुँचा था; अतएव वह छोटी-से छोटी गलीको भी जानता था। बाड़ेकी दीवारसे अन्दरकी ओर एक छोटी गली थी! उसमें वह घुसा और ठोकरें खाता, मंजरीको सँभालता, कहीं वह चिल्ला न पड़े, इसका ध्यान रखता और मन ही मन तदबीरें सोचता हुआ आगे बढ़ा।

जीवनके आरम्भमें उदाका लक्ष्यबिंदु पाटनके महाअमात्यका पद प्राप्त करना था; परन्तु निष्फल प्रयत्नोंने उसे सिखाया था कि मुंजाल मेहताके जीवित रहते वह पद प्राप्त होना असम्भव है। इस निष्फलताका भान होने पर उसने दूसरा लक्ष्य दृष्टिके आगे यह रखा कि श्रावकोंमें श्रेष्ठ बनकर जिन-शासन-का प्रतिनिधि बनना। यह लक्ष्य उसने अधिकांशमें सिद्ध भी कर लिया था। बुद्धिसे, उदारतासे, धर्मपरायणतासे, उसने खंभातको जैन-शासनका केन्द्र बना दिया था और वहाँके मन्त्रि-पदका निरंकुश उपभोग कर, धीरे-धीरे सत्ता और प्रताप बढ़ाकर, मुंजालके प्रतापको भी वह धुँधला बनानेका प्रयास कर रहा था। धीरे-धीरे परन्तु धैर्यसे उसका निश्चय पूर्ण होता जा रहा था।

इसी समय उसे मंजरी मिली। मंजरीके लालित्यने, सौन्दर्यने उसके प्रौढ़ स्थिर हृदयको खौला दिया। उसकी विद्वत्ताने उसे आकर्षित कर लिया। उसके ब्राह्मण वर्ण और श्रेष्ठ कुलने उसे मोहित कर लिया। उसकी दृढ़ताने उसे उत्तेजित कर दिया। मंजरीको अपनी स्त्री बनानेके विचारका उसके हृदयने, अभिमानने और बुद्धिने स्वागत किया।

अचानक ही उसके मार्गमें राहुके समान काक आ पड़ा। उसका खंभात चला गया, मंजरी चली गई और अप्रतिष्ठा हुई, तब उसने शान्त परन्तु निश्चल हृदयसे पक्का निश्चय कर लिया कि काकको मारकर कंकड़की तरह अलग कर दिया जाय। परन्तु वह उछलकर पैर तोड़ लेनेवाला आदमी नहीं था। उसने धीरेसे, शान्तिसे अपना मार्ग पकड़ा। उसे प्रतीत हुआ कि अब काक अवश्य उसके हाथोंमें फँस जायगा। मंजरी हाथमें थी ही। वह दूरदर्शी था। कहीं बाज़ी न पलट जाय, इस भयसे वह अपने किये हुए कामका चिह्न भी नहीं रहने देना चाहता था।

चैत्यके बाड़ेकी गलीमेंसे होकर वह पासके मुंजालेश्वर-मन्दिरके एक अँधेरे दालानमें निकला। दालान आधा धरतीमें था और महादेवके

पुजारी भी वहाँ दो पहरको जानेका साहस नहीं करते थे। उस अँधेरे दालानमें सीढ़ियाँ थीं। बिल्कुल परिचित आदमीकी तरह वह बिना किसी भयसे सीढ़ियोंसे नीचे उतरा। उसने मंजरीको भूमिपर लिटा दिया और फिर चकमक रगड़कर रुईका पलीता जलाया। एकाएक प्रकाश हो जानेसे पत्थरकी उस छोटी कोठरीमें चिमगादड़ें उड़ने लगीं और पंखे फड़फड़ाकर भयानक परछाहीं डालने लगीं।

परन्तु उदाको डरनेकी भी फ़ुरसत न थी। दीवारमें एक कड़ा लगा था। उसे पकड़कर उसने ज़ोरसे खींचना शुरू किया। कुछ देरमें जब कड़ेवाला पत्थर हिला तब उसने बड़े परिश्रमसे उसे खिसकाया। वहाँ एक झरोखा था जो खुल गया और उसमेंसे तेज़ हवा आने लगी।

यह झरोखा एक भारी सुरंगमें पड़ता था और वह सुरंग राजमहलमेंसे बाहर विमल शाहके स्थानककी बावड़ी तक चली गई थी। राजा, महाअमात्य या राजसेवकोंको ही इस गुप्त मार्गकी ख़बर थी। शत्रुके घेरा डालनेपर नगरसे भाग जानेके लिए इसका उपयोग किया जाता था। जब उदा अपनी दरिद्रावस्थामें पासवाले चैत्यकी धर्मशालामें पड़ा रहता था, तब एक वृद्ध राजसेवकसे उसने इस गुप्त मार्गका भेद जाना था और उस बेकारीके समयमें निर्भय होकर उसकी खोज भी की थी। इस समय वह खोज काम आई।

पलीता जलाकर ध्यान-पूर्वक देखनेपर उसे मार्ग बिल्कुल साफ और सीधा मालूम हुआ। उसने पलीता बुझा दिया और वह धीरे-से मंजरीको उठाकर चल दिया। मार्गमें थोड़ी-थोड़ी दूरपर झरोखे थे। उनके मुख कहीं मन्दिरमें, कहीं चैत्यकी दीवालमें और कहीं छतमें इस प्रकार निकले हुए थे कि बाहरसे तो दीख न पड़ते थे, परन्तु उनमेंसे मामूली-सी हवा और प्रकाश पहुँच जाता था। इसके कारण मार्ग सुगम था।

कोई डेढ़ कोस चलनेके बाद इस सुरंगका विमल मेहताकी बावड़ीपर जाकर अंत हुआ। बावड़ी बड़ी विशाल थी। उसका कुछ भाग गिर गया था और प्राचीन स्थापत्यके नियमानुसार उसमें बहुत-सी कोठरियाँ थीं। उन्हींमेंसे एक कोठरीमें वह जा पहुँचा। वहाँसे बाहर निकल कर उसने मंजरीको भूमिपर सुला दिया और रातके जागरणकी अलसता और थकावट दूर करनेके लिए वह बावड़ीमें जाकर हाथ-मुँह धो आया।

इसके बाद वह पासके स्थानकके रक्षकके पास गया। रक्षक अपनी कोठरीके आगे दतौन कर रहा और धीरे-धीरे प्रभाती गा रहा था। वह पुराने समयका वृद्ध सैनिक था और मीनलदेवीकी कृपासे वानप्रस्थ जीवन बिता रहा था। बड़ा भला और अटल था। वचनका पालन करनेमें वह अद्वितीय समझा जाता था। " जय जिनेन्द्र, " उदाने कट्टर धर्मात्माकी तरह उसे उद्देश्य करके कहा, " कहो, कैसे हो ? "

रक्षकने ध्यान-पूर्वक देखा और विस्मयसे अपनी लम्बी मूँछोंपर हाथ फेरते हुए कहा, " जय जिनेन्द्र। ओहो ! मेहताजी, इस समय ? "

" हाँ, तुमसे एक खास काम है सुरपाल। " " क्या ? "

" मुझे एक आदमीको छिपाना है। छिपाकर रख सकोगे ? "

" मैं ? किस प्रकार ? इस उपाश्रयमें कैसे छिपाया आ सकता है ? यहाँ हज़ारों आदमी आते और हजारों जाते हैं। " कहकर बूढ़ा आँखोंको सिकोड़कर देखने लगा।

" सुरपाल, देखो, मैं जल्दीमें हूँ। तुम जानते हो कि मैं राजाका मन्त्री हूँ और बिना बड़ी जरूरतके यहाँ नहीं आता। "

" परन्तु यहाँ रख कैसे सकता हूँ ? " कुछ घबड़ाकर सुरपालने कहा।

" ऐसा कहीं हो सकता है कि विमल मेहताके स्थानकमें न रख सको ? " उदाने मार्मिक प्रश्न किया।

" सारा नगर तो पड़ा है। "

" नहीं, मुझे यहाँकी सुरंगसे ही काम है। "

" सुरंग ! " ज़रा चौंककर सुरपालने पूछा, " यहाँ सुरंग ? "

" भूल गये ? " उदाने मधुरतासे कहा, " जहाँ हँसादेवी*को क़ैद करके रक्खा था। उठो, देरी करोगे, तो बिलकुल सबेरा हो जाएगा। "

" हंसादेवीको क़ैद किया था ! " ज़रा काँपते हुए स्वरमें सुरपालने कहा, " क्या कह रहे हैं ? मुझे तो खबर नहीं। "

" सुरपाल, यह मैं कैसे मान लूँ ? मुंजाल मेहताकी बहन और मंडलेश्वरकी माता हँसादेवीको तुम नहीं जानते ? उठो। "

" मेहताजी, आप यह क्या पागलोंकी-सी बातें कर रहे हैं ? " बूढ़ेने जरा उद्धतपनसे कहा, " यहाँ कोई सुरंग नहीं है। "

---

* पाटनका प्रभुत्व।

"देखो," ज़रा मधुर स्वरमें परन्तु रुआबके साथ उदाने कहा, "मैं सब कुछ जानता हूँ। फिर क्यों मेरी बात नहीं मानते?"

उस वृद्ध सैनिकके होठ दृढ़तासे दब गये। "मेहताजी, तुम मालिक नहीं हो। मालिक तो जयदेवमहाराज और राजमाता मीनलदेवी हैं।"

"सुरपाल, तुम भूल रहे हो। वे भी मालिक नहीं है। मालिक तो भगवान् जिनेश्वर हैं। उनकी आज्ञा है।"

"भगवान् जिनेश्वर?" धर्मप्राण सुरपालने विस्मयसे पूछा।

"सुरपाल, मेरी बात सुनो। तुम जानते हो कि मैं कट्टर श्रावक हूँ और जिन भगवान्का सेवक हूँ। मेरे सिरपर एक महान् धर्म-संकट आ पड़ा है। एक ब्राह्मण कन्याको उसके दुष्ट सम्बन्धी जैन-धर्म स्वीकार करनेसे रोक रहे हैं। वे प्रतापी और शक्तिमान् हैं। अतएव उसने मेरी शरण ली है। परन्तु मैं कुछ न कर सका। मैंने जिन भगवानसे बहुत विनय की, बहुत उपवास किये, बहुत मनौतियाँ मानीं। आखिर कल भगवानने प्रेरणा की। हंसादेवीको वर्षोंतक जहाँ समस्त संसारसे अज्ञात रखा गया था, उस स्थानका मुझे ज्ञान हुआ। भगवानने कराया। एक श्रद्धालु श्रावककी भी मुझे याद दिलाई और इसीसे मैं यहाँ आया हूँ। कुछ दिनोंके लिए इस लड़कीको छिपा दो। तभी इसका कल्याण होगा और यह इस स्थानककी सुरंगके सिवाय और कहीं नहीं हो सकता।" उदा अपनी अप्रतिम कलासे जल्दी जल्दी समझाने लगा। "अगर तुम न मानोगे, तो मेरा और उस लड़कीका दुर्भाग्य। तब मेरी प्रेरणा असत्य, केवल भ्रम सिद्ध हो जाएगी और इससे जो कुछ पाप होगा, उसके अधिकारी तुम होगे।" कृत्रिम लापरवाहीसे उदाने कहा।

"मेहताजी, आपका संकट तो ठीक है।" सुरपाल धीरे-से सिर हिलाकर कहने लगा, "परन्तु यह काम मुझसे होना कठिन है।"

"तो फिर भाग्य! जैन-शासनकी विजय मेरे और तुम्हारे हाथसे होना नहीं लिखा होगा।"

"परन्तु—"

"हम तुम तो पापकी गठरीके मालिक हैं।"

"महाराज," उदाकी प्रेरणाकी बात सुरपालके गले उतर गई थी। वह बोला, "परन्तु एक रास्ता है।"

"क्या?" आतुरतासे उदाने पूछा।

" आप कहें, तो मैं रख लूँ। जब आवश्यकता हो, तब ले जाना।"

" परन्तु उसके सगे सम्बन्धी तो पातालको भी खोज डालनेवाले हैं और बड़े बड़े मंडलेश्वरोंका उन्हें सहारा है।"

" इससे आप निर्भय रहें।"

" मुझे न दिखाना हो, तो तुम्हारी इच्छा। परन्तु जिस प्रकार हंसा देवीको छिपाया था, उसी प्रकार यदि इसे छिपा दो, तो फिर मुझे कुछ नहीं कहना है।" उदा मेहताने हँसकर कहा।

" हंसाकी बात मैं नहीं जानता। मैं तो केवल अपने वचनकी बात जानता हूँ। लाओ, लड़की कहाँ है ?"

" यहीं पास ही है। मैं अभी लाया।" कहकर उदा वहाँसे चला गया और जरा-सी देरमें अचेत मंजरीको लेकर लौट आया। सुरपालपर विश्वास किये बिना निस्तार ही न था।

" सुरपाल, परन्तु यदि इस लड़कीसे मुझे मिलना हो, तो ?"

" यह आप जानें। यह कुछ न हो सकेगा।"

" एक बात कहूँ, मानोगे ?" उदाने धीरेसे कहा।

" क्या ?" सुरपालने पूछा।

" जब मैं इससे मिलना चाहूँ, तब मुझे आँखोंपर पट्टी बाँधकर ले जाना। फिर कैसे जान सकूँगा ?"

बूढ़ा उदाकी उस्तादीपर हँसा।

" सुरपाल, इस बातसे इनकार न करना। तुम्हें जो चाहिए, ले लो। जो चाहे, शर्त कर लो।"

" मेहताजी, तुम कह चुके ? यह सिर देखा ? चाहे, तो इसे धड़से अलग कर दो, परन्तु यह बात न हो सकेगी।"

" उदा विचार करता हुआ देखता रहा। सुरपालने आगे कहा, " हाँ, एक बात हो सकेगी। जब आप चाहेंगे, तब मैं लड़कीको आपसे मिला दूँगा।"

" अच्छा, जो तुम्हारी इच्छा। सुरपाल, तुम जैसे आदमीसे कहनेकी आवश्यकता तो नहीं है, परन्तु यह बात किसीसे कहना मत। और इसे छोड़ना भी मत।"

" अच्छा। मेरा वश चलेगा वहाँ तक।"

" तो मैं जाऊँ ?"

"हाँ जी।" शान्तिसे सुरपालने कहा। उदा वहाँसे तेजीके साथ नगर-कोटके दरवाज़ेकी ओर यह चिन्ता करता हुआ चला कि कहीं किया कराया परिश्रम मिट्टी न हो जाय। परन्तु उसे विश्वास था कि सुरपालके पास जितनी सुरक्षासे मंजरी छिपाई जा सकती है, उतनी पातालमें भी नहीं छिपाई जा सकती और यह उसकी धारणा थी कि यदि काक समाप्त कर दिया जाय, तो दूसरे ही दिन उसे ले जाया जा सकेगा।

उदाके जाते ही सुरपाल उठा और मन ही मन बुदबुदाया, "प्रतिदिन ही एक न एक आफ़त! यह होनेवाला क्या है?" उसने धोतीको कमरसे लपेटा और वह मंजरीको उठाकर अपनी कोठरीके निकटवाली कोठरी खोलकर उसमें ले गया। उस कोठरीमें बड़े बड़े तीन-चार दरवाज़े थे और उनमें ताले लगे हुए थे। उनमेंसे उसने एक खोला और अन्दर घुसकर बन्द कर लिया। अन्दर एक अँधेरा मार्ग था और उसमें जगह-जगह झरोखोंसे प्रकाश आ रहा था। इस मार्गकी सीढ़ियोंसे वह उतरा। यह मार्ग स्थानक और बावड़ीके बीचके रास्तेके नीचे होकर जाता था।

कोट और बावड़ीकी मजबूत चुनाई जहाँ ज़मीनपर मिलती थी, उसके नीचे वह पहुँचा। बावड़ीकी अटपटी चुनाईसे फायदा उठाकर भूमिपर दो-एक छोटे-से दालान बना दिये गये थे। वहीं वह पहुँचा। उनमें बहुत ही चतुराईसे लगाई हुई जालीसे कुछ प्रकाश आता था। इस दालानमें दो-तीन कमरोंके दरवाज़े पड़ते थे। उनमेंसे एकको खोलकर सुरपाल मंजरीको अन्दर ले गया।

उस कोठरीमें रहने और सोनेकी कुछ सामग्री थी और हवा और प्रकाश भी बाहरकी अपेक्षा कुछ अधिक था। सुरपालने वहाँ मंजरीको सुलाया और सब चीज़ोंपर जो धूल पड़ी हुई थी उसे झाड़ दिया। इसके पश्चात् उसने एक घड़ा पानी लाकर वहाँ रख दिया और द्वार बन्द करके ऊपर चला आया।

११—खोज

रात हो गई। मंडलेश्वर और काश्मीरा देवी दोनों बैठे हुए चिन्ता कर रहे थे। इसी समय बाड़ेमें घोड़ेकी टापें सुनाई पड़ीं। दोनों उठ खड़े हुए और उन्होंने उस ओर अपने कान लगा दिये। उनके हृदय आशाओं और चिन्ताओंसे धड़क उठे। त्रिभुवनपाल यह निश्चय करनेको कि कौन आया है जाते ही थे कि काक आ पहुँचा—प्रताप बिखेरता, मजबूत डगें भरता हुआ

भटराज नहीं, परन्तु नंगे सिर, फटे हाल, पसीना बहाता, हाँफता हुआ, निस्तेज काक—और बैठ गया। दोनों जनें उसका चिन्तातुर मुख देखने लगे। काक भी दोनों हाथोंसे सिर थाम कर देखने लगा।

क्यों ? " काश्मीरादेवीने पूछा।

" बड़ा धोखा हुआ। उदाकी उस्तादीमें फँस गया। " हाँफते हुए धीरे-धीरे काकने कहा, " वह तो यहीं है और मंजरी भी यहीं है। पर मुझे मार डालनेको उसने चार घातक भेजे थे। "

" ऐं ! " त्रिभुवनपालने कहा।

" हाँ, भाग्यसे बच गया और जीवित लौट आया। " कहकर काकने अपना सारा इतिहास कह सुनाया।

" तब मंजरी यहीं होनी चाहिए ? "

" अवश्य। " काकने सिर हिलाया, " पर आज तो थककर मुर्दा हो गया हूँ। "

" अच्छा, ठहरो, तुम्हें कुछ खानेको ला दूँ। " कहकर काश्मीरा उसके खानेकी व्यवस्था करने लगी। हारे-थके काक, निराशाग्रस्त मंडलेश्वर और उनकी स्त्रीने अनेक योजनाएँ बनाईं और आखिर सब सो गये।

सबेरा होते ही काक राजमहलमें गया। जयदेव महाराज एक दिन पहले ही शिकारको चले गये थे, अतएव काक मुंजाल मेहतासे मिलने गया। मुंजालने कुछ इस प्रकार उल्टी सीधी बातें करके उसे बिदा कर दिया, जैसे उन्हें और कुछ खबर ही नहीं है। मुंजाल कार्योंमें अधिक व्यस्त थे, अतएव वह भी और कुछ न पूछ सका। केवल इतना ही पता चला कि कल उदा मेहता राजमहलमें दिखाई नहीं पड़े। इस समाचारसे असन्तुष्ट होकर वह राजमहलसे यह विचार करता हुआ बाहर निकला, कि अब क्या किया जाय। परन्तु उदा मेहता पाटणमें हैं या नहीं, इस प्रश्नका उत्तर उसे अचानक ही मिल गया। सामनेसे पालकीमें बैठकर वे स्वयं ही आ रहे थे।

दोनोंने एक दूसरेकी ओर देखा। क्षणभरके लिए दोनों चौंक पड़े और तुरन्त उदा मेहताने मधुर प्रश्न किया, " कहिए काकभटजी, प्रसन्न तो हैं ? "

काकने होठ चबा लिये और कहा, " जी हाँ मेहताजी, और आप मजेमें हैं ? लोग तो कह रहे हैं कि आप पाटण छोड़कर खंभात चले गये। " कहकर वह उसकी पालकीके साथ साथ चलने लगा।

" क्यों चला जाता ? मुद्दतके बाद राज-कार्यसे जरा निवृत्ति मिली है, तब क्यों न कुछ मौज कर लूँ । "

काकको उसकी गर्दन मार देनेकी इच्छा हुई । " हाँ, कीजिए । भाग्यवान् हैं, क्यों न मौज करेंगे ? "

" तुम क्या भाग्यवान् नहीं हो ? " उदाने तनिक हँसकर कहा, " तुम्हारी उम्रमें तो मैं भिखारी था और तुम तो सुखमें डूबे हुए हो । " काकको इस मजाकमें कुछ मर्म छिपा हुआ प्रतीत हुआ ।

" सुख और दुख मुझे तो ठीक ही हैं । प्राण हाथोंमें लेकर घूमना पड़ता है । कल ही चार जनोंके साथ लड़ना पड़ा । " काकने इस प्रकार कहा, जैसे कोई साधारण-सी बात कर रहा हो ।

" ऐं ! " उदाने अस्वस्थ होकर पूछा, " क्या हुआ ? "

" अजी, मुझे तो भगवान् सोमनाथसे अभयका वरदान प्राप्त है । मैं तो सही सलामत चला आया और वे—"

बिना बोले ही आतुर आँखोंसे उदाने प्रश्न किया ।

" ठिकाने लग गये । " कहकर काक हँसता हुआ चल दिया ।

उदाकी चिन्ताका, निराशाका पार न रहा । काक जीवित लौट आया और उसके चारों योद्धा ठिकाने लग गये ! क्या काकका भाग्य दुर्जय है ? क्या मेरी पराजय होगी ? " विचारोंकी तरंगोंमें डूबता उतराता उदा चिन्तातुर हृदयसे राजमहलमें पहुँचा ।

काकने चारों ओर देखा । सामने मार्गमें उसे लाटका एक सुभट दिखाई पड़ा ।

" रुद्रमल्ल ! "

" ओहो भटजी ? अरे भटराज, जय सोमनाथ ! " उसने बड़े स्नेहसे कहा । राज-सभाके अवसरके पश्चात् लाटके योद्धाओंमें काक अत्यन्त प्रिय हो गया था ।

" एक काम करोगे ? "

" क्या ? "

" उस पालकीमें जो मन्त्री जा रहे हैं, उन्हें पहचानते हो ? "

" हाँ, वह खंभातवाला है, जिसे महाराजने दंड दिया है । "

" हाँ, वही । दिन भर वह कहाँ जाता है और क्या करता है, इसकी

खबर देते रहोगे ? ”

“ अवश्य । ” लाटके अधिकांश योद्धा पाटणमें बेकार पड़े मौज कर रहे थे, अतएव चाहे जिस नये कामको वे पसन्द कर सकते थे। रुद्रमल्ल उदाकी प्रतीक्षामें सामनेके चबूतरेपर जा बैठा ।

जब काक घर पहुँचा, तब काश्मीरादेवी उसकी प्रतीक्षामें बैठी हुई थी ।

“ काक, उदा यहीं है, परन्तु मंजरी नहीं है । ”

“ कैसे जाना ? ”

“ मैंने अपनी दासीसे मालूम कराया है। शान्तु मेहताके यहाँ मंजरी नहीं है । ”

“ क्या कह रही हैं ? ” काकका मुँह उतर गया । “ वह पाटणमें तो होनी चाहिए । ”

“ होगी, परन्तु उदा तो कल सबेरे अकेला ही घर आया है। ”

“ किसने देखा ? ”

“ हमारी सोनकी मौसीने अपनी आँखों देखा है । ”

उदास मुखसे दोनोंने एक दूसरेकी ओर देखा ।

“ महाराज कहाँ गये हैं ? ”

“ बुआजीसे कहनेको। ”

“ अरे, राम राम ! ” काकने निःश्वास छोड़ा ।

“ क्यों, क्या बात है ? ”

“ इससे क्या होगा ? उनसे कहनेसे कोई लाभ ? उसे तो हमें ही खोज निकालना होगा। इन बड़े लोगोंका कोई उपयोग नहीं। ये तो उलटी हँसी उड़ायेंगे। प्रमाणके बिना उदा मेहतासे कुछ कहा जा सकता है ? वह तो खुले खजाने महलोंमें आता जाता है । ”

“ तब क्या किया जाय ? ”

“ देखिए, कोई मार्ग निकालता हूँ । ”

१२—शासन

उस रातके संस्मरणोंके बाद मुंजालका हृदय बहुत ही खिन्न रहता था। उसकी आत्मा दिन-रात चुनचुनाया करती थी। अनेक कार्यों और प्रवृत्तियोंमें व्यस्त रहने पर भी फूलकुँवरि और उसके लड़केका चित्र बार-बार आँखोंके सामने आ जाया करता था और इस कारण मन उचाट रहनेसे वह मीनलदेवीसे भी मिलने नहीं जाता था।

रात हो जानेपर मीनलदेवीने उसे बुलाया। वह गया और सर्वदाके नियमानुसार उसने दिन-भरके समाचार कह सुनाये। इसके बाद वह आज्ञा माँगने लगा।

" मुंजाल, " ज़रा खिन्नता-पूर्ण स्वरमें मीनलदेवीने कहा, " एक महत्त्वपूर्ण बात तो रह ही गई। "

" क्या ? "

" तुम्हारा हृदय भारी हो रहा है, यह! "

मुंजाल चौंक पड़ा और संयत होकर हँसा, " क्या कह रही हैं ? मेरा हृदय ? "

अपनी आँखोंको मुंजालके मुखपर स्थिर करके रानीने उत्तर दिया, "हाँ।"

मुंजालने बात उड़ाते हुए कहा, " मेरा हृदय तो सदा ही भारी रहता है, आपकी और राजाकी भक्तिसे। "

" हाँ, और साथ ही बेचैनीसे भी, यह क्यों भूले जा रहे हो ? "

" किसने कहा ? "

" कहेगा कौन ? देखनेको मुझे आँखें नहीं है ? परखनेको हृदय नहीं है ? मुंजाल, मैं हृदयको जिह्वापर नहीं लाती, अतएव तुम यह समझते हो कि मेरे पास हृदय ही नहीं है ? " बहुत दिनोंपर रानी यह दोनोंके बीच निषिद्ध मानी जानेवाली बातें लाने लगी।

" मान लो कि ऐसा ही है, तो क्या रोने-चिल्लानेसे मनुष्य जीवित हो जायगा ? जिस बातमें सार नहीं, उसे कहना ही न चाहिए। "

" नहीं, " मीनलदेवीने कहा, " इस बातमें सार है। अब तक तो हँसीमें ही अनेक बार बातें हुई हैं, पर अब मैं बिल्कुल सीधी साफ कहती हूँ। "

" क्या ? " युद्धके लिए तैयार होते हुए मुंजालने पूछा।

"तुम्हें दूसरी बार विवाह करना होगा।" रानीने कहा।

"मुझे—दूसरी बार—विवाह—करना होगा?" धीरे-धीरे एक-एक शब्द उच्चारण करते हुए मुंजालने कहा और एकदम सिर ऊँचा करके और तेजस्वी आँखोंका तेज डालते हुए वह बोला, "और विवाह न करूँ, तो क्या करोगी?"

"परन्तु," शान्ति और सत्तासे रानीने उत्तर दिया, "यह हो ही नहीं सकता।" रानी इस विद्रोहके लिए तैयार थी।

"क्यों?"

क्योंकि तुम मेरी बात टाल ही नहीं सकते।"

इस उत्तरसे मुंजालके आवेशपर अंकुश लग गया।

"किस लिए ऐसा हठ कर रही हो? इससे क्या मैं अधिक सुखी हो जाऊँगा?"

"तुम न होना, परन्तु मैं होऊँगी।"

"परन्तु यह नई बात ले कहाँसे आई?"

"अपने हृदयमेंसे। मैं तुम्हें प्रतापी देखना चाहती थी, सो देख लिया। अब मैं तुम्हें सुखी देखना चाहती हूँ।"

"नहीं—नहीं देवी, यह भ्रम है। मैं पूर्ण सुखी नहीं हूँ, तो न सही; परन्तु मेरा सुख मेरे राज-प्रपंचमें समाविष्ट है। इस व्रतकी साधना ही मेरे जीवनका आदर्श बन गया है। अब फिरसे संसार बसाके बुड्ढी घोड़ीको लाल लगाम लगानेसे मुझे सुख मिलेगा? जो है, वही ठीक है। अधिक लोभमें पड़ूँगा, तो बुढ़ापेमें उलटा घिसट मरूँगा।"

"बुढ़ापा? परन्तु तुम तो अभी बयालीसके ही हो?"

"परन्तु मनसे तो चौरासीका हो गया?"

"इसीसे छोटा बनानेकी योजना की गई है। अब तुम्हारा कहना निरर्थक होगा। अब तुम्हारा वाक्चातुर्य चलनेका नहीं। मेरा दृढ़ निश्चय है कि तुम्हें विवाह करना ही होगा।" कहकर रानी दृढ़ और सत्तावाही दृष्टिसे देखने लगी।

"परन्तु—"

"मुंजाल!" अधिकारके साथ उसे एकदम बोलते हुए रोककर, रानीने कहा।

" क्यों ? "

" प्रत्येक दृष्टिसे मैंने विचार किया है। राजमाताके रूपमें तुम्हारी—" कहकर रानी अगले शब्दोंका उच्चारण करते हुए ज़रा रुक गई और फिर आगे बोली, " स्वामिनीके रूपमें मेरा अधिकार है, बस ? "

" परन्तु मेरी बात सुनोगी भी नहीं ? "

" नहीं। "

" तब मुझे आपका अधिकार भी स्वीकार नहीं है। " कहकर मुंजाल चटसे उठ खड़ा हुआ।

" मेरे एक शब्दसे सैकड़ोंके विवाह हो गये और सैकड़ों बिधुर हो गये। वह शब्द टल जायगा ? और फिर तुम टाल दोगे ? " कहकर रानी देखने लगी, " कहो, क्या कहना चाहते हो ? "

" देवी, आप इतने आवेशसे बोल रही हैं। इससे क्या प्रकट हो रहा है, जानती हैं ? " धीरेसे मुंजालने पूछा, " मीनलदेवीको इस तरह खुदमुख्तार किसीने देखा है ? इसीसे प्रकट है कि न मेरा हृदय बदला है, न आपका।"

" इससे क्या हुआ ? "

" इसीमें सब कुछ है। "

" मैं नहीं समझ सकी। " मीनलदेवीने विचार करते हुए कहा।

" एक फूलकुँवरिको तो तड़पा-तड़पाकर मार डाला, अब दूसरीको मार डालनेका बल मुझमें नहीं है। "

मीनलदेवीको कोड़ा-सा लगा। वह चौंककर स्तब्ध हो गई। उसने ज्ञात-अज्ञात रूपसे हाथको छातीपर रखकर दबाया।

" जमी हुई पपड़ीको उखाड़नेमें सार नहीं है। जो चल रहा है, वही चलने देना ठीक है। "

" मुंजाल, तुम्हें मेरा भय है ? "

" नहीं, मेरे अपने हृदयका। "

" इस पश्चात्तापसे प्रतीत नहीं होता कि ऐसा समय नहीं आयेगा ? "

" इस समय तो हमारे हृदयोंपरसे नहीं प्रतीत होता कि ऐसा समय अवश्य आयेगा ? "

" नहीं, नहीं, फूलकुँवरि मेरे कारण खोई गई थी। " खिन्न स्वरमें रानीने कहा," अब मुझे ही तुम्हें दूसरी दिलानी चाहिए। "

"नहीं, जिसने मुझे मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ बनना सिखाया है, वही मेरे लिए बस है।" मुंजालने गर्वसे कहा।

कुछ देर तक कोई कुछ न बोला। आखिर रानीने कहा, "चाहे जो हो, तुम्हें विवाह तो करना पड़ेगा।"

मुंजालने म्लान मुखसे चित्तको फेर लिया और सिरको छातीपर झुका लिया।

"उलटे हम लोग दुखी हो जायँगे।"

"कभी नहीं। तुम्हें सुखी देखकर मैं सुख मानूँगी।"

"वह भी दुखी होगी।"

"नहीं होने दूँगी। यह मेरे हाथमें है।"

"यह केवल हठ है, समझ लीजिए।"

"हठ ही सही।"

"हठ! हठ!" गहरा विचार कर मुंजाल बोला, "अब तक आपकी यह टेव नहीं गई।"

"और न जायगी।"

"ठीक है, तब मैं भी रातको विचार कर देखूँगा। सबेरे बात होगी।" कहकर मुंजालने नमस्कार किया और वह खिन्न हृदयसे चल दिया।

१३—हृदय-यज्ञ

मुंजाल हृदयकी अकथ्य व्यथासे चुप होकर चला गया और मीनलदेवी कुछ देर द्वारकी ओर देखती रहीं। उनकी आँखोंमें आँसू आ गये, उनका हृदय भर आया। जबसे यह प्रश्न दुबारा उठा है, तभीसे उनका हृदय फटा जा रहा है और बड़े प्रयत्नसे रात और दिनके विचारोंके परिणाम स्वरूप उन्होंने मुंजालसे कहनेके योग्य स्वस्थता प्राप्त की है और इस कठिनाईके कारण ही जैसी चाहिए वैसी खूबीसे वे मुंजालको न समझा सकीं।

काश्मीरा देवीकी चुटीली बातोंसे उनके विचार भिन्न ही दिशामें मुड़ गये थे और इससे नया दृष्टिबिन्दु, नये भाव दृष्टिपर चढ़ गये थे। उनके विशुद्ध प्रेमका और भी अधिक शुद्ध प्रेममें रूपान्तर हो गया था और उस रूपान्तरने

मुंजालके विवाह कर देनेका निश्चय दृढ़ कर दिया था। मुंजालके इनकारका कारण वे समझती थीं; परन्तु अब वह कारण उन्हें निर्जीव प्रतीत होता था।

मुंजालके जानेपर वे बहुत देरतक विचार करती रहीं। विचार करते करते उनका हृदय भर आया। रस-सागरकी तरंगोंकी परम्परा उसमें लहराने लगी। उनकी आँखोंमें आँसू टपकने लगे। उन्होंने सोनेका प्रयत्न किया, परन्तु इसमें वे सफल नहीं हुईं। आखिर उठ खड़ी हुईं। सारा राज-दुर्ग शान्त हो रहा था।

" रूपा ! " उन्होंने अपनी दासीको पुकारा।

" आज्ञा महाराणीजी ! " दासी उठकर आगे आई।

" वह दीपक उठाओ। "

दासीने चुपचाप दीपक उठा लिया और जहाँ मुंजाल सो रहा था, वे दोनों वहाँ गईं।

रानी और मुंजालका सम्बन्ध निष्कलंक और शुद्ध था। उनकी पवित्रता कलंकको स्वप्नमें भी न आने देती थी। मीनलदेवीने दासीको द्वारके बीच इस प्रकार बैठा लिया कि वह देख सके, परन्तु सुन न सके और आप छत-पर सोते हुए मुंजालके पास पहुँची।

रानीने धीरेसे ' मुंजाल ' कहकर पुकारा। चपल अमात्य तुरन्त ही जाग उठा, वह चकित हो गया और "देवी!" कहकर बिछौने छोड़कर बैठ गया। मीनलदेवी बिछौनेके एक कोनेपर जा बैठी।

" मुंजाल, तुम चले आये, परन्तु मुझे निद्रा नहीं आई। इस विषयकी बातचीत हमें समाप्त कर देनी चाहिए। "

" क्या समाप्त कर देनी चाहिए ? आप मेरा विवाह करना चाहती हैं, पर मैं नहीं करना चाहता। आप समझती हैं कि मैं इससे सुखी होऊँगा, पर मेरी धारणा है कि इससे हम दोनों दुखी होंगे। तब क्या समाप्त किया जाय ? "

" अभी बहुत कुछ समाप्त करना है। "

" क्या ? "

" मेरे पापोंका प्रायश्चित्त। मुंजाल, तुम निःस्वार्थी हो। कभी तुमने यह विचार किया है कि हम दोनोंमें मैं बहुत अधम और स्वार्थी हूँ ? "

" नहीं।"

" इससे तुम्हारा बड़प्पन ही प्रकट होता है, बस इतना ही।"

" क्यों ? " मुंजालने ज़रा हँसकर कहा।

" क्यों क्या ? मेरे तो इस समय सब कुछ भरा-पूरा है। स्नेह-समर्पण करनेके लिए महाराजकी याद है; कल्पनाका आनन्द भोगना हो तो तुम हो; हृदय शीतल करनेको जयदेव जैसा सुपुत्र है; सम्मान और भक्तिकी भूख शान्त करनेके लिए बहुएँ हैं; परन्तु तुम्हारे कोई नहीं है।"

" कोई क्यों नहीं है ? " कृत्रिम हास्यसे मुंजालने पूछा, " आप हैं—जयदेव है—त्रिभुवन है।"

" सब नामको हैं, कहने भरको हैं। तुम्हें सबकी कमी है। तुम जंगलमें खड़े ताड़के वृक्षके समान अकेले हो।" कहकर मीनलदेवीने आँसू पोंछ लिये। मुंजालका हृदय भी भर आया। " संसार, मर्यादा, नीति मुझे तुमसे दूर रखती है और तुम्हारी धाक दूसरोंको दूर रखती है, अतएव तुम बिल्कुल अकेले हो।"

" देवी," मुंजालने कुछ अशान्त होकर कहा, " यह सब क्यों कह रही हो ? व्यर्थ ही तुम्हारी छाती फटती है और मेरी भी।"

" फटने दो; परन्तु कभी-कभी अन्दरके विचारोंको बाहर तो निकलने दो। जब मैं तुम्हारा और अपना विचार करती हूँ, तब मेरा हृदय काबूमें नहीं रहता।"

" क्यों ? "

" क्यों क्या ? भगवानने हमें चुप रहनेको तो सिरजा है; परन्तु मैं ही न गाऊँगी, तो तुम्हारे गुण कौन गाएगा ? "

" परन्तु मुझे गुण नहीं गवाना। मैं जो कुछ करता हूँ, अपने स्वार्थके लिए करता हूँ, अपने सुखके लिए करता हूँ।"

" मुंजाल," रानी बीचहीमें बोल उठी, " पाँच वर्ष पहले मैं यह बात मान लेती। तुम्हें स्मरण है, जवानीका हृदय सब कुछ लेना चाहता है और प्रौढ़ अवस्थाका हृदय देना चाहता है। मुझे रानी बनना था। अपने पाटनको प्रभावशाली बनाना था। अपने पुत्रको इसका मालिक बनाना था। यह सब काम करनेके लिए मैंने तुमसे

वचन लिया और तुमने उसका पालन किया। पहले मुझमें जो मद था, वह अब उतर गया है। तुमने क्या किया, यह मैं देख सकती हूँ। उस वचनका पालन करनेके लिए तुमने अभिमानका, सुखका, स्वार्थका, संसारका त्याग किया। भरी जवानीमें मेरे जैसी स्वार्थी स्त्रीके हास्यको अपना ध्येय बना कर, तुम अटल प्रेम-तप करते रहे। तुमने अपनी बुद्धि और चातुरीका अखंड भंडार मेरे पैरोंपर खाली कर दिया। तुम स्वार्थी थे, फिर भी मेरे लिए परमार्थी बनकर परम राजभक्त बन गए। गृहस्थ होते हुए भी तुम मेरे लिए संन्यासी बने। मुंजाल, तुमने क्या नहीं किया ? मैं देखती हूँ, तुम नहीं होते, तो मेरा और मेरे पुत्रका क्या होता !"

"देवी, और कहाँतक कहोगी ? केवल जमाकी बाजू ही दिखलाओगी ? मैं यह सब किसके प्रतापसे कर सका, इसे क्यों भूली जा रही हो ?"

"सब तुमने अपने प्रतापसे किया है।"

"नहीं, आपके प्रतापसे। मेरी बुद्धिने जो कुछ किया है, वह आपकी प्रेरणासे। मेरे बाहुओंने जो कुछ किया है, वह आपकी शक्तिसे। इसीसे देवी, अब वह प्रेरणा, वह शक्ति नहीं छोड़ी जा सकती—नहीं छूट सकती। वह जीवनके एक-एक तन्तुके साथ बुन गई है। इसीसे अब नई बुनाईका साहस नहीं होता, मन भी नहीं कहता।"

"यही भूल है।"

"क्यों ?"

"तुम्हारे विचार अभी जवानीकी आँखोंसे देखते हैं। तुम्हें ध्यान नहीं कि अब तुम्हारा हृदय जवान नहीं है।"

"यह किसने कहा ?"

"मैं कहती हूँ। दूर बैठी हुई, मैं तुम्हारी रग-रगको पहचान सकती हूँ।"

"इसमें क्या पहचाना ?"

"बहुत-सी वस्तुएँ। एक तो यह कि सत्ता और प्रभाव जवानीमें काम देते हैं। प्रौढ़ वयसमें जीवनका लक्ष्य-बिंदु बदल जाता है।"

"अपने अनुभवसे कह रही हैं ?"

"हाँ। और तुम्हारे अनुभवसे भी।"

"अर्थात् आप यह समझती हैं कि मुझसे सत्ताकी लालसा और महत्ताकी अभिलाषा दूर हो गई है ?"

" नहीं, परन्तु सुखकी अभिलाषा बढ़ गई है। "

" तो यह आपकी भूल है। मैं ज्योंका त्यों हूँ। "

" तब तो तुम्हें नर-पिशाच होना चाहिए, परन्तु वह तुम नहीं हो। तुम बत्तीस लक्षणवाले हो। तुम्हारे संस्कार पूर्ण रूपसे विकसित हो गये हैं। इसी लिए तुम्हारे प्रभावको सँभाले रखनेके लिए योग्य सामग्री चाहिए। "

" और वह सामग्री क्या स्त्री प्राप्त कराएगी ? "

" हाँ। "

" किस प्रकार ? "

" तुम्हें गृहस्थीके साथ सोनेकी जंजीरसे बाँध देगी। सच कहो, तुम्हें स्वयंको नहीं प्रतीत होतां, कि तुम बिल्कुल अकेले ठूँठ हो गये हो ? " रानीने स्नेह-सिक्त दृष्टिसे पूछा। ये दोनों दूर-दूर बैठे थे। धीरे-धीरे संयत रूपसे बातें कर रहे थे: परन्तु उनके नयनोंमें अनिवार्य प्रेमके प्रतिबिम्ब पड़ रहे थे।

" सच कहूँ ? " खेद-पूर्ण स्वरमें मुंजालने कहा, "लगता है। उस दिन जब सज्जन मेहताकी वाटिकामें गया तो मेरा हृदय कुलाँचें मार रहा था। मुझे फूलकुँवरिका स्मरण हो आया। यदि वह लड़का भी जीवित रहता तो मुझे इतना न लगता। " वेदनासे रानीके सिरपर सिकुड़ने पड़ गई थीं। उन्होंने कपालपरसे पसीना पोंछकर उन्हें दूर किया।

" मैं क्या कह रही थी ? "

" आपकी बात सच है; परन्तु इस अवस्थामें नये प्रयोग करनेका साहस नहीं है। "

" मूर्ख हो। इसमें क्या आपत्ति है ? "

" फिर हमारा क्या होगा ? " मार्मिक दृष्टि डालकर मुंजालने पूछा।

" मुंजाल, " रानीने गम्भीर स्वरमें कहा, " हमारे अपने लिए ही तुम्हें विवाह करना चाहिए। "

" क्यों ? "

" जब तक तुम अकेले रहोगे, तब तक हमारे हृदय कलंकित रहेंगे। "

" देवी, यह क्या कह रही हो ? " मुंजालने चौंककर पूछा।

" मुंजाल, चन्द्रपुरकी मीनलकुमारीको तुम भूलते नहीं, इसीसे तुम विवाह नहीं करते। मैं भी सच्चे हृदयसे तुम्हारा विवाह कराना नहीं चाहती, क्योंकि

मेरा हृदय तुम्हें चन्द्रपुर आनेवाला वही जवान नगरसेठ मानना चाहता है और इन दोनों विचारोंमें पाप है।"

"देवी, पाप भयंकर शब्द है। हम वर्षों इस प्रकार रहे, फिर भी पाप?"

"हाँ, हम बुद्धिमान् हैं, नीतिमान् हैं, फिर भी पापी हैं। दो हृदय एक तालपर नाचते हैं।" मुंजाल देखता रहा। रानीने आगे कहा, "इतना ही नहीं, परन्तु अभी और भी इसी प्रकार नाचते रहना चाहते हैं। यह बन्द करना चाहिए।"

"यह कहीं बन्द हो सकता है?"

"बन्द भले ही न हो, परन्तु उन्हें एक तालपर नाचनेकी सुविधा और सुगमता क्यों देनी चाहिए? मुंजाल, तुम मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ बनो, यह मैं देखना चाहती हूँ; और मैं सतियोंमें श्रेष्ठ बनूँ यह तुम्हें देखना चाहिए।"

"सो तो आप हैं ही। देवी, इतना प्रेम होते हुए, इतना अवसर होते हुए, सतीत्वकी ऐसी रक्षा किसने की है?"

"नहीं मुंजाल, नहीं। जब तुम विवाह करोगे, तभी मेरा सतीत्व पूर्ण होगा।"

"क्यों?"

"तुम किसी दूसरेके बन जाओ, यह मुझे अखरता है; कारण कि मैं तुम्हें अपना समझती हूँ। जबतक हृदयमें यह अखर है, तबतक वह नमक-हराम है। कोई जानता नहीं है; परन्तु यह जीता-जागता कलंक है। तुम्हारा विवाह करके मुझे यह कलंक दूर करना है।"

"अर्थात्?" गहन विचारोंमें पड़ा हुआ मुंजाल बोला, "क्या आप मुझपरसे अपना अधिकार उठा लेना चाहती हैं?"

"नहीं, तुम मेरे ही हो, कच्चे सूतके धागेसे बँधे हुए।"

"तब?"

"परन्तु मैं उस धागेको शुद्ध और दैवी बनाना चाहती हूँ। उसमें मैं अपवित्रताका तनिक भी अंश नहीं चाहती। अपने हृदयकी मुझे आहुति देनी है। इसके बिना मेरा सतीत्व कैसे सिद्ध हो सकता है? इसके बिना हमारी प्रतिज्ञाका पालन कैसे हो सकता है?"

"देवी, तुम गुरुओंकी भी गुरु हो। अपनी प्रतिज्ञाका पालन करते हुए तो हमारे हृदयकी एक-एक बूँद सूख जायगी।"

" मुंजाल, ऐसी प्रतिज्ञा हमारे जैसे ही पाल सकते हैं। इसीमें हमारी महत्ता है। इसीसे हमें प्रसन्न होना चाहिए। "

" यही मुझे भी प्रतीत होता है। " विचारोंसे मुक्त होते हुए मुंजालने कहा, " सच बात है। हमारी प्रतिज्ञापर ही हमारी महत्ताका आधार है। यदि हमें सुबुद्धि न आई होती, यदि हम कलंकित हो गये होते, तो आज पाटनका नाम-निशान न होता, आज सूर्यके समान दिख रहे तेजस्वी भविष्यको कभीसे ग्रहण लग गया होता। "

कुछ क्षण दोनों एक दूसरेकी ओर देखते रहे। प्रतिज्ञाके स्मरणसे उत्पन्न हुए पवित्र वातावरणसे दोनों गंभीर होकर चुप हो गये। कुछ देरमें मीनलदेवीने पूछा, " क्यों, अब विवाह करोगे ? "

मुंजालने केवल सिरको छातीपर झुका लिया।

" मुंजाल ! " कहकर मीनलदेवी उठ खड़ी हुई। मुंजाल भी उठ खड़ा हुआ; परन्तु वह अस्वस्थ-सा होकर पृथ्वीकी ओर देखने लगा। मीनलदेवी उसके पास चली गई। धीरे-से उसके कन्धेपर हाथ रखा। " मुंजाल, खेद करनेकी आवश्यकता नहीं। "

" मैं खेद नहीं करता। " कठिनतासे खँखार कर गला साफ़ करते हुए मुंजालने कहा, " मैं एक मुनि महाराजके प्रश्नको स्मरण कर रहा हूँ। "

" वह क्या ? "

" त्याग बड़ा या तृप्ति ? "

" तुम क्या सोचते हो ? " मुंजालके हृदयमें मच रही उथळ-पुथलको देखकर मीनलदेवीने अश्रुभरी आँखोंसे पूछा।

" आपकी आज्ञा है कि त्याग बड़ा। "

" परन्तु तुम क्या सोचते हो ? "

" मैं कुछ नहीं सोचता। आपकी आज्ञाका पालन करता हूँ। त्याग बड़ा है, तृप्ति नहीं। " कहकर निश्चयात्मक भावसे चित्त फेरकर मुंजालने सिर उठाया और रानीकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखा। " देवी, आप पाटनकी वास्तविक जगदम्बा हैं। "

" मुंजाल, " अमृतभरे स्वरमें मीनलदेवीने कहा, " यह तुम्हारे ही कारण। " और वे तेजीके साथ वहाँसे चली गई।

१४—दो क़ैदी

जब मंजरी जागी, तब वह अकेली एक कोठरीमें पड़ी हुई थी। वह उठी। उसने घबराकर चारों ओर देखा और वह विचार करने लगी। आख़िर उसे याद आया कि जब वह चेतमें थी, तब मंडलेश्वर और काश्मीरादेवी उसके साथ थे और वहींसे उसे कोई उठा लाया। उसे विश्वास हो गया कि उसको उठा लानेवाला उदा ही होना चाहिए।

वह अकेली थी, अतएव उसमें साहस आ गया। वह उठ खड़ी हुई। कोठरी छोटी परन्तु सुभीतेकी थी। द्वार बाहरसे बंद था। केवल दो मज़बूत पत्थरकी जालियोंसे कुछ प्रकाश आता था। वह बहुत देर तक जालीमेंसे देखती रही, तब समझ सकी कि जाली बाहर नहीं पड़ती है, वरन् एक बड़े कुएँके अन्दरकी गोल दीवारमें पड़ती है।

मंजरीकी कल्पना ठीक थी। किसी कुशल कारीगरने एक पुराने कुएँको पाटकर उसकी दीवारोंमें अन्दरसे ये जालियाँ इस प्रकार लगाई थीं कि बाहरसे कोई देख न सके और कोठरीमें प्रकाश पहुँच जाय। यह कुआँ बहुत गहरा था, व्यवहारमें भी नहीं आता था, इसलिए किसीको उसके पास पहुँचनेकी आवश्यकता ही न पड़ती। कोई आता, तो इतने बड़े गहरे कुएँमें लगी जालियोंको देखनेका कष्ट नहीं उठाता। इसीसे इस निवासका भेद गुप्त रहता था।

अपनी कल्पनाकी परीक्षा करनेके लिए मंजरीने जोरसे ओ—ओ—ऽ—ऽ किया और उत्तरमें कुएँने गंभीर प्रतिध्वनि की।

मंजरीको अपनी स्थितिका ध्यान आया। वह निःसहाय, अकेली, सजीव सृष्टिसे अलग जा पड़ी थी। हृदयमें यह विचार भी आया कि काक उसे खोजे बिना न रहेगा। परन्तु उसके गर्विष्ठ हृदयने इस विचारको दबा दिया। वह होठ दबाकर खड़ी हो गई। वह कवि-कुलशिरोमणिकी पुत्री और ऐसे निर्बल विचार करे! "मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः" वह बुदबुदाई। कुछ देरमें द्वार खुला और चुपचाप सुरपाल आ गया। वह संकेतसे मंजरीको बाहर ले गया और बाहरकी कोठरीके चौकमें उसके नहानेको पानी रख गया। मंजरीने इस भयसे उसकी ओर देखा भी नहीं

कि कहीं वह उसके सामने कुछ निर्बलता न प्रकट कर बैठे। वहीं पास ही अग्नि और भोजनकी सब सामग्री रखी थी। उसे दिखाकर सुरपाल चुपचाप चला गया।

मंजरीने स्नान किया, थोड़ा-सा राँधकर खाया और फिर अपनी कोठरीमें आ गई। कुछ देरमें सुरपाल आया और द्वार बन्द कर गया। मंजरी कुछ देर निःशक्त-सी पड़ी रही। फिर कुछ देर सोई और कुएँमें पड़ता हुआ सूर्यका प्रकाश जब कुछ कम होने लगा, तो वह जालीके पास आ बैठी। प्रकाश ज्यों ज्यों कम होने लगा, त्यों त्यों उसके रसिक हृदयमें कवियोंके अनेक पद उमड़ने लगे। शृंगार और वीररसमें झूमती हुई वह धीरे धीरे गुनगुनाने लगी। करुणरसप्रधान होनेपर गुनगुनाहट स्पष्ट हो गई—वह धीरे धीरे गाने लगी।

गाते गाते वह चौंक पड़ी, घबड़ा गई, देखने लगी कि सामनेसे उन्हीं शब्दोंको कोई दोहरा रहा है। उसने ध्यान-पूर्वक देखा और अपनी मूर्खता-पर हँसने लगी। सामने कोई नहीं बोल रहा था, कुएँसे केवल उसके स्वरकी प्रतिध्वनि आ रही थी। वह हँसी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि भगवानने उसके लिए अकल्पित मित्र भेज दिया है। वह उच्च स्वरसे गाने लगी और कुएँने भी वैसी ही मधुर प्रतिध्वनि की। गाते गाते उसके हृदयमें वैराग्य आने लगा और सांसारिक लालसाकी निरर्थकताका अनुभव होने लगा। अपनी ओर, सृष्टिकी ओर तिरस्कार प्रकट करते हुए उसे भर्तृहरिके प्रश्न याद आये—

" जीर्णा कन्था ततः किं सितममलपटं पट्टवस्त्रं ततः किम्।
एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किम्॥
भक्तं भुक्तं ततः किं कदशनमथवा वासरान्ते ततः किम्।
व्यक्तं ज्योतिर्नवान्तर्मथितभवभयं वैभवो वा ततः किम्॥ " *

उसने दयार्द्र स्वरसे यह गाया। कुएसे इसका भी शोकपूर्ण उत्तर आया।

---

* जीर्ण कन्था हो, तो क्या और सफेद निर्मल रेशमी वस्त्र हो, तो भी क्या? केवल अकेली पत्नी ही हो, तो क्या और चारों ओर घोड़े और हाथियोंसे सुशोभित समूह हो, तो क्या? अच्छा भोजन किया हो, तो क्या और सन्ध्या समय रद्दी भोजन मिला हो तो क्या? हृदयमें भव-भयका नाश करनेवाली ज्योति प्रकट हो गई हो, तो क्या और वैभव हो, तो क्या?

मंजरी अपने दुःखमें डूब गई और हृदयसे उठती हुई सिसकियोंको रोकनेका प्रयत्न करने लगी।

वह चुप हुई, तो कुएँमेंसे उत्तरके शब्दोंकी प्रतिध्वनि आई। कोई संस्कृत श्लोकसे उसे सम्बोधन कर रहा था। उस समय विद्या प्राप्त करना बड़ा कठिन था और शुद्ध संस्कृतमें बोलनेवाले गिने-चुने ही व्यक्ति मिलते थे। इस कारण यह माना जाता था कि उस भाषाके बोलनेवाले उच्च कोटिके विद्वज्जन ही हो सकते हैं। एकान्तवासमें अचानक सुनाई पड़नेवाले संगीतसे मंजरी चकित हो गई और ध्यानपूर्वक सुनने लगी।

बोलनेवालेका स्वर पुरुषका-सा और संस्कारशील था। उसका उच्चारण और भाषा उच्च प्रकारकी विद्वत्ता प्रकट कर रही थी। विद्याविलासिनी मंजरी इस प्रकार सुनती रही—

"कारागारं सुधाभिर्बलिसदनमिव प्लावयन्ती समन्ताद्,
वाग्भिः कर्णप्रियाभिर्विशरणशरणे कासि कारुण्यमूर्त्ते।
ज्ञात्वा तृष्णां ममैकामघहिमहमहाकालपादोपसेवां,
प्राप्ता किं भक्तरक्ता सकलकलिहरा शर्मदा शांभवी श्रीः॥ १॥
अवन्तिनाथेन सनाथकं मां विज्ञाय कल्याणविधायिनी त्वम्।
किमागता दुर्गतसाह्यशीला मातर् वृषांकांकसुखं विहाय ॥२॥"*

मनुष्यकी समीपतासे उत्पन्न हुए आश्वासनसे मंजरीको साहस आ गया। जहाँ चिड़िया भी पर न मार सके, वहाँ अन्य मनुष्यका स्वर और वह भी संस्कारशील मधुर तथा उसके हृदयकी मातृभाषा संस्कृतमें! हर्षोन्मत्त मंजरी उठकर जालीके निकट आ गई और कुछ देरमें मन ही मन एक श्लोक रचकर उसने अपना प्रत्युत्तर दिया।

---

* १—जैसे सुधासे बलि-सदनका प्लावन करती हो वैसे ही सर्वतः कारागारका कर्ण प्रियवाणीसे प्लावन करनेवाली हे विशरणशरण कारुण्यमूर्त्ति, तुम कौन हो? २ पापरूपी हिमका नाश करनेवाले महाकालकी चरणसेवारूप मेरी एक तृष्णा है, उसको जानकर क्या भक्तपर प्रीति रखनेवाली सकल दुःखोंका नाश करनेवाली और शान्ति देनेवाली, तुम भगवान् शंकरकी श्री आ पहुँची हो? १—अवन्तिनाथने मुझे सनाथ किया है, यह जानकर हे माता, कल्याणकारिणी और दुखियोंकी सहायता करनेवाली, क्या तुम शंकरके उत्संगका सुख त्याग आई हो?

प्रत्युत्तर देते हुए उदाके दिये हुए दुख उसे याद आये और दूसरा चरण कहते कहते जगत्को शाप देनेके लिए तैयार हुई चण्डिकाके समान उसके नयनोंमें विश्व-संहारक अग्नि प्रज्वलित हो उठी। वह बोली—

" नो देवी परिदेविनी मनुसुता मर्मार्तिभिः पीड़िता,
पापोघैर्निखिलैः खलैरहमिमां कष्टां दशां प्रापिता।
पीयूषप्रतिमूर्त्तिभिर्जलधरः सारंगमद्भिर्यथा,
वाग्भिर्मा पुनरत्र कोऽसि भगवन् दीनां त्वमुज्जीवयन् ॥३॥*"

उसने यह श्लोक धीरेसे, स्पष्टतासे कहा और आनन्द-विभोर-सी मंजरी उत्तरकी प्रतीक्षा करती हुई खड़ी रही। अपना दुःख, अपनी असहाय अवस्था, अपनेपर उदाके द्वारा हुए अत्याचारको वह भूल गई और इस स्थानमें ऐसा संस्कारशील मनुष्य कैसे आ सका, यह जाननेको तरसने लगी।

कुछ देरमें उत्तर आया और वह कान लगाकर सुनने लगी—

" निःशेषै राजवृन्दैर्मुकुटमणिरुचा धौतपादाब्जयुग्मो,
नित्यं जाज्वल्यमानः परविपिनदवोऽवन्तिपो लक्ष्मवर्मा।
योऽसौ तत्प्रीतिपात्रं प्रथममुपगवः क्षत्रवंशावतंस-
स्तस्याहं दिव्यकीर्तिः प्रथितभुजबलः कीर्तिदेवस्तनूजः ॥ ४ ॥"

कीर्तिदेव ज़रा ठहर गया। मंजरी दम साधे सुनती रही—

" प्रद्वेषिणो यस्य भुजप्रभावाद्यमालयातिथ्यभुजो भवन्ति।
सोऽहं यथानाम सुकीर्तिदेवोऽप्यकीर्त्तिदे वेश्मनि सन्निविष्टः ॥५॥"

---

* ३—मैं देवी नहीं, मर्मव्यथासे पीड़िता, पापके ओघरूप सर्व खलोंसे इस कष्टमय दशाको पहुँचाई हुई मानवी स्त्री हूँ। जिस प्रकार जलधर अमृतोपम जलधारसे चातकको जिलाता है, उसी प्रकार अमृतरूपी वाणीसे मुझ दीनको उज्जीवित करनेवाले हे भगवन्, तुम कौन हो?

४——समस्त राजाओंके मुकुटमणियोंकी प्रभासे जिनके चरण-कमल धुलते हैं, और जो सर्वदा शत्रु-जनोंके लिए जाज्वल्यमान दावानलके समान हैं उन अवन्तिपति लक्ष्मवर्माकी प्रीतिके प्रथम पात्र और क्षत्रवंशके आभूषण दिव्यकीर्ति उपगव (उबक) का मैं विख्यात भुजबलवाला कीर्तिदेव नामक पुत्र हूँ।

५——जिसकी भुजाओंके प्रभावसे शत्रुगण यमराजके महलका अतिथ्य ग्रहण करने जाते हैं, वह मैं यथार्थनाम कीर्तिदेव होते हुए भी आज इस अकीर्तिकर स्थानमें पड़ा हुआ हूँ।

गर्वसे कीर्तिदेवने अपने गुणका वर्णन किया और फिर मधुरतासे पूछा—
“ **बद्धोऽस्म्यबध्योऽप्यवसखश्छलेन प्रधानमुख्यैः पिशुनप्रधानैः ।
कारागता त्वं वद कासि भद्रे संस्कारभद्रां गिरमुद्गिरन्ती ॥ ६ ॥
पुण्याक्षरैः कैरभिधीयसे त्वं पुनासि वासेन निकेतनं किम् ।
को भाग्यशाली रिपुदण्डचण्डस्त्वनन्यवासः तव हृन्निवासः ॥७॥** ”

ये श्लोक सुनते-सुनते उसका हृदय उछलने लगा । क्या कीर्त्तिदेव यहाँ ? जिस महारथीकी प्रशंसा उसने काकके मुँहसे सुनी थी, जिसके रूप और गुणकी ख्यातिसे आकर्षित होकर वह गत रात्रिको काकके साथ पुरुषवेश धारण कर सज्जन मेहताकी वाटिकामें गई थी, उसे यहाँ पड़ा देख, वह विस्मित हुई । उसकी संस्कारशील भाषा देखकर, उसके प्रति उसके हृदयमें सम्मान बढ़ गया । ऐसे सुविख्यात योद्धाकी समीपतासे उसका भाव-विलासी हृदय पागल हो गया । वह कुछ देर चुप खड़ी रही और विचार करने लगी कि प्रश्नका क्या उत्तर दिया जाय ।

इन प्रश्नोंने मंजरीके हर्षित हृदयको ज़रा गंभीर बना दिया । रुद्रदत्त जैसे कविकुलशिरोमणिकी पुत्रीके रूपमें परिचित होना तो ठीक है, परन्तु वह किसकी—कैसे पुरुषकी—किस प्रकार पत्नी बनी है ! अपने धिक्कारका पात्र बना हुआ काक उसे स्मरण हो आया । उसका परिचित परन्तु अनाकर्षक मुख याद आ गया । ऐसेकी वह स्त्री है और ऐसा उसका सौभाग्यरक्षक पति है ! उसने पहले अपने पिताका परिचय देनेका विचार किया । अपने स्नेहपात्र पिताके गुण गाते हुए उसका हृदय गर्वसे उछलने लगा । वह धीरे धीरे गाने लगी—

“ **पाखण्डाशयखण्डनैकरसिको गीर्वाणगीर्मण्डन-
श्चण्डः पण्डितमण्डले प्रतिदिनं मार्तण्डवद्भाति यः ॥**

६—अवध्य होते हुए भी मैं तो अमात्य आदि दुर्जनोंके द्वारा छलसे कैद किया गया हूँ। परन्तु संस्कारोंसे कल्याणी वाणी उच्चारण करनेवाली हे भद्रे, इस कारागारमें पड़ी हुई तुम कौन हो ?

७—किन पुण्याक्षरोंसे तुम्हारा नाम बना है ? तुम्हारे वाससे कौन-सा गृह पावन होता है ? शत्रुको दण्ड देनेमें चण्डके समान, ऐसा कौन भाग्यशाली पुरुष है जो अन्य वास त्यागकर तुम्हारे हृदयमें ही वास कर रहा है ?

यं पादप्रणतः स्तुते कविगणः सद्भारती भारत-
स्तातो मानपदं स पट्टनपतेः श्रीरुद्रभट्टो मम ॥ ८ ॥
समस्तसारस्वतवारिराशेः पारंगतो यः स्वधियावभासे ।
विनाशहेतोरिव दुष्कवीनां तनुं दधानः कवितावतारः ॥९॥"

इतना बोलनेके पश्चात् वह कठिनाईमें पड़ गई। क्या अपने विवाहित पतिकी बात वह करे ही नहीं? क्या उसके विषयमें किये हुए प्रश्नका उत्तर खा ही जाय? उसके प्रामाणिक हृदयको यह ठीक न मालूम हुआ। तब क्या किया जाय? स्वीकार कर लिया जाय कि काक—एक भटकनेवाला सुभट—उसका सौभाग्यरक्षक पति है? लज्जासे मंजरीका गला घुटने लगा। पतिरूपमें काकका परिचय देते हुए उसके प्राण निकले जा रहे थे। उसका गर्व नष्ट हो रहा था। उसका नाम न बताकर उसका और अपना सम्बन्ध छिपाना, यह भी गर्वकी बात नहीं थी। इन विचारोंकी उलझनमें उसे पसीना आ गया। उसने पसीना पोंछकर मस्तिष्कको स्थिर किया। उसके मस्तिष्कमें बड़े वेगसे अनेक विचार उत्पन्न हो गये। वह काककी स्त्री है, यह बात अब बदली नहीं जा सकती। वह शुद्ध ब्राह्मणवंशका है। जिन जामदग्नेयका वह हृदयमें जप किया करती थी, वह उन्हींका गोत्रज है। उसने लाटको वशीभूत किया है, अपने अकेले हाथों नवघनको मात किया है, जयदेवका वह दाहिना हाथ है, उसने मुझे बहुत ही वीरतासे बचाया था। कोई उपन्यासकार जिस प्रकार अपने उपन्यासके नायकके पराक्रमोंकी सूची बनाता है, उसी प्रकार उसके मस्तिष्कने इन सब पराक्रमोंकी सूची बना डाली। उसे सब गुणोंका जोड़ ठीक मालूम हुआ। उसमें अधिक अधमता प्रतीत नहीं हुई। कविकी-सी अतिशयोक्तिकी स्वाभाविक टेवसे वह काकका परिचय देने लगी। परिचय देते हुए उसकी कल्पनाशक्ति उत्तेजित हो गई और वह जैसे काकके बदले परशुरामका ही वर्णन करती हुई बोली—

८—पाखण्डका खंडन करनेके अनन्य रसिक, गीर्वाणवाणीके अलंकार, पंडित-मंडलीमें जो सदा सर्वदा सूर्यके समान चण्ड बनकर प्रकाशमान हैं, और सुन्दर वाणीकी प्रभामें आनन्द लेनेवाले कविगण चरणोंमें झुककर जिनकी स्तुति करते हैं, वे पट्टन-नरेशके सम्मान-पात्र श्री रुद्रभट्ट मेरे पिता हैं।

९—जो समस्त सारस्वतरूप जलनिधिके पार पहुँच गया है, और अपनी बुद्धिसे दुष्कवियोंके विनाशके लिए देहधारी कवितावतारके समान जो प्रकाशमान हो रहा है।

भीमाचारगुरुः पुरघ्नसदृशः प्रोद्दण्डशौण्डो मुनि-
र्मातृघ्नो जमदग्निऽजोऽग्निदहनस्तद्गोत्रमौलिर्यथा ॥
शौर्यक्रौर्यविधौ तथैव निपुणः पुण्यप्रभान्वितो,
रेवातीरवितीर्णकीर्तिनिकरः काकारि यच्छत्रुकः ॥१०॥

यह बोलते बोलते जैसे उसके प्राण निकलने लगे, हृदय उलझनमें पड़ गया, गर्वने मुखसे काकका नाम न निकलने दिया। उसने अपने रसीले होठ अरसिक दृढ़तासे दबा लिये। गर्वके बलपर नेत्रोंसे तेज विकीर्ण करती हुई वह अपने अवगणना किये हुए पतिका नाम बोली—

"**काकः**—" जरा रुककर उसने वेगसे चरणको पूरा किया—

"**काकरुकारिरभ्रवयसः शुष्काशनिस्तेजसा।**"

दूसरा चरण रचते हुए देर लगी। काकका अपने अकेले हाथों जूनागढ़के नवघनरा'को पकड़ लानेका अप्रतिम पराक्रम उसे याद आ गया और वह बोली—

"**शीर्णं येन हि जीर्णदुर्गनृपतेर्मानं महामानिना ॥**"

इस चरणसे उत्पन्न हुई मानसिक छविसे वह काककी ओरके धिक्कारको क्षणभरके लिए भूलकर उसके गुण गाने लगी—

नीतिज्ञश्चकितप्रधानसचिवः कर्णात्मजाभ्यर्चितः
श्रीमन्मण्डलनाथसख्ययुगसौ—"

वर्णन तो पूर्ण हो गया, परन्तु चरण अपूर्ण रह गया। क्रोधसे—तिरस्कारसे वह शेष शब्दोंको बोली—

"**सौभाग्यनाथो मम ॥ ११ ॥**"

१०—मुनि होते हुए भी भीषण आचरणके गुरु, पुरघ्न (महादेव) के समान दण्ड देनेमें चतुर, माताका वध करनेवाले और अग्निके समान दाहक, जमदग्नि-तनय परशुराम जिस गोत्रके मुकुट थे, उसी प्रकार शूरता-क्रूरतामें निपुण और पुण्यप्रभावयुक्त रेवाके तीरपर जिसकी कीर्ति हुई है, और जिसके शत्रु काकारि अर्थात् उलूक बन जाते हैं, (अँधेरेमें ही छिपे रहते हैं) ऐसे—

११—काक—जो कि तेजमें विजलीके समान है, डरपोकका बालपनसे ही शत्रु है; जिस महामानी पुरुषने जीर्ण दुर्ग (जूनागढ़) के नृपतिका मान शीर्ण किया है, जिसने नीतिज्ञमुख्य मन्त्रियोंको चौंकाया है, जो कर्णात्मज जयदेवसे पूजा जाता है, वह श्रीमान् मण्डलेश्वरकी मैत्रीप्राप्त काक मेरा सौभाग्यनाथ है।

अंतिम शब्दोंको बोलते हुए उसका हृदय फट गया। उसकी आँखोंमें अँधेरा छा गया। वह अपने मनसे पतित हो गई—गंगाकी भाँति नीचे और नींचे। गर्व त्यागकर काकको पति स्वीकार करना! उसे दीवारपर सिर पटककर मर् जानेकी इच्छा हुई।

मंजरीने अपने मुँहसे निकलती हुई सिसकीको बड़े प्रयत्नसे रोका। उसे विश्वास हो गया कि वह इस समय अधमताकी नीचीसे नीची पंक्तिमें आ गई है। यह श्लोक सुनकर कीर्तिदेवके आश्चर्यका पार नहीं रहा।

"क्या कह रही हैं?" वह संस्कृतको छोड़कर बोल उठा और प्रतिध्वनिने मंजरीसे पूछा, "भटराज काक? मेरा वयस्क? तुम यहाँ कैसे?"

मंजरीने धीरे धीरे अपना इतिहास कह सुनाया और उस रातको सज्जन मेहताकी वाटिकामें हुई षड्यंत्रकारियोंकी सभाका वर्णन किया। कीर्तिदेव आश्चर्यसे सुनता रहा।

"बहन," उसने काकके प्रदर्शित विचार सुनकर कहा, "तुम्हारे सौभाग्यकी सीमा नहीं है।"

"क्यों?" आश्चर्यसे मंजरीने पूछा।

"उसके बिना ही क्या ऐसा पति पाया जाता है?"

मंजरी चकित हो गई। क्या काक ऐसा वीर और बुद्धिमान् समझा जाता है? इसके उत्तरमें उसके गर्विष्ठ हृदयमें केवल तिरस्कार छा गया। एकान्त होते हुए भी अभिमानसे उसके होठ सिकुड़ गये।

"और मुझे विश्वास है—"

"क्या?"

"कि काक तुम्हें छुड़ाये बिना न रहेंगे।"

अपने ही विचारका प्रतिबिम्ब इन शब्दोंमें देखकर मंजरी विचारमें पड़ गई। क्या काक उसे खोज निकालेगा? 'शुनीमन्वेति श्वा' इस अपमानपूर्ण वाक्यका उसने अभी उस विगत रातको ही प्रयोग किया था, यह उसे याद आ गया। उसने हृदयको कठोर कर लिया। काकके समान मनुष्य उसे छुड़ाए, उसपर असीम उपकारका भार चढ़ाए, इसकी अपेक्षा इस पाताल-निवासमें जीवनभर सड़ते रहना उसे अच्छा प्रतीत हुआ।

इसी समय कीर्त्तिदेवका स्वर सुनाई पड़ा—" अब बोलना नहीं, रखवाला आ रहा है।"

मंजरी चुप हो रही। उसका हृदय भर आया था। कैसा उसका जीवन है! और यह उसकी कैसी अधोगति है! उसकी प्रबल कल्पना-शक्तिने उसके विगत जीवनकी याद करा दी।

वह रो पड़ी—पिताको याद करके और अपने विद्याविलास और बालपनकी चेष्टाओंको स्मरण करके। माताके अधार्मिक आचरणने—उदाके अत्याचारने—काकके पाणिग्रहणने आँसुओंके द्वार खोल दिये। भावनाओंके शिखरसे पतित होना एक दुःख है; परन्तु यदि उसका भान हो जाय, तो उस दुःखका पार नहीं रहता और फिर यह तो संस्कार और शुद्धताके गर्वमें निरन्तर मस्त रहनेवाली मानिनी थी।

१५–पता लगा

एक दिन बीता,—दो दिन बीते, तीन दिन बीते—परन्तु काकको मंजरीका पता न लगा। उसकी अकुलाहटका पार न रहा। त्रिभुवनपाल और काश्मीरादेवी भी निराशामें डूब गये।

काक आवेशमें आ गया। वह रोज मुंजालसे मिल आता, महाराजा जब शिकारसे लौट आते, तब उनसे भी मिल लेता और बाकीका समय मंजरीकी खोज करनेमें बिताता। वह उदाके पीछे पड़ गया। उसके निर्जन घरकी खोज ले आया। विश्वस्त मनुष्योंद्वारा शान्तु मेहताके घरकी भी खोज कराई; मंजरीका कहीं नाम निशान भी नहीं दिखलाई पड़ा।

उसका भट रुद्रमल्ल भी कोई पता न लगा सका।

" रुद्रमल्ल, लाटकी प्रतिष्ठा चली जायगी।"

" महाराज, परन्तु क्या किया जाय?"

" वह सबेरे कहाँ जाया करता है?"

" कौन, उदा मेह—"

" चुप, चुप, धीरे बात करो।"

आता था। बड़ी कठिनतासे एक मनुष्यने कहा, "उदा मेहता यहाँ बहुत करके आये तो थे, परन्तु चले गये।"

"नहीं जी, यहीं हैं। मुझसे कहा था कि मैं यहीं मिलूँगा। राजमहलमें एक ज़रूरी काम है, इसलिए आया हूँ।"

"तो उस ओर जाकर पूछो। वहाँ दो एक साधु हैं। कदाचित् उनसे मिलने आते हों।"

रुद्रमल्लने वहाँ जाकर पूछा। मरनेके आलस्यसे जीवित एक वृद्ध साधुने कहा, "हाँ, उदा मेहता आये थे। क्यों?"

"कहाँ हैं?"

"यह कैसे कहा जा सकता है? परन्तु सच्चे श्रावकोंके हृदयमें वे सदा बसते हैं।"

"आपके पास आते हैं?"

"तब किसके पास आयेंगे? संसारमें गुणके परखनेवाले कहाँ हैं? यही एक व्यक्ति है जिसने इतने वर्षोंके बाद मेरे गुणोंको परखा।"

"कब गये?"

"विनयशील है—शुद्ध श्रावक है।" बूढ़ा साधु आँखें मूँदकर उदाके गुण गाने लगा, "विद्वान्—"

"परन्तु महाराज, इस समय वे हैं कहाँ?"

"चले गये। मनुष्यको कसौटी आनी चाहिए।"

रुद्रमल्लने वहाँसे लौटकर काकको सब कह सुनाया। दूसरी बार चैत्यके जितने द्वार थे, वहाँ एक-एक मनुष्यको नियत करके काकने पता लगाया। परन्तु उदा वहाँसे निकलता हुआ नहीं दीख पड़ा। काकको विश्वास हो गया कि अब मंजरीका पता अवश्य लग जायगा।

जब काकको फिरसे इस चैत्यमें आना पड़ा, तब वह फटे-पुराने कपड़े पहनकर आया और जहाँ वह वृद्ध साधु ठहरा था, उस एकान्त बरामदेके सामने छिपकर बैठ गया। कुछ देरमें उदा आया, और उसी बरामदेमें गया। काक भी उसके पीछे हो लिया और छिप गया। उदाने कुछ देर साधुसे बातचीत की और बिदा ली। पत्थरके एक स्तंभके पीछे छिपा हुआ काक देखता रहा। उदा द्वार तक आया और उसने द्वारके बाहर दृष्टिपात किया। बाहर कोई

नहीं दीख पड़ा। अतएव वह फिर अन्दर गया। काक दम साधे देखता रहा। उदाने इधर-उधर देखा और दीवारमें एक पुरानी खिड़की थी, उसे खोलकर वह बाहरकी ओर कूद पड़ा। अपने शिकारपर सिंह जिस वेगसे आक्रमण करता है, उसी वेगसे काकने छलाँग भरी, उदाके बन्द किये हुए खिड़कीके द्वारको खोलकर एक दृष्टि डाली और वह भी बाहरकी ओर कूद पड़ा।

यह खिड़की मुंजालेश्वरके मन्दिर और चैत्यके बीचकी दीवारकी गन्दी अँधेरी गलीमें पड़ती थी। आगे बढ़ने पर काकको उदाके सफ़ेद वस्त्रोंका अभास मिला और वह उसके पीछे-पीछे दीवारसे सटे हुए छिपकर चलने लगा।

उदाने इस गलीमेंसे होकर मुंजालेश्वर महादेवके मन्दिरमें जानेवाले द्वारको पार किया और वह उस मन्दिरके पीछेकी ओर जा निकला। वहाँसे वह जल्दीसे पिछले तहख़ानेमें पैठा। कहीं पकड़ न जाय, इस डरसे डरता हुआ काक भी पीछे पीछे चलता गया। उसे कँपकँपी आ गई। कारण, लोग कहते थे कि इन तहख़ानोंमें काल भैरवका वास है। परन्तु काकने विचार किया कि जहाँ मारवाड़ी जैन वणिक जा सकते हैं, वहाँ उस जैसे ब्राह्मण वीरको क्या भय हो सकता है?

कुछ दूर आगे बढ़कर उदाने पलीता जलाया और काक एक कोनेकी आड़में छिप गया। तहख़ानेके पत्थरको खिसकाकर, उसने उसका मुँह खोला और उसमें प्रवेश किया। ज्यों ही उदाने पलीतेको बुझाया कि काक आगे बढ़कर उस मोखेमें होकर सुरंगमें पहुँच गया। सुरंगका मार्ग सीधा था। इस अवसरका लाभ उठाकर उदा मेहताको यमलोक पहुँचानेका विचार काकको हो आया; परन्तु ऐसा करनेसे मंजरी नहीं मिल सकती, अतएव उसने इस विचारको स्थगित कर दिया। बहुत देरतक चलनेपर ये लोग विमलशाहकी बावड़ीपर जा निकले। यह मार्ग देखकर काकको आश्चर्य हुआ और वह विचार करने लगा कि मंजरीकी क्या दशा होगी। मंजरीके व्यवहारसे उसके प्रति उसे बड़ा तिरस्कार हो गया था। फिर भी उसके हृदयपर उस गर्विष्ठ सुन्दरीका साम्राज्य निश्चल था और उसे जीतनेकी आशा उसने अभीतक छोड़ी नहीं थी।

उदा तेजीके साथ वहाँसे निकलकर सामनेवाले उपाश्रयमें गया, और उसके एक ओर जहाँ सुरपाल रहता था; वहाँ पहुँचा। काकने उसके पीछेकी ओर जाकर उपाश्रयकी रचनाको दृष्टिमें जमा लिया।

कोई दो घड़ीतक उसने प्रतीक्षा की, तब उदा लौटा और बावड़ीकी ओर गया। काकको अब उसकी परवा नहीं थी। उसे विश्वास हो गया कि मंजरी इसी उपाश्रयमें होनी चाहिए। इतनेमें सन्ध्या हो गई, अँधेरा छा गया और पाटनके दरवाज़े बन्द हो गये। दरवाज़े बन्द होते ही काकने वहाँसे निकलकर सुरपालका द्वार खटखटाया।

"कौन, महाराज?" उसने धीरेसे पूछा।

"भाई, मैं एक पथिक हूँ। मुझे इस समय यहाँ पड़ा रहने दोगे?" 'महाराज' कौन है, इसपर विचार करता हुआ काक बोला।

"नगरमें जाना था, तो जरा पहले आते!" सुरपालने कहा,—"जाओ, उस अन्दरके दालानमें सो रहो।" कहकर उसने द्वारके किवाड़ोंको बन्द कर लिया।

काकको यही चाहिए था। वह अन्दरके दालानमें गया और वहाँसे सारे उपाश्रयमें घूमने लगा। दो साधुओंके सिवाय वहाँ कोई नहीं था। वह सब ओर फिरा परन्तु मंजरीको छिपा रखने योग्य कोई जगह उसे नहीं दिखाई पड़ी। चिन्ता ही चिन्तामें उसने सारी रात बिता दी।

वह सबेरे जल्दी उठकर फिर उपाश्रयकी जाँच करने लगा। उसे यह विश्वास तो हो ही गया था कि मंजरी यहीं होनी चाहिए; परन्तु वह कहाँ होगी? सम्भव है, सुरपाल जानता हो; परन्तु वह उदाका शिष्य हो, तो उससे पूछनेसे क्या लाभ? इसी समय सुरपाल हाथोंमें घड़े लेकर बावड़ीकी ओर जाता दिखलाई पड़ा। काक उसके साथ हो लिया।

"क्यों, नगरमें नहीं गए?" सुरपालने पूछा।

"नहीं, मैंने सोचा कि स्नान-सन्ध्या करके ही जाऊँगा।"

"ब्राह्मण हो?"

"हाँ।" काकने कहा। दोनों बावड़ीपर पहुँचे और सुरपाल पानी भरने लगा। सुरपाल बहुत ही अल्पभाषी था। अतएव उसके साथ अधिक बातें नहीं हो सकती थीं। काक धीरे-धीरे नहाने लगा। कुछ देरमें उसे एक बात बहुत आश्चर्यजनक मालूम हुई। जितना पानी एक आदमीके लिए चाहिए सुरपाल उससे बहुत अधिक पानी भरकर ले जा रहा था।

अचानक काकको विचार आया कि मंजरीको सुरपालने कहीं तहखानेमें

तो नहीं रखा है ? यह विचार आते ही उसे हंसादेवीकी बात याद आ गई जो त्रिभुवनपालने उससे कही थी। उसका रोम-रोम खड़ा हो गया। क्या मंजरीकी भी वही दशा होगी ? उसने स्नान और सन्ध्या करके सुरपालसे बिदा ली और जल्दीसे घर आ गया।

" क्यों, रातको कहाँ थे ? " चिन्तातुर मंडलेश्वरने पूछा।

" वहीकी वही पीड़ा मेरे पीछे लगी है।"

" कल मैंने राजमातासे बातकी थी। उन्होंने वचन दिया है कि यदि मंजरीको उठा ले जानेवाला पकड़ा जाय, तो उसे कठोर दण्ड दिया जायगा।"

" पकड़ा जाय, तभी न ? " काकने हँसकर कहा।

" कुछ पता लगा ? " काककी आवाज़ सुनकर आई हुई काश्मीरादेवीने कहा।

" हाँ, लगा है। "

" कहाँ है ? "

" कहूँ ? ठहरिए, परन्तु पहले मैं जो पूछूँ, वह बताइए। "

" क्या ? " दोनों बोल उठे।

" हंसा माताको जहाँ वर्षों क़ैद रखा था, वह स्थान कौन-सा है ?"

त्रिभुवनपालको विस्मृत दुखका स्मरण हो आया। उसके कपालपर बल आ गये। " क्यों ? "

" मुझे काम है। "

" वह स्थान किसीको मालूम नहीं। मामा जानते हैं, या मीनलदेवी। "

" परन्तु किम्बदन्ती क्या है ? "

" यह कि विमलशाहके उपाश्रयमें उन्हें रखा गया था। "

" यह सच है। " काकने कहा।

" यह कैसे जाना ? " काकका दिमाग ठिकाने है या नहीं, यह सन्देह होने पर काश्मीरादेवीने पूछा।

" कारण कि मंजरी भी वहीं है। "

" ऐं ? "

" क्या वहाँ तहखाने हैं ? " काकने पूछा।

" लोग तो यही कहते हैं। "

" तो यह बात भी सच है। आप उस उपाश्रयके रक्षकको पहचानते हैं ?"

" नहीं, परन्तु वह बड़ा पुराना आदमी है।"

" वह पसीज सकता है ?"

" यह कैसे कहा जाय ?" मंडलेश्वरने कहा।

" तब उस तहखानेके विषयमें कुछ मालूम हो सकता है ?" काकने पूछा।

त्रिभुवनपालने सिर हिलाया, " नहीं। यह तुम कहते हो तब। मेरी तो धारणा है कि वहाँ तहखाने हैं ही नहीं।"

" अच्छा, मैं विश्वास करा दूँगा।"

" किस प्रकार ?"

" वहाँसे मंजरीको छुड़ा लाकर।"

१६—मंजरीने पतिकी प्रतिष्ठा रखी

काकने एक दिनमें सारी तैयारी कर ली और जब उदाका विमलशाहके उपाश्रयमें जानेका समय हुआ, तब वह उसे मात करनेको तत्पर हो गया।

इतने समयमें काक और रुद्रमल्लने मिलकर जिस कोठरीमें सुरपाल रहता था, उसकी कुछ खपरैल हटाकर बाँस तोड़ डाले थे। निश्चिन्त सुरपाल अपना काम किये जा रहा था और अपनी होशियारीमें फूला हुआ उदा निर्भय हो रहा था।

उस दिन उदा उजाला रहते न आए, इसके लिए काश्मीरादेवीने एक युक्ति रच ली थी। सोरठसे कर्कसूरि नामक एक दिगम्बरमतानुयायी साधु दो-चार दिनोंसे पाटनमें आये हुए थे और उनसे मिलनेको मीनलदेवी दोपहरके बाद जानेवाली थीं। कर्कसूरिने रानीसे सपरिवार आनेको सूचित किया था। काश्मीराने आग्रह करके उदाको भी आनेका निमन्त्रण दिलवा दिया। राजमाताके आदेशका अनादर न हो, इसलिए उदाको आना पड़ा। वहाँ सहज ही सन्ध्या हो गई। वहाँसे निकलकर उदा यथासंभव जल्दीसे सुरंगके रास्ते विमलशाहके उपाश्रयमें पहुँचा। उस समय सुरपाल चबूतरेपर बैठा था और छप्परपर ध्यान लगाये काक छिपा बैठा था।

" क्यों मेहताजी, देर कैसे हो गई ?"

"क्या कहूँ, आज राजमाताने बुला लिया था।"

"भाई, अब कुछ प्रबंध करलो। मैं अधिक दिनोंतक नहीं रख सकूँगा।"

"दो-चार दिनकी ही बात है, अधिक नहीं।"

"अच्छा, बैठो। मैं ले आऊँ।"

"क्यों, अब वह स्वतः चली आती है क्या?" उदाने मधुरतासे पूछा।

"अजी, शिव-शिव कहो, वह तो ऐसी जबर्दस्त है कि मुझे हमेशा भय दिखाना पड़ता है।"

"वह क्या?"

"यही कि न चलोगी, तो उठाकर ले जाऊँगा। अच्छा आओ, उस कोठरीमें बैठ जाओ।"

"हाँ, चलो।" कहकर उदा पासकी कोठरीमें जा बैठा और सुरपाल मंजरीको लेने चला गया।

कोठरी छोटी-सी थी और उसमें एक छोटा-सा दीपक जल रहा था। अशान्त हुआ उदा कमरपर हाथ रखकर इधर-उधर टहलने लगा। काकको यह अवसर अमूल्य प्रतीत हुआ। काकको विश्वास था कि सुरपालको लौटनेमें कुछ देर तो अवश्य लगेगी। उसने छप्परके एक ढीले किये हुए बाँसको तोड़ डाला और उस मोखेमेंसे नीचे कूद पड़ा। जब वह नीचे कूदा, तब उसकी ओर उदाकी पीठ थी, परन्तु कूदनेके धमाकेसे चौंककर वह पीछे मुड़े कि इसके पहले ही काक उसपर टूट पड़ा। कई दिनोंके घिरे हुए आवेशसे वह उससे चिपट गया। उसके मुँहमें कपड़ा ठूँसकर उसे जमीनपर पटक दिया और उसपर चढ़ बैठा। उदाने उसे देखा, पहचाना और उसके होश उड़ गये। उसे प्रतीत हुआ कि अब काक अवश्य उसके प्राण ले लेगा।

परन्तु काकका यह विचार नहीं था। कमरसे बँधे हुए दुपट्टेको खोलकर उसने उदाके हाथ-पैर बाँधे और उसका शाल और पगड़ी ले ली। फिर उसपरसे उठा, खिड़की खोली, रुद्रमल्लको पुकारा और मन्त्रीको उठाकर गठरीकी तरह खिड़कीसे बाहर फेंक दिया। रुद्रमल्लने उसे झेल लिया।

"रुद्र!"

"जी!"

"उस वृक्षके पास खड़े रहना। परन्तु यह चला न जाय।" कहकर

काकने खिड़की बन्द की, उदाकी शाल ओढ़ ली, पगड़ी पहन ली और उसीकी तरह ढाटा बाँध लिया।

सुरपालके लौटनेमें उसकी धारणासे भी अधिक देर लगी। आखिर उसके साथ ही किसी औरके पैरोंकी आवाज सुन पड़ी। काक सुसज्जित होकर ज़रा अँधेरेमें खड़ा हो गया।

मंजरी अन्दर आई और बाहरसे सुरपालने द्वार बन्द किया। वह आई— तिरस्कारकी मूर्तिके समान, और द्वारके पास खड़ी हो गई। गर्वसे गर्दनको सतर किये निर्भयतासे देखती रही। काकने उसके गर्व, उसके तिरस्कार और उसके निश्चल मधुर होठोंको देखा और उसे उसके वे अन्तिम शब्द "शुनीमन्वेति श्वा" याद आ गये। काकका उछलता हुआ हृदय भावहीन हो गया। हृदयमें जो प्रेम तरंगित हो रहा था, उसपर गौरव और तिरस्कारका आवरण छा गया।

"मंजरी!" उसने धीरे-से कहा।

मंजरीने नहीं पहचाना। शान्त तिरस्कारसे वह देखती रही।

"मंजरी, देर न करो। यह खिड़की खुली है।"

"कौन?" आश्चर्यसे एक पैर पीछे हटकर मंजरीने कहा। इसके उत्तरमें एकदम उसे प्रेमका आवेश आ गया, अरे "तुम!"

"हाँ।" कठोरतासे काकने कहा, "जैसा कि तुमने कहा था, कुतियाके पीछे कुत्ता चला आया है। देर न करो। समय बीत रहा है।" कहकर वह खिड़कीके पास गया। मंजरी भी उसके पास आई।

"परन्तु उदा—"

"उसे बाँधकर मैंने बाहर डाल दिया है। चलो।" काकने सत्तापूर्वक कहा। मंजरीने फिर गर्वसे सिर उठाया।

"मैं अकेली कैसे चल सकती हूँ? मेरे साथ एक और क़ैदी है। उसे कैसे छोड़ा जा सकता है?"

"मुझे उसकी परवाह नहीं।" काकने शान्तिसे कहा।

"परन्तु वह तुम्हारा मित्र है।"

"कौन?"

"कीर्तिदेव।"

" कीर्तिदेव ? ओह ! अब मैं समझा। पर उसकी बात कल। इस समय तो तुम चलो। नहीं तो वह रक्षक अभी आ पहुँचेगा। "

" मैं नहीं चल सकती। "

" क्यों ? " क्रोधसे काकने पूछा।

" मैं कीर्तिदेवको निराश नहीं कर सकती। "

" किस प्रकार ? "

" उसे आशा है कि उसका मित्र उसे और मुझे छुड़ानेको अवश्य आयेगा। "

" परन्तु मैं न छुड़ा सका, तो ? " काकने अधीरतासे पूछा।

" जो उसकी गति होगी, सो मेरी। "

" तुम मूर्ख हो। " अकुलाए हुए काकने दाँत किटकिटाकर कहा।

" तुम जैसे कृतघ्न मित्रकी सहायतासे छूटनेकी अपेक्षा उस बेचारे आशाजीवी मित्रके साथ मरना अच्छा है। "

" तो तुम नहीं मानोगी ? "

" मैं कारागारमें पड़ी-पड़ी यही मनाऊँगी कि कीर्तिदेवका मित्र उसे छुड़ाने आए, तब मुझे भी छुड़ाए। "

" क्या कह रही हो ? " कहकर काक निकट आ गया।

" मुझे बलपूर्वक ले जाओगे, तो मैं चिल्ला पडूँगी। " कहकर मंजरी दृढ़तासे खड़ी हो गई।

काकने क्रोधसे मुट्ठियाँ बन्द करके हाथोंमें नख गड़ा लिये। मंजरीने धीरे-से कहा, " उसकी धारणा है कि तुम असाध्यको भी साध्य कर सकते हो। "

" परन्तु तुम लोग कहाँ हो ? "

" किसी कुएके नीचे हैं। हमारे तहखानेकी जालियाँ उसमें पड़ती हैं। "

" ऐसा ! " काकने निराशासे पूछा, " परन्तु उसका पता कैसे लगेगा ? विमलशाहकी बावड़ीके तो सात कुएँ हैं। "

" हम लोग जालीमेंसे बातचीत किया करते हैं। अतएव उसका पता अवश्य लग जायगा। "

" अच्छा तो कल देखा जायगा। मंजरी, तुम नहीं मानोगी ? कीर्तिदे-

वको कल देखूँगा। उसे मालूम थोड़े ही होगा कि इस समय मैं तुम्हें ले जा रहा हूँ।"

"परन्तु इस पक्षपातसे, इस स्वार्थसे मुझपर कितना लांछन लग जायगा?" उसने गौरवसे कहा।

"तुम्हें?"

"हाँ, भूल गये?" उसने तिरस्कारसे कहा, "अग्निदेवने मुझे तुम्हारी सहधर्मचारिणी बनाया है न?"

"तो ठीक है। मैं जाता हूँ।" काकने खीझकर कहा।

"अच्छा।"

काक जल्दीसे बाहर निकल गया। यह देवांगना है या डाकिनी, इसका निर्णय करनेकी शक्ति इस समय उसमें नहीं थी। बाहर निकलकर धीमे स्वरमें सुरपालसे "जय सोमनाथ" कहकर काक चला गया। यह नये प्रकारका जयकार सुरपालको अपरिचित प्रतीत हुआ; परन्तु उसने कोई सन्देह नहीं किया। बाहर निकलनेपर काक और रुद्रमल्ल उदाको घसीटकर कुछ दूर ले गये। वहाँ दो घोड़े तैयार खड़े थे। उनमेंसे एकपर उदाको बाँधकर दूसरेपर रुद्रमल्ल सवार हुआ और काककी सूचनाके अनुसार दोनों घोड़ोंको उसने दधिस्थलीकी ओर बढ़ा दिया।

१७-वृद्ध हरिणीकी कहानी

सोरठके जिस दिगम्बरी साधुसे मीनलदेवी मिलने गई थीं, वह हड्डियोंका पञ्जर मात्र था। उसकी आँखें सदा अधमुँदी रहतीं और उनकी गहराईका पार कोई नहीं पाता।

मीनलदेवी और उनके साथी साधुसे मिलकर गये और आये हुए लोग बिखर गये। केवल दो-एक मनुष्य ही साधुके पास रह गये। इतनेमें एक नौकर जैसा दिखनेवाला मनुष्य, कोई पहचान न सके, इस प्रकार मुखपर ढाटा बाँधकर आया। उसने साधुके पैर छुए और सोरठके कुशल-समाचार पूछे। फिर धीरेसे पूछा "क्या हाल है?"

कर्कसूरिकी तीक्ष्ण दृष्टि उसपर स्थिर हो गई। वे एक अक्षर भी नहीं बोले।

" रूपादेवी महारानीजीके साथ आपसे मिल गईं, परन्तु वे सोरठके समाचार न पूछ सकीं। उन्होंने पुछवाया है।" उस नौकरने कहा।

रूपादेवी देसल और विसलकी माता और जूनागढ़के रा' नवघनकी पुत्री थी।

" समाचार? सब कुशल-क्षेम है।" कर्कसूरिने उच्च स्वरमें कहा और फिर धीरे-धीरे कहना शुरू किया, "इस क्षणभंगुर संसारमें क्षेम और कुशल क्या? एक दृष्टान्त है—हमारे यहाँ एक हरिणी थी—थी क्या, है—यह बात जानने योग्य है।" उस नौकरके कपालपर अधीरताकी सिकुड़नें पड़ गईं।

" जी।" कहकर कर्कसूरिकी बातें सुननेको वहाँ बैठे हुए सभी लोग सावधान हो गये।

" उस हरिणीके दो प्रतापी बच्चे थे—उनमें एक हरिणी थी और दूसरा हरिण। और बाकीके सब निकम्मे, निर्बल।" नौकर कथा सुनने लगा।

" हरिणी पड़ गई बीमार। देखो, इस संसारकी खूबी—मरणासन्न हो गई—मरते मरते उसे अपने बालकोंकी याद आई। सभी थे उसके पास—केवल वही दोनों प्रतापी बच्चे नहीं थे—वह हरिणी और हरिण।"

" ओह!" उस नौकरने कर्कसूरिकी ओर देखकर कहा।

" हाँ, सोचनेकी-सी बात है। बूढ़ी हरिणी छटपटा रही थी कि उसी समय वहाँ एक वीतराग साधु आ पहुँचे, एक महान् दिगम्बर।" कर्कसूरिने पहली बार आँखें पूरी खोलकर उस नौकरकी ओर देखा।

" ओहो!" कहकर एक भावुक दिगम्बरी श्रोताने सिर उठाकर उनकी ओर देखा।

" उनसे हरिणीने कहा, महाराज, किसी प्रकार मेरे बच्चोंको बुला दें। मेरे प्राण नहीं निकल रहे हैं।"

" सूरिने कहा, 'अभी लाया'।"

" फिर?" उस नौकरने पूछा।

" साधु महाराज पवनकी खड़ाउँओंपर चढ़कर पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर आये, परन्तु वे बच्चे नहीं मिले। उधर हरिणी छटपटा रही है और इधर बच्चे न जाने कहाँ भटक रहे हैं। इस संसारके क्षेम-कुशलका यह एक दृष्टान्त है।"

"परन्तु महाराज, वे बच्चे किस ओर चले गये, इसका पता नहीं लगा ?" उस नौकरने पूछा।

"लगा क्यों नहीं ?"

"तब वे साधु महाराजको क्यों नहीं मिले ?"

"पता लगनेसे भी क्या होता है ? स्वच्छन्द बच्चे कहीं बूढ़े माँ-बापकी परवाह करते हैं ? केवल वह हरिण ही पहुँच जाय, तो उस बूढ़ी हरिणीकी सद्गति हो जाय।"

"तब फिर क्या हुआ महाराज ?"

"फिर क्या होता, कुछ नहीं। जाओ, कहना अपनी सेठानीसे सोरठके इस हरिणकी कहानी। इस संसारमें क्षेम क्या और कुशल क्या ? यही बात कहना। मुझे मिलनेसे क्या लाभ ?"

नौकर यह बात सुनकर चला गया। और, सब लोग भी चले गये।

१८—वृद्ध हरिणीके बच्चेकी कहानी

दूसरे दिन सबेरे अपने नित्य नियमानुसार सोमसुन्दरी उस छोटे जल-कुण्डके पास फूल चुन रही थी। उसके हृदयमें ग्लानि थी, कारण कि उसके बाल-जीवनमें कृष्ण देवके जानेसे निराशा छा रही थी।

अचानक उसके पीछेकी ओरके वृक्ष हिले। वह चौंकी, पीछेकी ओर फिरी। हाथसे वृक्षकी डालियोंको हटाकर कृष्णदेव सामने आ खड़ा हुआ। वह हँस रहा था और उसकी आँखें चमक रही थीं। प्रातःकालके मधुर प्रकाशमें वह साक्षात् श्रीकृष्णकी भाँति प्रतीत हो रहा था।

"खेंगार !"

"हाँ, वही खेंगार जादव—"

सोम जाने लगी।

"सोम !" खेंगारने कहा।

"क्यों ?" कठोरतासे सोमने पूछा।

"मैं अन्तिम बार तुम्हारे दर्शन करने आया हूँ। मैं आज पाटनसे जा रहा हूँ।"

"मैं तो समझी थी कि चले गये होगे।" उसने एक ओर फिरते हुए कहा।

"तुम यहाँ हो तब मैं कैसे चला जाऊँ ?"

"मुझसे और तुमसे क्या सम्बन्ध ?"

"सब कुछ। तुम न मानोगी ?"

"नहीं। मैंने एक बार कह दिया कि जो पाटनका शत्रु है, वह मेरा भी।"

"परन्तु मैं पाटनका शत्रु कहाँ हूँ ?"

"तुम्हारी सात पीढ़ियाँ हैं।"

"हुआ करें, मैं नहीं हूँ; कारण कि मेरा मन—"

सोमने ऊपरकी ओर देखा।

"तुम्हारी चरण-सेवाको तरसा करता है।" साहससे हँसकर खेंगारने कहा।

"ऐसी बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिए।"

"इसके सिवाय मैं दूसरी बात नहीं करना चाहता। इस जन्ममें सोम और आगामी जन्ममें सोमनाथ, बस यही दोनों मेरे सहायक हैं।"

सोम अपनी हँसीको न रोक सकी।

"ठीक है, तुम मुझे नहीं पहचानतीं। तुम नहीं मानोगी, तो मैं पाटन उजाड़ दूँगा,—सज्जन मेहताको कैद करूँगा और उनकी लड़कीको पटरानी बनाऊँगा। तब मुझे कौन रोकनेका साहस करेगा ?"

"ये सब बातें मैं नहीं सुनना चाहती।" यह कहकर सोमने कानोंपर हाथ रख लिये।

"परंतु मैं कहना चाहता हूँ। तुम मान जाओगी, तो तुम्हारे पीहरको मैं अपनी ससुराल समझकर पाटनसे संधि कर लूँगा।"

"और यदि मैं न मानूँ ?"

"तुम मुझे नहीं पहचानतीं। वही श्रीकृष्ण मेरे पूर्वज हैं, जिन्होंने यादव-स्थली कराई थी।

सोमको कँपकँपी आ गई। उसने चित्तको स्वस्थ करके कहा, "तुम्हारी इन बड़ाईयोंसे मैं ऊब गई हूँ।"

"बड़ाई कैसी ?"

"तुम्हारे हाथोंमें यह सत्ता कैसे आ जायगी ?"

" कारण कि जूनागढ़के सिंहासनका मैं ही स्वामी बनूँगा । "

" ऐं ? " सोमने तिरस्कारसे कहा ।

" हाँ, मेरे पिता मृत्यु-शय्यापर पड़े हैं । "

" कौन रा' ? " सोमने चौंककर कहा, " तुमने कैसे जाना ? "

" उन्होंने मुझे सोरठके एक सूरिके द्वारा सन्देश भेजकर बुलवाया है । वे मुझे राजगादी देना चाहते हैं । "

" यह कैसे हो सकता है ? " सोमने विस्मित होकर पूछा ।

" मेरे बड़े भाईमें दम नहीं है, अतएव पिताजी मुझे ही गादीपर बिठाना चाहते हैं । " खेंगारने विश्वास-पूर्वक कहा । सोमकी आँखोंमें ज़रा मधुरता आ गई और खेंगारने तुरन्त ही उसका हाथ पकड़ लिया ।

" सोम, तुम जूनागढ़की पटरानी बनोगी ? "

" छोड़ दो । " कहकर सोमने उसका हाथ झटक दिया । " मुझसे और जूनागढ़से क्या संबंध ? "

" वाह ! " हँसकर कृष्णदेवने कहा, " जब जूनागढ़ मेरा है, तब तुम्हारा भी तो हुआ । जूनागढ़ और पाटन दोनोंका संबंध हो जाय तो यह क्या अच्छा नहीं होगा ? "

" सोचूँगी । " सोमने जानेकी इच्छा प्रकट करते हुए कहा ।

" अच्छा, मैं रातको आऊँगा और रातको ही हम लोग पाटन छोड़ देंगे । "

सोमने उत्तर नहीं दिया ।

" मैं उस खिड़कीके पास प्रतीक्षा करूँगा । "

" नहीं । "

" नहीं क्यों ? हाँ । अवश्य । जूनागढ़ और पाटन भले ही जुदा हों, हृदय तो जुदा नहीं हैं ? " कहकर खेंगारने छलाँग मारी और वह झाड़ीमें होकर चला गया । विचारोंकी भँवरमें घबराई हुई सोम वहीं मूर्तिवत् खड़ी रह गई । उसके अस्थिर चित्तमें जूनागढ़की गादी रम रही थी । उसका प्रेम-पूर्ण भोला हृदय खेंगारके साथ-साथ चला गया, तुरन्त न लौट सका ।

* * *

कोई दो घड़ी बाद कर्क सूरिके निकट रूपादेवीका वही कलवाला नौकर

फिर आ पहुँचा। उसने सूरिजीको पैर छूकर प्रणाम किया। उस समय भी सूरिजीके पास दो-तीन मनुष्य बैठे थे।

"महाराज, रूपादेवीको मैंने आपकी हरिणीकी कहानी सुना दी।"

"अच्छा।"

"उसका उत्तर कहलाया है।"

"क्या?"

"रातको उन्हें स्वप्न आया कि मानों उस छटपटाती हुई हरिणीसे मिलनेको उसका एक बच्चा जा पहुँचा है।"

"कौन-सा? हरिणी या हरिण?"

"हरिणी तो अपने जंजालमें फँसी हुई थी, परन्तु हरिण तीव्र गतिसे सोरठकी ओर चल दिया और वृद्ध हरिणीकी सद्गति हो गई।"

"रूपादेवीसे कहना कि यह स्वप्न बड़ा शुभसूचक है। हरिणका जाना उचित ही है। ऐसे समय उसे और कहीं क्या काम हो सकता है? जाओ खेंगार, माताजीसे जाकर मेरा आशीर्वाद कहना।"

अपना नाम सुनकर नौकर चौंक पड़ा और अपने मुखको और भी अधिक छिपानेके लिए मुँहपर हाथ रखकर खाँसने लगा। कर्क सूरिने उसे आशीर्वाद दिया और वह वहाँसे उठकर चल पड़ा।

१९—पाटनका पर्राष्ट्र-विभाग

सबेरे उठतेही काक मंजरीको छुड़ानेकी तजबीज करने लगा। पहले वह विमलशाहकी बावड़ीके पास जाकर मंजरीके बतलाये हुए कुएँको पहचान आया। उसमें उतरनेके लिए, उसने सन्ध्या होनेसे पहले ही बहुत बड़ी रस्सी वहाँ पहुँचानेका प्रबन्ध किया और फिर मंजरीको अमावास्याके दिन जूनागढ़ ले जानेका जो वचन दिया था, उसके पालन करनेकी तैयारी करनी शुरू कर दी। उस रातको पाटन छोड़ देनेका अपना विचार उसने मंडलेश्वरको भी बतला दिया।

मंडलेश्वर चकित हो गये और आनाकानी करने लगे।

"परन्तु महाराज, मंजरी जबतक आँखोंसे ओझल न होगी, तब तक

उदा शान्तिसे नहीं बैठने देगा और इस प्रकार मंजरीकी अपने नानासे मिलनेकी इच्छा भी पूर्ण हो जायगी। इस लिए जाने दीजिए। "

"परन्तु मार्गमें क्या होगा ?"

"कुछ नहीं। मैं हूँ और दस-पाँच आदमी और साथ ले जाऊँगा।"

"परन्तु महीने-भरमें लौट तो आओगे ?"

"अवश्य। मुझे और वहाँ क्या काम है ?"

"परन्तु मामाजीसे आज्ञा ले ली ?"

"उनसे आज्ञा लेनेको मैं अभी जा रहा हूँ।" कहकर वह राजमहलमें जा पहुँचा।

जयदेव महाराज नहीं थे, अतएव वह सीधा मुंजाल मेहताके पास पहुँचा। परन्तु उनसे कोई व्यक्ति गुप्त वार्तालाप कर रहा था, अतएव काकको कुछ देर रुकना पड़ा। आखिर महाअमात्य जिस कमरेमें बैठे थे, उसमेंसे एक सवार बाहर निकला। वह धूलसे लथपथ हो रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह बहुत लम्बी यात्रा करके आया है। परंतु काक अपने विचारोंमें इस प्रकार मग्न था कि उसने उस सवारकी ओर देखा तक नहीं और जब महाअमात्यका सेवक उससे कहनेके लिए आया, तभी वह आसपास दृष्टि डालकर चित्त स्थिर करके अन्दर गया।

"क्यों भटराज! आज-कल दिखलाई नहीं पड़ते ?" मुंजाल मेहताने हँसकर व्यंग्यपूर्वक पूछा।

"नित्य ही तो आपकी सेवामें उपस्थित होता हूँ।"

"अच्छा, कहो, कैसे आये ?"

"आपसे एक याचना करने आया हूँ।"

"क्या ? प्रसन्नतासे कहो।"

काक मुंजाल मेहताकी यह मधुरता देखकर विस्मित हुआ।

"मुझे एक महीनेकी छुट्टी चाहिए।"

"छुट्टी!" जरा विस्मित होकर महा अमात्यने पूछा, "पाटनमें भला क्या कमी है जो लाट स्मरण हो आया?"

"मुझे जरा काम है ?" काकने जरा झिझकते हुए कहा।

"ऐसा कौन-सा काम है ?" बहुत ही स्नेह-पूर्ण हास्यसे मुंजालने पूछा।

" मुझे अपनी स्त्रीको उसके ननिहाल पहुँचाना है। " मुंजालको उस रातकी बात याद आती है या नहीं, यह देखनेके लिए काकने कहा।

" अभी छुट्टी नहीं मिल सकती। मुझे तुमसे बहुत काम है। " तटस्थ भावसे मुंजालने कहा।

" महाराज—"

" हाँ अरे ! " मुंजालने कुछ याद करके कहा।

" जी, आज्ञा ? "

" तुम्हारा विवाह तो कविकुलशिरोमणिकी लड़कीसे हुआ है, क्यों ? "

काकने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

" तब तो उसका ननिहाल जूनागढ़में होगा ? "

" जी हाँ। "

" चलो, अच्छा हुआ। एक पन्थ और दो काज। मैं भी तुम्हें जूनागढ़ ही भेजना चाहता हूँ। "

" जूनागढ़ ? "

" हाँ, और वह काम काकभटके सिवाय दूसरा कोई नहीं कर सकता। जब तुम आये, तब मैं तुम्हारा ही विचार कर रहा था। "

काक कुछ हँसा और देखने लगा। अब उसे मुंजाल मेहताकी मधुरताका कारण मालूम हुआ।

" जी। "

" जूनागढ़के रा'का लड़का यहीं है। " काक स्थिरचित्तसे देखने लगा।

" वह तुम्हारा मित्र, क्यों ? "

" जी हाँ। " काकने साहसपूर्वक मन्त्रीसे कहा, " उस दिन जब हम सज्जन मेहताकी वाटिकामें थे, तब वहीं उसे पहचाना था। "

" इसके पहले तुम उसे नहीं परख पाये थे ? "

" शंका थी, विश्वास नहीं होता था। "

" तब मुझसे क्यों नहीं कहा ? "

" आपने मुझसे पूछा नहीं, इस लिए। "

मुंजाल हँस पड़ा। " काकभट, तुम बड़े भयंकर मनुष्य हो। "

" साथ ही विश्वासपात्र भी हूँ। " काकने हँसकर कहा।

" अच्छा, " मुंजालने गंभीरतासे कहा, " तब इस खेंगारका क्या हुआ ? "

" उस रातके बाद वह अदृश्य हो गया । "

" हाँ, उसे नहीं रखना है, और तुम्हें जूनागढ़ जाना है । "

" जो आज्ञा । "

" रा' मृत्यु शय्यापर है । उसके कितने लड़के हैं, कुछ खबर है ? "

" जी हाँ, रायघन, शेरसिंह, चूड़चन्द्र और खेंगार । "

" हमारे यहाँ सबसे छोटा आया था, क्यों ? "

" जी हाँ, खेंगार । " अज्ञानताका ढोंग करते हुए मंत्रीकी ओर हँसकर काकने कहा ।

" अच्छा । खेंगार नवघनको सबसे प्रिय है । वह उसे ही राजपाट देना चाहता है । परन्तु हमारी राजनीति न्यायशील है । बड़े लड़के रायघनको गादी मिलनी चाहिए । " धीरे-धीरे मंत्रीने कहा । "

" जी । "

" ऐसा करना चाहिए कि किसी भी तरह चूड़चन्द्र या खेंगारको गादी न मिले । "

" जी । "

" नहीं तो फिर हमें बड़ेका पक्ष लेकर उसके साथ लड़ना पड़ेगा । "

" जो आज्ञा । "

" परशुरामके पास मैं एक दूतके द्वारा सन्देश भेज रहा हूँ । वह यथाशक्य सहायता करेगा । परन्तु इसमें केवल वीरताका काम नहीं है । इसका भार लेनेवाला वीर भी होना चाहिए और राजनीतिज्ञ भी । " मुँजालने कहा ।

" मै शक्तिभर प्रयत्न करूँगा । "

" बस, मुझे यही चाहिए । कब जाओगे ? "

" कल सबेरेके बाद, जब आप कहें तब । "

" मुंजाल इस साहसी युवककी ओर देखने लगा ' " अच्छा कल सबेरे जाना । साथमें कितने सवार चाहिए ? "

" कोई आवश्यकता नहीं । आठ-दस आदमी मैंने अपने लिए साथ ले लिये हैं, वे ही बहुत हैं । अधिक आदमी साथ ले जाऊँ, तो काम बिगड़ जाय । "

" अच्छा, सन्ध्या समय मुझसे मिलना । और कोई बात होगी, तो कहूँगा । "

२०—कीर्तिदेव पागल हो गया है ?

मुंजालने यह काम उसे सौंपा, इससे एक प्रकारसे काक प्रसन्न ही हुआ। मंजरीको उसके ननिहाल पहुँचाने जानेमें उसे ओछापन लगता था। इस कामसे अब वह ओछापन मिट गया और उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि अपनी गर्विष्ठ स्त्रीके साथ अब वह सगर्व जा सकेगा। ऐसा गर्व धारण करनेका उसने निश्चय किया जो मंजरीके गर्वको भी अल्पताका आभास करा दे, और उस गर्वको सकारण प्रमाणित करनेके लिए ही वह कीर्तिदेवके समान राजबन्दीको छुड़ानेके लिए तत्पर हुआ था। फिर भी मंजरीके गर्वकी भव्यता वह देख सकता था और इस कारण मंजरीके प्रति उसका सम्मान भाव बढ़ता जाता था। इसके उपरान्त यह निरीक्षण भी वह कर सकता था कि मंजरीके समान शुद्ध, भावनाशील स्त्रीके आदर्शोंको पूर्ण करनेके लिए वह जो प्रयत्न कर रहा है, उससे मेरा अपना चरित्र और पराक्रम अद्‌भुत होते जा रहे हैं।

सन्ध्या होनेपर वह मुंजाल मेहतासे मिलकर, और उनसे उपदेशके अंतिम शब्द सुनकर मुंजालेश्वरके तहखानेमें होकर बावड़ीपर आया। वहाँ निश्चित किये हुए स्थानपर लाटके दो योद्धा कुम्हारके वेशमें दो गधोंपर रस्सियाँ लादे हुए खड़े थे। कुछ दूरीपर, संकेतके अनुसार, कीर्तिदेवके लिए लाया हुआ एक पवनगामी घोड़ा भी वृक्षसे बँधा हुआ था।

काकने फुर्तीसे दो रस्सियाँ निकलवाईं और उन्हें ऊपर बँधवाकर कुएँमें छुड़वा दिया। उनमेंसे एक रस्सीको कमरमें बाँधकर और दूसरीको थामकर वह धीरे-धीरे नीचे उतरा। वह ज्यों ज्यों नीचे उतरता गया, त्यों त्यों श्लोकके शब्दोंकी प्रतिध्वनि उसके कानोंमें पड़ने लगी और उस ध्वनिमें उसने मंजरीके शब्दोंको पहचान लिया।

नीचे उतरते उतरते जब उसे प्रतीत हुआ कि वह जाली तक आ पहुँचा है, तब उसने चकमकसे पलीता सुलगाया। अपरिचित प्रकाशसे घबराये हुए जीव-जन्तुओं और पक्षियोंमें खलबली मच गई। कुछ दूर कुएँकी दीवारपर एक बड़ेसे साँपको घबड़ाहटमें जीभ लपलपाते हुए उसने देखा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे वह सदेह नरकमें आ गया है।

उस रस्सीको हिला कर और ऊपर रस्सी थाम रखनेवालेको दिशा बदलनेकी सूचना देकर आखिर वह उस जालीके पास पहुँचा।

मंजरीकी आँखोंमें हर्षके अश्रु आ गये।

" आ गये ? " वह उमंगके साथ बोल उठी।

" हाँ।" काकने शान्त चित्तसे उत्तर दिया।

" कीर्तिदेवजी ! "

" काक ! मित्र ! तुम आ गये ? शाबास ! " दूसरी जालीमेंसे कीर्तिदेव बोल उठा।

" क्यों, जाली बहुत मज़बूत है ? "

" नहीं, मैंने ढीली कर डाली है। परन्तु काक, अभी आकर मैं क्या करूँगा ? "

" क्यों ? "

" आज तो कृष्णपक्षकी चतुर्दशी है। "

" हाँ। " अचानक स्मरण हो आनेसे काकने कहा, " कालभैरव—"

" हाँ, उन्होंने आज मध्यरात्रिको हमें बुलाया है। "

" तो चलो, हम लोग यहाँसे वहीं चलें। "

" और रास्तेमें पकड़ा जाऊँ तो ? "

" तो भोलानाथकी मरजी। "

" तब मेरी तो मृत्यु ही हो जाएगी ? "

" बेशक। "

" और सो भी अपने पिताका नाम-ठाम जाने बिना। " कीर्तिदेवने खेदके साथ सिर हिलाया, " भाई काक, मुझे यह दुःख सदा ही हुआ करता है—"

" क्या ? "

" कि मैं अपने पिताका पता लगाये बिना ही मर जाऊँगा और यदि ऐसा हो जाय, तो यह दुःख सत्य सिद्ध हो जाय। " निराशा-पूर्ण स्वरमें मालवी योद्धाने कहा।

काकने दाँत किटकिटाकर कहा, " तब क्या किया जाय ? "

" तुम जाकर कालभैरवसे पूछकर लौट आओ। " कीर्तिदेवने शान्तिसे कहा।

काक बिगड़ पड़ा। " तुम्हें कुछ होश है ? इस प्रकार तुम्हें छुड़ाना क्या कोई हँसी-खेल है ? तुम यह दूसरी बार घर आई गंगाको लौटा रहे हो। "

" भाग्यमें होगा, तो अवश्य छूटूँगा। जो अभी किया है, वह तुम मध्य

रात्रिके बाद भी अवश्य कर सकोगे।" कीर्तिदेवने ऐसे स्वरमें कहा कि पत्थर भी पसीज जाय। यह न सूझ सकनेसे कि किसपर गुस्सा उतारा जाय, काकने कीर्तिदेवको मन ही मन दो-चार गालियाँ दे डालीं। काक जानता था कि कीर्तिदेव अपने कुलका पता लगानेको कितना आतुर है, और उस मालवी योद्धाके प्रति उसे इतना सम्मान था कि उसका हृदय दुखानेको उसका जी नहीं हुआ। वह मंजरीकी जालीकी ओर मुड़ गया।

"मंजरी, तुम चलती हो?"

"क्यों, तुम कालभैरवके पास जाकर फिर लौट रहे हो न? तब ही चलूँगी।"

"और यदि नहीं लौट सका तो?"

"वैधव्य प्राप्त होनेपर यह स्थान या दूसरा स्थान, इसकी क्या चिन्ता की जाय?"

बिना एक शब्द बोले काकने संकेतके अनुसार अपनी बँधी हुई रस्सी हिलाई और ऊपर खड़े हुए आदमियोंने उसे ऊपर खींच लिया।

मंजरीके कहे हुए अंतिम शब्दोंसे काकने एकदम निश्चय कर लिया। 'वैधव्य' शब्दसे मंजरीने उसके प्रति इस निश्चल श्रद्धाका सूचन किया था कि काक जीता रहेगा, तो अवश्य आएगा और इस श्रद्धासे काक उसके वशीभूत हो गया। इतना सब कुछ होनेपर भी अज्ञात रूपसे मंजरीकी सत्ता उसपर ज्योंकी त्यों जमी हुई थी।

जब काक ऊपर पहुँचा, तो उन दो योद्धाओंने चकित होकर पूछा, "वे कहाँ हैं?"

"सब पागल हैं। अभी हमारा परिश्रम पूरा नहीं हुआ। मैं कुछ देरमें लौटकर आऊँगा। तब तक तुम निश्चिन्त होकर बैठो।"

"ऐसी रातमें?" एकने पूछनेका साहस किया।

"सोमभट, साहस न हो, तो लौट जाओ।" काकने कठोरतासे कहा।

"नहीं, नहीं, नहीं, भटराज, मैं तो आपके लिए ही पूछ रहा हूँ।"

"पगले, मेरे माथेपर तो भगवान ओंकारेश्वर* हैं।"

"जी।"

"देखो, यहाँसे हटना—"

---

*रेवाके तटपर स्थापित पवित्र समझा जानेवाला एक शिवलिंग।

" अजी नहीं । "

काक वहाँसे निकला और कुछ दूर बँधे हुए घोड़ेको कसकर हिंगलाज चाचरके घाटकी ओर कालभैरवसे कीर्त्तिदेवके कुलका पता लगाने चल दिया ।

२१—श्रीमाली दरवाजा

काक जब कीर्तिदेव और मंजरीको छुड़ानेकी चिन्तामें था, तब मुंजाल मेहता बिहारीके साथ एकान्तमें बैठे हुए थे ।

" महाराज, मैं काकको नहीं समझ पाता । "

" मैं समझता हूँ । तो आज क्या किया ? "

" वह सब पक्षोंमें घुसता फिरता है । "

" अच्छा, फिर ? आज क्या किया ? " मुंजालने अधीरतासे पूछा ।

" सबेरे वह नगरसे बाहर हो आया, फिर आपके पास आया । इसके बाद लाटके एक योद्धासे क्या मँगवाया, जानते हैं ? "

" क्या ? "

" महाराज, दो दो सौ हाथके दो रस्से— "

" अच्छा । "

" उन्हें मंडलेश्वर महाराजके यहाँ भिजवा दिया । "

" फिर ? "

" फिर दो कुम्हार गधे ले आये । "

मुंजाल मेहता खिलखिलाकर हँस पड़े, " मूर्ख, इस बातचीतमें गधे कहाँसे आगये ? आज तुम्हें हुआ क्या है ? "

" हुआ तो कुछ नहीं महाराज, परन्तु कुछ समझमें नहीं आता । "

" फिर ? "

" वे गधे मंडलेश्वर महाराजके पिछले द्वारसे लदकर निकले और सन्ध्याको श्रीमाली दरवाजेसे बाहर चले गये । "

" फिर लौटे कब ? " मुंजालने हँसकर कहा ।

" अभी तक लौटे ही नहीं और दरवाजे बन्द हो गये । "

" अच्छा, गधोंकी बात पूरी हो गई । अब और कुछ बाकी है ? "

" फिर लाटका एक योद्धा घोड़ेपर बैठकर मंडलेश्वर महाराजके बाड़ेसे निकला। जाते जाते उस सवारके कानमें काकने कुछ कहा।"

" फिर ?"

" फिर आपसे मिलकर वह मुंजालेश्वर महादेवके मन्दिरमें गया।"

" और कुछ ?" ऊबकर महाअमात्यने पूछा।

" अभी वह उसमेंसे लौटा नहीं।" मुंजाल उसकी बातोंपर ध्यान नहीं दे रहे थे, यह देखकर बिहारी उठते हुए बोला।

" क्या कह रहे हो ?"

" और मन्दिरमें भी नहीं है।" अंतिम बाण फेंककर बिहारी खड़ा हो गया।

" बिहारी," ज़रा ध्यान देकर मुंजालने पूछा, " उसे गये कितनी देर हुई ?"

" पाँच सात घड़ी।" अपनी चतुरता और चालाकीपर फूलता हुआ बिहारी बोला।

" वह पहले वहाँ जाया करता था ?"

" नहीं, दो एक बार सन्ध्याको उस पासवाले पुराने उपाश्रयमें गया था। मैं नहीं था।" मुंजालका एकाग्र दृष्टिपात देखकर वह चुप हो गया।

काक सबेरे नगरसे बाहर कहाँ गया था ?" मन्त्रीने पूछा।

" यह तो नहीं मालूम, परन्तु श्रीमाली दरवाज़ेसे गया था।"

" अच्छा, उन गधोंपर क्या था ?"

" मुझे तो रस्से मालूम हुए।"

" घोड़ा कैसा था ?"

" बड़ा तेज़ पवनवेगी।"

" अच्छा जाओ। और कुछ ?"

" और कुछ नहीं महाराज !" कहकर अपने सन्देशपर मुंजालको इतना ध्यान देते देख, फूलता हुआ बिहारी बाहर चला गया। कुछ क्षण मुंजालने एकाग्रतासे भूमिपर दृष्टि स्थिर करके विचार किया। बिहारीकी ध्यानपूर्वक देखनेकी शक्तिमें उसे विश्वास था। " रस्से—श्रीमाली दरवाज़ा—मुंजालेश्वर महादेव—यह लड़का बड़ा भयंकर है।"

अचानक मुंजालको एक विचार आया। उसके नेत्र चमक उठे। उसके

कपालपर क्रोधसे बल पड़ गये। उसने हाथपर हाथ दे मारा और वह 'अब समझा' कहकर खड़ा हो गया।

"बाहर कोई है?" एक सेवक उपस्थित हो गया। "जा मेरा खड्ग और कटार ले आ।"

"जी।"

"वक्षस्त्राण (कवच) भी लेते आना।"

महा अमात्य, कुछ ही क्षणोंमें शस्त्रोंसे सजकर चुपचाप महलकी एक छोटी खिड़कीसे बाहर निकले और तेजीसे श्रीमाली दरवाज़ेपर जा पहुँचे।

"रेवादत्त!"

द्वारपाल चौंककर देखने लगा। "कौन है?"

"खिड़की खोल!" सत्ताके साथ मुंजालने कहा।

"नहीं खुल सकती। अब तो बन्द हो गई।"

"किससे कह रहा है, कुछ ख़बर है? अपनी मसाल ला!"

द्वारपाल इतनी सत्ताके साथ इस मनुष्यको बोलता देख, घबराता हुआ मसाल ले आया।

"कौन हो महाराज?"

ज्यों ही मसाल आई कि मुंजालने मुँहसे ढाटा खोल दिया। उसे देखते ही द्वारपाल घबराकर पीछे हट गया, "महाराज?"

"हाँ, चल खिड़की खोल। रेवादत्त, यहाँसे सन्ध्याको दो गधे जाते हुए देखे थे?"

"हाँ, महाराज!"

"वे वापस लौटे?"

"नहीं, अन्नदाता!" कहकर उसने ज्यादासे ज्यादा आवाजके साथ खिड़की खोल दी और मसाल सामने कर दी।

थोड़ी देर पहले ही जिन्हें घूस खाकर रेवादत्तने दरवाजेसे बाहर जाने दिया था, उन्हें सावधान करनेके लिए उसने मसालको आगे कर दी। कोटके बाहर कुछ दूर खड़े वे दो मनुष्य मसाल देखकर घबराये और तुरन्त ही पासके एक वृक्षकी आड़में छुप गये।

"रेवादत्त, संभव है, थोड़ी ही देरमें मैं फिर लौट आऊँ। जागते रहना।"

"जो आज्ञा।"

मसालका प्रकाश मुंजालके मुखपर पड़ रहा था। जो दो मनुष्य वृक्षकी आड़में छिपे थे, उन्होंने भी महाअमात्यको पहचान लिया और उन दोनोंमेंसे जो ऊँचे कदका था, उसने दूसरेका हाथ दबाकर कहा, " सोम, देखा ? "

" हाँ। ये इस समय कहाँसे आ गये ? हमें पकड़नेको न आये हो ! "

" पागल हुई हो ? " खेंगारने सोमका हाथ दबाकर कहा, " मुंजाल मेहताको तुम्हारी क्या परवाह है ? "

" हाँ, अब मुझे याद आया। " एकाएक सोमने धीरे-से कहा, " उस दिन भी तुम मुझे ले जा रहे थे, तब फूफाजी ही बाधक हुए थे। "

" हाँ। " दाँत किटकिटाकर खेंगारने कहा, " एक बार तो वह बाधक हुआ, पर अब यदि फिर हुआ, तो—" कहकर खेंगार चुप हो गया।

सोमके मस्तिष्कमें रणभेरियाँ बजने लगीं। खेंगारने अपने वचनका पालन किया था और रात होते ही वह सज्जन मेहताकी वाटिकामें उपस्थित हो गया था। सोमके मनमें बड़ी उथल-पुथल होती रही। जूनागढ़की गादी—खेंगारका मोह—ये दोनों एक ओर आकर्षित कर रहे थे और पाटनके प्रति प्रेम और पितृभक्ति दूसरी ओर खींच रही थी। यह उथल-पुथल अभी समाप्त भी न हुई थी कि वह खेंगारसे इनकार करनेको तैयार हो गई। परन्तु ' नहीं ' कहने जाते हुए उसके मुँहसे ' हाँ ' निकल गई और खेंगारके सम्मोहनके वशीभूत होकर वह घरसे निकल भागी। खेंगारकी जो धारणा थी कि यह भोली लड़की उसकी इच्छाके विरुद्ध न जा सकेगी, सो सत्य हुई। खेंगारने दो तेज़ घोड़े दरवाज़ेसे बाहर मँगा रखे थे। अतएव वे दरवाज़ेके द्वारपालको घूस देकर वहाँसे अभी ही बाहर निकले थे।

मुंजालको, अपने पूज्य फूफाको, उसके पाटनकी सत्ताके प्रतिनिधिको, उसे एक बार बचानेवाले और जिसके साथ उसके विवाहकी बातें चल रही थीं, उस पुरुषको यहाँ, इस समय, अचानक आता देखकर उसका जी टूट गया। उसे सन्देह हुआ। वह घबरा गई। उसे प्रतीत हुआ कि मानो उसे भागनेसे रोकनेके लिए मूर्त्तिमान पाटन ही यहाँ आ गया है। उस मूर्त्तिके सामने जूनागढ़की गादीकी महत्ता कम हो गई। अपने पास खड़े हुए खेंगारके शब्द सुनकर और उसका हाथ काँप रहा है, यह अपने हाथसे अनुभव करके उसे एक विचित्र प्रकारकी अनुभूति हुई। खेंगार उसे चाहे जितना प्रिय हो, फिर भी उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह दूरसे ही दिखा हुआ अमात्य उससे कहीं

अधिक अपनी है। पर अब लौटा नहीं जा सकता—उसने होठसे होठ दबा लिया और मुट्ठियाँ बाँधकर मनको दृढ़ किया। पीहर—पीहरका गौरव, अब उसका नहीं था, पाटन अब पराया था। उसने विचार किया कि अब तो जूनागढ़ उसका है। तो भी पीहर छोड़ रही लड़कीकी स्वाभाविक खिन्नताने उसकी उमंग और उसके गादीके लोभ, दोनोंको वशमें कर लिया।

मुंजाल मेहता खिड़कीसे बाहर निकले और ज़रा देर खड़े रहे। चारों ओर देखा, कमरकी तलवारको ढीला किया और वे उस वृक्षकी ओर जाने लगे। अँधेरी रातके टिमटिमाते हुए तारोंके प्रकाशमें भी उनका दीर्घ बलिष्ठ शरीर और उनके चलनेका ढंग बड़ा गौरव-पूर्ण दिखलाई पड़ रहा था।

वे वृक्षके पास आये और खेंगारने सोमका हाथ छोड़ दिया। सोम विचारमें पड़ गई। उसने क्षणभरके लिए पास आते हुए मुंजालकी ओर दृष्टि डाली और दूसरे ही क्षण पास खड़े हुए खेंगारकी ओर देखा। उसने खेंगारसे कुछ कहनेका प्रयत्न किया, परन्तु उसकी जीभ सूख गई थी। वह व्याकुल हो गई। उसने खेंगारकी आँखोंमें भयानक तेज देखा और यह बुदबुदाते हुए सुना कि "फिर ऐसा मौका किस जन्ममें मिलेगा!"

सोम समझ न सकी कि मौका क्या और जन्म क्या? उसके मस्तिष्कमें अन्धकार उतर आया। केवल दो ही वस्तुएँ उसे दिखाई पड़ीं—एक पास आता हुआ मुंजाल और दूसरा दाहिने हाथमें तलवार थामे खड़ा हुआ खेंगार। मुंजाल वृक्षके बिल्कुल पास आ पहुँचा। सोमके मस्तिष्कमें उतर आये हुए अन्धकारमें एक ज्योति चमक उठी—मुंजाल अर्थात् पाटन—एक नहीं तो दूसरा भी नहीं। उसने खेंगारको तलवार खींचते हुए और टूट पड़नेको तैयार होते देखा। सब विचार छोड़कर वह बीचमें कूद पड़ी।

महाअमात्य निःशंक चले आरहे थे। वृक्षके एक ओरसे खेंगार छलाँग मारकर उनपर टूट पड़ा और दूसरी ओरसे "फूफाजी" कहकर चिल्लाती हुई सोम उनपर टूट पड़ी। आश्चर्यसे मुंजाल चौंक पड़ा। उसने खड्ग खींच लिया और उधर फिरा कि उसपर कोई "फूफाजी" कहकर आ गिरा है और दूसरेने उसपर खड्गका प्रहार किया है। जब मुंजालने स्वस्थ होकर तलवार खींची, तब एक व्यक्ति भूमिपर पड़ा हुआ था और दूसरा उस नीचे पड़े हुएके शरीरमेंसे अपनी तलवार निकाल रहा था। मुंजाल साफ बचा खड़ा था।

"चांडाल !" कहकर मुंजाल उस आक्रमणकारीकी ओर फिरा। आक्रमणकारीने इस आकस्मिक दुर्घटनाको देखा, ज़ोरसे आह भरी और वह भाग खड़ा हुआ, लौटकर देखा भी नहीं। मुंजालने उसका पीछा किया; किन्तु खेंगार झाड़ीमें लुप्त हो गया। "चिन्ता नहीं, देखें, वह बेचारा कौन है?" कहकर वह लौट आया। सोमने मुंजाल मेहताको बचाने जाकर खेंगारका वार स्वयं सह लिया था।

मुंजालने नीचे झुककर देखा; परन्तु अँधेरेमें सोम न पहचानी जा सकी।

"अपने प्राणरक्षकको यहाँ कैसे छोड़ा जा सकता है?" कहकर उसने सोमको उठा लिया और वह बड़ी तेजीसे विमलशाहके उपाश्रयमें आ पहुँचा।

२२—काकका परिश्रम व्यर्थ गया

महाअमात्यने द्वार खटखटाकर सुरपालको उठाया। मध्यरात्रिके समय मुंजालको देखकर वह बेचारा घबड़ा गया।

"सुरपाल, दिया लाओ।" कहकर मुंजालने सोमको भूमिपर रख दिया। घाव मिटानेवाली दवा है? हो तो ले आओ।"

सुरपाल चुपचाप दिया ले आया। उसके प्रकाशमें मुंजालने सोमको पहचाना और वह विचारमें पड़ गया। "ओह! इसका साथी खेंगार! और वह भाग गया!" मुंजालने निराश होकर होठ चबा लिये। उसके क्रोधका पार न रहा। उसने मन ही मन कहा, "यह बदमाश बड़ा विकट निकला।"

सुरपालने एक अनुभवी योद्धाकी कलासे सोमके घावपर पट्टी बाँधी और उसे उठाकर बिछौनेपर सुलाया। मंत्रीके कपालपर घिरे हुए बादलोंको देखकर उसके शरीरमें कँपकँपी आ गई। वह सोमको सुलाकर मुंजालके पास आया।

"सुरपाल, तुम्हें मृत्यु-दण्ड देना पड़ेगा!"

"क्यों महाराज?" सुरपालके हाड़ ढीले हो गये।

"तुम्हारा कैदी भाग गया।"

"क्या कह रहे हैं महाराज?"

" चलो, अपनी बुद्धिमानी पीछे दिखाना, पहले मसाल जलाओ।"

क्षणभरमें घबराये हुए हाथोंसे सुरपालने मसाल जला दी।

" उपाश्रयमें कोई ठहरा हुआ है ?" मुंजालने पूछा।

" जी नहीं।"

" तुम्हारे पास कितने आदमी हैं ?"

" महाराज, दो अन्दर हैं और तीन उस ओर झोंपड़ीमें हैं।"

" बुलाओ।"

सुरपाल बाहर गया और सियारकी तरह चीखा। कुछ देरमें दो मनुष्य उपाश्रयमेंसे निकले और दो बाहरसे दौड़ते हुए आये।

" सबको खड्ग दे दो।"

" जी।" कहकर सुरपालने वही किया और मसाल लेकर वह आगे हो गया। पीछे पीछे मुंजाल चलने लगा। उसके होठ प्रेतके समान निश्चल हो रहे थे। उसकी आँखें तलवारकी धारकी तरह चमक रही थीं। वे दूसरे दो मनुष्य, जो सुरपालके गुप्त सहायक थे, इस समय मुंजालको देख देखकर किसी भयंकर दुर्घटनाकी आगाहीसे चुपचाप पीछे पीछे आ रहे थे।

मुंजाल तेजीसे बावड़ीके पास जा पहुँचा। " वह कुआँ कौन-सा है ?"

" वह है।" सुरपालने कहा। मुंजाल उस ओर फिरा और उसकी तीक्ष्ण दृष्टिने कुएँपर बैठे हुए दो मनुष्योंको देखा।

मुंजालने अपने अनुचरोंको अँगुलीके संकेतसे ही उन दो मनुष्योंको दिखाया। " जाओ, लाओ उन्हें पकड़कर—जीते या मरे हुए।"

अँधेरेमें ठोकरें खाते हुए नौकर कुएँकी ओर दौड़े; परन्तु मसालका उजाला देखकर बैठे हुए लाटके योद्धा सावधान हो गये थे। अतएव वे प्राण छोड़कर भाग खड़े हुए। दोनों नौकर उनका पीछा करने लगे।

मुंजालने उनमेंसे एकको बुलानेके लिए सुरपालको आज्ञा दी और उसने पुकारा, " मेघा !"

मेघा लौट आया।

" देखूँ, अपनी मसाल तो इधर लाओ।" कुएकी पालपर पहुँचते हुए मुंजालने कहा।

सुरपालने मसाल थामी और उसके कपालपर पसीना आ गया। कुएँमें दो

रस्सियाँ लटक रही थीं। उसने अनुमान किया कि शायद उस उदा मेहता-वाली लड़कीको ले जानेके लिए किसीने युक्ति रची है। उसने मन ही मन उदाके साथ साथ अपनेको न जाने क्या क्या कह डाला।

" मूर्ख, इस प्रकार बन्दियोंकी रक्षा करता है ? " मुंजाल झुका और तलवारसे दोनों रस्सियाँ काट डालीं। " मैं न आया होता, तो कैदी भाग जाता। अस्तु। अभी कोई हानि नहीं हुई है। तुम और मेघा दोनों यहीं खड़े रहो। संभव है, वे लोग फिर आयें। यदि आयें तो पकड़कर मेरे पास ले आना। ख़बरदार ! कोई हाथसे जाने पाया तो।"

" जो आज्ञा।"

" अन्दरवाली कोठरीकी चाबी कहाँ है ? "

" यह है महाराज। " कहकर कमरमें खोंसा हुआ चार-पाँच बड़ी बड़ी चाबियोंका गुच्छा सुरपालने मुंजालको दे दिया।

" लाओ, अपनी मसाल। " कहकर मुंजालने सुरपालसे मसाल ले ली और धीरे-धीरे वह फिर उपाश्रयमें आया।

उपाश्रयमें आकर उसने सुरपालकी कोठरी खोली और जहाँ सोमसुन्दरी अचेत पड़ी हुई थी वहाँ पहुँचा। उसने मसालका प्रकाश उसके मुखपर डाला। उसका श्वासोच्छ्वास अनियमित प्रतीत होनेसे वह झुककर ध्यान-पूर्वक उसकी ओर एकटक देखने लगा। स्नेहशीला माताकी अनिर्वाच्य मृदुतासे उसने उसकी नाकपर पड़ी हुई बालोंकी लटको अलग करके नाकपर अँगुली रखी और देखा। " नहीं, जीवित है। "

मसालके अस्थिर प्रकाशसे अनेक रूपान्तर धारण करते हुए उस कमरेके अंधकारके पटपर वह चित्र अद्भुत ज्ञात हो रहा था। विशालकाय मुंजाल झुककर एक हाथसे मसाल आड़ी करके खड़े थे और भूमिपर घावसे निकले हुए रक्तसे संगमरमरकी भाँति सफेद हो गई अचेत सोम मरण और जीवनकी सन्ध्यामें पड़ी हुई थी। मुंजालका मुख निश्चल था। उनकी आँखें एकाग्र परन्तु सुधा-पूरित थीं। झुककर खड़े रहनेकी उनकी छटामें भी स्थिरता थी। सोम अचेत थी। फिर भी उसके सौन्दर्यमें चेतन था। निराधार होते हुए भी उसकी मुख-रेखाओंमें गौरव था। इस दृश्य परसे उत्पन्न होनेवाला विषय

ऐसा था कि किसी अपूर्व चित्रकारकी सर्जनशक्तिपूर्ण तूलिकाकी भी कसौटी करे। अमूर्तपूर्ण प्रभाव और मोहक निराधारता।

परन्तु मुंजाल मेहताको ऐसे विचारोंके लिए आवश्यक अवकाश, शिक्षा या परवाह नहीं थी। सोम जी रही है, यह देखकर वह सतर हो गया और जानेके लिए फिरा।

२३—रक्तका प्यासा महा अमात्य

मुंजालकी निश्चयात्मक बुद्धिने इस समय भयंकर रूप धारण कर लिया था। उसकी इच्छा-शक्ति एक तो मूलसे ही प्रबल थी, फिर अभ्याससे और प्रतिस्पर्धीके अभावसे निश्चल बन गई थी और सामने पड़नेवालेको बिना चूके कुचल डाल सकती थी। यह दुर्धर्ष शक्ति इस समय बहुत ही चुटीली हो गई थी। बहुत लोग उसका सामना करनेका प्रयत्न करते, परन्तु कुछ ही समयमें भयभीत होकर हार जाते। परन्तु यह एक साधारण-सा सुभट उससे डरता नहीं था और उसकी योजनाओंको औंधा कर देता था। इस अविचारी लड़केको कुचल डालनेके लिए मुंजालने इस समय दृढ़ निश्चय कर लिया था। सिंहके पंजेमें चूहा आ रहा था और पंजा बन्द हो रहा था। पंजेको बन्द करके उस निर्जीव प्राणीको कुचल डालनेके लिए वनराज तैयार हो बैठा।

मुंजाल तहखानेमें उतरा। मसाल दीवालसे टिकाकर रख दी और वह पास ही की एक कोठरीका द्वार खोलने लगा। उसने चारों ओर नज़र दौड़ाई और ज़रा विचारमें पड़ गया। क्यों कि वह भूल गया था कि कीर्त्तिदेव किस कोठरीमें है। वह कोई निर्णय न कर सका। अतएव उसने चाबीसे पहली कोठरीको खोला।

ताला खुलनेका स्वर सुनाई पड़ते ही किसीने अन्दरसे मधुर स्वरमें पूछा, " कौन है ? " स्वर किसी स्त्रीका प्रतीत हुआ; अतएव मुंजाल चौंक पड़ा। सुरपालको वह एक शुष्क वृद्ध सैनिक समझता था। उसने भी यहाँ किसी स्त्रीको लाकर रखा है! वह मन ही मन हँसा और क्षणभरके लिए खड़ा रह गया।

" कौन, सुरपाल ? " फिरसे प्रश्न सुनाई पड़ा। मुंजाल कुछ न बोला; परन्तु बिना द्वार खोले ही वह पासकी दूसरी कोठरीका ताला खोलने लगा।

ताला खोलकर उसने ज्यों ही किवाड़ खोले, त्यों ही कीर्त्तिदेवने पूछा, " कौन ? " मुंजालने उत्तर न दिया; परन्तु दीवालके सहारे रखी हुई मसाल उठा ली, कमरसे लटकती हुई तलवारका बन्ध ज़रा ढीला किया और अन्दर पैर रक्खा।

मसालके प्रकाशमें उसने कीर्त्तिदेवको देखा। उस मालवी योद्धाने भी मुंजालको पहचान लिया। उसने ज़रा आँखें मलीं और उसके मुखका रंग उड़ गया। इस समय जब कि क्षण-क्षणमें छूटनेकी प्रतीक्षा की जा रही थी, अपने कट्टर शत्रुको आता देखकर वह अडिग योद्धा भी डिग गया।

" कैसे हो कीर्त्तिदेव ? " ज़रा मज़ाकमें मुजालने पूछा।

कीर्त्तिदेवको तुरन्त ही कुछ सूझा नहीं कि क्या उत्तर दे; परन्तु मुंजाल नीचे झुककर पास रखे हुए दीपकको चेताने लगा। अतएव उसे स्वस्थ होनेका अवसर मिल गया।

" ओहो, मंत्रीवर ! आप इस समय ? "

" हाँ। " कहकर मसालको भूमिपर रखकर मुंजाल कीर्त्तिदेवकी ओर फिरा।

" क्यों ? " कहीं काक न आ पहुँचे, इस भयसे जालीकी ओर दृष्टि रखकर कीर्त्तिदेवने पूछा।

" तुम्हें भाग जानेसे रोकनेके लिए। "

" आपके इस यम-सदनसे भाग निकलनेका किसमें साहस है ? " बड़े प्रयत्नसे काँपते हुए हृदयको रोककर मालवी योद्धाने कहा।

" मैं यही देखना चाहता हूँ। " कठोरतासे महाअमात्यने कहा।

" अब विश्वास हो गया ? "

" जालीकी ओर किस लिए देख रहे हो ? " मुंजालने तिरस्कार-पूर्वक कहा, " चढ़कर निकल भागनेके तुम्हारे वे रस्से कभीके कटकर कुएँके तलेमें जा पड़े हैं। "

कीर्त्तिदेवने धीरे-से चित्तको स्थिर किया। हताश होनेके बाद उसमें फिर साहस आ गया। " यह तो आपको यहाँ देखते ही मुझे विश्वास हो गया। कहिए, अब आपका क्या काम है ? "

" क्यों, इतनी अधीरता आ गई ? " तिरस्कारसे मुंजालने पूछा।

" रात बहुत बीत गई। मुझे नींद आ रहीं है। " कीर्त्तिदेवने शान्तिसे कहा।

" तुम इस समय यहाँ न सो सकोगे । "

" क्यों? तब कहाँ सोऊँगा ? "

" या तो मेरे साथ राजमहलमें, या जैसा तुमने कहाँ, वहाँ— यम-सदनमें । " कीर्त्तिदेव निश्चल नयनोंसे देखने लगा और मुंजालने आगे कहा, " राजमहलमें सोना हो, तो मेरी बात मानों । "

" क्या ? "

" जयदेव महाराजकी सेवा स्वीकार करो । "

क्रोधसे कीर्त्तिदेवने ऊपर देखा और धीरेसे क्रोध दबाकर कहा, " मंत्रीवर, अपने जयदेव महाराजसे कहिए कि वे अवन्तिके सामन्त बन जायँ, इसके बाद मैं उनकी सेवा स्वीकार कर लूँगा । "

" मुंजालने होठ चबा लिये और गौरवसे पूछा, " अर्थात् ? "

" अर्थात् इस जीवनमें मेरे स्वामी अवन्तिनाथ हैं और आगे भगवान् पिनाकपाणि । समझे ? " कीर्त्तिदेवका स्वर कठोर था ।

" मेरी बातको न माननेका परिणाम क्या होगा, इसका पता है ? " मुंजालने क्रोधसे पूछा ।

" परिणाम जाननेकी मुझे परवाह नहीं । " कीर्त्तिदेवने शान्तिसे कहा ।

क्रोधावेशमें भी मुंजाल कुछ देर तक इस मालवी योद्धाका निर्दोष मुख, उसकी भव्य तेजोमय आँखें और उसकी अडिगताको देखता रहा । ऐसे सुन्दर प्रभावशाली पुरुषको मार डालनेके लिए उसका हृदय तैयार नहीं हुआ ।

" कीर्त्तिदेव, एक और मार्ग है । "

कीर्त्तिदेवने उत्तर नहीं दिया । वह अदबके साथ होठ दबाये, शान्तिसे खड़ा था ।

" तुम अपना यह पागलपन छोड़ दोगे ? "

" कौन-सा ? "

" अवन्ति और पाटनके बीच सन्धि करानेका । "

" पाटनके तो आप अधिकारी हैं, फिर सन्धि कैसे हो सकती है ? "

" परन्तु तुम्हें पाटन और अवन्ति दोनोंका अधिकारी बननेकी हविस है ।" तिरस्कारसे महा अमात्यने कहा, "यवनोंको निकाल भगानेके बहाने लक्ष्मवर्माको आर्यावर्त्तका चक्रवर्ती बनाना चाहते हो, क्यों ? यह कभी नहीं हो सकता । "

" मुंजाल मेहता, विधिकी निश्चलताका आडंबर किस कामका ? " उसकी बड़ी बड़ी आँखें भी ज़रा खुल गईं । अन्धकारमें भी उनसे तेज विकीर्ण होने लगा । " भारतका भाग्य आपके हाथमें नहीं है कि आप कुछ कह सकें । आप एक कीर्त्तिदेवको मार डालेंगे, तो दूसरे हज़ार खड़े हो जाएँगे । यदि पाटनकी सहायतासे यवनोंका संहार होना होगा, तो पाटनके उजड़नेमें क्या देर लगेगी । " गर्वसे कीर्तिदेवने कहा ।

" पाटणके उजड़नेमें अभी बहुत देर है " मुंजालने तिरस्कारसे कहा, " इसके पहले उसका पति पृथ्वीपति बन जायगा । "

" और कुछ नहीं, तो गर्जनाधिपका (गजनी सुलतानका) सामन्त बन ही जायगा । आपने मुझे कैद किया है और अब आप मार डालेंगे । और क्या करोगे, इसकी मुझे परवाह नहीं । आपकी कलंकित राजनीतिको यही शोभा देगा । "

मुंजाल कुछ न बोला। उसे इस युवक योद्धाकी बातें सुनना अच्छा लग रहा था। क्षण-क्षणमें अधिक तेजस्वी बन रहे कीर्त्तिदेवके मुखकी ओर वह देखने लगा।

" पाटनके श्रावक मन्त्रियोंको राज्याधिकार अपने हाथमें रखना है और इसीलिए वे आर्यावर्तके अन्य राज्योंके साथ सन्धि नहीं करते । भूतकालमें भी आपकी यही राजनीति थी और आज भी यही है । मैं इस राजनीतिका शत्रु हूँ। इसीलिए आप मुझे मार डालना चाहते हैं । भले ही आप मुझे मार डालें और अपना स्वार्थ-साधन करें । जो कर रहे हैं, किये जाइए; परन्तु जो स्वप्न मैं सिद्ध करना चाहता था, उसके सिद्ध न होने पर तो सारे भरत-खंडका भाग्य फूट जाएगा । मुझे मरनेका भय नहीं है । भय यह है कि पीछे क्या होगा ? और भविष्यका विचार करके मैं काँप उठता हूँ। परन्तु मेरा कहना व्यर्थ है । एक वणिकको इसका विचार कहाँसे हो सकता है ? " कहकर कीर्त्ति-देवने खेदसे सिर हिलाया। " मुंजाल मेहता, जबसे आप जैसोंके हाथमें राजसत्ता आई, तभीसे आर्यावर्त्तके भाग्य फूट गये। " कीर्त्तिदेवने इन शब्दोंको भी इस प्रकार तटस्थतासे कहा, जैसे वह एक साधारण सिद्धान्तकी बात कर रहा हो ।

मुंजालके होठ तिरस्कारसे सिकुड़ गये । " लड़के, मैं इस समय जीभ लड़ाने नहीं आया हूँ और आया भी होता, तो तेरे जैसे पितृहीनके साथ लड़ानेका कष्ट नहीं उठाता—"

कीर्त्तिदेवके मुखपर क्रोध छा गया। उसने चौंककर दाँत किटकिटाये और एकाग्र दृष्टिसे मुंजालकी ओर देखकर कहा, " मेहताजी, मैं पितृ-हीन हो सकता हूँ, निर्जीव हो सकता हूँ; परन्तु पाटनको जीतनेवाले—यवन-दलका संहार करनेवाले महारथियोंके भी महारथी उबक परमारकी गोदमें पला हूँ और काशीको भी लज्जित करनेवाली अवन्तिके विद्वान् श्रोत्रियके चरण धोकर विद्वत्ता प्राप्त की है। मैंने घीकी दूकानपर बैठकर यह शक्ति नहीं प्राप्त की है, और न शुष्क यतियोंकी सेवा करके। "

" अच्छा, तो तुम वचन देना नहीं चाहते ? " मुंजालने दाँत पीसकर धीमे, खरखराते हुए भयंकर स्वरमें पूछा।

" नहीं दूँगा, तो क्या करोगे ? " कीर्त्तिदेवने तिरस्कारसे हँसकर कहा।

मुंजालके स्वस्थ मस्तिष्कमें उन्मादकी ज्वाला भभक उठी। अनेक बार उसने प्रतिस्पर्धियोंके साथ जोर आजमाया था, परन्तु किसीने उसे ऐसा तिरस्कृत नहीं किया था। अतएव अपने गौरवको हानि पहुँचानेकी धृष्टता करनेवाले शत्रुको समाप्त करनेका उसने निश्चय कर लिया। लड़के, तेरा अन्त आ गया है ! " कहकर उसने तलवारपर हाथ डाला।

" यह तो ललाटके लेखकी बात है। " शान्तिसे पर तिरस्कारसे कीर्त्तिदेवने कहा, " इसमें आप क्या कीजिएगा ? "

" देखना चाहते हो ? " कहकर मुंजालने बिजलीकी तेजीसे तलवार खींच ली।

" परन्तु मुंजालके पूरी तलवार खींचनेसे पहले ही कीर्त्तिदेवने लपककर दोनों हाथोंसे मुंजालका तलवारवाला हाथ पकड़ लिया। शस्त्र-सज्जित मुंजाल निःशंक होकर खड़ा था, इस अचानक आक्रमणसे वह ज़रा पीछे हट गया। कीर्त्तिदेवके हाथ शिकारी कुत्तेके दाँतोंकी भाँति उसके दाहिने हाथपर दृढ़तासे जमे हुए थे। तुरन्त सावधान होकर उसने दाहिने हाथसे बायें हाथमें तलवार लेनेका प्रयत्न किया। द्वन्द्व-युद्धमें कुशल कीर्त्तिदेव यह समझ गया और मन्त्रीका हाथ मरोड़कर तलवार लेनेकी चेष्टा करने लगा। चारों हाथ परस्पर भिड़ रहे थे और दोनों जनें बलपूर्वक उस छोटी-सी कोठरीमें चारों ओर चक्कर काट रहे थे। छोटी, सकड़ी कोठरीमें, दो दीपकोंके अस्थिर प्रकाशमें यह प्राणहारक द्वन्द्व-युद्ध भयंकर रूपमें ठन गया।

आखिर मुंजालका अप्रतिम बाहुबल कीर्त्तिदेवके चापल्यसे उत्तेजित हो उठा। उसने मालवी योद्धाको एक कोनेमें दबोच दिया और अपना तलवार-

वाला हाथ छुड़ानेके लिए एक घोर प्रयत्न किया। उसने अपना हाथ ज़ोरसे मोड़ा, साथ ही कीर्त्तिदेवके हाथ भी मुड़ गये। ऐसा अवसर आ गया कि दोनोंमेंसे पहले जिसका हाथ टूट जाय, वही हारे। परन्तु मुंजालने घुटनोंके बल कोनेमें दबे हुए कीर्त्तिदेवको और ज़ोरसे दबाया। यह दबाव दुःसह हो गया और कीर्त्तिदेवके हाथ छूट गये। बिफरे हुए मुंजालके घुटनोंके नीचे वह फँस गया और मुंजालने यमराजके ऐसे विजयी खड्गकी तीक्ष्ण नोक कीर्त्तिदेवकी छातीपर रख दी।

"पापी! देख अब, तेरे ललाटमें क्या लिखा है?" हाँफ़ते-हाँफ़ते मन्त्रीने कहा।

"सावधान!" पींछेकी ओरसे काककी प्रचण्ड गर्जना सुनाई पड़ी। मुंजालने चौंककर पीछेकी ओर देखा। दरवाज़ेपर काक और सुरपाल खड़े थे।

२४—कीर्त्तिदेवका कुल

मध्यरात्रिके बाद दो-एक घड़ी ही बीती होंगी कि काक घोड़ा दौड़ाता हुआ लौट आया और घोड़ेको बाँधकर कदम बढ़ाता हुआ उस कुएँके पास आ पहुँचा। ज्यों ही वह पहुँचा कि सुरपाल और उसके शिष्य उसपर टूट पड़े और बड़ी कठिनाईसे उन्होंने उसे पकड़ लिया। सुरपालने एक रस्सी लाकर पीछेसे उसके हाथ बाँध दिये।

"सुरपाल, तुम जानते हो कि मैं भटराज हूँ?"

"भले ही तुम बड़े भारी राजा होओ।"

"किसकी आज्ञासे पकड़ रहे हो?"

"मुंजाल मेहताकी आज्ञासे!"

"ऐं! वे यहाँ हैं?"

"हाँ, उपाश्रयमें।"

"मुझे उनके पास ले चलो।"

"यही मैं कर रहा हूँ।" कहकर सुरपाल उसे तेजीसे तहख़ानेमें ले आया।

सुरपालकी मसालका प्रकाश देखकर, अधखुले द्वारसे वह भयंकर द्वन्द्व-युद्ध देखती हुई मंजरी पीछे हटी और कोनेमें छिप गई।

काकके जानेपर वह बहुत देर प्रतीक्षामें बैठी रही। ज्यों ज्यों समय बीतता

गया, त्यों त्यों उसकी चिन्ता बढ़तीग ई। उसे प्रतीत हुआ कि काक जैसे अप्रतिम वीरका अमूल्य जीवन उसने और कीर्त्तिदेवने व्यर्थ ही जोखममें डाल दिया है। और ज्यों ज्यों विलम्ब होता गया त्यों त्यों उसका हृदय अधीर होने लगा।

उस अधीर हृदयने काकके पराक्रमों और उसकी सेवाओंका स्मरण कराया। उस मध्यरात्रिके गम्भीर भयंकर वातावरणमें उसकी उत्तेजित कल्पना-शक्तिने अनेक अनोखे रंग भर दिये। जिन श्लोकोंसे उसने कीर्त्तिदेवको काकका परिचय दिया था, वे याद आये और उनके सत्य-असत्यकी परीक्षा करनेके लिए वह उन्हें गुनगुनाने लगी। उनमें किया हुआ वर्णन उसे अपूर्ण, नीरस प्रतीत हुआ। उसने काव्यों और इतिहासोंमें लिखे हुए वीरोंका स्मरण किया और तब उन्हींके समान, बल्कि उनसे भी चढ़-बढ़कर उसे काक प्रतीत हुआ। वे सब काल्पनिक थे और यह तो "सौभाग्यनाथो मम।" वह बुदबुदाई। द्वार खड़का और यह रसपूर्ण विचार-माला भंग हो गई। इस समय सुरपाल! वह चौंकी, घबराई और राह देखने लगी। परन्तु कोई न आया; वरंच द्वार खुला रहा। स्पष्टतया वह अनुमान तो नहीं कर सकी कि क्या हुआ है; परन्तु जैसे कोई बड़ा संकट सिर पर आ गया हो, इस प्रकार उसका हृदय खिन्न हो गया। वह क्षणमें द्वारकी ओर और क्षणमें जालीकी ओर देखने लगी।

अचानक पासकी कोठरीका आवेश-पूर्ण संवाद दरवाजेमेंसे और कुएँमेंसे प्रतिध्वनिके रूपमें सुन पड़ा। वह बहुत घबरा गई; परन्तु विवाद ज्यों ज्यों आगे बढ़ा, और उसके अस्पष्ट शब्द कानोंमें पड़ने लगे, त्यों त्यों उसमें साहस आता गया और दरवाजा खोलकर वह बाहर निकल आई। पासकी कोठरीके अधखुले दरवाजेमेंसे मुंजाल और कीर्त्तिदेवकी बातचीत सुनकर वह दंग हो रही। जब द्वन्द्व-युद्ध आरम्भ हुआ, तब उसका हृदय काँप उठा। उसे लौट जानेकी इच्छा हुई; परन्तु भयके कारण उसके पैर नहीं उठे। इतनेमें उसने सुरपालकी मसालका प्रकाश देखा और वह कोनेमें छिप गई।

सुरपालके साथ कैदीके रूपमें काकको देखकर उसके होश उड़ गये। वह सब समझ गई। उनका षड्यन्त्र भंग हो गया, काक पकड़ा गया, बाहर निकलनेकी आशा नष्ट हो गई। संभव है, काकको मृत्युदंड मिले। उसके लिए ही काकने साहस किया। उसके लिए ऐसा महारथी प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। उसने काककी ओर देखा। हाथ बँधे हुए होनेपर भी वह सतर होकर सगर्व चल रहा था।

उसके गलेसे रक्त बह रहा था। उसके सिरके बाल बिखर कर मुखपर आ गये थे। उसकी दोनों आँखें दो तारोंकी भाँति चमक रही थीं और उसका मुख भयंकर दृढ़तासे बन्द था। काकका यह मुख उसके हृदयमें अंकित हो गया।

सुरपालने कोठरीका द्वार खोला कि काक छलाँग मारकर अन्दर पहुँचा और उसने "सावधान"की गर्जना की।

कीर्त्तिदेवका रक्त बहानेको तरसते हुए मुंजालके कानोंमें ज्यों ही यह गर्जना पड़ी, त्यों ही उसने पीछे देखा और काकको देखकर उसकी क्रोधाग्निमें घी पड़ गया। उसकी रग-रगमें तूफान उठ खड़ा हुआ; परन्तु सत्ता और गौरवके अवतार माने जानेवाले महाअमात्यने इस क्षण भी गौरवको विस्मृत नहीं किया। वह धीरे-से स्वास्थ्य रखकर कीर्त्तिदेवपरसे उठा और बोला, "सुरपाल, इस बदमाशको पकड़ो। यह सोचता है कि मुंजालको मात करना खिलवाड़ है।"

सुरपालने अपनी मसालको दीवालसे टिकाकर रख दिया और कीर्त्तिदेवको जा पकड़ा।

अधखुले द्वारसे मंजरी मुंजालका क्रोधसे जलता हुआ चेहरा देखती रही। उसके भी बाल कपालपर बिखर गये थे और उसकी विखाल आँखें सुर्ख हो गई थीं।

मुंजाल काककी ओर मुड़ा। "तुम भी आ गये?" मेघगर्जनाके समान हृदय-भेदक स्वरमें मुंजालने पूछा।

"हाँ, और ठीक समयपर। पाटनके महाअमात्य इस प्रकार हत्यारोंकी भाँति मध्यरात्रिमें लोगोंकी हत्या करना कहाँसे सीखे?" काक हँसा।

मुंजालकी आँखें फट गईं। वह एक डग आगे बढ़ा। तलवार उठाई; परन्तु उसका वार होनेसे पहले ही द्वारमेंसे मंजरी कूद पड़ी और पास ही खड़े हुए काकके गलेसे लिपट गई।

मुंजाल चौंक पड़ा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि अचेत सोम आ पहुँची है। उसने तलवारको पीछे खींच लिया और ध्यानपूर्वक देखा।

"कौन हो तुम?"

"मैं?" गर्वसे सिर ऊँचा करके मंजरीने स्पष्ट स्वरमें कहा। मोरके केकारवके समान उसका सुमधुर स्वर गूँज उठा, "काक भट्टकी अर्धांगिनी।"

"कौन, कविकुलशिरोमणिकी लड़की! तुम यहाँ कैसे?" मुंजालने विस्मित होकर पूछा।

" अपने सौभाग्यनाथके साथ । " मंजरी काकके गलेसे लिपटी रही ।

" मंजरी, " काकने शान्तिसे कहा, " हमारे झगड़ेमें तुम न पड़ो, नहीं तो कहा जाएगा कि स्त्री-हत्यासे डरकर मुंजाल मुहताने मुझे छोड़ दिया । " और उसने मंजरीको स्नेहपूर्ण दृढ़तासे ज़रा दूर कर दिया ।

" जो ब्रह्महत्यासे नहीं डरता, उसके लिए स्त्री-हत्याकी क्या बिसात है ? " तिरस्कारसे कीर्त्तिदेव—जिसके हाथ सुरपालने बाँध दिये थे—बोला, " मुंजाल मेहता, इसे क्यों मारते हो ? इसने क्या अपराध किया है ? अपराध तो मैंने किया है । "

कोई उत्तर न देकर मुंजालने उसकी ओर पीठ फेर दी और दाँत पीसकर काकसे कहा, " मेरे राजबन्दीको तुम भगाना चाहते थे, क्यों ? "

" मैं राजबन्दीको नहीं पहचानता । मेरी स्त्री यहाँ क़ैद है और मेरे मित्र भी । उन्हें छुड़ाना मैं अपना धर्म समझता हूँ । "

" तुम्हारी स्त्री ? "

" भूल गये ? सज्जन मेहताके बाड़ेमेंसे उदा मेहता जिसे उठा ले गया था, वह । परायेकी स्त्रीको लोग उठा ले जायँ और उसे फिर घर न ले जाया जा सके ? वाहरे आपका न्याय ! "

" इन सब बातोंसे मुझे मतलब नहीं । तुमने राजद्रोह किया है, यही काफी है । "

" राजद्रोह ? मैंने ? हाँ, मैंने लाटको जीत दिया, नवघनको पकड़ा और कीर्त्तिदेवका षड्यन्त्र भंग कर दिया । "

" इसीसे तो तुम इतने फूल गये हो । कल तुम्हें हाथीके पैरों तले कुचलवाऊँगा । "

" कुचलवाओ, आपमें साहस हो तो । आपने अब भी मुझे नहीं पहचाना । मुझे हाथीके पैरोंसे कुचलवाओ, और फिर देखो कल मंडलेश्वर आपके शत्रु हो जायँगे, पाटनमें बसे हुए लाटके एक हज़ार सुभट विद्रोह करेंगे और लाटका जीतना न जीतना बराबर हो जायगा । "

" अरे लड़के, तुम किसको डरा रहे हो ? "

" ऐसे आप कौन हैं जो न डरेंगे ? " गर्वसे काकने पूछा । मंजरी काकके मुखकी प्रभावपूर्ण ज्योति देखने लगी ।

" यह मैं तुम्हें दिखाऊँगा । "

" पाटनकी सत्ताके प्रतिनिधि यदि आप हैं, तो मैं भी हूँ। "

" तुम ? " तिरस्कारसे मुंजालने पूछा।

" हाँ। आप भूतकालके हैं, और मैं भविष्यका हूँ। " काकने शान्तिसे कहा।

मुंजाल चुप रहा। इस बातमें उसको तथ्य नहीं मालूम हुआ। कुछ देरमें वह बोला, " सुरपाल, इसे कलके लिए रख। ले, यह तलवार ले, और उसका सिर अलग कर दे ! "

सुरपाल आगे आया और उसने तलवार लेनेके लिए हाथ बढ़ाया। काक बीचमें आ गया और बोला, " खबरदार ! "

" चुप रहो। " क्रोधसे मुंजालने गर्जना की।

" क्यों ? किस लिए ? यह अवन्तिका सन्धि-विग्रहिक है। इसका शरीर पवित्र है। "

" इस षड्यन्त्रकारीका शरीर पवित्र ? सुरपाल, लो यह तलवार ! " कहकर मुंजालने फिर तलवार पकड़ी।

" मुंजाल मेहता,—"

सुरपालने तलवार हाथमें ले ली। गर्वसे सिर ऊँचा किये कीर्त्तिदेव तलवारके वारकी प्रतीक्षा कर रहा था।

" सुरपाल ! " काकने कहा, " क्षणभर ठहरो, मैं कीर्त्तिदेवसे दो शब्द कह देना चाहता हूँ। " सुरपालने मुंजालकी ओर देखा और मुंजालने आँखोंके संकेतसे ही स्वीकृति दे दी। सुरपाल ठहर गया।

" कीर्त्तिदेवजी, मैं कालभैरवके पास हो आया। "

कीर्त्तिदेवके मुखपर तेज छा गया। उसकी आँखोंमें अमृत छलक आया।

" मेरा कौन-सा कुल है ? मेरे पिता कौन हैं ? " कीर्त्तिदेवने आतुरतासे पूछा।

काकने ज़रा हँसकर और मुंजालपर तिरस्कार पूर्ण दृष्टि डालकर कहा, " कीर्त्तिदेवजी, जब तुम बालक थे, तब तुम्हें सज्जन मेहताने पितृ-हीनके रूपमें यात्राके लिए आये हुए सेनापति उबकको सौंपा था, क्यों ? "

मुंजालके कान सतर्क हो गये, वह ध्यानसे सुनने लगा।

" हाँ, यह तो मैंने तुमसे कहा ही था। "

" ऐसा प्रतीत होता है कि सज्जन मेहता तुम्हारे कोई रिश्तेदार हैं, क्यों ? "

" मुझे सन्देह तो है। " कीर्त्तिदेवने अधीरतासे कहा।

"कीर्त्तिदेवजी!" उच्च स्वरमें काकने कहा, "तब तुम अपने पिताका नाम जाननेकी उत्सुकता छोड़ दो।"

"क्यों? कालभैरवने नहीं बताया?"

"नहीं, बताया तो है; परन्तु मृत्युके समय पिताका नाम जाननेसे तुम्हारा निष्कलंक जीवन कलंकित हो जाएगा।"

"ऐं?" निस्तेज होकर कीर्तिदेवने कहा।

"हाँ। काकने मुंजालकी ओर विजयसूचक दृष्टिसे देखते हुए कहा।

"क्या मैं द्विज हूँ? कुल कैसा है?" निराशा-पूर्ण स्वरमें कीर्त्तिदेवने पूछा।

"कुल प्राग्वाट (पोरवाड़) है। उसकी कीर्ति नवों खण्डोंमें फैली हुई है और तुम्हारे पिता हैं सुविख्यात—"

"परन्तु—"

"जिन्होंने स्त्रीको मार डाला, बहनको मार डाला और पुत्रके मारनेको तरस रहे हैं।" काक हँसकर मुंजालकी ओर मुड़ा, "बस, सुरपाल, अब इसका सिर उतार ले।"

२५—कीर्त्तिदेवका पिता

मुंजाल यह वार्त्तालाप सुनकर दंग हो गया। उसके मुखपरसे क्रोध और कठोरता जाती रही और आँखोंमें इस प्रकार वेदना छा गई, जैसे मध्याह्नके धधकते हुए आकाशमें मेघ छा गये हों। उसके कपालपर पसीना आ गया। वह एकसे दूसरेकी ओर देखने लगा।

"सुरपाल, ठहर जा।" उसने अचानक कहा, "काक, तुम किसकी बात कर रहे हो?"

काक कठोरतासे हँस पड़ा। "कीर्त्तिदेवका सिर अलग हो जाने दो, तब कहूँगा। इस बेचारेका निष्कलंक मन व्यर्थ ही अपवित्र हो जायगा।"

मुंजाल इस आघातसे फीका पड़ गया। उसे सूझ ही न पड़ा कि वह क्या पूछे। "बोलो! बतलाओ! कहाँका प्राग्वाट कुल?"

"पाटनका।"

मुंजाल उलझनमें पड़कर कीर्त्तिदेवकी ओर मुड़ा। मालवी योद्धा समझ ही न सका कि मुंजालमें यह परिवर्त्तन कैसे हो गया।

" कीर्त्तिदेव ! " आतुरतासे, विस्फारित नेत्रोंसे, काँपते हुए स्वरमें मुंजालने पूछा, " सज्जन मेहताके यहाँ तुम्हारा पालन हुआ था ? "

" हाँ । "

मुंजाल काककी ओर मुड़ा; परन्तु वह तो हँस रहा था। उसके नेत्रोंमें कोई मर्म समाया हुआ था ।

" काक, बोलो, बोलो, इसका पिता कौन है, इसकी माता कौन है ? तुम यह सब क्या कह रहे हो ? मैं भी प्राग्वाट हूँ। मैंने भी स्त्रीको, बहनको मृत्युके मुखमें डाला है। " मुंजालने उलझनमें पड़कर शीघ्रतासे पूछा, " कीर्त्तिदेवकी माताका नाम क्या था ? " उसकी आवाज रुआसी हो आई।

" और क्या होगा ? फूलकुँवरि देवी । " काकने हँसकर कहा ।

मुंजाल लपककर कीर्त्तिदेवसे चिपट गया । उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली । उसने रोते हुए कहा, " बेटा ! "

कीर्त्तिदेव समझ गया । उसके मुखपर प्रकाश आ गया, " पिताजी ! "

" सुरपाल, सिर काटना तो रहा, परन्तु बन्धन तो काट दे।" काकने कहा। सुरपालने कीर्त्तिदेवके बन्धन काट डाले । सबकी आँखोंसे अश्रुधाराएँ बहने लगीं और वृद्ध सुरपाल मर्यादा त्यागकर जोर ज़ोरसे नाक छिनकने लगा ।

कुछ देरमें मुंजाल और कीर्त्तिदेव अलग हुए और दोनोंने आँखें पोंछीं । मुंजालने स्वस्थता प्राप्त करके चारों ओर देखा और ज़रा हँसकर कहा, " इतने वर्षोंसे मुझे ऐसा ही लगा करता था कि तुम जीते हो। सज्जन मेहता तो यही कहा करते थे कि तुम मर गये । उन्होंने मुझसे स्पष्ट कहा होता, तो मैं कितना सुखी होता ! "

" पिताजी, मुझे भी आपकी खोज करनेमें कितनी मेहनत पड़ी ! आख़िर कालभैरवकी आराधना करके पितृ-कुलका पता लगा पाया । "

" अच्छा, अब चलो ।" आँखोंसे बचे-खुचे आँसू पोछते हुए मुंजाल बोला, " भगवान सोमनाथने मेरी ओर देख लिया । तुम्हारी माताके लिए, तुम्हारे लिए मैंने बहुत आँसू बहाये हैं । मुझे ऐसा सूना-सूना प्रतीत होता था—" कहीं कीर्त्तिदेव लोप न हो जाय, इस प्रकार भयसे बारम्बार स्नेह-पूर्ण दृष्टिसे उसे देखते हुए मुंजाल कहने लगा, " मेरा हृदय अरण्यके समान ऊजड़ हो गया था। कीर्त्तिदेव, आज भी मेरे हाथों तुम्हारी हत्या होते-होते रह गई।"

"न हुई, यह प्रताप मेरे मित्रका है।" कहकर कीर्त्तिदेव काकके निकट आ गया।

"अरे हाँ, सुरपाल, इसके भी बन्धन काट डालो।" मुंजालने कहा और सुरपालने तुरंत बन्धन काट डाले। ज्यों ही काकके हाथ छूटे कि कीर्त्तिदेव और वह, दोनों लिपट पड़े।

"काक!" मुंजालने हँसते हुए कहा, "अभी तुम्हें दण्ड देना बाकी है।"

"मैं भी उसे भोगनेको तैयार हूँ।" काकने भी हँसते हुए कहा।

"नहीं—नहीं।" कीर्त्तिदेवने कहा।

"इन्हें दण्ड यह है कि—" मुंजालने हँसकर काक और मंजरीकी ओर हाथ करके कहा—"तुम दोनों सीधे घर नहीं जा सकोगे; तुम्हें मेरे साथ राजमहल चलना होगा।"

"जो आज्ञा!"

"तो चलो।" कहकर मुंजाल आगे बढ़ा। सुरपाल और काकने एक-एक मसाल हाथमें ले ली और सब ऊपर आये। मुंजाल कीर्त्तिदेवके कन्धेपर हाथ रखकर चल रहा था; मानों इस डरसे कहीं कीर्त्तिदेव उसका पुत्र न रहे।

"काक," मुंजालने कहा, "तुम्हारा कार्य अब और भी कठिन होगया।"

"मेरा कार्य?"

"हाँ, जूनागढ़ जानेका।"

"परन्तु मैं तो बन्दी हूँ।" काकने जरा व्यंग्यमें कहा।

"भूल गये? तुम तो पाटनकी सत्ताके प्रतिनिधि हो!" मुंजालने भी हँसते हुए उत्तर दिया, "जिसे हम पाटनमें रखना चाहते थे, वह भाग गया।"

"ऐं?" काकने चकित होकर पूछा।

"हाँ, साथ ही सज्जन मेहताकी कन्याको भी उड़ाकर लिये जा रहा था।"

"किसे? सोमको?" कीर्त्तिदेवने पूछा।

"हाँ, परन्तु सौभाग्यसे वह बच गई और यह पड़ी है।" कहकर मुंजालने सोमके घायल होनेका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। कुछ देरमें एक खटियापर सोमको उठाकर सब रवाना हुए और पाटन आ पहुँचे।

श्रीमाली दरवाज़ेसे काक अपना घोड़ा लेकर सज्जन मेहताको बुलाने गया और शेष सब लोग राजमहलमें आये। काक सज्जन मेहताको बुला लाया।

और साथ ही उदा मेहताको दधिस्थलीसे लौटा लानेके लिए अपने एक सवारको तेज़ साँढ़नीपर दौड़ा दिया।

२६—मंजरीकी सूनी अटारी

सज्जन मेहता आ पहुँचे और उन्होंने सब बातें बतलाईं। जवानीके मदसे, और शंकासे उत्तेजित होकर मुंजालने फूलकुँवरिको त्याग दिया था। स्नेहशीला फूलकुँवरि अपने फूलके समान बालकको लेकर अपने भाईके घर जाकर रहने लगी थी। सज्जन अपनी बहन और भानजेको सोरठ ले गया और उदीयमान अमात्यका उत्ताप किसी प्रकार सहन करता रहा। जब ये सब सोरठमें थे, तब बालकको उठा ले आनेका मुंजालने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु सज्जनकी सावधानीसे वह सफल न हो सका।

मुंजाल बालकको उसकी माँसे अलग रखना चाहता था। सज्जन और फूलकुँवरिने सोचा कि बालकको मारकर उसकी माताके प्रति जो कोप है, उसे निकालनेके लिए ही शायद मुंजाल लड़केको ले जाना चाहता है। यह गलतफहमी दिनों दिन बढ़ती गई।

विरहसे दुखित होकर फूलकुँवरि अन्तमें स्वर्ग सिधारी और भाईसे लड़केको छिपाकर सुरक्षित रखनेका, वचन ले लिया। उसी समय मुंजालको महाअमात्यका पद प्राप्त हुआ। सज्जन मेहताने यह सोचकर कि कहीं महाअमात्यकी सत्ता बहुत प्रबल सिद्ध हो वह बालक सोमनाथकी यात्राके लिए आये हुए उबक परमारको दे दिया।

सज्जनने, मुंजाल मेहताने, मीनलदेवीने स्वर्गीया फूलकुँवरिको बार बार स्मरण किया, सबने आँसू बहाये, सबने कीर्त्तिदेवको गले लगाया और सबने काकके प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

जब सबेरा होने आया, तब सबने घड़ी दो घड़ी विश्राम कर लेनेका विचार किया और मुंजालने काक तथा मंजरीके लिए राजमहलमें एक अटारी अलग ही ठीक कर दी थी। वे लोग उसमें गये।

मंजरीका हृदय, काकके पराक्रम देख देखकर, उभड़ रहा था। कल्पनाजगत्में परिणीत किये हुए कालिदास और परशुरामको वह भूल गई और

सजीव सृष्टिका महारथी काक—जिसने कालभैरवकी आराधना की थी, जिसने मुंजालके छक्के छुड़ा दिये थे, उसकी दृष्टिमें रम गया। उसके मस्तिष्कमें अनेक भावोंका उदय हो रहा था और अनेक सरस वाक्य निर्झरित हो रहे थे। उसका हृदय, उन अनोखे पुष्पोंको अपने सौभाग्यनाथपर निछावर करनेके लिए तरस रहा था। उसका पति अब उसे अपने योग्य प्रतीत हुआ।

उसे आशा थी कि अटारीमें पहुँचते ही काक, जिस प्रकार पहले उमंगसे भरा हुआ आया करता था, वैसे ही आएगा और उसे हृदयसे लगाएगा; परन्तु अटारीमें पहुँचनेपर काक कुछ और ही हो गया, उसका शान्त, स्वस्थ तिरस्कारपूर्ण मुख देखकर मंजरी निस्तेज हो गई।

काकने जो विजय प्राप्त की थी, वह बेजोड़ थी, अतएव उसका गर्व सकारण था और प्रथम रात्रिमें किया हुआ अपमान वह भूला नहीं था। उस रमणीके हृदय-परिवर्त्तनका उसे ज्ञान नहीं था और उसके गर्वको वह चूर्ण भी करना चाहता था इस कारण एकान्तमें आते ही वह संयत और कुछ रूक्ष-सा हो गया। उस प्रथम रात्रिके अभिमानिनी मंजरीके कहे हुए शब्द, इस समय उसके मस्तिष्कमें ध्वनित हो रहे थे।

वह आया और जैसा उस रातको किया था, उसी प्रकार अपना साफ़ा उतार कर और सिरके नीचे रख कर सोने लगा। बिछौनेपर बैठी मंजरीका हृदय अन्दर ही अन्दर मुरझा गया। वह उठी; धीरेसे निकट आई। उसका वह हमेशाका गर्व और गौरव गलित हो गया था। क्षोभसे उसकी रग-रग काँप रही थी।

" तुम जूनागढ़ जानेवाले हो ? "

" हाँ, तुम्हें अमावस्याको ले जानेका वचन दिया था, उसका पालन अवश्य करूँगा। घबराओ मत। " काकने लापरवाहीसे उत्तर दिया।

मंजरीका गर्व इस लापरवाहीसे घायल हो गया और उसके हृदयके भाव अनबोले ही रह गये। वह खिन्न-हृदयसे परन्तु कृत्रिम दृढ़तासे बिछौनेपर आकर पड़ गई।

थका हुआ काक चैनसे सोने लगा। हृदयकी व्यथासे व्याकुल हुई मंजरी करवटें बदलती पड़ी रही। पति था; परन्तु उसकी अटारी सूनी थी।

चतुर्थ खण्ड

१—न्याय

दूसरे दिन सबेरे पाटन नगरपर, जिस तरह बिजली पड़ती है उस तरह यह ख़बर आकर पड़ी, कि मुंजाल मेहताका मृत पुत्र फिर जीवित हो गया है।

इस बातने अनेक रूप धारण किये, अनेक मुखोंपर जाकर उसके अनेक रूपान्तर हुए, अनेक परिवर्त्तन और परिवर्द्धनके साथ उसने पाटनकी परिक्रमा की और पुरुषों, स्त्रियों तथा बच्चों, सबको उसने वश कर लिया।

बात सही थी, उसके प्रमाण प्रत्यक्ष थे और वे इस प्रकार थे—जब मुंजाल मेहताका पुत्र अपने मामाके यहाँ सोरठमें रहता था, तब शेषनाग सोमनाथकी यात्रा करने आये और जब नागराज यात्रा करके लौटे, तब उन्होंने वन्थलीके पास कन्दर्पकी कान्तिको लज्जित करनेवाले इस कुमारको खेलते देखा। शेषनाग इसकी कान्ति देखकर मोहित हो गये, पातालमें निवास करनेवाली अनेक नागिनियों और अपनी स्त्रियोंको भूल गये और उस बालकको उठा ले गये। मुंजाल मेहताको जब ख़बर लगी, तब उन्होंने अपने पुत्रको प्राप्त करनेके लिए अनेक प्रयत्न किये; परन्तु सब व्यर्थ गये। अन्तमें जब भटराज काक पाटन आया, तब उसने पातालमें जाकर उनका पुत्र ले आनेका बीड़ा उठाया। नर्मदाजीकी आराधना की, उन महादेवीके प्रसन्न होनेपर अभय-दान लिया और वह अडिग भटराज हिंगलाज चाचरके घाटपर जाकर, सात दिन और सात रात तक कालभैरवसे युद्ध करता रहा। अन्तमें कालभैरव पराजित हुआ और कन्धेपर बिठाकर काकको पातालमें ले गया। वहाँ शेषनागने मुंजालके पुत्रको देनेसे इनकार कर दिया, पर काक

उससे चिपट गया और उसे घसीटता हुआ विमलशाहकी बावड़ीतक ले आया। वहाँ काक और नागराजमें युद्ध हुआ। कालभैरवकी सहायतासे शेषनाग पराजित हो गया और आखिर वह लाटका योद्धा मुंजालके पुत्रको, राजमहलमें ले आया।

किसीने एक बातको सही माना, दूसरेने दूसरी बातको झूठ बता दिया। तीसरेने प्रमाण दिये, चौथेने प्रतिकूल प्रमाण उपस्थित कर दिये। परन्तु सर्व साधारणने तो इस बातको सत्य ही मान लिया; क्योंकि यह बात उस दामोदर नाईने कही थी जिसने मुंजाल मेहता, उसके पुत्र और काक, तीनोंकी, सबेरे राजमहलमें जाकर अपने हाथों हजामत बनाई थी और काकके बदनपर शेषनागकी पूँछकी चोटके जख्मोंपर स्वयं अपने हाथों दवा लगाई थी!

यदि इस नाई-शिरोमणिको अधम या छोटा गिनकर इतिहासमेंसे बाद कर दिया जाय तो पाटनकी नर-रत्नावलीमेंसे एक 'मनका' कम हो जाय और माला अधूरी रह जाय!

जिस प्रकार देव-लोककी खबरें नारदमुनिके द्वारा मर्त्यलोकमें मिला करती थीं, जिस प्रकार बड़े लोगोंके घरकी बातें सामयिक पत्रोंके द्वारा इस समय मिला करती हैं, उसी प्रकार गुजरातके महाजनोंकी घरू बातें, सर्व साधारणको दामोदरके जाति-बिरादरीवालोंकी मार्फत मिला करती थी। जबसे दाढ़ी रखना छोड़कर पाटनके अगुओंने इनके आगे सिर झुकाना आरम्भ किया तबसे उनकी प्रतिष्ठा और सत्ता सर्वोपरि हो गई और तभीसे इन नापित वीरोंकी परम्पराको, गुजराती घरोंमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिल गया।

उस्तुरेपर धार देते हुए वे लोग प्रश्न करते और पानी लगाते हुए अच्छे-अच्छोंको पानी कर डालते। मूँछें कतरते हुए अच्छे अच्छे राजनीतिज्ञोंको भी मोह लेते। घरोंमें रातको जब दीपक जलाने आते तब गृह-स्वामिनियोंके हृदय भी वशमें कर लेते। वे घर घरकी बाते जानते, स्वार्थ या परमार्थका विचार किये बिना, सुधार-सँवारकर प्रसार करते और बहुतोंकी फ़जीहत या बेड़ा पार कर डालते। वे बहुतोंके घर बिगाड़ देते या सँभाल देते। बिना कुलपुरोहित या नापितके किसी घरका काम नहीं चलता था। यदि विवाह करना हो, या किसी सम्बन्धको भंग कराना हो; किसीको निमन्त्रण देना हो, या टालना हो; सन्देश भिजवाना हो, या चुगली करनी हो; स्वार्थ-साधना

करनी हो, या श्राद्ध-कार्य पूरा कराना हो, तो इन दो महात्माओंके बिना किसीका काम ही न चलता था।

काना और बूढ़ा नापित दामोदर, ऐसे ही श्रेष्ठ जनोंमें था। जबसे पाटन नगरकी स्थापना हुई, तभीसे उसके पूर्वज पाटनके राजाओंके मुखारविन्दोंको सुन्दर बनाते आ रहे हैं। दामोदरको यह अभिमान था कि वे न होते, तो इन सब नरेशोंकी श्री-शोभा फीकी रहती और उसकी धारणा थी कि पाटनकी महत्ता राजा और मंत्रियोंपर चलाये हुए उसके उस्तुरेकी धारसे ही बढ़ती है। यह आदमी, नगरकी गप्पोंका एक संग्रह-स्थान था और इस संग्रह-स्थानका उचित उपयोग करनेमें मुंजाल मेहता कभी न चूकते थे; परन्तु इस लाभके मूल्यके रूपमें राजमहलकी कुछ बातें अमात्यको भी कहनी पड़ती थीं।

अमात्यके मुखसे कुछ बातें निकलवाकर, दामोदर, कीर्तिदेवके पास गया। वहाँसे कुछ बातें निकलवाकर, वह काकके पास पहुँचा और जिस मनुष्यकी दाढ़ीकी ओर वह तिरस्कारकी दृष्टि भी न डालता, उसे भी मल-मलकर उसने कुछ पाद-पूर्ति कराई। जो कुछ कमी रही, उसे अपनी कल्पना-शक्तिसे पूर्ण कर लिया और ऊपर दिये गये समाचारको जितनी जल्दी हो सका बहुतसे घरोंमें पहुँचा दिया। इस शुभ प्रयासके परिणाम-स्वरूप मुंजाल मेहताके पुत्र और शेषनागके विजेताको देखनेके लिए सारा पाटन, राजमहलमें आ पहुँचा और अपने स्नेही जनों तथा नागरिकोंके अभिनन्दन स्वीकार करते-करते मुंजाल मेहताका भी धैर्य छूटने लगा। उसके हृदयपरसे बहुत दिनोंके घिरे हुए बादल फट गये। पर कीर्तिदेव, ज्योंका त्यों ही बना रहा—तटस्थ, तेजस्वी और निराला। केवल उसके मुखपर अस्पष्ट ग्लानि दिखलाई पड़ती थी; परन्तु इस अवसरपर उसे कोई न देख सका।

दोपहरको उदा मेहता राजमहलमें आ पहुँचे। उनका मुख ज़रा मुरझाया हुआ-सा प्रतीत हो रहा था; फिर भी वह अपनी स्वाभाविक मधुरतासे हँस-हँसकर सबसे बातें करने लगे। यहाँ एकत्र हुए मनुष्योंमेंसे बहुत थोड़े लोग ही जानते थे कि सवेरे साँढ़नीकी पीठपर मुश्कें बँधे बँधे ही, उन्होंने दधिस्थलीसे पाटन तक—इच्छा या अनिच्छासे—यात्रा की थी। उन्होंने भी शेषनागवाली बात सुनी और दिनोंदिन अधिक सबल होते हुए शत्रुको यथाशीघ्र समाप्त करनेकी जो गाँठ उन्होंने मनमें बाँध रखी थी, वह और भी दृढ़ कर ली।

राजमहलमें आकर, यह संकल्प करके वह मुंजाल मेहताकी बैठकमें पहुँचे; परन्तु वहाँ केवल काकको ही निश्चिन्ततापूर्वक खड़ा देखकर उनकी क्रोधाग्निमें घी पड़ गया।

उन्हें देखकर काक मुड़ा और मार्मिक हँसीसे स्वागत करते हुए बोला—"अहाहा! उदा मेहता हैं! आप कहाँसे? मुंजाल मेहता तो आपहीकी प्रतीक्षा कर रहे थे।"

"अच्छा!" जरा तिरस्कार-पूर्ण हँसी हँसकर उदा मेहताने कहा, "मैं तो तुम्हारी प्रशंसा सुननेमें लगा था। क्यों, शेषनागको समाप्त कर आये?"

तलवारकी धारकी-सी तीक्ष्ण दृष्टिसे काकने उदाकी ओर देखा और उसके शब्दोंमें रहे हुए विषको परख लिया। उसे ऐसा लगा कि मधुरतासे अब कुछ न होगा। उसने भी हँसकर उत्तर दिया, "जी हाँ, नागको बाँधकर, जकड़कर बिल्कुल निराधार कर दिया।"

"नाग बिगड़ खड़ा होगा, तब?" उदा मेहताने दाँत पीसते हुए कहा।

"इस समय तो उसे केवल बाँधा है; परन्तु आगे चलकर उसके बत्तीसों दाँत तोड़ दूँगा।"

"देखो, सावधान रहना। शेषनाग अनन्त है।"

"हाँ, इसीसे वह बहुत वृद्ध और निर्वीर्य है।"

उदाने होठ चबा लिये और वह तुच्छ भावसे हँस पड़ा, "काकभट, तुम तो जैसे पाटनको विजय करने निकले हो। देखना, कोई चामुंडदेव[1] न मिल जाय।" यह कहकर वह जानेके लिए फिरा; परन्तु काक उसे इस प्रकार नहीं जाने देना चाहता था।

"आप ही सावधान रहिएगा। यदि कोई सेनापति बारप[2] मिल जाएगा, तो भागना भी कठिन हो जाएगा।" काकने प्रत्युत्तर दिया। "लाटके योद्धा, पाटनकी अनाथ लड़कियाँ नहीं हैं कि कोई उठा ले जाए।"

उदा पलटा। उसकी आँखोंकी चमक गहरी और भयंकर हो गई।

---

१ मूलराजके पुत्र चामुंडने लाटको जीता था।

२ मूलराज सोलंकीको सेनापति बारपने भगाया था।

उसने कठोरतासे कहा, " ध्यान रखो, तुम पाटनके एक मन्त्रीके साथ बातें कर रहे हो !"

" नहीं, मैं तो असहाय बालिकाओंको पीड़ित करनेवालेके साथ वार्तालाप कर रहा हूँ !"

उदाका हाथ खड्गकी मूठपर जा पड़ा और वह एक पग पीछे हट गया। " एक शब्द भी अधिक बोलोगे, तो—"

" एक नहीं, एक सौ बोलूँगा। कविकुलशिरोमणिकी लड़कीको इतनी ही देरमें भूल गये ?" काकने हँसकर पूछा।

उदाको ध्यान आया कि राजमहलमें खुले खजाने इस प्रकार मार-काट करनेसे फजीहत हुए बिना न रहेगी। उसने बड़े प्रयत्नसे क्रोधको शान्त किया और तलवार परसे हाथ अलग कर लिया।

काक समझ गया और बोला, " क्यों क्रोध प्रकट कर रहे हैं ? छिपे-छिपे, चुपचाप किये हुए कामको सारा संसार जान जाएगा।"

उदा मेहताको यह ज्ञात नहीं था कि मंजरीका विवाह काकसे हो गया है। अतएव उसने कहा, " भले ही सारा संसार जान जाए !"

पीछेकी ओरसे मुंजाल मेहताका हँसता हुआ स्वर सुनाई पड़ा, " सारे संसारको क्या जना रहे हो ?"

काक और उदा दोनों चौंक पड़े, दंग हो गये और विचारमें पड़ गये कि क्या कहा जाय। अन्तमें उदाने कहा, " इन भटराजके पराक्रम।"

" हाँ ठीक तो है !" उदा किस विषयमें बात कर रहा है, यह न समझकर मुंजालने कहा।

उदा स्वास्थ्य प्राप्त करके मधुरतासे बोला, " मेहताजी, मैं जिस पराक्रमकी बात कर रहा हूँ, उसकी आपको ख़बर ही न होगी।"

" वह क्या ?"

" एक मेरे यहाँकी आश्रित ब्राह्मण-कन्या है, उसे ये उठा लाये हैं।" उदाने एक एक शब्दका बड़ी मधुरतासे उच्चारण करते हुए कहा, " और उसकी माता उसके बिना मरी जा रही है। मैं इनसे कह रहा था कि क्यों उस बेचारीको कष्ट दे रहे हो ?"

" काक, यह क्या बात है ?" ज़रा कठोरतासे मुंजालने पूछा। मुंजालके मुखसे यह नहीं प्रकट हो रहा था कि इस विषयमें वह कुछ जानता है।

" महाराज, परन्तु उदा मेहता रातोंरात उसे उठा ले गये और छिपा आये। "

मुंजाल उदाकी ओर फिरा।

" हाँ, और दूसरा मार्ग ही कौन था ? फिर भी भटराजका जी नहीं माना और ये उसे फिर उठा ले गये। "

" उस लड़कीकी माता कहाँ है ? " मुंजालने पूछा।

" खंभातमें। "

" वाह ! " मुंजालने कठोरतासे कहा, " यह पाटन है कि कोई जंगल ? एक बेचारी लड़कीकी यह कैसी खींचातानी ? काकभट, वह लड़की तुम्हारे पास है ? "

" जी हाँ। " साहससे काकने कहा।

" तब उसे उसकी माँको सौंप देना चाहिए। " उदाने कहा।

" महाराज, आप न्यायमूर्ति हैं। " काकने होठोंमें मुस्कराते हुए कहा, " आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है; परन्तु उदा मेहता श्रावक होकर भी उस ब्राह्मण-कन्यासे विवाह करना चाहते थे और अब भी इनका यही विचार है। "

" मेरा क्या विचार है, यह जाननेकी तुम्हें ज़रूरत ? "

" तब महाराज, " काकने शान्तिपूर्वक मुंजालसे कहा, " उस कन्याको मैं इन्हें कैसे दे दूँ ? आपकी आज्ञाका मुझे पालन करना चाहिए; अतएव मैं स्वयं खंभात जाकर उसे उसकी माताको सौंप आऊँगा। "

" किसलिए ? " महा अमात्यने पूछा।

" उदा मेहतापर मुझे विश्वास नहीं है। "

" विश्वास ! " मुंजाल मेहताने कठोरतासे कहा।

" जी हाँ। जो चुपचाप पराई स्त्रीको उठा ले जाय, उसपर कैसे विश्वास किया जा सकता है ? " काकने शान्तिसे कहा।

" पराई स्त्री ! " क्रोधसे उदाने उत्तर दिया, " क्या कहा ? उसकी माताके वचन-दानसे वह मेरी स्त्री हो गई है। "

" और अग्निदेवकी साक्षीमें वह मेरी भार्या बन चुकी है ! " काकने गर्वसे कहा।

कड़ककर बिजली गिरती, तो भी खंभातके मंत्री इतने चकित न होते। केवल मुँह बाकर देखते रहनेकी ही चेतना उनमें रह गई।

" किसकी बात कह रहे हो ? कविकुलशिरोमणिकी मंजरीकी ?"

" जी हाँ।"

" उसका तो तुमने पाणिग्रहण किया है ?" मुंजालने गंभीर स्वरमें कहा।

" जी हाँ।"

" और उस विवाहिता स्त्रीको तुम उठा ले गये ?" मुंजालने उदा मेहताकी ओर मुड़ कर कहा, " श्रावकोंके शिरोमणि होकर ? वाह ! मीनलदेवीने तो उसे अपनी कन्या बना लिया है, कुछ खबर है ?" प्रत्येक प्रश्नसे घबराता तथा पृथ्वीसे शरण माँगता हुआ उदा पीछे हटने लगा और दीवारका सहारा खोजने लगा।

" महाराज, आपकी आज्ञा हो, तो मैं अपनी पत्नीको उसकी माताके पास—" ज़रा हँसकर काक कहने लगा, परन्तु मुंजालकी आँखोंकी सत्तासे प्रभावित होकर वह चुप हो गया।

मुंजालने गंभीरतासे कहा, " मैंने तो तुम्हें बुद्धिमान् समझा था। मेहता, बोलो, अब क्या करूँ ? तुम न्याय चाहते थे, क्या न्याय करूँ ?"

थोड़ी देर कोई कुछ न बोला। फिर मुंजालने कहा, " भटराज ! उदा मेहता ! क्या पाटनके अधिकारियोंको ऐसे झगड़े शोभा देते हैं ? तुम लोग तो राजनीतिके स्तंभ हो। अच्छा, जो हुआ सो हुआ; परन्तु अब अपनी शत्रुताको भूल जाओ।" कहकर मुंजाल वहाँसे चला गया।

उसके जानेपर दोनोंने एक दूसरेकी ओर घूरा।

" इसके लिए पछताना पड़ेगा !" मूँछपर हाथ फेरकर, उदाने जाते जाते कहा। " अभी तो तुम पछताओ। मेरी बारी आएगी, तब देखा जाएगा।"

---

२ सोरठकी ओर प्रस्थान

दूसरे दिन अँधेरेमें काक और मंजरीने साँढ़नीपर सवार होकर अपने रिसालेके साथ पाटनसे प्रस्थान किया। काकका चित्त प्रफुल्लित था और मंजरीका भारी। काक, कुछ ही समयमें पाटनके राजकार्योंपर अपने बुद्धि-कौशलकी छाप बिठाकर, सोरठमें नये पराक्रमोंके लिए अदृष्ट क्षेत्र खोजने

जा रहा था और मंजरी, अपनी इच्छाके विरुद्ध, गर्वसे तनकर, काकका घर छोड़कर, ननिहाल जा रही थी।

आगे बढ़ते-बढ़ते, ज्यों-ज्यों उषाका प्रकाश चारों ओर फैलने लगा, त्यों त्यों गाँव, खेत और मेंड़ोंपरसे जाते हुए किसान उसे दिखलाई पड़ने लगे और इससे मंजरीका हृदय अधिक खिन्न होने लगा।

गर्व मनका दुर्ग है। बाहरके प्रतापको भीतर न आने देनेका मुख्य साधन है। इससे अन्तरस्थ मन निर्भय, तटस्थ और सन्तुष्ट रहता है। जब तक यह मानिनी अपनेको शुद्ध और श्रेष्ठ मानती थी, तब तक आसपासके उपद्रवोंकी आँधी या भाव उसे स्पर्श नहीं करते थे और सब लोग चाहे जो कहें या करें; उसकी गर्वपूर्ण शान्ति अटल ही रहती थी। उसे लगता कि वह इस दुनियासे निराली है। यही उसकी शान्तिका, अस्पर्शताका मूल था और इसीसे वह अपनी मानसिक सृष्टिमें आनन्दसे विचरण कर सकती थी।

परन्तु उसके गर्वका गढ़ गिर गया था और उसमेंसे होकर बाहरी आँधी अन्दर प्रवेश कर रही थी। उसका यह सृष्टिका संसर्ग सरल हो गया था। अब वह अपनेको ऋषियोंकी कन्या और कविवरोंकी वधू न मान सकी। उसे भान हुआ कि वह एक निःसहाय कन्या और अवमानिता स्त्री है। उदाके द्वारा प्राप्त हुए कष्ट उसने सरलतासे सहन कर लिये; कारण कि उन सबको वह स्वप्न-जगत्के-से दुःख समझती थी; परन्तु काककी लापरवाही उसे अखरने लगी; कारण कि काककी दुनिया अब उसकी अपनी बनती जा रही थी। अब परशुरामके गौरव-गानसे उसे सन्तोष नहीं हुआ। कालिदासका निर्जीव प्रेम उसे भला न लगा। अब उसे काकके मधुर हास्यकी आवश्यकता थी। वह उसकी प्रेम-पूर्ण वाणी सुनना चाहती थी।

काक इसकी पूरी सावधानी रखता था कि यात्रामें उसे कोई कष्ट न हो, परन्तु इससे वह सन्तुष्ट नहीं थी। अकसर कुछ लाकर देते समय, ठहरनेकी जगह पसन्द करते समय, काक उससे वार्त्तालाप करता; परन्तु यह वार्त्तालाप उसे व्याकुल कर देता था। उसमें न रस था, न भाव; न उमंग थी, न उत्साह। यह शान्त व्यावहारिक वार्त्तालाप उसके हृदयको चीरे डाल रहा था। उसके रसिक हृदयको तो रससे सराबोर प्रेम-वाक्य चाहिए थे।

ज्यों ज्यों समय बीतने लगा, त्यों त्यों वह अधीर होती गई। अपनेको स्वस्थ

रखने और गर्वको सजीव करनेके उसके सब प्रयत्न निष्फल हो गये। काककी क्या इच्छा है, वह कौन-सा रमणीय स्थान पसन्द करता है, वह क्या आज्ञा देता है, इन सब बातोंने उसके चित्तको वशीभूत कर लिया। जिस कल्पना-जगत्में वह अभी तक जी रही थी, वह स्मृति बनकर ही रहने लगा; और यदि वह उसे अपनी आँखोंके आगे साकार करनेका प्रयत्न करती, तो काक उसके बीचमें आ विराजता और वह वहाँ भी उसे ही निहारा करती।

उसके कल्पना-जगत्में उतराते हुए भाव, अब वास्तविक जगत्का आश्रय खोजते थे। आश्रयदाता अवश्य था, पर वह आश्रय नहीं देता था और परिणाम-स्वरूप उसके भावोंके प्राबल्यसे उसका असन्तोष बढ़ जाता था। और प्रसंग कितने सुन्दर आते थे? शुक्ल पक्षके उगते हुए बालचन्द्रके साथ दुलार करती हुई उमंगपूर्ण सन्ध्याके उद्दीपक अभासमें वे दोनों एक साथ साँढ़नीपर बैठते। दोपहरके समय, मंजरी भोजन बनाती, वह खाता, रातको किसी मकानमें या प्रेमियोंकी पर्णकुटीके समान वटवृक्षकी छायाके नीचे सोते; परन्तु न था रस, न स्वाद और न आनन्द। अमूल्य दिन बीते जा रहे थे; परन्तु जिए न जिए जैसे।

उनकी यात्रा डेढ़ दिन तो निर्विघ्न जारी रही। दूसरे दिन सन्ध्या समय काक, गाँवमें एक ठहरनेका स्थान खोजनेके लिए मुखियाके घर गया; परन्तु मुखियाकी स्त्रीने कहा कि 'वे खेतसे अभी नहीं लौटे हैं।' रात हो गई थी, अतएव काकने विश्वास नहीं किया।

"परन्तु उतारा कहाँ है?" काकने पूछा।

उत्तरमें मुखियाकी स्त्रीने द्वार बन्द कर लिया। काकने और एक पड़ौसीसे पूछा। वह भी बिना उत्तर दिये ही घरमें जा घुसा। काकको क्रोध चढ़ आया। उसने जाकर द्वारमें दो लातें जमा दीं।

"बोलो, नहीं तो अभी दरवाजा तोड़ डालूँगा। मैं पाटनका भटराज हूँ।"

उसकी धमकीसे घबड़ाकर घरवालेने धीमे-से द्वार खोल दिया। "क्या हुकम है सरकार?"

"बदमाश, जवाब देनेमें भी तकलीफ होती है? जीभ खींच लूँगा। बतला, ठहरनेके लिए उतारा कहाँ है?"

"यह तो मुखियाजी जानें, अन्नदाता!"

काकने दाँत किटकिटाकर तलवारपर हाथ रखा, " बतला ! "

काँपते हुए हाथ जोड़कर वह बोला, " सरकार, उधर सामने। वह तीसरा घर। "

काक उसकी ओर तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि डालकर आगे बढ़ा और उतारेके पास पहुँचा। वहाँ आठ-दस ग्रामीण हाथमें फ़रसे लिए हुए रास्तेमें बैठे थे। काक अपनी साँढ़नियोंको इस प्रकार पीछेकी ओर ले आया, जैसे वही उतारेका मालिक हो; परन्तु उसे देखकर वे ग्रामीण उठ खड़े हुए।

" सरकार, उतारेमें जगह नहीं है। "

" मुखिया कहाँ है ? " काकने सत्तासे पूछा।

" यहाँ नहीं है। "

" मुझे रातको यहीं ठहरना है। "

" यहाँ नहीं ठहरा जा सकता सरकार, मुखियाका हुकम नहीं है। "

" मुखियाका हुक्म ? " काकने क्रोधसे कहा, " तुम्हारे मुखियाको ज़रा मेरे पास आने दो, तब बताऊँगा। चलो, हट जाओ एक ओर। "

वे सब ग्रामीण फरसे हाथमें लिये पास आ गये। ऐसा प्रतीत हुआ कि वे काकके रोआबसे दबेंगे नहीं। इसी समय पीछेसे एक वृद्ध ग्रामीण आ पहुँचा।—" क्यों, क्या है ? मैं मुखिया हूँ। क्या कहना चाहते हैं ? "

" यही कि मैं रातको यहीं ठहरूँगा। "

" आप कौन हैं ? "

" मैं पाटनका भटराज हूँ। "

" ठहरिए, आपके लिए गाँवमें एक घर खाली कराये देता हूँ। "

काकको हठ सवार हो गई। बोला, " अर्थात् ? यह उतारा किसलिए बनवाया है ? "

" इस उतारेमें, सरकार, " नम्रतासे समझानेके लिए मुखिया कहने लगा, " कुछ और अतिथि ठहरे हैं। "

" परन्तु उतारा तो बड़ा है ? "

" परन्तु उन्हें यहाँ और किसीका ठहरना पसन्द नहीं है। "

काकके अहंकारपर आघात हुआ। " ऐसा वह कौन है ? नहीं, मैं यहीं ठहरूँगा। " उसने आँखें निकालकर कहा।

" यहाँ तो नहीं ठहरा जा सकता । " वैसी ही दृढ़तासे मुखियाने कहा । काकको आश्चर्य हुआ । उसने यह आशा नहीं की थी कि एक ग्रामीण इतनी दृढ़ता दिखलाएगा; परन्तु इस समय नत होना उसे अच्छा नहीं लगा और यहाँ ऐसा कौन ठहरा है, यह जाननेकी जिज्ञासा भी उसे हो आई ।

" अच्छा, यह देखो । " कहकर उसने साँढ़नी-सवारोंको संकेत किया और कहा " साँढ़नी आगे बढ़ा लाओ । "

आड़े किये हुए दस फरसोंके अन्तरायने उन्हें रोक लिया, यह देखकर साँढ़नियोंको बिठाकर काकके सैनिक नीचे उतरे और आकर उसके चारों ओर खड़े हो गये ।

काकने देखा कि उसके बारह सैनिकोंके आगे ये ग्रामीण किसी गिनतीमें नहीं हैं । " पाटनके भटराजका हाथ देखना चाहते हो ? क्यों ? " कहकर उसने तलवार निकाल ली । फिर भी वह मुखिया हाथ जोड़े सामने खड़ा रहा ।

" अन्नदाता, मेरी बात मानिए और हठको छोड़ दीजिए । "

अब क्या किया जाय, यह विचार करता हुआ काक क्षणभर ठहर गया । इस क्षणमें सभी शान्त रहे । केवल अन्दरसे किसीका स्वर सुनाई पड़ा, " डूँगर, ज़रा देख तो, यह क्या उपद्रव है ? "

काकने यह परिचित नाम, परिचित ही स्वरमें सत्ता-प्रदर्शक और अभिमान-पूर्ण ढँगसे उच्चारित होते सुना और वह पीछे हट गया । उसके आश्चर्यका पार न रहा, " ऐं ! "

मुखिया समझ गया और उत्तरमें उसने कहा, " हाँ, महाराज । "

काक हँस पड़ा । " अच्छा, मेरे सैनिकोंके लिए प्रबन्ध करो और जाकर कहो कि भटराज काक आपसे मिलना चाहते हैं । "

नमस्कार करके मुखिया अन्दर गया और वे ग्रामीण मार्ग रोके खड़े रहे । मुखिया ज्यों ही अन्दर गया कि साधारण वेषमें एक व्यक्ति चबूतरे-पर आ खड़ा हुआ और बोला, " कौन, लाटका काक ? " यह आवाज़ सुनकर वे ग्रामीण सम्मानपूर्वक दूर हट गये ।

" हाँ, महाराज ! " यह कहकर काक चबूतरेपर चढ़ गया । उतारेमें ठहरा हुआ पुरुष गुजरात नाथका जयदेव था ।

३—जयदेवकी मृगया

" अन्नदाता, आप यहाँ ? मैंने तो सुना था कि आप मृगयाके लिए निकले हैं ? " काकने पूछा ।

जयदेव महाराज ज़रा हँसे और बोले, " हाँ । क्यों, यहाँ मृगया नहीं हो सकती ? "

" महाराज, आप जहाँ जो चाहें, कर सकते हैं । आपकी बात कहीं अन्यथा हो सकती है ? "

" पाटनके क्या समाचार हैं ? "

" कोई नई बात तो नहीं है, महाराज ! मुंजाल मेहताका पुत्र मिल गया । " कह कर उसने कीर्तिदेवकी सारी कथा कह सुनाई । " परंतु आप पाटन कब पधार रहे हैं ? "

मेरा कोई निश्चय नहीं, परंतु अब गये बिना निस्तार नहीं दीखता । "

काकने ज़रा हँसकर कहा, " प्रतीत होता है, मृगयामें आपको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ । मारा क्या ? "

जयदेव ज़रा उलझनमें पड़ गया और इधर-उधर देखने लगा, " हाँ, कुछ हरिन मारे हैं । "

" इस ओर हरिन हैं ? मंडलेश्वर महाराज तो कहते थे कि इधर हरिन हैं ही नहीं । आपके साथके शिकारी क्या किसी दूसरे गाँवमें पड़े हैं ? "

जयदेव फिर उलझनमें पड़े, " हाँ । "

" महाराज, अब आपको पाटन जाना चाहिए । मुंजाल मेहता आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। "

" क्यों ? "

" कल ही उन्होंने आपको लौटा लानेके लिए आदमी भेजे हैं । "

" ऐसा कौन-सा काम है ? " जरा भवें चढ़ाकर जयदेवने पूछा ।

" जूनागढ़में फिर गड़बड़ मची है । नवघन रा' मृत्यु-शय्यापर पड़ा है । "

" तो इसमें मेरी क्या आवश्यकता ? मैं उसका अग्नि-संस्कार थोड़े ही करूँगा ? "

" नहीं, परन्तु किस घड़ी कौन-सी नई बात खड़ी हो जाय, यह कैसे कहा

जा सकता है ? इसीलिए तो मैं वहाँ जा रहा हूँ ।" कहकर काकने धीरे-से अपने सोरठ जानेका हेतु बतला दिया और कहा, "मुजाल मेहताका सन्देश आपको आज ही कलमें मिलेगा।" क्षण-भरके लिए जयदेव विचारमें पड़कर चुप हो रहा।

"मुंजाल मेहता जानते हैं कि मैं किस ओर हूँ ?"

"यह कैसे कहा जा सकता है ? मुंजाल मेहता क्या जानते हैं और क्या नहीं, यह कैसे बतलाया जा सकता है ?"

"यह भी विपत्ति आई !" जयदेवके मुखसे निकल गया।

"परन्तु महाराज, आपको शिकारको निकले, दस-बारह दिन हो गये। अब और कितने दिन रहिएगा ?"

"राज्यकी इन झंझटोंसे नाकों दम है। पाँच दिन भी निश्चिन्त होकर नहीं बैठा जा सकता। तुम कब जाओगे ?"

"कल प्रातःकाल। मुझे तो साँढ़नियोंको दौड़ाते हुए जाना है।"

"अच्छा, तुम यहाँ भोजन करोगे ?"

"नहीं अन्नदाता, मेरी स्त्री साथ है। उसने भोजन बनाया होगा।"

"तुम्हारी स्त्री ? तुम्हारा विवाह हो गया ?"

"जी हाँ। कविकुलशिरोमणिकी कन्याके साथ।"

"अच्छा, कल जानेसे पहले मुझसे मिल लेना।"

"जो आज्ञा" कहकर काकने आज्ञा ली। बाहर निकलने पर उसे बड़ी चटपटी-सी लगी। जयदेव महाराजकी मृगयामें उसे कोई रहस्य प्रतीत हुआ और उस रहस्यको भेदन करनेका उसने निश्चय किया।

उसने बाहर निकलकर डूँगर नायकसे कुछ बातें कीं; परन्तु उस उस्तादसे वह अधिक बातें नहीं निकलवा सका। अन्तमें दो-चार व्यक्तियोंसे थोड़ी थोड़ी बातें ज्ञात करके वह अपने मुक़ामपर लौटा। वहाँ पहुँचकर उसने एक लाटके भटको बुलाया।

"सोमभट !"

"कहिए ?"

"सबेरे एक काम है।"

"क्या ?"

" यहाँ जयदेव महाराज आकर ठहरे हैं। वे पाटन लौटकर नहीं जाना चाहते और वहाँ उनकी आवश्यकता है। मुंजाल मेहताने उन्हें लौटा लानेके लिए दूत भेजे हैं।"

" जी।"

" परन्तु यहाँ अभी तक कोई नहीं पहुँचा। अतएव तुम्हें सबेरे जाकर इनसे कह आना है कि राजमाताने आपको बहुत ताकीदीसे बुलाया है।"

" और न मानें, तो?"

" इससे तुम्हें मतलब?"

" जो आज्ञा।"

" और कहना कि आपसे सन्देश कहकर आज्ञा दी है कि काक भटसे भी मिल लेना। नहीं तो वे तुम्हें अपने साथ खींच ले जायँगे।"

" बहुत अच्छा।"

इस निश्चयके बाद काकने भोजन किया और रसकी भूखी मंजरीकी परवाह किये बिना वह सो गया।

सबेरे रवाना होनेसे पहले वह जयदेव महाराजसे मिलने पहुँचा। वहाँ कुछ गड़बड़ी-सी मची हुई थी और डूँगर चबूतरेपर एक मसाल लेकर खड़ा था।

" नायक, महाराजसे भेंट करने दोगे? उन्होंने मुझे बुलाया है।"

" हाँ, वे आपहीकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

" क्यों?"

" अभी पाटनसे एक दूत सन्देश लेकर आया है।"

" कौन, काक आ गया?" अन्दरसे जयदेव महाराजका स्वर सुनाई पड़ा।

" हाँ, अन्नदाता।" कहकर काक अन्दर गया। सोमभट हाथ जोड़े खड़ा था।

" तुम्हारी बात सच हुई। यह माताजीका सन्देश लेकर आया है।"

" क्या?"

" मेरे बिना वहाँ लवंगके भंडारमें ताले पड़ जाते हैं!" अकुलाकर बिस्तरपर पड़े-पड़े महाराज बोले, " मुझे बुला रही हैं।"

" कौन, सोमभट?" काकने इस प्रकार कहा, जैसे अभी ही भेंट हुई हो, " तुम सन्देश लाये हो?"

" जी हाँ, और मुंजाल मेहताने कहा है कि यह सन्देश देकर मैं आपके साथ सोरठ चला जाऊँ । "

" अच्छा, तुम बाहर जाओ । " जयदेव महाराजने सोमभटसे कहा, " काक, अब क्या किया जाय ? "

" आप पाटन जाइए, महाराज । " काकने शान्तिसे कहा ।

" मूर्ख, मुझे जाना होता, तो तुमसे पूछता ही क्यों ? "

" तब आप कहाँ जाना चाहते हैं ? "

" सोरठकी ओर । "

" सोरठकी ओर ? "

" हाँ । देखो, मैं तुमसे समझाकर सब बातें कहूँ । "

" जी । "

" होलीके दिन मैंने तुम्हें रंग लेकर भेजा था, याद है ? "

" हाँ, क्यों नहीं ? "

" मुझे उसी लड़कीके साथ जाना है । "

काकको इस मृगयाका रहस्य अब ज्ञात हुआ, " वह कहाँ जा रही है ? "

" वह कालड़ीके देवड़ाकी लड़की है और भादर गाँवके सामन्तके यहाँ उसका ननिहाल है । वह अपने ननिहाल जा रही है । "

" भादर कहाँ है ? "

" सोरठके रास्तेमें । "

" परन्तु वहाँ जाकर आप क्या करेंगे ? "

" भादरके सामन्त यदि स्वीकार कर लें, तो देवड़ा राणकको मुझे सौंप दे । "

" परन्तु महाराज, पाटनके नरेशको यह शोभा देगा ? " काकने कहा ।

तुम भी मुंजाल मेहताकी भाँति बातें करते हो ? मैं राणकको अपनी बनाना चाहता हूँ । उसके बिना मुझे पाटनका सिंहासन भी सूना प्रतीत होता है । तुमने तो उसे देखा है । है उसके समान कोई सारे विश्वमें ? "

" महाराज, आपका इस प्रकार अकेले भटकना आपके वंशको शोभा देता है ? आप अपने भाटको क्यों नहीं भेजते, मँगनी लेकर ? "

" तुम माताजीको नहीं पहचानते । वे कोई ऐसी बात कर देंगी कि भाट कुछसे कुछ कर आएगा; और भादरके सामन्त हैं, तीक्ष्ण स्वभावके । उन्हें

कोई बात जरा ही अपमान-जनक प्रतीत हो, तो वे इनकार कर जायँ। इसलिए मुझे स्वयं जाना पड़ रहा है।"

"अन्नदाता, मेरी एक बात सुनेंगे ?"

"बोलो।"

"यदि इस समय आप पाटन नहीं जायेंगे, तो माताजी उलटी क्रोधित हो जायँगी। थोड़ा-बहुत सन्देह तो सबको हो गया है और यह मैंने उनकी बातों परसे जान लिया है। इसलिए अभी आप जाइए और पन्द्रह दिन पश्चात् फिर भादर आ जाइएगा। जूनागढ़की गादीपर यदि खेंगार बैठेगा, तो हमें अपनी सेना सोरठकी सीमापर लानी ही पड़ेगी। आप उसके साथ आइएगा और मैं जाकर देवड़ासे कहूँगा कि आप आवश्यक कार्यसे पाटन लौट गये हैं और दस पन्द्रह दिनोंके पश्चात् भादर आ जायेंगे।"

जयदेव विचारमें पड़ गया।

"तब तक मैं भी जूनागढ़से लौटकर आ पहुँचूँगा।"

"यह भी ठीक है।"

"आप इस प्रकार जायँ, यह मुझे भला नहीं प्रतीत होता। आखिर भादरका सामन्त भी मनुष्य है। वैभव और प्रतापसे वह भी प्रभावित हो जाएगा। इसी बीच कोई दूसरा ब्याह कर ले जाय, यह बात तो नहीं है ?"

"नही। दो-चार स्थानोंसे मँगनियाँ आई हैं; परन्तु रत्नाजी सामन्त स्वीकार नहीं करते।"

"तब चिन्ता नहीं।"

"परन्तु यह सब इस प्रकार कहना कि राणक सुन ले। नहीं तो वह मुझे निकम्मा समझेगी।"

"इस बातकी तनिक भी चिन्ता न कीजिए। अन्नदाता, भगवान् सोमनाथकी कृपा होगी, तो यही कन्या पाटनकी पटरानी बनेगी। और क्या चाहते हैं ?"

जयदेव हँस पड़ा, "काक, तुम बड़े जबर्दस्त हो।"

"अभी कैसे कहा जा सकता है ?" कहकर हँसते हुए काकने आज्ञा ली।

कालड़ीके देवड़ाका मुकाम पासहीके एक गाँवमें था। काक, वहाँ जा पहुँचा और अपनी साँढ़नियोंको कुछ दूर खड़ी रखकर, देवड़ासे मिलने गया। देवड़ाके डेरेपर रवाना होनेकी तैयारी हो रही थी। केवल यही

विलम्ब था कि देवड़ा बाहर निकल आये। चबूतरेके सामने एक बहुत ही सुन्दर काठियावाड़ी घोड़ी, मस्तीसे नाच रही थी।

" देवड़ा हैं ? "

" उस ओर जाओ।" कहकर अनुचरने एक कोठरीकी ओर संकेत किया। काक, उस ओर गया और अरुणोदयके मन्द प्रकाशमें तेजीसे बाहर निकलते हुए किसी मनुष्यसे टकरा गया।

" कौन, देवड़ाजी ? " काकने पूछा।

" देखते नहीं हो ? " उस आगन्तुक मनुष्यने कहा। काकने स्वर पहचान लिया। " कौन, कृष्णदेव ? "

" काक ? तुम—"

" परन्तु काकके मुड़नेसे पहले ही खेंगार विद्युत्गतिसे उस घोड़ीपर सवार होकर रवाना हो गया। काक कुछ देर आँखें मलता हुआ खड़ा रहा और फिर अन्दर घुसा।

" कौन, महाराज ? "

" नहीं, महाराजका दास। "

" क्यों ? "

" महाराज एक जरूरी कामसे पाटन जा रहे हैं और पन्द्रह दिनके बाद आपसे भादरमें आकर मिलेंगे। "

" अच्छा ? "

" यहाँ आया हूँ, तो एक बात और भी कहता जाऊँ। "

" क्या ? "

" जो मनुष्य अभी यहाँसे निकलकर गया है, वह रातको यहीं रहा था ? "

" हाँ, वह भी महाराजका ही मनुष्य है। "

" जयदेव महाराजका ? "

" हाँ, पाटनमें मुझे मिला था। राणक भी उसे पहचानती है। "

" सावधान ! कहीं फँस न जाइएगा। महाराज उसपर बहुत नाराज़ हैं। यदि अब मिल जाय, तो उसे पकड़ ही रखिए। समझे ? "

" ऐं ! ऐसा जानता, तो मैं उसे खड़ा ही नहीं रहने देता। "

" चिन्ता नहीं; परन्तु आगे सावधान रहिए। "

३—खेंगारके पीछे

अपने शिकारको पंजेसे निकल जाते देख, काक क्रोधित हुआ और तेजीसे वहाँ आ पहुँचा, जहाँ मंजरी और उसके साथी ठहरे हुए थे। जिस प्रकार उसने नवघन रा'का पीछा किया था, उसी प्रकार उसके पुत्रको भी पकड़नेके लिए वह अधीर हो उठा।

" सोमभट, मुझे तुमसे बिछुड़ना पड़ेगा।"

" क्यों ?"

" एक व्यक्ति आगे भागा जा रहा है। उसे पकड़ना है।"

" जो अभी घोड़ा दौड़ाता हुआ गया है, उसे ?"

" सफ़ेद घोड़ी थी ?"

" जी हाँ।"

" तब वही। तुम एक साँढ़नी लेकर तुरन्त जयदेव महाराजके मुकामपर जाओ और मेरा नाम लेकर महाराजसे एक अच्छीसे अच्छी घोड़ी माँग लाओ।"

" और आप ?"

" मैं यथासंभव शीघ्रतासे उस घुड़सवारके पीछे साँढ़नियाँ ले जा रहा हूँ; परन्तु इस मार्गमें घोड़ीके बिना काम नहीं चल सकता। जाओ।"

" जो आज्ञा।" कहकर सोमभट एक सैनिकको साथ लेकर चला गया और काक अपनी साँढ़नीपर सवार हुआ।

मंजरी, चुपचाप यह सब सुन रही थी और काकसे बिछुड़नेकी बात जानकर उसके हृदयमें न जाने क्या क्या हो रहा था।

" मंजरी," साँढ़नी चलने लगी तब काकने कहा, " मुझे ज़रा आगे जाना होगा।"

" क्यों ?" बड़े प्रयत्नसे स्वरको शान्त रखकर मंजरीने पूछा।

" आगे जो घुड़सवार जा रहा है, उसे पकड़ना है।"

मंजरी घबरा गई। उसकी स्वाभाविक स्वस्थता भंग हो गई। उसके मुखपर खिन्नता छा गई। उसने चिन्तातुर स्वरमें पूछा, " हम इसी प्रकार चलें तो क्या नहीं पकड़ा जा सकता ?"

काकको इस प्रश्नमें कुछ अपरिचित-सी झंकार सुन पड़ी; परन्तु खेंगारको पकड़नेकी उत्सुकतामें उसने अधिक ध्यान नहीं दिया।

" नहीं। इस प्रकारसे कहीं काठी घोड़ीका पीछा किया जा सकता है ?"

" तुम—" मंजरीने कुछ पूछना चाहा; परन्तु उसका प्रश्न अधूरा रह गया। काक एकाग्र दृष्टिसे चारों ओर देख रहा था। कुछ देर कोई न बोला।

मंजरीके हृदयमें भी अपरिचित नये नये भाव उत्पन्न हुए। उसे इच्छा होने लगी कि वह काकका हाथ पकड़ ले, उसके पैरोंसे चिपटकर उसे कहीं न जाने दे, गलेमें हाथ डालकर उसे अपने पास खींच ले; परन्तु उसका गर्वित स्वभाव, इस प्रकार नत नहीं हो सकता था। वह बाहरसे ज्योंकी त्यों स्वस्थ रही। केवल आँखें ही क्षण-क्षणमें अश्रुपातका उपक्रम कर रही थीं।

" मैं कैसे जाऊँगी ? " कुछ देरमें उसने प्रश्न किया।

" सोमभट योग्य पुरुष है; और फिर जटानाथ आचार्यकी दुहिताको जूनागढ़ जानेमें चिन्ता और भय काहेका ? "

मंजरीने होठ चबा लिये। अपनी असहाय अवस्थाको प्रकट करना उसे भला न लगा।

इसी समय सोमभट घोड़ी लेकर आ पहुँचा और अपनी साँढ़नीको बिठाकर काक उतरने लगा। उतरते उतरते मंजरीको हृदयसे लगा लेनेके लिए उसका भी जी तरस उठा; परन्तु जब उसने मंजरीकी ओर देखा, तो वह कृत्रिम गर्वसे फूली हुई दिखलाई पड़ी।

" मंजरी, मैं जाता हूँ। हो सका, तो रास्तेमें मिलूँगा। "

मंजरी दयनीय दृष्टिसे देखती रही, " और, नहीं तो ? "

" जूनागढ़में अवश्य मिलूँगा। " हँसकर काकने उत्तर दिया। उसका भी कंठ जैसे रुद्ध हो रहा था। " देखो, यह प्रान्त बिलकुल अरण्य है। सावधान रहना। सज्जन मेहताका पुत्र परशुराम यहाँका दंडनायक है। आवश्यकता हो, तो उससे सहायता लेना और सोरठी लोगोंसे सहायताकी आवश्यकता पड़े, तो 'रा' खेंगारका मैं मित्र हूँ। उसके नामसे सब मार्ग खुल जायँगे। "

" अच्छा—परन्तु "—आगे मंजरीका मुँह नहीं खुला। उसका हाथ आगे बढ़ा और फिर पीछे हट गया। उसे सूझा नहीं कि वह क्या करे, " भटराज—" वह जैसे होठोंमें ही बोली।

"क्यों, क्या है ?" साँढ़नीसे कूदकर काकने कहा।

इसी समय मंजरीने अंचलसे आँखें पोछीं, "नहीं, कुछ नहीं; परन्तु जरा सावधान रहना।"

काकको मंजरीका गर्वित स्वभाव याद आया। मंजरीने काश्मीरादेवीसे जो बातें की थीं, वे भी उसे स्मरण हो आईं। उसने भी गर्वसे पूछा, "किसलिए ?"

"तुम्हें कुछ हो न जाय।" मंजरीने धीरे-से कहा।

काकने हृदयको कठोर करके, तिरस्कारसे हँसकर उत्तर दिया, "घबराओ मत। मैं भी कैलासके समान दुर्धर्ष और कालाग्निके समान दुःसह बनता जा रहा हूँ।"

इस कठोर वज्राघातसे मंजरी मौन हो गई और होठ दबाकर, साहस रखकर मन ही मन बुदबुदाई, "ये मेरे ही शब्द हैं!—हैं-हैं—इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता।"

काक नई आई हुई घोड़ीपर सवार हो गया, "सोमभट, तुम मेरे भाईके समान हो।"

"जी।"

"देखना, तुम्हारी भाभीको ज़रा भी आँच न आने पाए। मैं जूनागढ़में आ मिलूँगा।"

"जो आज्ञा।"

"तुम कृष्णदेवको पहचानते हो। वह खेंगार है, नवघन रा'का पुत्र। दंडनायक परशुरामको भी तुम पहचानते हो।"

"जी हाँ।"

"ज़रा सावधानीसे काम लेना। पंडित जटानाथ नवघन रा'के आचार्य हैं। अतएव उनके नामसे भी तुम्हें मार्ग मिल जाएगा। और ईश्वर न करे कि मुझे कुछ हो जाय, तो मंजरीको पाटन ले जाकर काश्मीरादेवीको सौंप देना।"

"जो आज्ञा।"

काकने घोड़ीको घुमाया, पीछे देखा। मंजरीके पास जानेका मन हुआ; परन्तु मनको मार लिया और एड़ लगाकर उसने घोड़ी सरपट दौड़ा दी।

मंजरीकी आँखोंसे टप-टप आँसू टपकने लगे।

५—राजकुमार खेंगार

काक घोड़ीको दौड़ाते हुए खेंगारके पीछे लग गया। कई घड़ियाँ बीत गईं। सूर्यनारायण अस्ताचलकी ओर जाने लगे; परन्तु आगे जानेवाले घुड़-सवार और उसके बीचका अन्तर दूर न हुआ। देखते देखते दूसरा प्रदेश आने लगा।

इसी समय एक छोटा गाँव आ गया। वहाँ ठहरकर कुछ दूध पीकर, भूख मिटानेके लिए वह बाज़ार पहुँचा और दूध पीकर खेंगारकी खोज करने लगा। पूछताछ करनेसे ज्ञात हुआ कि एक घुड़सवार कुछ ही देर पहले इस गाँवसे होकर गया है। एक मनुष्यने कहा कि अभी वह इसी गाँवमें है। यह सुनकर काक उस ओर रवाना हो गया, जिस ओर उस घुड़सवारके जानेका समाचार मिला था।

अचानक उसे घोड़ोंकी टापें सुनाई पड़ीं और उस ओर जानेपर, उसने पन्द्रहबीस घुड़सवारोंको गाँवसे बाहर जाते देखा। पोशाकसे वे सोरठी प्रतीत होते थे।

"भाइयो, ज़रा ठहरो।"

घुड़सवारोंने घोड़ोंको और तेज़ कर दिया और काकने भी अपनी घोड़ी उनके पीछे लगा दी। कुछ आगे बढ़नेपर काकको ऐसा प्रतीत हुआ कि घुड़सवार उसे जान-बूझकर गाँवसे बाहर खींचे लिये जा रहे हैं। यह सन्देह होते ही उसने अपनी घोड़ीको फिरा लिया और गाँवकी ओर जानेका विचार दिखाया।

तुरन्त ही वे घुड़सवार ठहर गये और एक सवार आगे बढ़ आया। काकने घोड़ीको एड़ लगाई। घोड़ी घूमकर, गाँवकी ओर बढ़ी; परन्तु यह देखकर वे सब उसके पीछे लग गये और देखते-देखते सबने चारों ओरसे उसे घेर लिया।

"तुम कौन हो?"

"यह तो मैं हूँ, काकभट!" एक सवार हँसते हुए आगे बढ़ आया।

"कौन, राजकुमार खेंगार?" चौंककर काकने पूछा।

"हाँ, पाटनकी आन गई; अब जूनागढ़की आरंभ हुई है।" खेंगारने हँसकर कहा।

" परन्तु मुझे रोकनेका कारण ?" काकने पूछा।

" तुम्हारा आतिथ्य-सत्कार करनेके लिए।"

" जयदेव महाराज और रा'के बीच तो सन्धि है; फिर इस आतिथ्य-सत्कारकी आवश्यकता ?

" काकभट, हमारे देशमें तुम्हें कुछ कमी न मालूम होनी चाहिए, नहीं तो हमें लज्जित होना पड़ेगा।"

" तब क्या करना चाहते हैं ?" शान्तिसे हँसकर, हृदयकी चिन्ता छिपाते हुए काकने कहा।

" तुम्हें जूनागढ़ ले जायेंगे। चलो, विलम्ब हो रहा है।" खेंगारने अपने सवारोंको आदेश दिया।

" मुझे नहीं जाना है।" काकने कहा।

" भटराज, यह हठ व्यर्थ है, तुम्हें चलना ही होगा।"

" नहीं।"

" तो बलपूर्वक ले जाना होगा।"

" तब यह कहो कि मैं कैदी हूँ ?"

" नहीं, मेरे अतिथि हो।" खेंगारने कहा।

काकने क्षण-भर विचार किया और हँसकर कहा, " कुमार, तुम्हारी बात कहीं टाली जा सकती है ? चलो, चल रहा हूँ।"

" चलो।"

" रा'की तबियत कैसी है ?" चलते-चलते काकने पूछा।

" ये लोग तो कहते हैं कि मृत्यु-शय्यापर पड़े हैं।"

" जीवित हों, तो अच्छा है। पाटनसे तुम्हारा आना सार्थक हो जाय।" काकने मार्मिक हँसी हँसते हुए कहा।

" मुझे विश्वास है कि सार्थक ही होगा।" कहकर वह अपने रिसालेके साथ आगे बढ़ा।

सारी रात और सारे दिन घोड़े दौड़ाते हुए ये लोग जूनागढ़की ओर बढ़ते रहे। मार्गमें काकको खेंगारमें अनोखा-सा परिवर्तन दिखाई पड़ा। वह पाटनवाला शंकित, शान्त, तिरस्कार-पूर्ण हृदयका कृष्णदेव नहीं था; परन्तु उत्साही, मुक्तहृदय, अपनी प्रजाका पिता था। गाँवोंके लोग उससे मिलनेको

आते। वह सबके साथ स्नेहसे, शुद्ध हृदयसे बातें करता। जो गुण, पाटनकी वैर-भूमिमें प्रकट नहीं थे वे उसकी अपनी भूमिमें झलक उठे। काकको भी वह मित्रके समान समझने लगा और अनेक प्रकारसे उसे रिझानेके प्रयत्न करने लगा।

काक भी खेंगारके विकसित गुणोंको देखकर प्रसन्न हो गया।

वृद्ध सोरठी योद्धाओंके द्वारा ऐसे अल्पवयस्क कुमारका असीम सम्मान और प्रेमसे आदर होते देख, खेंगारके शौर्यके विषयमें भी उसका विचार बदल गया। तीसरे दिन जब वे जूनागढ़ पहुँचे, तब नागरिकोंमें ऐसा उत्साह और आनन्द छा गया, जैसे खेंगार दिग्विजय करके लौटा हो।

दरवाज़ेपर पहुँचकर खेंगारने द्वारपालसे पूछा, "पिताजी कैसे हैं?"

"अन्नदाता, आपसे मिलनेको ही उनके प्राण कण्ठमें अटके हुए हैं।"

"अच्छा!" कहकर खेंगारने घोड़ीको एड़ लगाई।

६—रा'नवघनकी प्रतिज्ञा

नगरमें प्रवेश करते ही काकको एक नवीनता-सी प्रतीत हुई। जूनागढ़-नगर नहीं, वरन् शस्त्र-सज्जित योद्धाओंकी छावनी-सा ज्ञात हो रहा था। जब राजा मृत्यु-शय्या पर पड़ा हो, तब भी नगरका ऐसा ठाठ देखकर उसके आश्चर्यका पार न रहा।

राजदुर्गमें घुसते ही खेंगार घोड़ीपरसे नीचे कूद पड़ा।

"काक, मेरे साथ आओ।"

"महाराज," काकने गौरवसे कहा, "मैं पाटनका भटराज हूँ। शत्रु पक्षका आदमी हूँ। ऐसे समय पराये आदमीको साथ रखना उचित नहीं।"

खेंगार मुक्त हृदयसे खिलखिलाकर हँस पड़ा।

"काक, मैं तुम्हें पहचानता हूँ। मुझे तुमपर विश्वास है। तुम जैसा शत्रु भी हो, तो चिन्ता नहीं। चलो।"

"जो आज्ञा।" कहकर काक साथ हो लिया। खेंगारके विश्वासने उसे जीत लिया। उसे मन ही मन विचार हुआ कि यदि ऐसा पति पाटनका हो, तो क्यासे क्या हो जाय!

खेंगार जल्दीसे अपने परिचित महलमें घुस गया और जो जो लोग सामने मिले, वे इसे देखकर प्रसन्न हो गये।

अन्दर जानेपर, पत्थरके बने एक चौकमें नवघन रा' मृत्यु-शय्यापर पड़े थे। उनके कौटुम्बिक जन और योद्धा-गण उन्हें चारों ओरसे घेरे खड़े थे। खेंगारको आया देख सबने ज़रा दूर हटकर उन्हें रास्ता दिया।

चिन्तातुर, स्नेहसिक्त आँखोंसे खेंगार तेजीसे आगे बढ़ा। पीछे काक भी आ गया। उन्होंने एक साधारण खाटपर सोरठके वृद्ध पतिको पड़ा हुआ देखा और पहले कैसे अवसरपर वे मिले थे, यह स्मरण हो आया।

मृत्युके समय भी उस वृद्ध महारथीके प्रचण्ड शरीरका एक-एक स्नायु पहलेके समान ही सशक्त प्रतीत हो रहा था। केवल उनके गालोंमें गढ़े पड़ गये थे, आँखें धँस गई थीं, कपालपर सिकुड़नें पड़ी हुई थीं और बीच-बीचमें आँखें खोलकर वे चारों ओर देख लेते थे।

खेंगार, दौड़कर खाटके पास जा बैठा और उसने पिताका हाथ लेकर छातीसे लगा लिया। ऊँचे कदकी खेंगारकी वृद्ध माता, इस उम्रमें भी तेजस्विनी दिखनेवाली सोरठी वीरांगना, खाटपर बैठी हुई पतिके पैर दबा रही थी। उसने खेंगारको देखकर कहा, "बेटा, तुम्हारे बिना इनके प्राणोंकी गति नहीं हो रही है।"

ज्यों ही खेंगारने अपने पिताका स्पर्श किया कि वे आँखें फाड़कर चारों ओर देखने लगे। खेंगारने काकके पास मुँह ले जाकर पुकारा, "पिताजी!— मैं खेंगार—पिताजी— —" वृद्धने आँखें मींच लीं। श्वासकी गति जरा मन्द हो गई। इसके बाद उन्होंने फिर आँखें खोलीं।

"बेटा!" वृद्धने धीरे-से पुकारा।

"पिताजी!"

सभी स्त्री-पुरुष एकाग्र चित्तसे सुनने लगे।

"बेटा—आ—गये—" बड़ी कठिनाईसे वृद्धने कहा। यह स्पष्ट प्रकट हो रहा था कि वे बड़ी मेहनतसे इस अन्त समयमें बल एकत्र कर रहे हैं। उनकी आँखोंका अमानुषीय तेज दूर हो गया।

"राया!"

तुरन्त ही पास खड़ा हुआ खेंगारका बड़ा भाई आ गया।

" और कहाँ हैं ? "

" ये हैं, पिताजी ! " शेरसिंह और चूड़चन्द्र, खेंगारके दोनों बड़े भाई भी, निकट आ गये।

वृद्धने आँखोंके संकेतसे पानी माँगा और वृद्धा रानीने अँगुलियोंसे उनके मुँहमें पानी चुआ दिया।

" सोमनाथ भग—वा—न—की—प्र—ति—"

" हाँ, पिताजी ! " चारोंने कहा, " सोमनाथ भगवानकी प्रतिज्ञा। क्या आज्ञा है ? "

" सब र—ह—गया। " वृद्धमें धीरे-धीरे शक्ति आने लगी।

" चिन्ता नहीं पिताजी ! हम लोग हैं न ? " खेंगारने कहा।

वृद्धके मुखपर तिरस्कार छा गया, " तुम लोग ? "

" पिताजी ! क्या करना है ? "

" मेरी गादी—"

" जिसे आप कहेंगे, वही लेगा। ज़रा भी चिन्ता न कीजिए। " नवघनने कहा।

वृद्धाने फिर कुछ पानीकी बूँदें मुँहमें डालीं और रा ' को वाचा आ गई।

" बेटा, " कहकर उन्होंने दम लिया, " प्रतिज्ञा करना सरल है, परन्तु उसे पालना..."

" पालेंगे पिताजी ! "

" परस्पर लड़ मरोगे, तो जूनागढ़—"

" आप कहिए तो," शेरसिंहने कहा, " आप जिसे कहेंगे, वही जूनागढ़ लेगा। फिर चिन्ता किस बातकी ?"

" जल रक्खो। " कहकर वृद्धने अपनेको बिठा देनेके लिए कहा। बड़े प्रयत्नसे चारों पुत्रोंने वृद्धको उठाकर तकियेके सहारे बिठा दिया। उनका श्वास फिर रुद्ध होता हुआ मालूम हुआ। तुरन्त एक वृद्ध ब्राह्मणने चारों ओर पानी रखवा दिया।

" पिताजी ! कौन ले ? "

वृद्धने धीरे धीरे चारों ओर देखते हुए कहा, " पानी ! जो मेरे वैरका बदला ले,—वही पिण्डदान करे और जूनागढ़ ले। "

'हाँ, आज्ञा कीजिए, कौन-सा वैर लेना है ?"

"भोंयरेको[1] तोड़ना है।"

"तोड़ूँगा, पिताजी !"

"और—और—"

सब ध्यानपूर्वक सुनने लगे।

"महीड़ाको[2] मारना है।"

कुछ देर सब मौन रहे। शेरसिंह कुछ बोलना चाहता था; अतएव रा'ने आँखोंसे ही उसे चुप रहनेका संकेत किया।

"दामा चारणको[3] पहचानते हो ?"

'हाँ।"

"उसके गाल फाड़ने हैं।"

सब चौंक पड़े। पवित्र समझे जानेवाले चारणको ऐसा क्रूर दण्ड देनेकी अनीति कोई राजपूत नहीं कर सकता। चारों पुत्र ठिठक गये। रा'ने उनको कठोर दृष्टिसे देखा। उनकी प्राण त्यागती हुई आँखोंमें भी क्रोध छा गया।

"और ?" चूड़चन्द्रने पूछा।

"सोलंकीने मुखसे तिनका उठवाया था।" वृद्धकी आँखोंमें भयंकर विष व्याप्त हो गया। सब एकाग्र होकर सुनने लगे।

"इसका अर्थ क्या है ?" तिरस्कारसे रा'ने पूछा।

"क्या किया जाय ?"

"जो सोलंकीकी नाक काटे—"

"हाँ—" चारों जनें श्वास खींचकर बोले।

"वही उत्तर-क्रिया करे और जूनागढ़—" "ले" रानीने वाक्यको पूरा किया। रानी पहली ही बार बीचमें बोली। काक उसका प्रभावशाली मुख और तीक्ष्ण आँखें देखने लगा। ऐसा लगा कि वहाँ खड़े हुए सभी लोगोंको रोमांच हो आया है।

कोई कुछ न बोला। बारह दिनमें गुजरातके नाथकी नाक काटना कोई

---

१ भोंयरेका किला तोड़नेकी नवघनने प्रतिज्ञा की थी। २ उमेठाके राजाका पुत्र हंसराज। उसकी बहनको रा' ब्याह लाया था, इससे शत्रुता हो गई थी। ३ जब रा' पकड़े गये थे, तब इस चारणने मज़ाक़ किया था।

खिलवाड़ नहीं था। चारों पुत्र लज्जित होकर खड़े रहे। काकके कपालपर पसीना आ गया। रानीने सिंहनीकी भाँति सिर उठाया। वह रायघन और चूड़चन्द्रकी ओर क्रोधसे देखने लगी।

"चन्द्र*ने चूड़ियाँ पहन ली हैं, अब राया, तू भी पहन ले।"

वृद्धने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई और निराश होकर उसने पटरानीकी ओर और उनके पीछे खड़ी रानियोंकी ओर तिरस्कारसे देखा।

"रानी, ये पुत्र किसके हैं?" तिरस्कारके साथ उच्चस्वरमें वृद्धने पूछा, "कहो तो सही?"

वहाँ बैठे हुए सब काँप उठे। बहुत-से नीची दृष्टि किये खड़े रहे। काक चारों पुत्रोंकी ओर ध्यानसे देखने लगा। अचानक उसने खेंगारके सुन्दर मुखको तेजसे चमकते देखा। काकके हृदयमें धड़कन पैदा हो गई। उसी समय उसने मुंजालके खेलको समाप्त हो जाते देखा।

खेंगारने अपने मस्तकको गर्वसे ऊँचा किया और वृद्धकी ओर एकाग्र दृष्टिसे देखा। उसके होठ भयंकर निश्चयसे बन्द थे, "पिताजी, आपको मैं पिंडदान दूँगा।"

"बेटा!" वृद्धने चकित होकर कहा।

"हाँ पिताजी! या तो श्राद्ध करूँगा, या आपके पीछे"—वृद्धने खेंगारका हाथ पकड़नेका प्रयत्न किया और खेंगारने पिताका हाथ थाम लिया। रा'ने उसे छातीसे लगा लिया।

"बेटा, यादव-कुलमें दी—" कहकर वृद्धने शान्तिसे आँखें मींच लीं। उसके मुखपर कुछ मधुर हास्य-सा छा गया और श्वासकी गति मन्द हो गई। कुछ देरमें उसने आँखें खोलीं—"बे—"

"पिताजी!" खेंगारने नीचे झुककर कहा।"

"पिंड—"

"पिंड-दान दूँगा।"

"शतं—जी—" कहकर वृद्धने फिर आँखें मींच लीं। सभी मूर्त्तिवत् स्तब्ध होकर खड़े रहे।

---

* चूड़चन्द्र अम्बादेवीका भक्त था; अतएव वह हमेशा चूड़ियाँ पहनता था।

रानीने दो बूँद पानी छोड़ा और वृद्धने एक श्वास खींचा। रा'के कंठमें मृत्युका घंटा बज उठा और दूसरे ही क्षण उसकी आँखें फट गईं। रा' नवघनकी देह ढल पड़ी और समस्त परिजन " जय महादेव " कह उठे।

७—रा' खेंगार

खेंगार तुरन्त वहाँसे फिरा—" काकभट ! "

" जी। "

" मुझे तुमसे काम है। इधर आओ। "

तुरन्त ही आसपास खड़े लोगोंने मार्ग दे दिया और वे दोनों बाहर निकले।

" भटराज, मुझे तुमसे कुछ बातें करना है। "

" इस समय ? " ज़रा विस्मित होकर काकने पूछा।

" हाँ, इसी समय। काक, जब मैं यहाँ आया, तब मैंने आशा नहीं की थी कि यह सब होगा। "

" मुझे भी ऐसा ही ज्ञात हुआ। "

" अब मेरी बाजीका रंग पलट गया। "

" किस प्रकार ? "

" मुझे पाटनके साथ युद्ध आरम्भ करना होगा। पर यह ज्ञात नहीं था कि इतनी जल्दी करना पड़ेगा। क्यों, बोलते क्यो नहीं ? "

" महाराज, आपकी अंतिम प्रतिज्ञा सुनकर अब मैं क्या कहूँ ? "

बड़े ही स्नेहसे खेंगारने काकके कन्धेपर हाथ रखा।

" मेरी जगह तुम होते, तो क्या करते ? "

" जो आपने किया, वही। "

" तब ? "

" महाराज, सोरठ आकर मैं तो आपके गुणोंका दास हो गया हूँ। "

" काक, तुम मित्र ही बने रहो, बस, फिर मुझे और कुछ नहीं चाहिए। "

" इस जीवनमें तो महाराज, आपका मित्र ही रहूँगा। कहिए, क्या आज्ञा है ? "

" काक, मुझे एक बात स्पष्टतासे बतलाओ। तुम मुझे पहचानते हो और मेरी प्रतिज्ञाओंको जानते हो। क्या जयदेव ही चक्रवर्ती बननेको उत्पन्न हुआ है और मैं नहीं ? "

" महाराज़, मैं भी आज यही विचार कर रहा था कि आप पाटनकी गादीपर होते, तो लोग महाराज विक्रमकी कीर्तिको भूल जाते। "

ज़रा गर्वसे खेंगार सतर हो गया, " पाटनकी गादीमें क्या है और जूनागढ़की गादीमें क्या नहीं ? "

" वहाँ राजनीतिज्ञता और शौर्य दो हैं और यहाँ केवल शौर्य है। "

" काक," एकदम काककी ओर घूमते हुए खेंगारने कहा, " मेरा शौर्य और तुम्हारी राजनीतिज्ञता, ये दोनों क्या नही कर सकते ? "

काक चौंककर पीछे हट गया, " यह क्या कह रहे हैं ? "

" सच कह रहा हूँ। मैं तुम्हें अपना मंत्री बनाना चाहता हूँ। "

काकने एक निःश्वास छोड़ा, " महाराज, यह कैसे हो सकता है ? "

" सरलतासे। यहीं आकर रह जाओ। "

" मैं ? " काकने सिर हिलाया।

" क्या जयदेवके हाथो बिक गये हो ? "

" नहीं। "

" तब वह स्वार्थी तुम्हारी क्या कदर करनेवाला है ? "

" यह भी जानता हूँ; परन्तु जिस प्रकार आपकी मुझपर श्रद्धा है, उसी प्रकार एक और मित्रकी भी है। "

" किसकी ? त्रिभुवनपालकी ? "

" हाँ। आप तो मुझे आज बुला रहे हैं; परन्तु उन्होंने तो तब मेरा हाथ थामा था, जब मैं लाटमें एक भटकनेवाला सैनिक था। "

" तो क्या इससे तुम अपने भाग्यको पुड़ियामें बाँध रहे हो ? " खेंगारने पूछा।

" वह तो विधाताने कभीका बाँध दिया है। "

" काक—"

" कहिए। "

" तुम जैसा धूर्त और भला आदमी मैंने और नहीं दखा। "

" मेरे द्वारा इतने कटु अनुभव लेनेके बाद भी मेरी ऐसी कदर करनेवाला मैंने भी नहीं देखा।"

" तुम नहीं मानोगे ?" खेंगारने निराशासे पूछा।

" नहीं।"

" काक, मैंने सोचा था कि आज मेरा भाग्य खुल गया; परन्तु अब ज्ञात होता है कि उलटे वह बन्द हो गया।" सिर हिलाकर खेंगारने कहा।

" इस प्रकार निराश क्यों हो रहे हैं ? आपके भाग्यमें न जाने क्या लिखा होगा !"

" और चाहे जो हो, एक बात तो लिखी ही है।"

" क्या ?" काकने पूछा।

" टेक।"

" तो फिर महाराज, सारी दुनिया झक मारती है।"

कुछ देर दोनों मौन खड़े रहे।

" तब तुम शत्रु-पक्षमें ही रहोगे ?"

" क्या किया जाय !"

" ठीक है। जैसी मेरी टेक है, वैसी ही तुम्हारी; परन्तु काक, तब मुझे शत्रुता करनी होगी।"

" किस प्रकार ?"

" उस प्रतिज्ञाके बाद तुम जैसे पट्टनीको कैसे छोड़ा जा सकता है ?"

काक समझ गया, " महाराज, सच है। मैं बन्दी होनेको तैयार हूँ।"

" आजसे बारहवें दिन तुम्हें छोड़ दूँगा।"

८—गर्व-मर्दन

अनाथ परन्तु गर्विता मंजरी ज्यों त्यों करके अपने रोते हृदयको चुप रख सकी। गर्व गलित हो जानेपर वह निर्बल हो गई थी और अपनी मानसिक सृष्टिका आनन्द भूलकर, साधारण जगतके सुख-दुःखोंका शिकार हो गई थी। उसका स्वभाव-जन्य गर्व कहीं चला नहीं गया था; परन्तु उसके हृदयमें संचरित नये भावोंने उस गर्वको दास बना लिया था। वह क्यों इस प्रकार

चिन्ता करती है ? काकके जानेपर क्यों इस प्रकार बेचैन हो गई है ? और क्यों निःसहाय हो रही है ? ये प्रश्न उसके मनमें पैदा होते; परन्तु निर्णय होनेसे पहले ही, विजेता काकका विचार आ खड़ा होता और निर्णय करना रह जाता।

पाटनसे प्रस्थान करनेके पश्चात् काक उसके विचार-साम्राज्यका महाराजा बन गया था; परन्तु जब वह अकेला इस प्रकार चला गया, तब उसकी बुद्धि कुंठित हो गई। उसमें विचार करनेकी शक्ति न रह गई। ऐसा प्रतीत होने लगा; जैसे उसके हृदयको चीरकर आत्मा निकल भागी हो। वह समझ न सकी कि यह क्या हो गया और कैसे हो गया। केवल इतना ही प्रतीत हुआ कि वह जीवित नहीं है, प्राण चला गया है—घोड़ीपर बैठे दूर जाते हुए काकके साथ।

पहले विचार आया करते थे, अब विचार-शून्यता आ गई। पहले हृदय शान्त रहता था अब हृदयमें तरंगें उछलने लगीं। पहले काकका मुख सामने आता था अब उसका हृदय ही काकमय हो गया। मंजरी कुछ समझ न सकी।

पहले वह काकको तुच्छ समझती थी। पाटनसे रवाना होते समय ही उसपर स्नेह हो आया था। अब वह सर्वोपरि हो बैठा। उसकी मूर्तिके पैरोंमें कल्पना और बुद्धि दीन मुखसे धूलमें लोटने लगीं।

पहले काककी बुद्धिके विषयमें विचार आया करते, उसके शौर्यकी दूसरोंसे तुलना किया करती, उसके रूपकी दूसरोंके साथ समता किया करती; अब वह कुछ न कर सकी। अब दृष्टिमें केवल काक ही रम गया। पहले कविकी दृष्टिसे उसका रूप देखती; ब्राह्मण-कन्याकी दृष्टिसे उसके संस्कार देखती; वीराङ्गनाकी दृष्टिसे उसका शौर्य देखती; अब एक ही दृष्टि-बिन्दु रह गया—स्त्रीका। उसकी विकृत कल्पना-शक्तिने उसे केवल पुरुषोत्तम-रूपमें ही देखा। पहले केवल मन ही उसके साथ रहनेकी इच्छा करता, अब उसका हृदय, उसके अंग-अंगमें छिपा हुआ भयंकर स्त्रीत्व, उसके लिए तरसने लगा।

मंजरी अपने हृदयकी उत्ताल तरंगोंको देखकर घबराई। हृदयकी तड़फड़ाहट देखकर चौंकी। ऐसी अपरिचित भयंकर तड़फड़ाहटका उसने अनुभव नहीं किया था। अनुभव करनेकी आशा भी नहीं की थी। वह

शास्त्रोंका स्मरण करना चाहा और अलकापुरी याद आगई। उसके मुखसे निकल पड़ा—

संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यक्षकन्याः ॥ ६–उ०मे०
नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणाम् ॥ ७–उ०मे०
क्षौमं रागाद्-

श्लोक अधूरा रह गया। लज्जासे उसका मुख लाल हो गये। वह इस प्रकार देखने लगी, जैसे उसने कोई चोरी की हो, और वह फिर बोली—

श्रीमन्मंडलनाथभट्टनृपतिः सौभाग्यनाथो मम।

९—काककी खोज

मंजरीने नई सृष्टिमें प्रवेश किया। उस सृष्टिके रंगके आगे विधाताकी विभूति भी निकम्मी और नीरस प्रतीत हुई। उसकी भूमि यौवनसे मढ़ी थी। उसके आकाशमें प्रेम प्रकाशित हो रहा था। जिस सृष्टिमें वह विहार करती थी, नाचती थी उसमें केवल दो ही व्यक्ति थे—वह और काक।

उसने समझा था कि काक जूनागढ़के दरवाज़ेपर मिल जायगा, परन्तु उसे वहाँ न देख कर मंजरीको ज़रा विस्मय हुआ और फिर अपने पागलपनका विचार आया—वे यहाँ कैसे हो सकते हैं? उन्हें अनेक काम होंगे। वे कैसे जान सकते हैं कि मंजरी इस समय आनेवाली है? उसका हृदय फिर पछताने लगा,—उसे अपने कहे हुए शब्द याद आ गये—"शुनीमन्वेति श्वा" वह कैसी डेढ़-अक्ल है, कैसी अभिमानिनी, कैसी अधम!

सोमभटने पूछताछ कर, आचार्य जटानाथका घर खोज निकाला। जबसे उसकी माताने उदा मेहताका आश्रय ग्रहण किया था, तबसे ही आचार्य जटानाथका घर उसके हृदयमें रम रहा था; परन्तु इस समय वहाँ पहुँच कर भी उसे आनन्द न मिला।

एक शिष्य आकर द्वारमें खड़ा हो गया।

"कौन है?"

"आचार्यजी हैं क्या?" सोमभटने पूछा।

"परन्तु आप हैं कौन?"

"ये आचार्यजीकी कन्या आई हैं।"

"कौन, वत्सलीदेवी?"

"रुद्रदत्त, नहीं, मैं उनकी कन्या हूँ।" मंजरीने साँढ़नीपर बैठे हुए कहा। शिष्य चौंका, मंजरीकी ओर देखने लगा और उसके तेजसे प्रभावित होकर वह दिङ्मूढ़-सा खड़ा रह गया।

"कौन, मं—" आखिर वह बोला।

"हाँ, मैं ही मंजरी हूँ। नानाजी कहाँ हैं?"

सात वर्षके बाद रुद्रदत्तने मंजरीको देखा और वेदाभ्यास-जड़ ब्राह्मण इस सुन्दरीके रूपान्तरको देखकर घबरा गया। वह विनय त्यागकर एकदम घरमें जा घुसा और उसके क्षोभको देखकर, सोमभट खिलखिलाकर हँस पड़ा।

कुछ देरमें मंजरी और उसके सब साथी साँढ़नियोंपरसे उतरे और इतनेमें एक दूसरा शिष्य उनका स्वागत करनेको आ पहुँचा।

निराश हृदयसे मंजरी घरमें गई। उसने काकको यहाँ देखनेकी आशा तो की ही थी। वृद्ध आचार्य जटानाथ अग्निहोत्री थे और अग्निके समक्ष बैठकर जप कर रहे थे। उनकी सफ़ेद लम्बी दाढ़ी उनके पेटपर फैली हुई थी। रुद्राक्षकी बड़ी-बड़ी मालाएँ उनके गले और हाथमें शोभायमान थीं। उनकी वृद्ध, परन्तु बड़ी, प्रभावशाली आँखें नासिकाग्रपर ठहरी हुई ध्यान कर रही थीं। निःश्वास छोड़कर उन्होंने आँखें खोलीं।

"कौन, वत्सली?—"

"नहीं नानाजी, यह तो मैं हूँ।"

अनेक वर्षोंके योगाभ्यासकी टेवके कारण, अज्ञात रूपसे आचार्यने अँगुलीको नाकके पास ले जाकर यह मालूम किया कि कौनसे नथुनेसे साँस निकल रही है और वे धीरेसे हँस पड़े, जैसे बरफ़के ढेरपर सूर्यकी किरणें जा पड़ी हों, "कौन, मंजरी?"

"हाँ, मैं ही हूँ। आप अच्छे तो हैं?"

"अरे, तू तो बहुत बड़ी हो गई?"

मंजरी आकर सामने बैठ गई, "कितने वर्ष बीत गये?" उसने हँसकर कहा। उसके चारों ओर आचार्यके शिष्य आँखें फाड़-फाड़कर खड़े हो गये।

" उस समय तू कितनी-सी थी, ऐं ? " वृद्धने हँसकर इस प्रकार कहा, जैसे वह अकेले अपने आप ही बातें कर रहे हों। " वत्सली जब तुझे लाई थी, तब तू दस वर्षकी थी, क्यों ? रुद्र, जब तुमने पहली बार ब्रह्मयज्ञ आरम्भ किया था, तबकी बात है। "

" महाराज, उसे सात वर्ष हो गये। "

" ठीक है। मंजरी, तू कहाँसे आ रही है ? "

" पाटनसे। "

" पाटन ? हाँ, तूने कहलाया था कि तू खंभातसे वहाँ चली गई है। तेरी माता कहाँ है ? "

" खंभातमें। "

" उस दुर्बुद्धि छोकरीने अभी तक उपाश्रय नहीं छोड़ा। हर हर—तब तू कहाँ थी ? " वृद्धने ज़रा शंकित होकर पूछा।

" पिताजीके मित्र, पंडित गजाननके यहाँ थी। "

" पंडित गजानन—गजानन—हर—हर—हर—तीन वर्ष पहले वे यहाँ आये थे। महान् विद्वान्, महान् समर्थ। " कहकर आचार्य अपनी अँगुलियोंको फिर नथुनोंके पास ले गये, " यहाँ किसके साथ आई ? "

" नानाजी, फिर मेरा विवाह हो गया। "

" ऐं ! " वृद्धने आश्चर्यसे आँखें उठाकर देखा। सारे शिष्य एक दूसरेकी ओर देखने लगे।

" क्या कह रही है ? हर हर ! "

" सच—"

" किसके साथ ? "

मंजरी लजाकर नीचे देखने लगी।

" महाराज जयदेवके भटराजके साथ। " सोमभटने कहा।

" भटराज ? " वृद्धने क्रोधसे पूछा, " भटराज ! हर हर ! "

" हाँ, लाटके। "

" लड़की ! "

" महाराज, " सोमभटने मधुरतासे कहा, "वे महान् समर्थ महारथी हैं।"

" परन्तु उसका गोत्र क्या है ? " वृद्धने मंजरीकी ओरसे आँखें हटाकर सोमभटकी ओर देखते हुए कहा।

"जमदग्नेय।" धीरे-से मंजरीने कहा।

"महाराज, द्वापरमें जो द्रोणाचार्य थे न, उनसे भी इनकी युद्ध-कला बढ़ी-चढ़ी है।" सोमभटने कहा।

"हर हर हर!"

"जिन्होंने नवघन रा'को अकेले हाथों पकड़ा।"

"हर हर हर!" बड़े आदरसे एक-एक अक्षरका उच्चारण करते हुए वृद्धने कहा, "वह कहाँ है?"

"हमने तो समझा था कि वे यहाँ आ पहुँचे होंगे। उन्हें ज़रा काम था, इसलिए वे पहले ही रवाना हो गये थे। यहाँ नहीं आये?"

"नहीं।"

मंजरीको धक्का-सा लगा। उसने चिन्तातुर मुखसे सोमभटकी ओर देखा।

"महाराज," रुद्रदत्तने कहा, "अब सबको स्नानादि कराना चाहिए। थके-हारे आये हैं।"

"हर हर! मैं तो भूल ही गया। उठ बेटी, फिर बात करेंगे।"

मंजरी उठी; परन्तु उसके प्राण ऊपर नीचे होने लगे। उसने नहाया, भोजन किया; परन्तु चैन न पड़ी। उसे अपशकुन होने लगे। उसका हृदय हिंडोलेपर चढ़ गया। वह यही विचार करने लगी कि काक कहाँ होगा? भोजनादिसे निबटकर उसने सोमभटको खोज करनेके लिए भेजा। थकावट दूर करनेको वह सोई; परन्तु उसे नींद नहीं आई। वह उठकर इधर-उधर टहलने लगी; परन्तु जीको चैन न मिली।

उसने रुद्रदत्तको बुलाया और खेंगारका हाल-चाल मालूम किया। सुना कि खेंगार, अपनी सेना लेकर हँसराज महीड़ाको मारनेके लिए गया है। उसने खेंगारसे मिलनेका विचार किया था; परन्तु वह भी असंभव हो गया। वह इस प्रकार पछाड़ें खाने लगी, जैसे पिंजड़ेमें सिंहिनीको बन्द कर दिया गया हो। रात भी वैरिन हो गई। इतनी लम्बी यात्राके बाद भी उसकी आँखें न झपीं।

दूसरे दिन उसके साथ आये हुए लाटके सब योद्धाओंने भी पूछताछ करनी शुरू की; परन्तु कुछ भी पता न लगा। मंजरीका हृदय फटने लगा। अनेक अज्ञेय तर्क-वितर्क होने लगे। वह साहस खोने लगी। उसने आचार्य

जटानाथ, रुद्रदत्त और अन्य शिष्योंसे खोज करनेको कहा; परन्तु आशाके कोई चिह्न दिखलाई नहीं पड़े। उसके हृदयको धक्का-सा लगा। काक जीवित है और जूनागढ़में है, इसका क्या विश्वास? उसने जिसका पीछा किया था, कहीं वह जबर्दस्त हो, तो?

उसे जूनागढ़ विष-सा प्रतीत होने लगा। उसे इच्छा हुई कि भागकर वह सोरठके गाँव-गाँव घूमकर उसकी खोज करे। उसने सोमभटसे कहा और वह स्वामि-भक्त योद्धा, दूसरे दिन अपने शिष्योंको साथ लेकर चारों ओर खोजने निकल पड़ा। उसने मंजरीको बहुत-कुछ समझाकर यहीं रखा। दूसरी रातको भी उसे नींद न आई। नीचे चबूतरेपर बैठे हुए आचार्यके शिष्य गप्पें लड़ा रहे थे और ऊपर खिड़कीमें छिपी मंजरी आँसू बहा रही थी। इतनेमें किसीकी आवाज़ सुन पड़ी, "रुद्रदत्त ओ रुद्रदत्त, एक बात पूछता हूँ।"

"क्या?"

"कैलासमिव दुर्धर्ष" का अर्थ क्या है?"

मंजरी एकदम चौंक पड़ी, उसकी यह प्रिय पंक्ति यहाँ कैसे?

"तुम्हारा सिर।" रुद्रदत्तने अर्थ किया, "मूर्ख, तू यह कहाँसे ले आया?"

"कहींसे भी। शास्त्रोंको तो जैसे तूने ही पढ़ा है! ज़रा बतला तो, मेरी समझमें नहीं आ रहा है।"

"परन्तु तू लाया कहाँसे?"

"एक मनुष्य है। वह कुछ ऐसा ही बोलता रहता है। यह क्या है?"

मंजरीने होठसे होठ दबा लिया। अँधेरेमें भी उसकी तेजस्वी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं।

"कौन जाने, कुछ होगा।" रुद्रदत्तने लापरवाहीसे कहा, "छोड़ो न इसे।"

"रुद्रदत्त, यह पंक्ति मुझे याद है।" मंजरीसे न रहा गया, वह बीचमें ही बोल उठी—"कैलासमिव दुर्धर्षं कालाग्निमिव दुःसहम्।"

वह नया मनुष्य चकित हो गया, "हाँ, यही। तुम इसे कहाँसे लाईं? यह कौन है रुद्रदत्त?" उसने धीरे-से पूछा।

" ये तो आचार्यजीकी दुहिता । "

" रुद्रदत्त, ठहरो, मैं नीचे आ रही हूँ । " कहकर मंजरी नीचे आ गई ।

१०—काक मिल गया

मंजरी अभिमानको दूर रखकर नीचे उतरी । ढोंग करना, झूठ बोलना, यह उसके स्वभाव और आदर्शोंके विरुद्ध था; फिर भी इस समय विचित्रताका विचार किये विना वह सब कुछ करनेको तैयार हो गई । उसके हृदयमें इस अस्वाभाविक व्यवहारसे जरा दंश-सा होता था; परन्तु इस दंशकी, काकको प्राप्त करनेकी आतुरताके आगे कोई गणना नहीं थी । उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि काक ही इन शब्दोंको बोलता हो, तो इस ब्राह्मणके सिवा और किसी मार्गसे उसका पता न लगेगा ।

रातके अन्धकारमें सदेह अवतीर्ण हुई उषाके समान मंजरीको देखकर, बेचारा मणिभद्र दंग रह गया और मुँह बाकर देखने लगा ।

" रुद्रदत्त, ये ही तुम्हारे मित्र मणिभद्र हैं ? " ज़रा हँसकर मधुरतासे मंजरीने कहा । मंजरीकी आँखोंमें इस समय भयंकर मोहिनी थी । ऐसी नयन-रश्मियोंको देव और दानव भी नहीं सहन कर सकते, तब बेचारे मणिभद्रकी क्या बिसात ?

" बहन, " रुद्रदत्तने कहा, " मणिभद्र राज-गुरुका शिष्य है । "

" अच्छा ? परन्तु राज-गुरुके शिष्य होकर क्या जूनागढ़के नामपर पानी फेरना है ? " मंजरीने हँसकर पूछा ।

मणिभद्र राजगुरुका शिष्य था, परन्तु वेदाभ्यासकी अपेक्षा भोजन बनाने और खानेमें अधिक प्रवीण था । यह प्रश्न सुनकर उसके आश्चर्यका पार न रहा ।

" सो कैसे ? " रुद्रदत्तने पूछा ।

" कोई अन्य देशका विद्वान् तुम्हारी मसखरी करे और तुम उत्तर न दो ? "

" परन्तु बहन, मुझे संस्कृत आती हो, तब न ! "

" ओहो ! इतनी-सी बात है ? " मंजरीने कहा ।

" इतनी-सी ही क्यों ? "

" इस तरह कहीं परदेशीके आगे झुका जा सकता है ? इन शब्दोंके द्वारा वह क्या कहना चाहता है, कुछ खबर है ? "

" नहीं । "

" वह कहता है कि ' कैलासकी भाँति मेरी विद्वत्ताको कोई नही पा सकता और कालाग्निकी भाँति अन्य देशीय श्रोत्रियोंको मैं जलाकर भस्म कर सकता हूँ । ' ऐसा अपमान सहते हो ? "

" परन्तु जब मैं नहीं जानता, तब क्या किया जाय ? "

" इससे क्या हुआ, यह तो बताओ कि वह तुम्हें मिला कहाँ था ? "

मणिभद्रके मुखपर भय छा गया । उसने चारों ओर देखा और जैसे उसका गला रुँध गया ।

" राज-महलमें होगा । राज-गुरुके शिष्यको विद्वान् और कहाँ मिलेगा ?"

रुद्रदत्त मंजरीके प्रश्नका गूढ अर्थ कुछ न समझ सका; परन्तु उसका हेतु चाहे जो हो, उसे पार पाड़नेके लिए सहायता करनेको उसने कहा, "मणिभद्र, घबरा क्या रहे हो ? पराये देशका विद्वान् कहीं छिपा रह सकता है ? "

" नहीं—नहीं—परन्तु—"

" तब तो वह कोई बन्दी होगा, क्यों ? मंजरीने धीरे-से पूछा ।

मणिभद्र चौंका और मुँह बाकर देखने लगा । मंजरीने सोचा कि कहीं यह डर न जाय, अतएव उसने बातकी धारा बदल दी, " चाहे जो हो, परन्तु तुम्हें उसे झुकाना तो चाहिए ही । "

" सच बात है । " रुद्रदत्त भी उसे ताव देने लगा, " नहीं तो कहीं वह अपने देश जाकर कहेगा कि जूनागढ़में सब मणिभद्रके ही समान हैं । "

" क्यों, मणिभद्र कैसे हैं ? " मंजरीने पूछा, " हाँ, एक काम करो । "

" क्या ? "

" उस पंडितको एक श्लोकमें उत्तर दो ।

" यही तो दुख है । " कपालपर हाथ रखकर, निःश्वास छोड़कर मणिभद्रने कहा, " बारह-वर्षोंसे गुरुकी चरण-सेवा कर रहा हूँ, परन्तु पूरा एक श्लोक भी कण्ठ नहीं हुआ । "

मंजरीने क्षण-भर विचार किया और कहा, " चिन्ता नहीं, एक मार्ग बताती हूँ । "

" कौन्-सां ? "

" तुम जाकर यों कहो कि ' अरे अभिमानी, जूनागढ़की तो लड़कियाँ भी कवि-कुल-शिरोमणि हैं। पहले उन्हें तो जीत ले, तब जूनागढ़ी पंडितोंकी बात करना '। "

" हाँ, यह तो कह दूँगा। "

" और देखो, यदि पाण्डित्यका बहुत आडम्बर करे, तो फिर ले चलना मुझे। "

" आपको ? "

" हाँ, मुझे। "

" परन्तु जहाँ वह पंडित है, वहाँ तो जाया नहीं जा सकता। " मणिभद्रने धीरे-से कहा।

" तुम तो जाया करते हो ? "

" हाँ। "

" तब एक दिन तुम्हारे बदले मैं जाऊँगी। "

" यह कहीं बन सकता है ? " मणिभद्रने घबराते हुए कहा।

" क्यों नहीं बन सकता ? " आकर्षक हास्य-बाण छोड़ते हुए मंजरीने कहा, " तब क्या हम विद्वत्तामें हार जायँगे ? और यदि वह हारा, तो यश सब तुमको ही मिलेगा। क्यों, ठीक है न रुद्रदत्त ? "

" हाँ, सो तो है ही। "

" अच्छा, देखा जायगा। पहले इतना तो कह देखूँ। "

" परन्तु वह क्या कहता है, सो मुझसे अवश्य कहना। भला ! "

" हाँ, कल सबेरे ही। "

" अच्छा। "

जिस प्रकार बालक पहली चोरीमें सफल होता है, जिस प्रकार तैरनेवाला पहली बार तैरकर पार उतर जाता है, उसी प्रकार मंजरी अपने बुद्धि-कौशलसे हर्षित होती हुई ऊपर आई। झुठाईसे उसने मणिभद्रसे काम निकाल लिया, इससे वह लजाई नहीं, उलटी हर्षित हुई। उसका गर्व बढ़ गया और काकसे मिलनेकी उठती हुई आशाके आश्रयमें वह सो गई। नींदमें भी वह काकसे मिलनेके स्वप्न देखने लगी।

प्रातःकाल वह उठी। मणिभद्र कब आयेगा, आयेगा या नहीं, वह परदेशी विद्वान् काक होगा या कोई और, काक होगा, तो संदेशको समझ लेगा या नहीं—ऐसे ऐसे अनेक तर्क-वितर्क उसके मनमें उठने लगे। सोमभट भी इस समय उसके पास नहीं था कि उसे भेजकर खोज कराये और वह तो एक अनुभवहीन बालिका है। वह अनेक प्रकारकी चिन्तायें करने लगी।

प्रणयीके सन्देशकी प्रतीक्षाकी वेदना, त्रिविध तापसे भी अधिक दुःसह होती है। उसी दुःसह वेदनाको मंजरी सहने लगी। जरा-सी पैरोंकी आहट होती, पत्ते खड़खड़ा उठते, द्वार बन्द होता कि वह चौंक पड़ती, हृदय धड़क उठता, कान खड़े हो जाते। वह उठकर द्वारपर जाती, मणिभद्रके न आनेसे निराश होती, ऐसा लगता कि हृदयकी धड़कन बन्द हो जायगी और कल्पना-शक्ति न करने योग्य विचार करने लगती; परन्तु जब निराश होकर लौट आती तो वेदना और बढ़ जाती। चबूतरेपर खड़े रहकर मणिभद्रको न देखनेकी अपेक्षा, उसके आनेकी प्रतीक्षा करना अधिक कष्टदायक था। इन क्षणोंमें सूर्य और चन्द्र उसे आकाशमें स्थिर हो गये प्रतीत होते, श्वास रुँध गया मालूम होता, प्राण त्रिशंकुकी भाँति अधर लटकतेसे लगते, उसकी रग-रग व्याकुल होने लगती। प्राणोंको निकाल डालनेके सिवा उसे और कोई उपाय दिखाई नहीं पड़ता।

रुद्रदत्त शुष्क ब्रह्मचारी था; फिर भी मंजरीको देखकर, उसका दास बन गया था। वह इतना जानता था कि वह असहाय है, दुखी है, मुर्झा रही है। जो आर्द्रता, तलभागमें थी, वह अब ऊपर आ गई। इस दुखी बालाकी सहायताके लिए उसका हृदय तड़पने लगा। उसे स्पष्ट प्रतीत हो गया था कि मंजरीने मणिभद्रको जो पानी चढ़ाया है, वह सकारण है और इससे मणिभद्रके लौटनेकी वह प्रतीक्षा करने लगा। नित्यकर्मसे समय चुराकर, वह भी बाहर चक्कर काट आता। जप करते हुए भी वह कान लगाये रहता। ध्यान करते हुए भी उसकी दृष्टि, होठ बन्द किये फिरती हुई मंजरीकी ओर चली जाती।

कोई आया। रुद्रदत्तको मणिभद्रका पग-रव प्रतीत हुआ और वह जप छोड़कर बाहर दौड़ पड़ा।

मणिभद्र जल्दीमें आया था। रुद्रदत्त उसे अन्दर बाड़ेमें मंजरीके पास ले गया।

मंजरी पानी खींच रही थी। उसके सिरसे साड़ी खिसक गई थी। उसके जूड़े और गर्दनकी शोभा, ऊपर-नीचे आ जा रहे हाथोंका सौन्दर्य, और उनसे आँख मिचौनी खेलते हुए स्तनोंकी अपूर्वता—यह सब दोनों आनेवालोंकी दृष्टिमें पड़ा। दोनों मात हो गये। विनयशील रुद्रदत्तने तो गुरुकी दौहित्रीके रूपके आगे आँखें नत कर लीं, पर अगड़बंब मणिभद्र बदहवास-सा आँखें फाड़कर देखने लगा।

मंजरी, उनकी आहट पाकर मुड़ी और साड़ी सिरपर ठीक करके आगे आई। आशासे, अपेक्षासे उसका मुख चमक उठा।

" क्यों मणिभद्र ? "

" हो आया। "

" क्या कहा ? "

" वह तो बड़ा छँटा हुआ है। बताऊँ ? मैं यहाँसे गया, घड़ा लिया, पानी भरा—"

" फिर ? " मंजरीने अधीरतासे पूछा।

" फिर मैं वहाँ पहुँचा। वह भालूके समान पड़ा था, कोनेमें। "

" अच्छा ? "

" उसने मेरी ओर तो देखा भी नहीं। "

" फिर क्या किया ? "

" मैं क्या उसे छोड़नेवाला था ? मैंने कहा कि रोज़ तो वह कैलासका जप किया करते हो, आज क्यों नहीं करते ? "

" अच्छा फिर ? "

" मैंने ज्यों ही यह कहा, त्यों ही वह बैठ गया और मेरी ओर आँखें निकालने लगा। सच पूछिए तो मैं डर गया। कैसी चमक रही थीं उसकी आँखें ! " हाथपर हाथ मलकर मणिभद्रने कहा, " मैं तो ऐसा घबराया कि घड़ा रखने गया कि गिरकर फूट गया और वह खिलखिलाकर हँस पड़ा। "

" फिर उसने क्या कहा ? " मंजरीने ज़रा अकुलाकर पूछा।

" मुझसे बोला कि देखो तुमने यह कैलास नहीं सुना, यह उसीका प्रताप है। यह कहकर वह फिर हँसने लगा। इससे मुझमें साहस आ गया। फिर मैंने कहा। "

" क्या ? "

" कि रोज़ अपनी पंडिताई क्या बघारा करते हो ? हमारे जूनागढ़की छोकरियोंको हरा दो, तब जानें । "

" तब उसने क्या कहा ? " मंजरीने दम साधकर पूछा ।

" मानोगी ? " उसने निःश्वास छोड़कर कहा । " अच्छा क्या कहा ? बताओ, देखें ? "

" ये जानती होतीं, तो तुमसे क्यों पूछतीं ? " रुद्रदत्तने चिढ़कर कहा ।

" वह बोला कि बापरे सबको तो हरा दिया, परन्तु जूनागढ़की छोकरी नहीं हारी । और सिर हिलाने लगा । " कहकर मणिभद्र हँस पड़ा ।

इन शब्दोंका मंजरीपर कुछ और ही प्रभाव हुआ । होठ चबाकर वह पीछे हट गई । उसका शरीर काँपने लगा । क्या वह काक ही है ? उसने अनजानेमें छातीपर हाथ दबा लिया ।

रुद्रदत्त यह परिवर्त्तन देखने लगा, " फिर ? " उसने पूछा ।

" फिर मैंने भी ज़रा गप लड़ाई । मैंने कहा कि हमारे यहाँकी ब्राह्मण-कन्याएँ तुमको बातकी बातमें हरा सकती हैं । वे बड़ी-बड़ी कविकुल-शिरोमणियाँ हैं । "

मंजरी और रुद्रदत्त चुपचाप सुनते रहे ।

" मैंने ज्यों ही यह कहा कि वह चौंक पड़ा और आँखें संकुचित करके मेरी ओर देखने लगा । "

मंजरीका हृदय उमड़ आया । कठिनाईको हल करनेका विचार करते समय काकको ऐसा ही करनेकी आदत थी ।

मणिभद्र कहने लगा, " वह एकदम धीमे स्वरमें बोला, ' बैठो, बैठो महाराज, ऐसी एक छोकरी तो बतलाओ । ' मैंने भी कहा, ' चाहिए जितनी । ' इतनेहीमें मुझे गुरु महाराजकी आज्ञा याद आ गई । उन्होंने कहा था कि ' राज-काजकी बातोंमें बहुत मुँह नहीं चलाना चाहिए । ' इसलिए मैं तो चुप हो गया; परन्तु वह बोला, ' भाई, यदि ऐसी कोई हो, तो उससे कहना कि यदि कविकुलशिरोमणि जूनागढ़में है, तो उसका नाथ भी यहाँ बैठा है; आ जाए सामने ! ' कहकर वह मूँछोंपर ताव देने लगा । "

मंजरीको ज़रा भी सन्देह नहीं रह गया । उसका हृदय उछलने लगा ।

" मणिभद्र, इस पंडितका गर्व उतारना चाहिए; नहीं तो हम सबके नामपर बट्टा लग जाएगा।"

" परन्तु वह नाम बिना बट्टेके रहे कैसे ? " मणिभद्रने कहा।

" एक तरहसे रह सकता है।" रुद्रदत्त मंजरीकी इच्छाको कुछ परख गया था, बोला, " मंजरी बहनको उससे मिला दो।"

मणिभद्र घबरा गया, " यह कहीं हो सकता है !"

" क्यों नहीं हो सकता ? " मंजरीने पूछा, " वह पंडित कैदमें है, यही बात है न ?"

" परन्तु बहन, खेंगारजी मेरी गर्दन उड़ा देंगे।"

" परन्तु खेंगारजीसे कहने कौन जाएगा ? " मंजरीने कहा, " जिस प्रकार तुम घड़ा लेकर पानी देने जाते हो, उसी प्रकार मैं चली जाऊँगी। पाँच ही पलोंमें तो पंडित ठिकाने आ जाएगा।"

" नहीं बहन, " मणिभद्र बोला, " वह नाहरसिंह तुरन्त पहचान लेगा।"

" ओहो ! नाहरसिंह दुर्गपाल ? " रुद्रदत्तने कहा, " वह तो मुझे पहचानता है। तुम एकदम बीमार पड़ जाओ, तो मंजरी बहन जा सकती हैं।"

" परन्तु स्त्री—"

" मैं पुरुष-वेशमें चली जाऊँगी। जब पिताजी जीवित थे, तब मैं उनके शिष्योंके साथ अनेक बार इस वेशमें फिरा करती थी।"

" परन्तु बहन, " हास्यजनक घबराहटसे मणिभद्र बोला, " इस हाँसीमें फाँसी हो जाय, तो ? "

" होगा क्या ? तुम्हें खबर है, मेरे पति खेंगारजीके इष्ट-मित्रोंमें हैं ? तुम तो यों ही व्यर्थ घबरा रहे हो। वे भले ही जान जायँ, हम उनके क़ैदीको भगा थोड़े ही रहे हैं।"

" परन्तु--"

" उसे कैद कहाँ किया है ? "

" नीमवाले कुएँके पास तहखानेमें। परन्तु यह बात—"

" तुम किसलिए घबरा रहे हो ? " रुद्रदत्तने कहा, " तुम सन्ध्याको यहाँ आना, तब विचार करेंगे।"

" अच्छा, ठीक है।" मणिभद्रने वहाँसे जानेकी इच्छा प्रकट की।

" अच्छा, मणिभद्र " रुद्रदत्तने कहा, " आज मेरी जन्म-तिथि है। सन्ध्याको आना। आज गुरु महाराजने मिष्टान्न बनानेकी आज्ञा दे दी है। "

" ऐं ! " मोदकका प्रख्यात प्रेमी उलझन दूर होते ही बोला।

" हाँ, उस समय हम लोग बातचीत करेंगे; परन्तु देखना विलम्ब न हो जाय। "

" नहीं होगा। " कहकर मणिभद्र चला गया। कुछ देर मंजरी और रुद्रदत्त, एक दूसरेकी ओर देखते रहे।

" रुद्रदत्त, यदि यह नहीं आया, तो ? "

" घबराओ नहीं। मिष्टान्नके लिए यह दस योजन जा सकता है। " रुद्रदत्तने धीरे-से पूछा, " क्यों बहन, यह कैदी कौन, काकभट हैं ? "

मंजरी इस ब्राह्मणकी पैनी बुद्धि देखकर हँस पड़ी, " हाँ, तुमने कैसे जाना ? "

रुद्रदत्त हँसा, " बहन, इन विष्णुका भाग्य धन्य है। "

" किस बातमें ? "

" ऐसी लक्ष्मी उन्होंने पाई इसमें। "

उत्तरमें मंजरी हँस पड़ी। इस हास्यमें हृदयके आनन्दकी टंकार थी।

११—मोदक-भक्त

रुद्रदत्त और मणिभद्रके जानेपर जब मंजरी अकेली रह गई, तब उसकी घबराहटका पार न रहा। अभी तक तो उसने जो कुछ किया, वह शान्तिसे घरमें बैठकर किया। उसे अपने मनमें ऐसा प्रतीत हुआ कि जाने अजाने काकने ऐसे समय जो किया होता, वह भी उसीका अनुकरण कर रही है। परन्तु अब प्रसंग दूसरा था। उसे भयंकर अनुभवोंके समुद्रमें कूदना था। उसे इस समुद्रका अनुभव नहीं था। उसकी तरंगोंको हटाकर तैरना नहीं आता था। साथमें कोई कुशल तैरनेवाला भी उसकी सहायताको न था। वह अकेली थी, अनुभव-हीन थी, स्त्री थी और रातके समय अपरिचित गाँवमें चाहे जिसके हाथ चढ़ जानेकी आशंका करती थी। क्षण-भरके लिए उसका मन डगमगाया, साहस हाथसे निकल गया; परन्तु तुरन्त ही उसे अपने आदर्शोंका स्मरण हो आया। कैसे पतिको वरण करनेकी

उसकी महेच्छा थी, यह भी याद आया। काकके अद्वितीय पराक्रम, उसकी दृष्टिके सामने आ गये। वह काककी तुलना करनेकी धृष्ठता कर रही थी। अब वह उसकी कैसे तुलना करेगी? और वह न जाय, काकको कुछ हो जाय— क्या हो जाय, यह कैसे कहा जा सकता है?—और यदि सदाके लिए उसे वियोग सहना पड़े, तो? क्या इसके पहले वह ज़रा साहस न करेगी? ज़रा दुख न उठाएगी? अपनी कायरतापर तिरस्कारकी दृष्टि डालकर, वह काकके पराक्रमोंको याद करने लगी और उसका अनुकरण करनेको तैयार हो गई। उसका मन फिर डुलमुल होने लगा, फिर उसने विचार किया, यदि वह निर्विघ्न काकसे मिले और छुड़ा लाये तो? उसकी रग-रगमें बिजली दौड़ गई। उस बिजलीने इस प्रश्नका निर्णय कर दिया। या तो काकसे भेंट करनी चाहिए, नहीं तो फिर यमराजसे।

सन्ध्याको वह अधीर हो गई; परन्तु रुद्रदत्तने उसे विश्वास दिलाया। वह मणिभद्रको भलीभाँति पहचानता था। सायंकाल होते ही वे महाशय, मिष्टान्नकी आराधनाके लिए तरसती हुई जीभको आश्वासन देनेके लिए आ पहुँचे और मंजरी तथा रुद्रदत्तके द्वारा की हुई तैयारीको देखकर, उनकी अन्तरात्मा प्रसन्नताके शिखरपर जा पहुँची।

आचार्य जटानाथको इस समय भोजन नहीं करना था और चतुराईसे रुद्रदत्तने अन्य शिष्योंको भी वहाँसे हटा दिया था; अतएव मंजरी भोजन परोसने लगी और रुद्रदत्त तथा मणिभद्र खाने लगे।

मानिनीकी मोहिनी साधारणतया कुछ निराली ही होती है। जब वह रिझाती है, तब दुर्जेय हो जाती है और जब परोसकर खिलाती है, तब तो फिर कहना ही क्या है? मणिभद्र अर्ध अचेत हो गया। मंजरीके आग्रहके आगे मिष्टान्नका स्वाद भी वह भूल गया। नवयौवनमाती मंजरीके हाव-भावोंके आगे, उसे यह भी ज्ञान नहीं रहा कि पेटमें जगह भी है या नहीं। ब्राह्मणवर्य मणिभद्रके साधे हुए जीवन-योगका एक परम ध्येय था— स्वादिष्ठ मोदक। इस समय योगेश्वर योग-भ्रष्ट हो गया—थालीमें लड्डू थे, फिर भी वह मंजरीकी ओर देख रहा था।

मंजरीको भी इस समय अपने विकसित यौवनके प्रबल जादूका भान हुआ और अपनी अद्वितीय शक्तिका ज्ञान पाये हुए महारथीके मदसे वह

अपने प्रभावकी परीक्षा करने लगी। उसने रुद्रदत्तकी सहायतासे मणिभद्रको मोहान्ध कर दिया। बेचारा मणिभद्र लट्टू हो गया।

" मणिभद्र, अब मैं इसी समय जाऊँगी।"

" कहाँ ? नहीं ! नहीं ! " मणिभद्रने पेटपर हाथ फेरते हुए कहा।

" मणिभद्र, तुम इतने हठी कबसे हो गये ? " रुद्रदत्तने कहा, " यह ग्यारह लड्डू खाकर अब तुम नीमवाले कुएँपर जाओगे ? एक घड़ा पानी रख आनेके लिए इतनी झंझट ? "

" बापरे ! " निराशापूर्ण स्वरमें मणिभद्रने कहा, " कहीं खेंगारजी जान जायँ, तो गला ही घोंट डालें।"

" उनसे कौन कहने जायगा ? और वह हारा हुआ पंडित क्यों किसीसे कुछ कहेगा ? " मंजरीने कहा, " मणिभद्रजी, इतना मान लो।"

मणिभद्र हाँ-ना करता हुआ उठा और पान खानेको जा बैठा। पान खाते-खाते ग्यारह लड्डुओंका नशा मस्तिष्कपर जा पहुँचा। दूर बैठे खेंगा-रजीका डर कम हो गया और अपने पैरों चलकर नीमवाले कुएँपर जानेका बढ़ गया। उसके पैर चिपक गये और इस समय चलने जैसा महान् पराक्रम करनेके विरुद्ध शरीरने विद्रोह कर दिया। अपनी चाल और दृष्टिपातसे मोह-जाल फैलाते हुए वह रतिके समान सुन्दरी याचना कर रही थी। धीरे-धीरे मणिभद्रको प्रतीत होने लगा कि आँखोंने भी भिंचना और शरीरके साथ मिलकर सत्याग्रह करना आरम्भ कर दिया है। उसने भी हठ छोड़ दी। अभी दो ही चार घड़ीमें तो रुद्रदत्त और मंजरी घड़ा रखकर लौट आयेंगे और इतनी देरमें वह जरा विश्राम कर लेगा। यह विचार आते ही उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे सारी सृष्टि विमानपर चढ़कर आकाश-विहार करनेको जा रही हो। मणिभद्रने निःश्वास छोड़ा, दीवारसे सिर टिकाया और खीझे हुए हाथीकी भाँति नाकसे फुंकार छोड़ना आरम्भ कर दिया।

" चलो, इससे तो निश्चिन्त हो गये।"

" अफ़ीम अधिक तो नहीं डाल दी थी ? " रुद्रदत्तने जरा चिन्तातुर स्वरमें पूछा।

" नहीं भैया, जितनी तुमने दी थी, उससे आधी। अच्छा, अब मैं अपने कपड़े बदल आऊँ।"

कुछ ही देरमें एक जटा धारण किये, दुबला-पतला, परन्तु इठलाती चालसे चलता हुआ, मोहिनी डालनेवाला बाल-ब्रह्मचारी, कन्धेपर घड़ा रखे रुद्रदत्तके साथ नीमवाले कुएँपर जानेको रवाना हुआ। यह अच्छा हुआ कि अँधेरा हो रहा था, नहीं तो इस बाल-ब्रह्मचारीकी कांतिको देखकर, जूनागढ़की सुन्दरियाँ पागल हो जातीं।

१२—छुटकारा

रुद्रदत्त और मंजरी, शीघ्रतासे नीमवाले कुएँपर जा पहुँचे। कुएँके पासवाले छोटे महादेवके मन्दिरमें चार-पाँच सैनिक पड़े हुए थे। उनमेंसे एकने हँसकर पूछा, "क्यों, आज वे मणिभद्र महाराज नहीं आये ?"

"उनकी तबियत ठीक नहीं है।" आगे आकर रुद्रदत्तने कहा।

"तुम तो आचार्य जटानाथके शिष्य हो ?" एक दूसरे सैनिकने पूछा।

"हाँ। यही मार्ग है ?"

"हाँ।"

मंजरी और रुद्रदत्त, दुर्गपर चढ़नेको बताई हुई पत्थरकी संकीर्ण सीढ़ियोंसे ऊपर चढ़े। ऊपर, नाहरसिंह चैनसे लेटा हुआ था। वह चौंककर बैठ गया। सन्ध्याका मन्द प्रकाश अन्धकारमें लय होने लगा।

"कौन मणिभद्र ?" उसने पूछा।

"नहीं दुर्गपालजी, यह तो मैं रुद्रदत्त हूँ।"

"क्यों ?" अपनी ज़रा दूर पड़ी हुई तलवारको पास खींचते हुए दुर्गपालने कहा।

"मणिभद्र बीमार हो गया है; अतएव पानीका घड़ा रखनेको मैं आया हूँ—मैं रुद्रदत्त।"

"अजी वाह महाराज ! यह काम कहीं आपको शोभा देता है ?" दुर्गपाल सम्मानार्थ खड़ा हो गया और बोला।

"नहीं जी, यह एक दूसरा शिष्य घड़ा लाया है। बेचारा बिल्कुल नया है; अतएव मार्ग दिखानेको मैं साथ चला आया हूँ।"

नाहरसिंहने नये शिष्यकी ओर लापरवाहीसे दृष्टिपात किया।

"आज बहुत देर हो गई।" कहकर वह कुछ आगे बढ़ा और उसने झुककर एक लोहेका कड़ा पकड़कर ज़ोरसे खींचा। कड़ा खींचते ही जमीनसे सटा हुआ एक पत्थर ऊपर खिंच आया। पत्थरके ऊपर आते ही नीचे जानेको सकड़ी सीढ़ियाँ दिखलाई पड़ने लगीं। उनकी ओर संकेत करके नाहरसिंहने मंजरीसे कहा, "महाराज, जल्दी करो और भटजीसे पूछ लेना, किसी चीज़की आवश्यकता तो नहीं है?"

मंजरी चुपचाप सीढ़ियाँ उतरने लगी।

बहुत वर्षोंसे जूनागढ़ लड़ाईके लिए सदा तैयार रहा करता था और दुर्गकी रक्षा करनेको अनेक दुर्गपाल दुर्गके भिन्न भिन्न भागोंमें पड़े रहते थे। इसी जगह एक कच्ची झोपड़ी थी, दुर्गपाल नाहरसिंह उसमें रहा करता था। दुर्गकी नीवमें बने हुए एक छोटे-से कारागृहमें काकको क़ैद किया गया था। इस कारागृहका नाहरसिंहको ही पता था। वह बहुत संकीर्ण और छोटा था और कोटके सूराखोंसे हवा और प्रकाश उसमें आया करते थे।

मंजरी, घबराते-घबराते कोठरीमें उतरी। वह जो साहस करके यहाँ आई थी, उसकी अपेक्षा काकसे मिलना उसे अधिक भयजनक ज्ञात हुआ। ज्यों ही वह सीढ़ियोंसे उतरी, कि एक परिचित स्वरने पूछा, "कौन है?"

मंजरीके हृदयने छलाँग भरी। उसके हाथसे घड़ा गिरते-गिरते बच गया।

वहाँ अँधेरा था; मंजरीको ऐसा ज्ञात हुआ कि जैसे सावधान काक एकदम खड़ा हो गया है; परन्तु वह कुछ बोल न सकी। उसका अंग-अंग क्षोभसे, भयसे, भावनासे काँप रहा था।

"कौन है?" फिरसे पूछकर काकने चकमकसे पलीता सुलगाया। तुरंत जलाये हुए पलीतेके प्रकाशमें केवल इतना ही प्रतीत हुआ कि यह नित्यका पानी लानेवाला नहीं है।

"खड़े क्यों रह गये? उस कोनेमें घड़ा रख दो।"

मंजरीको घड़ा रखकर भाग जानेकी इच्छा होने लगी; परन्तु अभी समय-सूचकताका कुछ अंश उसमें बाकी था। वह बड़ी कठिनाईसे बोली, "यह तो मैं—"

यह तीन अक्षरोंका हृदय-भेदक उच्चारण काकके कानोंमें पड़ते ही वह चौंक पड़ा। पलीतेको ऊपर किया और छलांग मारकर मंजरीके पास आ

पहुँचा। घबराहटके मारे मंजरीके हाथसे घड़ा गिर पड़ा, फूट गया और वहाँ पानी ही पानी हो गया।

काकने आकर मंजरीका हाथ खींचा, "कौन?" उसकी आवाज गद्गद् हो गई, उसमें एक निराला ही स्वर था।

"मंजरी।" मंजरीने कहा।

"मंजरी? तुम?"

"हाँ।"

"वह ब्राह्मण जब अपनी होशयारी दिखला गया, तब मुझे लगा कि यह तुम्हारा और सोमभट्टका ही कारस्तान है।"

मंजरी खिन्न हो गई। सोमभट्टको मिले हुए इस यशपर उसे ईर्ष्या हो आई।

"सोमभट्ट कहाँ है?"

"उन्हें तो तुम्हें खोजनेके लिए जूनागढ़से बाहर भेजा है।"

"तुम कैसे आई।"

"अपने आप नानाके शिष्यको साथ लेकर।"

कुछ देर दोनों चुप रहे। मंजरी काकके इन स्वस्थ प्रश्नोंसे अकुला-सी गई और उसने काकके हाथसे अपना हाथ छुड़ा लिया। काक सावधान हो गया। मंजरीका अभिमान उसे याद आया और आवेशको दबाकर वह अन्यमनस्क-सा हो गया। मंजरीने यह अन्यमनस्कता देखकर होठ चबा लिये। उसका गर्व फिर लौट आया और साथ ही स्वस्थता भी आ गई।

"भट्टराज, छूटना चाहते हो, तो यही मौका है।"

"किस प्रकार?"

"दुर्गपालने मुझे भली भाँति नहीं देखा। तुम मेरा यह कंबल ओढ़ लो।"

"और तुम्हारा क्या होगा?"

"मेरा क्या होगा? मैं यहीं रहूँगी।" दृढ़तासे मंजरीने कहा।

काकका हृदय स्नेह-सिक्त हो गया; परन्तु तुरन्त ही मंजरीके प्रभावसे वह सिक्तता सूख गई।

"तुम्हें खबर नहीं है। आठ-दस दिनोंमें तो रा' मुझे छोड़ ही देंगे और तुम मेरे बदले यहाँ रहोगी, तो रा' तुम्हारे प्राण ले लेंगे।"

"तब—"

" तुम लौट जाओ । "

मंजरी पलटी और उसने लौट जानेका विचार किया । वह निराश हो गई । काकके शान्त प्रश्नोंने उसके आशाजीवी हृदयको भूखे मारा था ।

" मंजरी ! " अचानक काकने पूछा ।

" क्यों ? "

" ऊपर कितने आदमी हैं ? "

" एक दुर्गपाल और दूसरा वह शिष्य । "

" दुर्गके ऊपर और कोई नहीं है ? "

" नहीं, बिल्कुल निर्जन है । "

" तब चिन्ता नहीं । चलो, जय सोमनाथ ! "

काक अपनी स्वाभाविक शीघ्रतासे एक निश्चयपर आ गया ।

" अपना कंबल मुझे दो और लो यह मेरा साफा । चाहे तो ओढ़ लो । " कहकर अँधेरेमें भी बड़ी चपलता और दृढ़तासे कपड़ोंको लिया दिया, और वह तेज़ीसे सीढ़ियोंपर चढ़ने लगा । मंजरी समझ न सकी कि काक क्या करना चाहता है; परन्तु उसका स्वामित्व उसके हृदयपर ऐसा बैठ गया था कि वह चुपचाप उसके पीछे पीछे जाने लगी ।

काक सीढ़ियोंपर चढ़कर ऊपर पहुँचा और सिर बाहर निकालकर चारों ओर देखने लगा । अँधेरेमें दुर्गके एक किनारे दो जनें खड़े हुए दिखलाई दिये । एक ऊँचे क़दका था और दूसरा मझोले क़दका । काकने तुरन्त पहचान लिया कि ऊँचे क़दवाला नाहरसिंह है । उसने दूरीको मन ही मन नापा और छलाँग मारकर आक्रमण कर दिया ।

आँखें मुँदीं और खुलीं कि नाहरसिंह दुर्गपालने औंधे सिर दुर्गसे बाहर, नीचे खाड़ीकी ओर, प्राण-नाशक यात्रा आरम्भ कर दी । उसकी चीखको बाहरकी हवा उड़ा ले गई । घबराये हुए रुद्रदत्तकी चीख़ काकने मजबूत हाथोंसे रोक दी । मंजरी भी दौड़ी हुई उसके पीछे आ गई ।

" मंजरी, ये ही तुम्हारे नानाके शिष्य हैं ? "

" हाँ । रुद्रदत्त, चिल्लाना मत । ये तो भटराज हैं । "

रुद्रदत्त कुछ समझ न सका । नाहरसिंहको गिरता देखकर घबरा गया ।

काकने हाथ ज़रा ढीला किया, " महाराज, मैं तुम्हारा बाल भी बाँका न

करूँगा; परन्तु सावधान! एक अक्षर भी न बोलना। बोलोगे, तो तुम भी—" कहकर नाहरसिंह जिस मार्गसे गया था, संकेतसे वही दिखा दिया। काकने रुद्रदत्तके मुँह परसे हाथ अलग कर लिया।

"मंजरी, अब क्या किया जाय?"

"चलो, नानाजीके यहाँ।"

काक तिरस्कारसे हँस पड़ा, "अब जूनागढ़में एक क्षण भी मुझसे नहीं रहा जा सकता। खबर लग जाय, तो प्राणोंसे हाथ धोना पड़े।"

"तब?" मंजरी भी उलझनमें पड़ गई।

"रुद्रदत्तजी," काकने पूछा, "कोई भागनेका मार्ग है? नहीं तो याद रखना, कल हम सबको यमपुरीकी यात्रा करनी पड़ेगी।"

"हाँ, तुम्हें तो जरूर किसी मार्गका पता होगा?" मंजरीने कहा।

रुद्रदत्त स्वस्थ हुआ और धीरे-से बोला, "भटराज, तुम मुझसे राजद्रोह कराना चाहते हो?" तिरस्कार और दृढ़ताके साथ रुद्रदत्त अदबसे खड़ा हो गया। मंजरीने उसे देखा, उसमें छिपी हुई निश्चलताको परखा और आगे बढ़कर रुद्रदत्तका हाथ थाम लिया, "भाई, तुम्हें साथ रहकर अपनी बहनको वैधव्य प्राप्त कराना है?"

दो प्रश्नोंने दो प्रतापी प्रतिस्पर्धियोंके बाणकी भाँति एक दूसरेको वेध डाला। रुद्रदत्तने मंजरीकी ओर देखा। दो दिनसे उसके शुष्क जीवनमें अचानक ही जो इस सुन्दरीके कारण आर्द्रता आ गई थी वह उमड़ आई। उसने मनकी लगाम ढीली कर दी और वह दंग होकर खड़ा रह गया।

"गुरुजी क्या कहेंगे?"

"कहेंगे कि उनकी कन्याने तो मेरे शरीरका सृजन किया; और आज तुमने—उनके पुत्रने—उस शरीरको जीता रक्खा।" मंजरीने गर्वसे कहा।

रुद्रदत्त पराजित हो गया, "हर हर हर!" उसने भी गुरुके मन्त्रका उच्चारण किया।

"बताओ, है कोई मार्ग?" काकने पूछा।

"हाँ।" रुद्रदत्तने बड़ी कठिनतासे कहा।

"कौन-सा?" मंजरीने आतुरतासे पूछा।

" हम जब छोटे थे और कुश चुनने आया करते थे, तब यहाँके एक मार्गसे कोटपरसे उतरा करते थे। पर वह मार्ग था बड़ा कठिन।"

" इसकी चिन्ता नहीं। "

" अब भी वह है या नहीं, कुछ पता नहीं। "

" चलो देखें। " मंजरीने कहा।

रुद्रदत्त उन्हें दुर्गपर कुछ दूर ले गया। वहाँ अँधेरेमें भटका हुआ एक बकरा खड़ा था। वह उन्हें देखकर कूदता-फाँदता नीचे उतर गया।

" देखा यह ? यही मार्ग है। " रुद्रदत्तने कहा।

तीक्ष्ण दृष्टिसे नीचेकी ओर देखते हुए काकने कहा, " नीचे खाई तो नहीं है ? "

" नहीं, यह मार्ग नीचे सीधा जंगलमें निकल जाता है, परन्तु है बहुत भयंकर। "

" चिन्ता नहीं, मैं अभी क्षण-भरमें देख आता हूँ। कहकर काकने धोतीको ऊपर चढ़ाया और सावधानतासे हाथों और पैरोंके सहारे जिस ओर बकरा गया था, उसी ओर उतरना शुरू कर दिया।

दुर्गका यह भाग एक पहाड़ीपर था; अतएव बिल्कुल सीधा नहीं था, ज़रा ढालू-सा था और ढाल ऐसा था कि कोई मनुष्य वहाँसे नहीं उतर सकता था। फिर भी वहाँ पड़े हुए पत्थरों और उगे हुए पौधोंके सहारे चौपाये चढ़ उतर सकते थे। यह किसीको कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि पहाड़ीकी तलहटीमें ऐसा बीहड़ जंगल है और इस मार्गका मनुष्य उपयोग कर सकता है। मंजरी और रुद्रदत्त घबराये-से खड़े रहे। रुद्रदत्तको यह भी भय हुआ कि कोई सैनिक आ पहुँचे, तो उनका अन्त ही आ जाय; परन्तु नवघन रा'की मृत्युके बाद चौकी-पहरा ज़रा ढीला पड़ गया था और दुर्गपाल नाहरसिंह बहुत ही होशियार और राजाका मानीता समझा जाता था, इससे उसकी सीमामें साधारणतया कोई भी प्रवेश नहीं करता था।

जैसी चपलतासे काक नीचे उतरा था, वैसी ही चपलतासे कुछ देरमें लौट आया।

" ठीक है। उतरा जा सकेगा। "

मंजरीका हृदय चिर गया। अब उसका क्या होगा ? "

" भटजी, परन्तु ज़रा सावधान रहना। यहाँ हिंसक जानवरोंका बड़ा भय है।" रुद्रदत्तने कहा।

" इतनी बात है न ? तो ठहरो, उसका भी उपाय किये लेता हूँ।" कह कर काक शीघ्रतासे लौटकर गया और कारागृहके सामने पड़ी हुई नारसिंहकी ढाल-तलवार उठा लाया।

उसे चिन्ता हुई और वह ठिठक गया। मंजरीको यहाँ छोड़कर कैसे चला जाऊँ ? उसे ऐसे भयंकर मार्गसे चलनेके लिए भी कैसे कहूँ ? और चलनेके लिए कहनेपर भी यदि अभिमानिनी मंजरी तुरन्त अस्वीकार कर दे, तो उसके गौरवकी रक्षा कैसे हो ? वह अनिश्चित-सा होकर खड़ा रह गया।

मंजरीका हृदय भी धड़क उठा। वह लौटकर कैसे जाय ? और काकके बिना क्षणभर भी कैसे जिए ? और उसकी इच्छा न हो, तो नाक कटाकर साथ चलनेके लिए कहे भी कैसे ? हाथसे हाथको मरोड़कर, घबड़ाहटसे अचेत-सी अवस्थामें वह चुप खड़ी रही।

काकने क्षोभसे चारों ओर देखा, " महाराज, " खँखार कर गला साफ़ करते हुए वह कहने लगा, " तुम अब—"

" हाँ, मैं जाता हूँ। चलो, बहन ! "

" मैं ? " अचानक मंजरी बोल उठी।

" हाँ, विलम्ब हो रहा है।" रुद्रदत्तने कहा।

" मंजरी, " काकने बड़े प्रयत्नसे क्षोभको दबाकर कहा। अकेले जानेको उसका मन नहीं हो रहा था और अपमानके भयसे मंजरीसे चलनेके लिए भी कहते नहीं बन रहा था। केवल इतना कहा जा सका " तुम—"

मंजरीको पैरोंपर गिरकर प्रार्थना करनेकी इच्छा हो आई; परन्तु गर्व बाधक हो गया। काकको चला जाने दिया जाय, यह असंभव था—वह चला जाय, तो उसके साथ उसका प्राण भी निकलकर जा सकता है, " भटजी ! " वह बोली और उसका स्वर स्वयं उसे ही विचित्र प्रतीत हुआ। उसमें नम्रता थी, अपेक्षा थी, प्रेम था, उपेक्षा थी, हृदयभेदकता भी थी।

उस स्वरने काकपर जादू-सा असर किया। उसके मस्तिष्कपर छाया हुआ तिमिर नष्ट हो गया। उसने जिस पुरानी मंजरीकी कल्पना की थी, उसे

अब नये रूपमें देखा । उसका गर्व अब नहीं रह गया था । वह उसके लिए तड़प रही थी । प्राणोंकी बाज़ी लगाकर उसने उसे छुड़ाया और इस समय वह उसके साथ भयंकर मार्गसे जाना चाहती है । यह ज्ञान होते ही उसकी आँखोंपर छाया हुआ अन्धकार दूर हो गया । उसके हृदयमें अद्भुत प्रेमका झंझावात उठ खड़ा हुआ । उसके कानोंमें हर्षके दुंदुभि बजने लगे । उसका हृदय पागल होकर प्रेम-धुनमें नाचने लगा; परन्तु प्रबल इच्छा-शक्तिकी सहायतासे इस एक क्षणमें अनुभव किये हुए सुख और उत्साहको उसने रोक दिया । मंजरीकी धाक उसपर अब भी थी ।

" यह मार्ग तुम्हें विकट न होगा ? " धीरेसे काकने पूछा।

मंजरीका हृदय उछल पड़ा, "नहीं, इसमें क्या है ? " उसने कहा; परन्तु अपनी असंयतता देखकर, वह गर्वके कारण शान्त हो गई । " मैं यहाँ रहूँ तो कल ही खेंगार मुझे समाप्त कर डालेंगे । "

" तो चलो । " कहकर काकने उसका हाथ पकड़ लिया और जिस हाथको पकड़कर उसने वेदीके चारों ओर चक्कर लगाये थे, उसी हाथको पकड़कर वह दुर्गसे नीचे उतरने लगा ।

" रुद्रदत्त, नानाजीका ध्यान रखना । "

" अच्छा बहन ! " निःश्वास छोड़कर रुद्रदत्तने कहा ।

१३-स्वर्ग चढ़ते हुए या उससे उतरते हुए ?

काकने मंजरीको परख लिया था और अप्राप्य समझे हुए सुखको हाथोंमें आया हुआ देखकर उसके आनन्दका पार न रहा था । मंजरीको छातीसे चिपटा लेनेके लिए उसके हाथ अधीर हो रहे थे; परन्तु उसका सयानपन इस समय भी गया नहीं । मंजरीके स्वभावको वह जानता था और हाथमें आये हुए स्वर्गको अधीरतासे खोना नहीं चाहता था । वह चुपचाप बनावटी ठण्डेपनसे उसे उस विकट मार्गपर ले जाने लगा ।

काकके साथ जानेके हर्षमें मंजरीने पहले उसके ठण्डेपनको नहीं परखा ।

उसके हृदयमें प्रेमके उफान आ रहे थे और उन उफानोंको शमन करनेके लिए वह तत्पर हो गई थी; परन्तु काक तो स्वस्थ और शान्त था।

वह काकके संयमपर और शान्तिपर चिढ़ चली। ऐसे एकान्तमें जब उसकी रग-रग काककी छातीमें छिप जानेको फड़क रही है, उसकी यह दशा ? मंजरीने जीवन-भर किसीकी सेवा नहीं की थी और मणिभद्रके सिवा किसीको रिझानेका प्रयत्न नहीं किया था; अतएव वह नम्रताके साथ उसे भलीभाँति रिझाना नहीं जानती थी। जैसे कोई सम्राज्ञी किसी सेवकके आलससे अधीर होकर क्रोधित हो जाती है, वैसे ही वह भी इस समय क्रोधित हो गई। काकके गुणोंपर रीझकर वह पागल हो गई थी और उसे अपना स्वामित्व अर्पण कर चुकी थी; तो भी उसका स्वभाव तो इस समय अपने स्वरूपको ही प्रकट कर रहा था।

एकाएक पश्चिम दिशासे चन्द्र आकाशपर बढ़ा। अंधकारसे भयंकर बने विश्वको आह्लाद-जनक कौमुदीने प्रकाशमान् कर दिया। जहाँ वे जा रहे थे, वहाँ मार्ग नहीं था, केवल सीधी पहाड़ी थी और आसपास खड़े हुए छोटे-छोटे पेड़ों और इधर-उधर पड़े हुए पत्थरोंकी सहायतासे ही उस मार्गसे उतरा जा सकता था। मार्ग लम्बा था। नीचेकी ओर देखनेपर आँखोंमें अँधेरा-सा छा जाता था। तलहटीमें वृक्षोंके झुंड दिखलाई पड़ते और वहाँसे अनेक वन-पशुओंके भयानक स्वर सुनाई देते। दूरस्थ गिरनार पर्वत आकाशको चूम रहा था और थोड़ी-थोड़ी देरमें उस पर्वतपर रहनेवाले मदोन्मत्त सिंहोंकी गरजकी प्रतिध्वनियाँ चारों ओर गूँज रही थीं।

मंजरी यह देखकर ज़रा घबराई, उसके होठ फीके पड़ गये। काकने देखा कि वह घबरा रही है।

" तुम इस पत्थरपर बैठो, दम ले लो। मैं जरा रास्ता देख आऊँ।"

" कहाँ जा रहे हो ? "

" मैं दस कदम नीचे उतरकर देख आऊँ, फिर तुम्हें ले चलूँगा। "

" अच्छा। "

काक नीचे उतरने लगा और मंजरी चित्तको स्वस्थ करने लगी। उसे घबराना क्यों चाहिए ? उसकी प्रिय सखी चन्द्रिका चारों ओर छिटकी हुई थी। उसके हृदयका नाथ साथ था। अब मौत भी आ जाय, तो क्या

चिन्ता है ? इस विचारने उसे पागल बना दिया। विकट मार्गका भय भूल कर वह प्रेम-पागल हो गई। जीवन और भय सब उसे अल्प-से मालूम होने लगे। केवल काकके गलेसे लिपट जाना ही उसे सर्वश्रेष्ठ दिखलाई पड़ा।

काक आया; परन्तु वह स्वस्थ था। वह सगी बहन होती, तो भी वह ऐसा भला सयाना बनकर न चलता। होठ चबाकर उसने खून निकाल लिया। "यह भैंसके आगे बीन बजाना है।" वह मन ही मन बुदबुदाई। उसका दम घुटने लगा। उसके नथुने फटने लगे। उसकी आँखोंमें मद था और छाती उछल रही थी।

"चलो, उठो।" काकने शान्तिसे कहा। उसने कल्पना की कि मंजरीके मुखपर जो अशान्ति दिख रही है, वह भय या थकावटसे ही होगी।

"चलो।" कहकर अकुलाती हुई-सी उठकर उसने काकका आगे बढ़ाया हुआ हाथ थाम लिया। हाथ थामते ही उसके प्राण निकल गये। इच्छा हुई कि वह दोनों हाथोंसे काकको कुचल डाले।

कुछ क्षण, कुछ दूरतक वे चुपचाप उतरते गये। मंजरी तो अधिकाधिक अस्वस्थ होने लगी। केवल काककी सावधानतासे ही वे उतर रहे थे।

अचानक मंजरी चीख़ पड़ी। "क्या है ?" घबराकर काकने पूछा।

एक तीक्ष्ण धारवाले पत्थरसे मंजरीका पैर कट गया। पर कटनेकी वेदनाकी अपेक्षा उसके अन्तरकी व्यथा अधिक दुःसह थी। "पैर कट गया !" तिरस्कारसे वह बोली।

"ऐं ! बहुत चोट लग गई ? आओ, उस पत्थरपर बैठ जाओ। देखो, उस झाड़को भलीभाँति थाम लेना।" कहकर काकने उसे एक पत्थरके पास जाकर बिठा दिया।

मंजरी क्रोधमें भरी हुई बैठी और काक नीचे झुककर उसके पैरकी परीक्षा करने लगा। बहते हुए रक्तकी अपेक्षा काकके हाथोंके स्पर्शसे उसे अधिक दुःख होता था और घावकी वेदनासे उसकी सहन-शक्ति और धीरज समाप्त हुए जा रहे थे।

काकने उसका पैर हाथोंमें लिया। धूल झाड़ दी, घाव साफ किया और धीरे-से अपने धोतीके छोरसे एक पट्टी फाड़ ली। मंजरी यह सब नहीं देख

रही थी। वह देख रही थी, ज्वाला-पूर्ण आँखोंसे काकके मुखको। उसने दाँतपर दाँत दबाये–घावके दुःखसे नहीं, परन्तु स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए।

काकने पट्टी बाँधी, फिर धूल झाड़ी और पैरको धीरे-से ज़मीनपर रख दिया।

अब तो हद हो गई। मंजरीने दुखते हुए पैरको उठाकर, काकको लात मार दी। उस समय वह मंजरी नहीं रही, योगमाया बन गई थी।

काक चौंक पड़ा। अपनेको सँभालनेके लिए उसने दोनों ओरके झाड़ोंको थाम लिया और वह मंजरीकी ओर देखने लगा।

" तुम मनुष्य हो, या राक्षस ? "

काक कुछ समझ न सका। वह कठोरतासे मंजरी ओर देखने लगा।

मंजरीने हाथोंसे आँखें ढक लीं और सिरको अपनी गोदमें झुकाकर रो दिया। उसकी भावनाओंका प्रबल प्रवाह आँसुओंके रूपमें बह निकला।

" यह क्या कर रहे हो ? क्या तुम्हें आँखें नहीं हैं ? मुझे क्यों तड़पा रहे हो ? मैं कबसे तरस रही हूँ ? मेरे प्राण निकले जा रहे हैं, तुम्हारे पास हृदय है या नहीं ? कहकर वह हिचकियाँ ले लेकर रोने लगी।

काकने इन शब्दोंको सुना और समझा। उसके संयत हृदयमें भी एक न बुझनेवाली आग लग गई। वह छलाँग भरकर, मंजरीके पास आया, उसे बाँहोंमें ले लिया, बल-पूर्वक उसका मुख ऊँचा किया और उस मुखपर कामदेवकी कलमसे लिखी हुई दिव्य लिपिको उसने पढ़ा। फिर उसे हाथोंमें लिया, छातीसे चिमटा लिया और उसपर चुम्बनोंकी वर्षा कर दी।

मंजरी कुछ न बोली, चुपचाप सुखका सिंचन सहती रही। कुछ देरमें दोनों हाथोंसे उसने काकको तमाचे जड़ दिए। " मेरे प्राण निकल रहे थे, सो नहीं देखते थे ? "

" मेरे प्राण निकलते थे तब तुमने कितनी बार देखा ? उसका कुछ भी नहीं ? "

" मैं तो मूर्ख थी, मूर्ख। " काककी छातीमें मुखको छिपाते हुए मंजरीने किये हुए पापका पश्चात्ताप किया।

" तुम मूर्ख ? संस्कार-हीन तो मैं हूँ। " काकने हँसकर कहा।

" फिर भी तुम्हारी दासी। "

"तभी तो इस समय लात जड़ दी।"

"भटजी, यह पाप हुआ।"

"तो इसका प्रायश्चित्त करो।"

"क्या?"

"यह!" कहकर काकने उसे भुजाओंमें कस लिया।

* * * *

चन्द्रिका अमृतकी वर्षा करने लगी। वनस्पतियोंने हर्ष-नादसे गगनको गुँजा दिया। एक जंगली बिलाव झाड़ीमेंसे निकलकर दूरसे देखता रहा और कुछ देरमें बुद्धिमानीसे सिर हिलाकर मानव-जातिकी मूर्खताकी बातें अपनी स्त्रीसे कहनेके लिए धीरे-धीरे पैर बढ़ाता हुआ चला गया।

१४—उषाने क्या देखा?

प्रातःकाल हुआ। भगवान भास्करकी आराधना करती हुई उषा, आकाश-मार्गसे संचरण करती हुई, इस जंगल पर रुकी और वृक्ष तथा लता-पत्रोंकी घटाओंमेंसे प्रकाशकी रेखाएँ बरसाने लगी।

प्रकृति माताके, इस निरंकुश क्रीड़ा-क्षेत्रपर, उषा नित्य क्षण-भर अधिक ठहरती, वृक्षोंकी घटाओंमें छिपे हुए पक्षियोंको जगाकर, कल्लोल-मंत्रका अर्घ्य स्वीकार करती, घटाओंमेंसे तेजस्वी अंगुलियोंके द्वारा, सोये जगतको दुलारसे उठाती, हिंसक प्राणियोंको भयभीत करके भगाती और निर्दोष मृगोंको खेलने आनेके लिए तरह तरहके इशारे करती।

आज उषा विस्मित होकर चौंकी, विचारमें पड़ गई। इस स्थानपर उसे कुछ अपरिचित वस्तुएँ दिखलाई पड़ीं।

एक नर था और एक नारी। पुरुष-वेशमें पुरुष सिरके नीचे कम्बलका तकिया लगाये चित पड़ा सो रहा था। उसकी छातीपर सिर और कंधे ढाले हुए स्त्री भी सो गई थी। पुरुषका हाथ, स्त्रीकी कमरके आसपास लिपटा था और स्त्रीका हाथ पुरुषके गलेसे लिपटनेकी प्रतीक्षा कर रहा था।

उषाके आश्चर्यका पार न रहा। उसने अनेक दम्पतियोंको प्रभात-कालमें उठाया था। महलोंमें और खेतोंके कोनोंपर बनाई हुई कच्ची झोंपड़ियोंमें

भी ऐसी जोड़ी उसने कभी नहीं देखी थी। दोनों थके हुए थे, उनके हाथ पैर छिल गये थे, वस्त्र फट गये थे; फिर भी स्त्रीके अपूर्व मुखपर लक्ष्मीजीको भी लज्जित करनेवाला सौन्दर्य था। उसके अंग-लालित्यमें ऐसी चित्त-भेदक मोहिनी थी कि वह रम्भामें भी नहीं मिल सकती। उसके नव यौवनसे विकसित मनोहर अंगोंमें, ऐसा नशा चढ़ानेका प्रभाव था, कि जैसा विजया भी नहीं चढ़ा सकती। पुरुषके कपालपर, बृहस्पतिकी बुद्धि दीप्त हो रही थी, मुँदी हुई आँखोंपरसे भी चाणक्यकी चतुराई याद आ जाती, नाककी मरोड़में धनंजयकी महत्त्वाकांक्षा समाई मालूम होती और धनुषके समान निश्चल, परन्तु रस-झरते होठोंमें गोपी-वल्लभ गोवर्धनधारीकी रसिकता प्रतीत होती।

उषा, इन दोनोंको निहारने लगी। उसने स्त्रीके उड़ते हुए कोंपलों जैसे बालोंका स्पर्श किया और पुरुषके तेजस्वी कपालको तेजसे मँढ़ दिया। उसने अनेक जोड़े देखे थे; परन्तु ऐसा एक भी नहीं देखा। वह अपनेको लालित्यका अवतार मानती थी; फिर भी इस स्त्रीकी अपूर्वता देखकर उसे ईर्ष्या हो आई और वह कड़ी दृष्टिसे देखने लगी।

इस कड़ी दृष्टिके तापसे, स्त्रीने इस प्रकार अपने नेत्रोंको धीरे-से खोला, जैसे कमलिनी पँखुड़िएँ खोल रही हो। उसने बेचारी उषाके क्रोधकी परवाह नहीं की, टक लगाकर वह पुरुषकी ओर देखने लगी और दूरसे ही रसाल होठोंको इस प्रकार सिकोड़ा, जैसे चुम्बन कर रही हो। उषाका कोप बढ़ गया, वह कठोर हुई। उत्तरमें सुन्दरीने केवल कपालपर हाथ फेरा और उसकी निर्लज्जताने मर्यादा छोड़ दी—वह नीचे झुकी और पुरुषके गालपर गाल रखकर फिर सो गई। मर्यादाशील और निर्दोषताके अवतार-सी उषा लजाकर चली गई और रथपर आरूढ़ रविराजसे उसने शिकायत की।

अनादिकालके अनुभवी, वृद्धावस्था होते हुए भी दिनोंदिन नवीन बालपन धारण करनेवाले भगवान् सूर्यनारायण यह बात सुनकर हँस पड़े। हँसनेसे उनका मुख लाल हो गया और धीरे-धीरे चलते हुए रथको रोककर, वृक्षोंकी आड़मेंसे वे एकटक देखने लगे। स्त्रीके रूपको देखकर उनके अनुभवी हृदयमें भी नये अंकुर फूट आये। उन्हें अपने अनन्त कार्यक्रमके प्रति तिरस्कार हो आया। उन्हें भी ऐसा लगा कि एक दिनकी फुरसत मिल जाती, तो पृथ्वी-पर अवतार लेकर वे इस रमणीकी सेवा करते।

रमणीको रविराजकी उपस्थितिका भान हुआ और उनके प्रफुल्लित मुखकी ओर वह एकटक देखने लगी। बेचारे सूर्यने निःश्वास छोड़ा। उन्हें अनेक युगों पहले किये हुए विहारोंका स्मरण हो आया।

"आखिर तुम भी उदित हुए!" युवती जरा व्यंग्यसे बुदबुदाई। छोटी-सी नाकके नथुने फुलाकर, वह उलहना देने लगी। सूर्यनारायणने यह सह लिया। ऐसी मनोहारी सुन्दरीका निर्दोष उलहना सुनते हुए उनका हृदय भी आनन्द-सागरमें डोलने लगा।

परन्तु उस सुन्दरीके हृदयमें सूर्यदेवको उलहना देने जितनी कठोरता इस समय नहीं थी। उसने चारों ओर देखा और फिर बुदबुदाई—"कैसा सुन्दर तपोवन है!" फिर वह तुरन्त हँस पड़ी, होठ काट लिये। उसकी आँखोंमें शरारत चमक उठी, "परन्तु इन तपोधनकी समाधि तो टूटती ही नहीं।" वह निश्चल नेत्रोंसे सोये हुए पुरुषके मुखकी ओर देखने लगी। अनेक क्षण बीत गये; परन्तु उसके नेत्रोंकी प्यास नहीं मिटी। दो बार उसने मुखको पास किया और फिर दूर किया, दो बार वह मुखके पास अँगुली ले गई और फिर लौटा लाई। आखिर तबियत न मानी। वह नीचे झुकी और धीरे-से मद-भरे, उमंग-भरे, स्वरमें बोली, "ऋषिराज, यह समाधि कब तोड़ोगे?"

पुरुषने धीरे-से आँखें खोलीं और पलभरके लिए उनमें विस्मयता दिखलाई पड़ी और चली गई। उसने अपने हाथ सुन्दरीके गलेमें डाल दिये।

"यह स्वप्न है, या सत्य?"

"ऋषिराज, आप जैसोंके लिए जो स्वप्न है, मेरे लिए वह सत्य है। देखिए, भगवान भास्कर कबसे उदित हो गये हैं!" मंजरीने मज़ाक़में कहा, "शिष्य-वृन्द कबसे कुश चुनने निकल पड़े हैं और इस तपोवनके वृद्ध हरिण आपकी वन्दनाके लिए आकर खड़े हैं।"

काक इन शब्दोंके द्वारा खड़ी की गई कल्पना-सृष्टिका अनुभव करनेके लिए कुछ देर चुपचाप पड़ा रहा और फिर बोला, "और सुन्दरी, तुम इन्द्रलोक छोड़कर यहाँ किस लिए आई हो?"

पहले आँखकी एक अद्भुत चमकने इस प्रश्नका उत्तर दिया और फिर पत्थरको भी पिघला देनेवाली मधुर हँसी हँसकर वह बोली, "महाराज, आपकी तपस्याने इन्द्रसनको डुला दिया है, इस लिए!"

" मेरा तप भंग करनेके लिए इतना कष्ट ? तो ठीक है । " कहता हुआ काक मंजरीके गलेसे लिपटकर उठ बैठा, " मेरी तपस्या रही एक ओर । तुम आ गईं यही काफी है । " मंजरी और वह दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े । "

" अब क्या किया जाय ? "

" अब कहीं कोई झरना मिल जाय, तो मुँह धोयें और फिर भागें । "

" मेरे तो पैर दुख रहे हैं । "

" चिन्ता नहीं, सेवक तो हाज़िर है ! जब तुम मानसे मुँह फुलाये रहती थीं, तब कितनी बार उठाकर ले गया हूँ ? फिर अब कहीं छुटकारा हो सकता है!"

" तो चलो । " कहकर जिस भयंकर मार्गसे वे उतरकर आ रहे थे, उस ओर डरते डरते मंजरीने दृष्टिपात किया और वह आगे बढ़ने लगी ।

निर्मल प्रभातके मधुर आह्लादका अनुभव करते हुए, स्वच्छन्द फैली हुई वनकी शोभा निहारते हुए, प्रबल प्रेम-बन्धनके भानसे मस्त होकर, वे दोनों मार्ग तय करने लगे । निर्जनता, थकावट, सूर्यका कठिन उत्ताप, इन सबकी उन्हें परवाह नहीं थी । दोनों अज्ञान थे एक गर्वसे, दूसरा व्यवसायसे । इन दोनोंकी नई खुली हुई आँखोंके आगे दिव्य रंगोंसे रँगी हुई एक ऐसी सृष्टि खड़ी हो गई जिसे रस-समाधि साधे हुए विश्वामित्र ही सृजित कर सकते हैं ।

उस सृष्टिमें न भविष्य है, न भूत, केवल वर्त्तमान ही है । वहाँ सदा ही वसन्त रहता है—हृदयोंकी एकतानताका । सदा ही सुशोभित रहता है—सच्चे हृदयोंका शीत-रश्मि (चन्द्रमा) । सदा ही निकलती रहती है अमृतकी धाराएँ उनके नयनोंसे या अधरोंसे । इस प्रकार अद्भुत सृष्टिके मजे लूटते हुए वे दोनों आगे बढ़े ।

१५–दो जोड़े

काक और मंजरी, दोपहरके बाद एक छोटे-से गाँवमें पहुँचे । उन्होंने एक ग़रीब ग्रामीणके आतिथ्यको स्वीकार किया और अपने फटे वस्त्रोंको छोड़कर मोटे और कमकीमती वस्त्र पहने । इसके पश्चात् राजमार्गसे अलग, पगडंडियोंसे होकर, खेतोंको लाँघते हुए वे आगे बढ़ने लगे ।

"अब हम कहाँ चलेंगे ?"

"पाटन।" काकने कहा।

"पैदल ?"

"हाँ पैदल ही। काकने हँसकर कहा, "क्यों, थक गई ?"

मंजरी काकसे लिपट गई, "थकूँगी नहीं !"

"अच्छा देखो, कोई बड़ा गाँव आये, तो कम बन जाए।"

"क्या ?"

"किसीसे घोड़ा ले लिया जाय।"

"परन्तु बिना रुपयोंके—"

"रुपये पाटन जाकर दे देंगे।" काकने कहा।

"मेरे पास तो एक रुद्राक्षकी माला है, उससे क्या होगा ?" मंजरीने कहा और काक खिलखिलाकर हँस पड़ा।

उस रातको भी वे चमकते हुए तारोंकी मुँदती-खुलती आँखोंकी लज्जा किये बिना एक-दूसरेसे लिपटकर वृक्षके नीचे पड़ रहे।

सबेरे एक दूसरा गाँव आया और उसका आतिथ्य भी उन्होंने स्वीकार किया।

वहाँ उन्हें समाचार मिला कि कुछ दूरीपर बनजारोंके डेरे पड़े हैं। कदाचित् उनमें कोई परिचित मिल जाय, यह सोचकर वे वहाँ पहुँचे। डेरे बड़े बड़े थे और उनके साथ घोड़े और रथ भी थे।

काकने मुँहमाँगी मुराद पाई। वह प्रधान बनजारेके पास पहुँचा और उससे एक घोड़ीकी याचना की। प्रधान पहले हँसा, फिर काकका वाक्-चातुर्य और मंजरीका मुख देखकर पसीज गया और यह जानकर तो वह पानी-पानी हो गया कि काक उदा मेहताका मित्र है। फिर भी अजाने पथिकको घोड़ी देनेका उसे साहस न हुआ। काक कुछ बोला नहीं, केवल हँसा और प्रधानके आतिथ्यको स्वीकार करके उसने कपड़े बदले, मंजरीने भोजन बनाया और दोनोंने खाया।

वह शान्तिसे इधर-उधर घूम रहा था, परन्तु उसकी दृष्टि घोड़ोंपर थी और उनमेंसे उसने एक तेज़ पानीदार घोड़ीको परख लिया। कुछ देरमें प्रधानको समझाकर, वह घोड़ोंको परखने निकला।

स्त्रियाँ, कुछ दूर एक वृक्षके नीचे बैठी थीं और पुरुष, सब एक जगह

एकत्र होकर खड़े थे। वहाँ काक प्रधानके पास खड़ा हुआ घोड़ोंके गुणोंका वर्णन कर रहा था। प्रधानने चतुर ब्राह्मणपर प्रसन्न होकर, घोड़ेवालोंको बुलाया और परीक्षाके लिए घोड़े मँगवाये। बेचारा प्रधान काकके बिछाये हुए जालमें खिंचा आ रहा था।

उसने एक घोड़ेको देखा, उसे कसा, उसके विषयमें अपनी सम्मति दी; फिर दूसरेकी और तीसरेकी भी परीक्षा की। प्रत्येकके गुणोंका पृथक्करण सुनकर, प्रधान और उसके मित्र दंग रह गये। प्रधान असावधान हो गया, अतएव धीरे-धीरे प्रत्येक घोड़ेकी परीक्षा करते हुए काक बड़े बड़े चक्कर लगाने लगा। स्त्रियाँ भी यह परीक्षा देखने लगीं। एक बार वह चक्कर काटता हुआ उनके पास जा पहुँचा, उसने घोड़ा खड़ा कर लिया और मंजरीको पास बुलाकर, घोड़ेके गुण बतलाये और कानमें कहा, "मंजरी, यदि घोड़ी बिगड़ती हुई यहाँ तक आ जाय, तो हटना मत।" यह कहकर काक प्रधानके पास आ पहुँचा।

आख़िर काकने उस घोड़ीपर जीन कसी और तब उसके हर्षका पार न रहा। जैसी वह देखनेमें सुन्दर थी, वैसी ही चलनेमें तेज़।

"सेठजी, इस घोड़ीका मूल्य तीन भुवनमें नहीं हो सकता। जयदेव महाराजकी अश्वशालामें ही यह शोभा दे सकती है।"

"तब इसे यहाँ नहीं बेचेंगे।" प्रधानने प्रसन्न होते हुए कहा।

काकने एक छोटा-सा चक्कर लगाया, "देखो, अब घोड़ीका पानी दिखाता हूँ। देखो, कैसी जाती है!"

सब एकटक देखते रहे और काक घोड़ीको लेकर गोलाकार चक्कर लगाने लगा। घोड़ीको चक्कर आ गये, उसके नथुने फटने लगे। चारों पैरोंसे वह सुदर्शनचक्र जैसी तेजीसे घूमने लगी।

काक हँस रहा था और प्रधान और उसके मित्र आनन्द ले रहे थे; परन्तु काकने अचानक लगाम छोड़ दी, हाथ ऊँचे किये और "अरे बापरे!" कहकर वह चिल्ला पड़ा। घोड़ीकी गति रुकनेवाली नहीं थी। सब चौंक पड़े और हा-हाकार मच गया।

अचानक घोड़ी चक्कर लगाना बन्द कर जहाँ सब खड़े थे, वहाँ आई और सब लोग भागकर जहाँ खड़े हो गये थे, वहाँ ठहर गई। काकने केवल

उसकी गर्दन पकड़ रखी थी। घोड़ीने फटी हुई आँखोंसे चारों ओर देखा और वह एकदम स्त्रियोंकी ओर बढ़ी। सारी स्त्रियाँ भाग खड़ी हुईं, केवल मंजरी खड़ी रही—शान्तिसे, गौरवसे, गर्वसे। वह काकका प्रभाव जानती थी।

घोड़ी खड़ी हो गई। काक सतर हुआ, नीचे झुककर हाथ चौड़े किये और दूसरे ही क्षण मंजरी उछलकर उसके हाथोंमें आ गई। काकने उसे खींच लिया और घोड़ी नीचा सिर किये पवनवेगसे भाग खड़ी हुई। बनजारे समझे, आश्चर्य-चकित हुए। प्रधानने सिर पीट लिया; परन्तु दूर क्षितिजमें पक्षीके समान दिख रही घोड़ी अधिक-अधिक अस्पष्ट ही होती गई।

न जाने कितनी देर तक घोड़ी पवन-वेगसे उड़ी चली गई और उसने बहुत-सा रास्ता तय कर लिया। सोरठकी सीमा आ गई। चाँदनी रात थी, अतएव रातको भी वे आगे बढ़ते गये।

आधी रातके पश्चात् कुछ देरमें मार्गपर सामनेसे आते हुए घोड़ेकी टापें सुनाई पड़ीं। काक सावधान हो गया। मंजरीको ध्यान रखनेके लिए सूचित किया। उसे भय मालूम हुआ कि कहीं खोजमें निकला हुआ कोई सैनिक तो नहीं है। उसने घोड़ीको रोका, उसे मार्गके बगलकी झाड़ीमें ले जाकर बाँध आया और फिर बड़ी कठिनतासे मंजरीको एक वृक्षपर चढ़ाया। फिर वह भी वृक्षपर चढ़कर बैठ गया। सामनेवाला घोड़ा भी इधर ही आ रहा है, ऐसा उसकी टापोंसे प्रकट हो रहा था। एक ही घुड़सवार है, यह विश्वास होनेपर काकमें साहस आ गया। वह नीचे उतरा और एक मजबूत सूखी डाली हाथमें थामकर एक वृक्षके पीछे छिपकर बैठ गया।

जब घुड़सवार पास आ पहुँचा तब काक चकित हो रहा। उस घोड़ेपर भी दो जने थे और उनमेंसे एक स्त्री थी। काकने ध्यान देकर देखा। सवारका सिर खुला था। चन्द्रमाके प्रकाशमें काकने उसका मुँह देखकर पहचान लिया। वह रा'खेंगार था।

काकने ज़रा विचार किया, 'खेंगार यहाँसे इस प्रकार एक स्त्रीका हरण किये लिये जा रहा है?' उसके चपल मस्तिष्कको यह प्रसंग कुछ असाधारण मालूम हुआ। अतएव इस विषयमें कुछ जाननेकी उसे उत्कंठा हो आई। ज्यों ही खेंगारका घोड़ा निकट आया, कि उसने अचानक बाहर निकलकर, दौड़ते हुए घोड़ेके पैरोंमें ज़ोरसे उस डालीका प्रहार कर दिया।

घोड़ा रुका, दोनों पैरोंसे खड़ा हो गया और बड़े प्रयत्नसे ऊपर बैठे हुए दोनोंको भूमिपर फेंककर भाग खड़ा हुआ। खेंगार और उसके साथकी स्त्री, ज्यों ही भूमिपर गिरे कि काक खेंगारपर जा गिरा और देखते-देखते उसने उसकी म्यानसे तलवार खींचकर अपने हाथमें ले ली। खेंगारने निराशा-पूर्ण स्वरमें कहा, "मर गए!"

"महाराज, घबराओ मत, मैं मित्र हूँ।"

१६—जयदेवकी नाक कैसे कटी ?

"कौन ?" चपलतासे खड़े होते हुए खेंगारने पूछा। क्रोधसे उसकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं।

"यह तो मैं हूँ, काक।" खेंगारके साथ नीचे गिरी हुई सुन्दरीकी ओर जाते हुए काकने कहा।

"कौन, भटराज काक ?"

"जी हाँ।"

खेंगारने जाकर उठनेका प्रयत्न करती हुई सुन्दरीको उठाया और फिर क्रोधसे काककी ओर घूमकर कहा, "विश्वासघातक, तू यहाँ ? तुने मुझे जीते जी मार डाला।"

"महाराज, शान्त रहिए। मंजरी, इस बहनको सँभालो।"

खेंगारने अपना खडग काकके हाथमें देखा और सामना करनेका विचार त्याग दिया, "काक, तू बारह दिन भी चुप नहीं बैठ सका ?"

"मैं क्या करता ? यह मेरी स्त्री आकर मुझे छुड़ा लाई।"

"कौन, कविकुलशिरोमणिकी पुत्री मंजरी ?" चकित खेंगारने फुर्तीसे उतर आई हुई मंजरीको देखकर कहा।

"हाँ, परन्तु तुम कहाँ जा रहे थे, इस प्रकार अकेले ? नहीं, भूला—दुकेले ?"

"काक, सदा ही तू मेरे कामोंमें आड़े आएगा ? तूने मेरे पिताका बिगाड़ा और अब पद-पदपर मेरा भी बुरा करनेको बैठा है ? पापी !"

" महाराज, क्या किया जाय ? हम मित्र बनना चाहते हैं, परन्तु ज्ञात होता है, विधिको यह भला नहीं लगता।"

अचानक बहुत दूरसे घोड़ोंकी टापें सुनाई पड़ीं और खेंगार सतर होकर सुनने लगा। वह ग्लानि-पूर्ण स्वरमें बोला, "काक, तूने मुझे मार डाला।"

" क्यों महाराज ?"

" ये घोड़ोंकी टापें सुनीं ?"

" हाँ, सुन तो रहा हूँ। क्यों ?"

" ये तुम्हारे—जयदेवके सैनिक मुझे पकड़ने आ रहे हैं।"

" ऐं! आपने अपने वचन पूरे किये ?"

" काक ! तू आड़े न जाता, तो मेरे सब वचन पूरे हो जाते।"

" किस प्रकार ?"

" मैंने महीड़ाको मार डाला और भोंयरेको भी तोड़ दिया।" शीघ्रतासे खेंगारने कहा, "तुम्हारे पाटनका दरवाज़ा भी तोड़ डाला और जयदेवकी नाक भी काट ली।"

" ऐं! किस प्रकार ?" चौंककर काकने पूछा।

" काक, इन अन्तिम बारह दिनोंमें मैंने ऐसे ऐसे पराक्रम किये हैं कि किसीने सुने भी न होंगे। जयदेव राणक देवीसे ब्याह करना चाहता था—" कहकर खेंगारने उस सुन्दरीकी ओर हाथसे संकेत किया। अपने नामका उच्चारण होते सुनकर उसने भी इस ओर देखा।

" और आप इनको हरण किये लिये जा रहे हैं ? शाबास महाराज, धन्य है आपके साहसको !"

" परन्तु मूर्ख, तूने सब धूलमें मिला दिया। ये जयदेवके सैनिक पीछे लगे चले आ रहे हैं। अब मेरा क्या होगा ? काक, तुझसे क्या कहूँ ? तू कहाँसे यहाँ आ पहुँचा ?"

काक उलझनमें पड़ गया। खेंगारको रोकनेका उसे पछतावा होने लगा। आँखें सिकोड़कर उसने कुछ विचार किया। घोड़ोंकी टापें और निकट मालूम होने लगीं।

" महाराज, एक मार्ग है। मेरी घोड़ी लेकर आप चले जाइए। राणकदेवी यहीं रहेंगीं।"

गर्वसे खेंगार सतर हो गया, " और राणकदेवीको जयदेवके लिए छोड़ जाऊँ ? काक, इसकी अपेक्षा तो मर जाना अच्छा । "

" तब महाराज, अपने अन्नदाताकी नाक कैसे कटने दूँ ? आप मेरे मित्र हैं, अतएव आपके प्राण बचाता हूँ । राणकदेवी मेरे स्वामीकी हैं; अतएव उन्हें छोड़ते जाइए । "

" काक, मेरी सतहत्तर पीढ़ियाँ लज्जासे मर जायँगी । मेरे जूनागढ़का मान चला जायगा । यह कैसे हो सकता है ?" खेंगारने अकुलाकर कहा, "काक! मित्र ! तुम्हें ज़रा भी दया नहीं आती ? तुम्हें मेरे प्रति ज़रा भी मैत्री भाव नहीं है ? तुम इस प्रकार मेरा सारा जीवन नष्ट करने बैठे हो ? मान जाओ, मान जाओ, देखो, वे घोड़े आ रहे हैं । फिर कोई मार्ग न रहेगा । "

" मैं क्या कर सकता हूँ ? महाराज, अपने हाथों अपने स्वामीको कलंक लगने दूँ ? "

" और मुझे—अपने मित्रको—कलंक लगने दोगे ? जयदेवने तुम्हारे लिए क्या किया है ?"

" इस प्रकार देखा जाय तो कुछ नहीं; परन्तु सेवा तो सेवा ही है । "

" काक, तुम क्या कर रहे हो ? देखो, वे आ पहुँचे । वह उनकी मसालोंका प्रकाश भी दिखाई पड़ने लगा । "

क्या करूँ महाराज ! आप चले जाओ । "

" तो काक ! मित्र ! एक काम करो । " कहकर खेंगार आगे बढ़ आया, " मुझे मार डालो । काक, देखो, वे लोग आ गये । मैं पकड़ा गया, तो वह नीच जयदेव मुझे पिंजरेमें बन्द करेगा, मेरी हँसी उड़ायेगा । भाई काक, यही करो कि मुझे मार डालो । " एकके बाद एक शब्द उच्चारण करते हुए खेंगारने कहा । उसके संस्कार-शील स्वरमें पत्थरको भी पानी कर देनेकी शक्ति थी । काककी आँखोंसे आँसुओंकी धाराएँ बह निकलीं । इन दोनोंकी बातचीत सुनकर, वे दोनों सुन्दरियाँ भी निकट आ गई और घबराकर रोने लगीं । मंजरी, बीचमें बोलना चाहती थी, परन्तु काकने उसे हाथ बढ़ाकर रोक दिया ।

काकने आँसू पोंछे, " महाराज, यह क्या कर रहे हैं ? "

" चलो, बढ़ो, मेरा सिर धड़से अलग कर दो । " कहकर खेंगारने सिर झुका दिया ।

" महाराज, " काकने धीरे-से कहा, " राणकदेवी किसकी होना चाहती हैं ? " काकके मुखने भी भयंकर गंभीरता धारण कर ली।

" पूछ देखो।" खेंगारने कहा।

" बहन, " काकने कठोरतासे पूछा, " सत्य कहना, पाटनको ब्याहना है, या जूनागढ़को ? "

उस सुन्दरीने अपनी कोमल, परन्तु छटा-पूर्ण शरीर-वल्लरीको अभिमानसे सीधा किया और धीरे-से गौरवशील शब्दोंका उच्चारण किया, " क्या पूछ रहे हो ? " यह पूछकर वह जरा ठहर गई, " मैं सोरठके स्वामीकी हूँ, उनकी जीवित अवस्थामें और मृत अवस्थामें भी। "

खेंगारने शान्तिका निःश्वास छोड़ा। काकने भी निःश्वास छोड़ा और दौड़कर वह घोड़ी ले आया।

"महाराज, जाइए। बहन, जाओ। भगवान सोमनाथ तुम्हारा भला करें।"

" खेंगारने काकको गले लगा लिया और फिर वह घोड़ीपर सवार हो गया। काककी सहायतासे राणकदेवी भी घोड़ीपर बैठ गई।

" महाराज, मुझे इस तलवारकी जरूरत नहीं है। आप ले जाइए। जल्दी कीजिए। वे लोग आ पहुँचे। "

" जय सोमनाथ ! " कहकर खेंगारने घोड़ी दौड़ा दी।

चुपचाप विचारोंकी तरंगोंमें बहता हुआ काक खड़ा रह गया। मंजरीने आकर उसके कंधेपर हाथ रखा, " नाथ, क्या सोच रहे हो ? "

" मंजरी, पाटन और जूनागढ़के बीच शत्रुता बढ़ेगी। इस बेचारेका क्या होगा ? "

" इसने भी हद कर दी। "

" मंजरी, सच्चा नर-पुंगव तो मैंने एक यही देखा। ईश्वरने इसे पूरा बत्तीस लक्षणोंवाला बनाया है। "

मंजरीने काकके गलेमें हाथ डाल दिये, " पर मैंने इस समय और भी एक देखा। "

" वह कौन ? "

" इस समय उसमें यदि बत्तीस लक्षण हैं, तो उसके मित्रमें बावन लक्षण हैं। "

काक हँस पड़ा और उसने नीचे झुककर मंजरीको चूम लिया।

" अब हमारा क्या होगा ? "

" कुछ नहीं, अब चैन मिली। वे लोग हमें पाटन ले जाएँगे। अब तुम राणकदेवी हो और मैं खेंगार—समझीं ? भले ही हमें पकड़ ले जायँ। "

"हाँ, ठीक है, और उन बेचारोंको भी भाग जानेके लिए समय मिल जाय।"

काक और मंजरी भी ढोंग करके इस प्रकार जाने लगे, जैसे बड़ी तेजीसे जा रहे हों; परन्तु देखते देखते वे सैनिक आ पहुँचे और इन दोनोंको देखकर उन्होंने एकदम घेर लिया।

" सावधान खेंगार ! ज़रा भी हटे, तो प्राण ले लूँगा। " कहकर नायक आगे बढ़ा और उसने काकको जकड़कर बाँध लिया। एक घोड़ेपर उसे बिठाया और दूसरेपर मंजरीको। चार सवार आगे हो गये और चार पीछे। सब तेज़ीसे चल पड़े।

सैनिकोंने खेंगारसे खूब व्यंग्य किया और काक हँसते हुए सहता रहा। इस प्रकार वे भादर जा पहुँचे।

जयदेव महाराज भादरके सामन्तके यहाँ राणक देवीसे सगाई करने आये थे; परन्तु इस समय उनकी महत्ता नष्ट हो गई थी और व्याकुलताके कारण उनकी आँखोंसे आँसू निकले पड़ रहे थे। इतनेमें समाचार मिला कि खेंगार और राणक दोनों पकड़ लिये गए और उन्हें सैनिक ला रहे हैं। यह समाचार सुनकर, गुजरातके नाथकी छाती एक बित्ताभर ऊँची हो गई और यह विचार करनेमें कि अपने वैरका बदला व्याज-सहित कैसे लिया जाय, वे ऊँचे नीचे होने लगे।

आख़िर सबेरा होनेपर सैनिक आ गये और महाराज एकदम चबूतरेपर आ खड़े हुए। उनका हृदय हर्षसे नाचने लगा।

सैनिकोंने एक कैदीको सामने ला खड़ा किया। अन्य सैनिक कुछ दूरीपर घोड़ेपरसे एक स्त्रीको उतार रहे थे। महाराज जयदेव दो पैर आगे बढ़ आये

" पापी ! चोर ! "

उत्तरमें काककी आवाज उस टोलीमें गूँज उठी, " परन्तु अन्नदाता ! मेरा क्या अपराध है ? "

जयदेव पीछे हट गये और आँखें फाड़कर देखने लगे, " कौन ? "

" महाराज, यह तो मैं हूँ, काक। आपके इन सैनिकोंने तो ग़ज़ब कर डाला। मुझे और मेरी स्त्रीको पकड़कर ले आये। यह क्या बात है ?"

जयदेवके क्रोधका पार न रहा। वह एकदम काकके पास खड़े हुए नायककी ओर बढ़ा और उसने उसे दो-चार तमाचे जड़ दिये। " कुत्ते, यह खेंगार है ? काकभटको नहीं पहचानता ?" सब सैनिक दंग रह गये, " छोड़ो, इसे छोड़ो ! और जाओ, फिर जाओ ! नहीं तो तुम्हें एकको भी जीता न जाने दूँगा।"

" महाराज, परन्तु बात क्या है ?"

" वह पिशाच खेंगार राणकदेवीको हर ले गया।"

" ऐं !"

" अन्नदाता ! जहाँ भटराज थे, उस मार्गसे ही वह गया है।"

" चुप चांडाल !" जयदेवने कहा।

" महाराज, जब इन्होंने हमें पकड़ा, उससे दो-चार पहर पहले हमने एक सवारको अवश्य देखा था।"

" हाँ, वही।"

" तब तो वह सोरठ पहुँच गया होगा।"

" क्या कह रहे हो ? चलो, उसका पीछा किया जाए।"

" जो आज्ञा, परन्तु मेरी स्त्री—"

" भादरके सामन्तको सौंपे देते हैं।"

" जी, ठीक है।" कहकर काकने वैसा ही किया और कुछ देरमें जयदेव महाराजके साथ वह खेंगारको पकड़नेके लिए रवाना हो गया। वे सोरठकी सीमा तक जाकर, सन्ध्या समय उतरे हुए मुँहसे भादर लौट आये और रातोंरात पाटनकी ओर रवाना हो गये।

" काक, आज मेरी नाक कट गई।"

" महाराज, क्या किया जाय ?" बड़े शान्त चित्तसे काकने कहा।

" उस पापीके जूनागढ़को अब मिट्टीमें मिला दूँगा।"

" जी।"

जयदेवने ज़रा अधीरतासे काककी ओर देखा। उसे काककी शान्ति भली न लगी।

" काक, तुमने ऐसे बड़े बड़े कार्य किये हैं जो और किसीसे न बनें। इतना और करो। राणकको ले आओ।"

" महाराज, यह काम मुझसे भी नहीं हो सकता। सेनाको साथ दें, तो जूनागढ़को सर कर आऊँ।"

" गुप्त रूपसे कुछ नहीं हो सकता ?" उलझनमें पड़कर जयदेवने पूछा, " मैं पाटन जाकर क्या मुँह दिखाऊँगा ?"

उत्तरमें काकने सिर हिला दिया।

" तुम नहीं करोगे ?"

" मैं नहीं कर सकता।" काकने सुधार कर कहा।

महाराज चुप रह गये। खेंगारके प्रति जो क्रोध था वह काककी ओर बढ़ने लगा।

१७—सुखका अधिकार

" मुंजाल !" मीनलदेवीने प्रवेश करते हुए कहा।

" क्यों ?"

" इस जयदेवका क्या किया जाय ? उस राणकने तो इसे पागल कर दिया है।"

" तब उसे ब्याह कर लेने दो।"

" राणकके साथ ब्याह करनेको मेरा जी ही नहीं होता। क्या करूँ, मैं वचन दे चुकी हूँ।"

" देवी, आपका स्वभाव भी हठीला होता जा रहा है।" ज़रा हँसकर मुंजालने कहा, " एकको तो उसकी बिना मरजीके ब्याह देना चाहती हैं, और दूसरेको मरजी है तब भी ब्याह नहीं करने देतीं।"

मीनलदेवी ज़रा हँसी, " मेहताजी, मुझमें बुढ़ापेके लक्षण आरंभ हो गये हैं।"

" बुढ़ापा ? मुझसे आप कितनी छोटी हैं ?"

" तुम तो अभी छोटे हो, सोलह वर्षकी सोमसे ब्याह करनेवाले हो !"

" देवी, क्या करूँ ? आपको राजी भी तो रखना है।"

" विवाहके बाद भी राजी रहूँ, ऐसा करोगे ?" मज़ाक़ करते हुए मीनलदेवीने कहा।

“ कैसी तबियत है अब उसकी ? दो दिन हुए, मैं देखने नहीं गया । ”

“ अब तो उसका ज्वर हलका हो गया है। सन्निपात भी कम है। पर कभी कभी उसका दिमाग बिगड़ जाता है।”

“ ऐसा ? वह कब अच्छी होगी ? ”

“ क्यों, ब्याहनेकी उतावली है ? ”

“ वह बेचारी मेरे लिए प्राण देनेको तैयार हो गई और मैं उसका समाचार भी न पूछूँ ? ”

“ तुम दोनोंकी जोड़ी तो बहुत सुन्दर होगी । ”

मुंजालके कपालपर बल आ गये ।

“ सारे दिन बस यही एक मज़ाक़ ।

“ मुंजाल ! ” धीरे, गांभीर्यसे मीनलदेवीने कहा, “ तुमने किसीसे विवाह कर लिया है, यह बात मैं अपने मनसे मनवानेका प्रयत्न कर रही हूँ। ”

मुंजाल कुछ देर चुप रहा ।

“ लादमें फिर उपद्रव उठ खड़ा हुआ है। त्रिभुवनको भेजना पड़ेगा। ”

“ अच्छा ! ”

“ हाँ। मैंने उसे तैयार होनेको कह दिया है। वह केवल अपने उस मित्र, काकके आनेकी प्रतीक्षा कर रहा है । ”

“ वह कब आएगा ? ”

“ उस बेचारेको जूनागढ़ तो व्यर्थ भेजा। अभी ही सुना कि खेंगार, किसीकी सहायतासे हमारे नगरका दरवाज़ा तोड़ गया । ”

“ किसकी सहायतासे ? ” आँखें चमकाकर रानीने पूछा ।

“ आपके देसल और वीसलकी सहायतासे । ”

“ ऐं ? ” चकित हुई मीनलदेवीने कहा, “ तब तो हमने दूध पिलाकर साँपोंको पाला ? ”

“ यह क्या आजकी ही बात है ? उन्हींने दरबानको फोड़ लिया और दुर्गपाल न जा पहुँचा होता, तो कुछ अधिक भी हानि होती । अब महाराज आएँ, तो इन्हें ठिकाने लगाऊँ । ”

“ हाँ, बहुत दिनों तक तरह दी, क्या इन्हें देशसे निर्वासित किय जाएगा ? ”

" और क्या ? गुजरातमें अब इनके लिए स्थान नहीं है। " मुंजालने होठ दबाकर कहा।

" अच्छा, पर उस काकका क्या हुआ ? "

" मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उसने कुछ किया होगा। "

" अकेला वह क्या कर सकेगा ? "

" देवी, उसके जैसा मनुष्य अकेला हो, तो भी सारी सेनाके लिए भारी पड़े। "

" तब तो उसे पाटनमें ही रखना चाहिए। वह लाटमें पड़ा पड़ा सड़ा करे, इससे क्या फायदा ? "

" मुझे भी ऐसा ही लगता है। यह मेरा कीर्त्तिदेव और काक, यदि दोनों पाटनमें रहें, तो गुजरातके विजयका डंका तुरत बजने लगे। " कहकर मुंजालने निःश्वास छोड़ा।

" मुंजाल ! " आँखोंसे और आवाज़से आश्वासन देते हुए मीनलदेवीने कहा, " तुम्हारे कहनेके पश्चात् मैंने उसे बहुत समझाया; परन्तु जैसा बचपनमें हठी था अब उससे भी अधिक है। "

" ऐसा ? "

" कहता है कि अवन्तिनाथके साथ नमकहराम कैसे हुआ जाय ? "

" मेरा भाग्य। और क्या कहूँ ? "

" बहुत लालच दिया, परन्तु वह एकसे दो नहीं होता। "

" देवी, मैं तो दुखी होनेके लिए ही जनमा हूँ। "

" मुंजाल, ऐसे निराशाभरे वचन क्यों बोलते हो ? "

" सच है, जिसे सत्ता भोगना हो उसे सुखका क्या अधिकार ? "

" सुख भी देखोगे—"

" मुंजालने सिर हिलाया। परन्तु कोई एक अक्षर अधिक बोले इसके पहले ही एक दासी दौड़ती हुई आई और मीनलदेवी उसकी ओर मुड़ीं।

" माताजी ! "

" क्या हुआ ? "—

" चलिए, चलिए, सोम सुन्दरी—"

" क्या हुआ सोमको ? " मीनलदेवी और मुंजाल दोनोंने पूछा।

" घबरा गई हैं।"

" ऐं!" कहकर दोनों जने दौड़ते हुए अन्तःपुरमें गए। वहाँ सोमसुन्दरी पड़ी हुई थी, और उसकी माँ और दो दासियाँ खड़ी थीं। पलंगपर नाड़ी थामे हुए वैद्य बैठा था और अचेत पड़ी हुई सोम आँखें फाड़ फाड़कर चिल्लाती और उठकर बैठनेका प्रयत्न कर रही थी।

" वैद्यराज !" मीनलदेवीने पूछा।

" माताजी ! बड़ा श्वास है।"

" क्या कह रहे हो ? जा दासी, सज्जन मेहताको बुला ला।"

बावली-सी बनी मीनलदेवी, अपनी हमेशाकी स्वस्थताको खोकर सोमसे लिपट पड़ीं।

" सोम ! बहिन !"

" ओ—ओ—ओ—" सोम चीख उठी। उसका सुन्दर मुख खिंचा जा रहा था।

" वैद्यजी, मात्रा है कि नहीं ?"

" हाँ, यह है।" कहकर वैद्यने तुरन्त मात्रा घिसकर सोमको चटाई।

मुंजाल, म्लान-मुख, परन्तु स्थिर नयनोंसे चित्तको संयत कर सोमकी ओर देखने लगा।

मात्राका तुरन्त असर हुआ। सोमकी आँखें ठिकाने आ गईं और चिल्लाहट थम गई। आँखें ज्यों ही स्थिर हुईं, कि उसकी दृष्टि मुंजालपर पड़ी और खिंचती हुई जीभसे वह बोली, " फूफाजी !"

" हाँ सोम, मैं हूँ।" मुंजालने नीचे झुककर कहा, "कैसी तबीयत है ?"

" दौड़ो, दौड़ो !" फिर सोमकी आँखें फटने लगीं, " फूफाजीको वह खेंगार मार डालेगा।"

" घबराओ नहीं" मीनलदेवीने कहा; " बेटी, तुम्हारे फूफाको कुछ न होगा।"

" ओह ! बैठे क्यों हो ? ओह ! ओह ! हटो, मुझे उठने दो ! ओह ! वह उसने तलवार खींच ली। हटो !" कहकर सोमकी चिल्लाहट बढ़ी और वह उठनेका प्रयत्न करने लगी, " तुम्हें किसीको क्या ? फूफाजी, देखो, वह आया। ओह ! ओह ! फूफाजी गये, तो पाटनका क्या होगा ? पकड़ो,

पकड़ो ! ओह् !" कहकर वह बैठ गई और वैद्यके दूसरी मात्रा चटानेसे पहले ही उसके हाथ नीचे ढल पड़े और वह धम्-से बिछौनेपर गिर पड़ी।

"माताजी, हट जाइए।" वैद्यने कहा, "अब इसे नहलाना होगा।"

"हाय बेटी सोम !" कहकर उसकी माँने उसे बिछौनेसे नीचे उतार लिया।

* * * *

मुंजालकी आँखोंसे आँसूकी एक ही बूँद नीचे गिरी। मीनलदेवी, सोमको छोड़कर मुंजालके पास आई।

"मुंजाल, तुम बाहर जाओ।"

सिरके संकेतसे हाँ कहकर मुंजाल धीरे बाहर आ गया।

"मुंजाल," पीछेसे मीनलदेवीने कहा। राजमाता हिचकियाँ ले-लेकर रो रही थीं, "बहुत बुरा हुआ।"

बड़े ठण्डे जीसे मुंजालने उत्तर दिया, "मैंने क्या कहा था ? मुझे सुखका अधिकार नहीं है।"

१८—जयदेवका भय

जिस दिन सोमकी मृत्यु हुई, उसके तीसरे दिन जयदेव महाराज आ पहुँचे और खेंगारके द्वारा राणकदेवीके हरणकी बात सुनकर, पाटनमें खलबली मच गई। यह सुनकर कि पाटनकी नाक कट गई सारे पट्टनी, खेंगारपर आग-बबूला हो गये और जयदेव महाराज तो क्रोधके मारे पागल-से हो उठे।

अकेली मीनलदेवीको चैन मिली। जयदेव अब राणकसे ब्याह न कर सकेगा; अतएव उनकी ठंढे जलसे ही खाज मिट गई और जयदेव खेंगारपर कुपित हो गया था, अतएव जूनागढ़ हस्तगत करनेके लिए ताव देनेको भी एक कारण मिल गया।

मुंजालको यह बात रुची, वह भी सोरठको सर करना चाहता था; परन्तु पहले तो लाटकी वारी थी।

"महाराज" जयदेव महाराजके ज़रा स्वस्थ होते ही उसने पूछा," अब मंडलेश्वरको लाटकी ओर जाना चाहिए।"

" वह इच्छा हो, वहाँ जाय ।

" इस प्रकार हम जाने कैसे देंगे ? " सख्तीसे मुंजालने कहा ।

" मेहताजी, इस समय मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता । "

" तब राज्य कैसे चलेगा ? "

जयदेवने मुंजालकी ओर देखा । सोम मर गई, इससे एक तरहसे उसका संसार उजड़ गया था और कीर्तिदेव पाटनमें रहनेके लिए बिल्कुल इनकार कर रहा था । ऐसे समय भी अमात्यको इतना राज-कार्य बहन करते देख, उसे अपनी निर्बलताके प्रति तिरस्कार हो आया और वह बातचीतमें दिलचस्पी लेने लगा ।

" सत्य है मेहताजी, परन्तु, मैं क्या करूँ ? "

" क्या करूँ, पूछते हो ? सोरठको सर करो और अपने वैरका बदला लो । "

" बदला कहीं छोड़ा जा सकता है ? "

" परन्तु पहले त्रिभुवनपालको लाट भेजना चाहिए कि कहीं सर किया कराया लाट हाथसे न निकल जाय । "

" वह जानेको तैयार है । मुझसे आज कहता था । साथमें उस ब्राह्मणको भी भेजना है । " क्रोधके आवेशमें आकर राजाने कहा ।

" किसे ? काकको ? "

" हाँ । "

" क्यों ? "

" उस बदमाशको मैं यहाँ नहीं रखना चाहता । "

" परन्तु कारण ? वह तो बड़ा उपयोगी मनुष्य है । माताजी तो उसे यहीं रखना चाहती है । "

" नहीं, मुझे उसे निकाल देना है । नहीं तो उसे देश-निकाला दूँगा । "

" इतना क्रोध ? " मंत्रीने पूछा ।

" हाँ । "

" वह यहाँ रहेगा, तो राज्यका स्तम्भ बन जाएगा । तुम उसके पराक्रमोंको नहीं जानते क्या ? "

" मेहताजी, " राजाने धीरे-से कहा, " मैं उसके पराक्रमोंको जानता हूँ, और इसीसे उसे निकाल देना चाहता हूँ । "

" यह मैं नहीं समझ सका । "

" खेंगार राणकदेवीको हर ले गया, इसमें उसका भी कुछ हाथ है । "

मुंजाल हँस पड़ा, " महाराज, तुम्हें पीलिया हो गया है । तुम्हें सब पीला ही पीला दिख रहा है । "

" नहीं मेहताजी, मुझे सन्देह है । "

" तो वह सन्देह व्यर्थ है । वह जितना तुम्हारा है, उतना और किसीका नहीं ।"

" मैं यह नहीं मान सकता और इसके सिवा एक कारण और भी है । "

" वह क्या ? "

" मैं वास्तविक राजा बनना चाहता हूँ । "

" तो इसके लिए न कौन कहता है ? "

" मेहताजी, जब तक वह यहाँ रहेगा, मुझे राजा नहीं बनने देगा । "

" अर्थात् ? "

" जहाँ किसीकी दृष्टि नहीं जा सकती, वहाँ उसकी पहुँच जाती है और जो कोई नहीं कर सकता, उसे वह कर लेता है । एक आप भी हैं; परन्तु आप तो मेरे लिए पिताके समान हैं । आपके आगे झुकना मैं गर्वकी बात समझता हूँ; पर मुझे दो मुंजाल मेहता नहीं चाहिए । "

" महाराज, मेरे सिवा कोई दूसरा यह बात सुनेगा, तो कहेगा कि तुम्हें उससे भय होता है । "

" मेहताजी, आपकी बात सच है । यदि वह यहाँ रहेगा, तो मैं उसका खिलौना बन जाऊँगा, या किसी दिन तलवार लेकर उसका सिर उड़ा दूँगा । वह मुझसे नहीं सहा जा सकता । "

"जयदेव, इस प्रकार तो तुम्हारे पाटनमें कोई होशियार मनुष्य ही न रहेगा ?"

" भले ही न रहे; परन्तु मुझे अपने सिरपर दूसरा राजा नहीं चाहिए । आपसे भी कहे देता हूँ कि माताजीसे कहकर उसे यहाँ रखाओगे, तो दूसरे ही दिन उसे कारागारमें बन्द करा दूँगा । "

" इसकी चिन्ता नहीं है; वह तीसरे दिन फिर छूटकर आ जाएगा । "

" तो उसे मैं अपने हाथों पूरा कर दूँगा । "

" परन्तु जीवित रहने दोगे, तो वह तुम्हें दिग्विजय प्राप्त कराएगा । "

" नहीं, उसकी अपेक्षा मेरे अपने हाथों जो कुछ थोड़ी-बहुत विजय प्राप्त होगी, उसीसे मैं सन्तोष कर लूँगा । "

" अच्छा ! अन्य राजा लोग तो ऐसे रत्नोंको इकट्ठा करते हैं और तुम निकाल फेंकना चाहते हो । जैसी इच्छा; और भी विचार कर देखना । "

" इस विषयमें मैं एकसे दो नहीं हो सकता । देखिए, वह जूनागढ़से कैसे भाग आया ? ऐसे पराक्रम कथा-कहानियोंमें सुने थे, आँखसे तो कभी नहीं देखे । "

" जयदेव, जो तुम्हें अवगुण प्रतीत होता है, वह मुझे बहुत बड़ा गुण मालूम होता है । अच्छा, ऐसा ही करो । मैं काकसे कहला दूँगा । "

" हाँ, जहाँतक हो, जल्दीसे । "

१९—प्रस्थान

कीर्त्तिदेवकी आँखोंमें आँसू आ गये । मुंजाल मेहता गंभीर मुख खड़े थे । उनके होठ और चक्षु निश्चल थे; केवल उनके धीमे स्वरमें कुछ वेदनाकी ध्वनि थी ।

" पिताजी, " कीर्त्तिदेवने आँखोंके आँसू पोंछकर कहा, " मेरा हृदय फटा जा रहा है; परन्तु मैं क्या करूँ ? "

" बेटा, " अस्थिर स्वरको स्थिर करते हुए मुंजाल मेहताने कहा, " तुम क्या कर सकते हो ? सब कुछ नियति करती है । तुम अवन्ति जाकर रहो, यही उचित है । मैं यह मानता आ रहा हूँ कि मेरा घर सदैव ही पुत्र-विहीन है । परन्तु बेचारे उबक परमारके तो तुम्हीं आधार हो । "

" पिताजी, आप ऐसा न कहिए । "

" मैं सत्य कहता हूँ । मैं दुःखसे ऐसा अन्धा नहीं हो गया हूँ कि दूसरेका सुख भी न देख सकूँ । तुम अवन्ति जाओ, इसीमें सार है । पाटनमें तुम्हें कभी अच्छा न लगेगा । हमारी रीति-नीति भिन्न है और हमारे संस्कार भिन्न हैं । तुममें मुंज और भोजके संस्कारोंसे निराली बनी हुई भूमिके संस्कार हैं । तुम यहाँ सुखी नहीं हो सकते । "

" पिताजी, आप व्यंग्य कर रहे हैं ? "

" नहीं बेटा ! दुःख सह-सहकर, तटस्थतासे देखनेकी मुझे आदत पड़ गई है। "

" और मैं उस दुःखको बढ़ा रहा हूँ। "

" नहीं, तुम्हारे सुखसे मैं सुखी हूँ। परमारकी राजधानीमें तुम्हारा स्थान है। मेरी तो एक ही विनती—"

" विनती ? "

" हाँ। कभी कभी समाचार देते रहना और अब ब्रह्मचर्य छोड़ देना। "

" पिताजी, आपकी आज्ञा शिरोधार्य होगी। "

" मुझे तो यही चाहिए कि मेरा नाम रहे। पुत्रको तो न खिला सका, किसी दिन पौत्रको तो खिलाऊँ। "

" पिताजी, " बात बदलते हुए कीर्त्तिदेवने कहा, " अब न जाने कब मिलेंगे। "

मुंजालकी आँखोंमें तीक्ष्णता आ गई, " जब जयदेव महाराज अवन्तिको हस्तगत करेंगे तब ! "

कीर्तिदेव चौंक पड़ा, " ऐं ! यह क्या कह रहे हैं ? "

" और क्या कहूँ ? मेरा धर्म यहाँ रहना है, तुम्हारा अवन्तिमें रहना। इसके सिवा और किस मार्गसे हम मिल सकते हैं ? " मुंजालके होठ जरा गर्वसे मुड़ गए।

" पिताजी, " खिड़कीसे बाहर देखकर कीर्त्तिदेवने कहा, " लीजिए, मंडलेश्वर महाराज आ पहुँचे। "

मुंजाल प्रयत्न करके अधिक स्वस्थ हो गया और त्रिभुवनपाल और काकके स्वागतके लिए आगे बढ़ा।

" त्रिभुवन ! काक ! आ पहुँचे ? " मुंजालने ज़रा हँसकर पूछा।

" हाँ, मामाजी। " त्रिभुवनपालने कहा। उस वीरकी आँखें उत्साहसे चमक रही थीं। " मैं ज़रा माताजी और महाराजसे मिल आऊँ। जानेका समय हो गया है। "

" हाँ, अवश्य मिल आओ। " मुंजालने कहा और त्रिभुवनपाल अन्दर चला गया।

" काक, " मुंजालने कहा, " आज तो मेरे तीनों पुत्र जा रहे हैं । "

" महाराज ! " मुझे पुत्र समझते हैं, इसमें आपहीका बड़प्पन है । "

" नहीं काक, कीर्त्तिदेव और त्रिभुवनपाल गए होते, और तुम रह जाते, तो भी मुझे ज़रा चैन मिलती । "

" जब महाराजकी आज्ञा हो गई, तब कहीं निस्तार है ? " काकने कहा ।

" सत्य है । तुम यहाँ रहे होते, तो मेरे सिरसे भार ज़रा कम हो जाता; परन्तु अब लाटका सारा भार तुम्हारे सिर है । "

" मंडलेश्वर महाराज तो हैं ? "

" यह ठीक है; परन्तु यह याद रखना कि तुम केवल लाटको जीतनेके लिए नहीं, उसे गुजरात बनाने जा रहे हो । "

" जी । "

" केवल उसकी सेनाओंको नहीं हराना है, उनकी वासनाओंके हृदय और उनकी टेक दोनोंको वशीभूत करना है । बिना त्यागके विजय व्यर्थ है । "

" महाराज, आपके वचन स्वर्णके तुल्य हैं । मैं लाटका रहनेवाला हूँ । मुझे वहाँ कई लोग पाटनका दास समझते हैं; परन्तु जैसा आप कहते हैं, यदि वैसी ही पाटनकी राजनीति रहे, तो मुझे अपने दासत्वमें अल्पताका भास नहीं हो सकता । "

" मंजरीका क्या हाल है ? "

" प्रसन्न है । "

" राजमातासे भेंट कर गई ? "

" जी हाँ । काश्मीरादेवी और वह अभी भेंट करके लौटी हैं । "

इतनेमें मीनलदेवी, महाराज जयदेव और त्रिभुवनपाल आ पहुँचे ।

" मेहताजी, " मीनलदेवीने कहा, " तुम इन सबको भीमनाथके घाट तक पहुँचाने जा रहे हो ? "

" हाँ । " मुंजालने कहा ।

" काक, " मीनलदेवीने कहा, " देखो, अब लाटको पूरी तौरसे जीतना है । "

" माताजी, जब आपकी आज्ञा हो गई, तब उसमें बाकी क्या रह गया ? "

" और उस मृणालकुमारीका विवाह त्रिभुवनपालसे कराना है । "

"इसी लिए तो काश्मीरा साथ जा रही है कि त्रिभुवनपाल उससे ब्याह न कर ले।" मुंजाल हँसा।

"काक," जयदेवने ज़रा तिरस्कार-पूर्वक कहा।

"जी।"

मीनलदेवीने ज़रा गंभीरता धारण कर ली। जयदेव जो व्यवहार काकके साथ कर रहा था वह उन्हें पसन्द नहीं था।

"तो अब जूनागढ़ जीतने कब जाओगे?" जयदेवने ज़रा व्यंग्यमें कहा।

"जब आप मुझे आज्ञा करें तब।"

"मुझे" पर भार देकर और गर्वसे सिर उठाकर काकने कहा। उसने भी जयदेवके हृदयमें बसे हुए द्वेषको परख लिया था और अपने गौरवकी रक्षाका निश्चय कर लिया था। अतएव अस्पष्ट तिरस्कारसे कहा, "आपको मेरी आवश्यकता प्रतीत हो, तो सन्देश भिजवाइए। मैं तुरन्त आ पहुँचूँगा।"

"खेंगार तुम्हारा मित्र है, इसलिए आवश्यकता तो होगी ही।" मुंजाल हँसकर बात उड़ाने लगा।

"हमें खेंगारके मित्रोंकी आवश्यकता नहीं है, शत्रुओंकी आवश्यकता है।" जयदेवने कहा।

"यों कहिए महाराज," सिर उठाकर भयंकर स्वरमें काकने उत्तर दिया "कि खेंगार जैसे वीरश्रेष्ठोंके साथ लड़नेके लिए वीर चाहिए। ऐसे वैसोंसे जूनागढ़ नहीं जीता जा सकता।"

मीनलदेवीको भी लगा कि वे बीचमें न पड़ेंगी तो बात बढ़ जाएगी। "लो, वे सज्जन मेहता आ गये। त्रिभुवन, समय हो गया। बाहर हाथी खड़े हैं।"

"तो माताजी, आज्ञा दीजिए।"

"बेटा, सौ वर्ष जियो।

"महाराज, आज्ञा।"

"हाँ भाई, समाचार देते रहना।" कहकर जयदेव और त्रिभुवनपाल परस्पर गले लगे। कीर्त्तिदेव और काकने भी आज्ञा ली और मुंजाल-सहित वे सब हाथियोंपर सवार होकर भीमनाथके घाटपर आये।

घाटपर जन-समूह एकत्र हो गया था। इन चारोंको उतरते देख लोगोंने

हर्ष-नाद किया। महाजनोंने श्रीफल अर्पित किये और श्रोत्रियोंने आशीर्वचन उच्चारण किये। मुंजाल मेहता और अन्य मन्त्रिगण, तीनोंसे गले मिले और शुभाशीर्षें दीं।

* * * *

सूर्य प्रकाशमें नाचती हुई सरस्वतीकी तरंगोंपर एक छोटी-सी नौका जा रही थी। उसमें छः-सात युवतियाँ बैठी थीं। उनमेंसे दो तेजस्विनी नवयुवतियोंकी आँखोंमें मद छलक रहा था। एक काश्मीरा थी, दूसरी मंजरी। काश्मीराकी आँखें शरारतसे नाच रही थीं। उसने अचानक मंजरीके पैरमें चुटकी भर ली।

" ओह ! ओह ! बहन, यह क्या कर रही हो ? "

" तो पीछे बार बार मुड़ कर क्या देख रही है ? "

" मैं देख रही हूँ कि पाटन यहाँसे कैसा दिखलाई पड़ रहा है। "

काश्मीराने मंजरीको एक चपत लगा दी " झूठी ! नजर तो वहाँ उस घाटपर थी। "

मंजरीका मुख लाल हो गया।

" वहाँ क्या देख रही है ? वहाँ तो सब बित्ता-बित्ता-भरके वीर हैं। कहाँ है हमारे भीष्म, द्रोण और परशुराम ? " मंजरीके उच्चारण किये हुए शब्दोंकी नकल करते हुए काश्मीरा देवीने ताना मारा। " इस जमानेमें ऐसे हैं कहाँ ? " वहाँ बैठी हुई सब स्त्रियाँ हँस पड़ीं।

" हाँ, सब बित्ता-बित्ता-भरके ही तो हैं। " मंजरीने गर्वसे कहा " एकके सिवा। " उसने और जोड़ दिया।

" एक कौन ? " कहकर काश्मीरादेवी मंजरीका हाथ पकड़कर हँसते हुए दबाने लगी। " बता कौन, मंडलेश्वर, नहीं ? बोल। "

" ओह ! मेरा हाथ टूट जायगा, बहन ! " मंजरीने चीखते हुए कहा।

" तो सब बला ही टल जायगी। बता, वह एक कौन ? " कहकर वह हाथको और ज़ोरसे मरोड़ने लगी।

मंजरीकी आँखोंमें हँसते हँसते जल भर आया, " अच्छी बात है। हाथ तोड़ना हो तो तोड़ डालो। मैं झूठ न बोलूँगी— "

" एक कौन ? बता ! "

" उदा मेहता, नवघन, खेंगार और कालभैरव—इन चारोंका जो विजेता हो वह । "

" और कोई रह गया है ? " काश्मीराने हँसते हुए पूछा ।

" हाँ । और एक वह कविकुलशिरोमणि—इन पाँचोंका विजेता । "

" मुँहफट ! निर्लज्जा ! तुझे लाज नहीं आती ? कहाँ गई तेरी सारी पंडिताई ? "

" समा गई सब वहाँ " कहकर मंजरीने अंगुलीसे उस नौकाकी ओर संकेत किया, जिसमें मंडलेश्वर, काक और कीर्तिदेव बैठे थे ।

" निर्लज्ज ! " काश्मीराने कहा ।

" तुम्हींने तो बनाई है, मेरा ब्याह क्यों किया ? "

* * * *

मंडलेश्वर, कीर्त्तिदेव और काक नौकामें बैठे और तीनों व्यक्ति चुपचाप घाटकी ओर देखने लगे । घाटकी ओर सबसे निराला, सतर होकर, पाटनकी सत्ताका प्रतिनिधि, दुःखपूर्ण आँखोंसे देख रहा था । वह स्वस्थ प्रतीत होता था, जैसे अरण्यमें एक अकेला महावृक्ष खड़ा हो; परन्तु यह स्वस्थता, यह एकाकीपन, दया-जनक प्रतीत होता था ।

" बेचारे मामा जब तक हैं तब तक अकेले ही रहेंगे ।" मंडलेश्वरने कहा ।

" परन्तु जब तक ये हैं, तभी तक पाटनका प्रताप रहेगा । " काकने कहा ।

" और जब तक ये हैं, तबतक आर्यावर्त्तमें कभी एकता न होगी । " कीर्त्तिदेवने और जोड़ दिया ।

" क्यों कीर्तिदेवजी, क्या आप निराश होने लगे ? " काकने पूछा ।

" भटराज " कीर्तिदेवने कहा, " मैं पाटन न आया होता, तो अच्छा था । जब तक मुझे अपने वंशका परिचय न मिला था, तब तक मैं अपनेको दैवी मानता था । मेरी भुजाओंमें इन्द्रके समान बल था और मुझे आर्यावर्त्तमें ऐक्य स्थापित करना, एक खिलवाड़ मालूम होता था । उस समय मेरी शक्तियोंकी कोई सीमा नहीं थी । परन्तु जबसे मुझे अपने वंशका परिचय मिला है, तबसे न जाने क्यों मेरे हाथ टूट-से गये हैं । मैं जब यहाँ आया था, तब देवता था और अब मनुष्य होकर लौट रहा हूँ ।"

" भाई," त्रिभुवनपालने पूछा, " मुंजाल मेहतासे तुमने कैसे पिताक आशा की थी ? "

" यों नहीं महाराज, जब तक वस्तुको मापा नहीं जाता, तभी तक मो रहता है। माप होजानेपर केवल गणना ही रह जाती है। "

" इस प्रकार निराश क्या होते हो ? " काकने कहा।

" निराश नहीं होता; परन्तु भटराज, आपकी बुद्धि निराली है। आ जैसे पराक्रम करते हैं, वैसे बिना श्रद्धाके जोशके मुझसे नहीं होते। "

* * * *

और मुंजाल दिखावटी स्वस्थतासे, दूर और दूर जाती हुई नौकाओंक ओर देखता रहा।